ऋग्वेद के देवशास्त्र सम्बन्धी अश्विन् सूक्तों का आलोचनात्मक अध्ययन

[इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल्० उपाधि हेतु प्रस्तुत]

शोध प्रबन्ध

निर्देशक
डॉ० हरि शङ्कर त्रिपाठी एम० ए०, डी० फिल्०
रीडर, संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

शोधकर्त्री
तमिस्रा चटर्जी

संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद
१९८८

पुरोवाक्

मानव स्वभावतः मननशील प्राणी है । मानवीय विचारों की प्रक्रिया उतनी ही पुरातन है, जितनी सृष्टि । स्वभाव के अतिरिक्त मानव की परिस्थितियाँ एवं चतुर्दिक के परिवेश भी उसे निरन्तर चिन्तनशील बनाये रखने के लिए प्रयत्नरत है । मानवीय संस्कृति और सभ्यता के विकास का यही रहस्य है किन्तु सर्वानुभूत तथ्य यह है कि आरम्भ के विचार अपरिपक्व रहते हैं, नये-नये अनुभवों से विचारों को नई दिशा प्राप्त होती है । अनुभव पल्लवित पुष्पित होते हैं । उनमें क्रमशः परिपक्वता आती है । थोड़ा परिपक्व होने पर वे विचार वाणी के माध्यम से मुखरित होने योग्य हो जाते हैं । मन में उदीयमान विचारों की श्रृंखला इतनी स्फुटित नहीं हो पाती कि वचनों द्वारा उन्हें प्रकाशित किया जा सके । किन्तु कालान्तर में और अधिक परिपक्व होकर व्यवस्थित हो जाने पर लेख बद्ध होते हैं ।

यही स्थिति मेरे साथ भी रही । भारतीय साहित्य और संस्कृति के व्योमचुम्बी विकास में सतत प्रयासरत प्रयाग की पावनी वसुन्धरा में जन्म ग्रहण करने का सौभाग्य प्राप्त कर मैं धन्य हो गई । आयु की देहलीजों को पार करती हुई विद्यालय में प्रविष्ट हुई और देववाणी संस्कृत के अध्ययन का परम सौभाग्य उपलब्ध हुआ । तभी से विचारों का उद्गम हो चुका था, पर उनमें इतनी परिपक्वता न आ सकी थी । वीणापाणी की अशेष अनुकम्पा के फलस्वरूप हाईस्कूल तथा इण्टरमीडियट की परीक्षायें प्रथम श्रेणी में तथा संस्कृत में विशेष योग्यता सहित उत्तीर्ण करने के अनन्तर प्रथितयशा, विश्वविख्यात, महामहिम ज्ञानगरिमा समन्वित महापुरुषों की तपोभूमि, इलाहाबाद विश्वविद्यालय में प्रवेश प्राप्त करने का सौभाग्य मिला । इलाहाबाद विश्वविद्यालय से स्नातक व स्नातकोत्तर परीक्षाओं को भी प्रथम श्रेणी में तथा सम्मान सहित उत्तीर्ण किया । विद्यालयीय जीवन में उत्पन्न हुए अपरिपक्व विचार, विश्वविद्यालयीय छात्र जीवन में प्रवेश करने के अनन्तर, यशस्वी प्राध्यापकों के व्याख्यानों एवं

उनके साहचर्य तथा वाग्देवी वीणापाणी की उपासना की पवित्र भावना से पूर्णतया परिपक्व होकर प्रस्फुटित हुए । अतः सारस्वत उपासना के अग्रिम चरण के रूप में शोध कार्य रूपी यज्ञ को सम्पादित करने का संकल्प किया ।

परमपूज्य प्रपितामह पूज्यपाद स्वर्गीय श्री यदुनाथ चट्टोपाध्याय, वैदिक वाङ्मय के प्रकाण्ड विद्वान् थे । उनके वैदुष्यपूर्ण विद्वज्ज्योति की आभा मुझे भी स्पर्श कर गई । अतः वंशानुक्रम से प्राप्त वैदिक वाङ्मय की ज्ञानपिपासा बाल्यावस्था से ही मुझे वेदाध्ययन की प्रेरणा देती रही है । लुप्तप्राय संकटग्रस्त वैदिक वाङ्मय की दयनीय दशा पर दृष्टिपात करते ही अन्तरात्मा चीत्कार कर उठी और भारतीय ज्ञाननिधि को अक्षुण्ण बनाये रखने की तीव्राकांक्षा मन में जागृत हुई । ऋतम्भरा दैवी वाक् के अक्षय ज्ञान रत्नाकर से कतिपय अमूल्य रत्नों को प्राप्त कर, उसे सुरक्षित रखने की अदम्य लालसा से अनुप्राणित होने के कारण, ऋग्वेद पर शोध कार्य करने की उत्कण्ठा सहज रूपेण मुखरित हो उठी ।

वस्तुतः वेदों पर शोध कार्य एक याग के सदृश है । इस याग में, निर्देशक विद्वत्-प्रवर, पूज्यपाद, गुरुवर, डा० हरिशंकर त्रिपाठी (रीडर, इलाहाबाद विश्वविद्यालय) ऋत्विक् रहे । विभागाध्यक्ष महोदय डा० सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव ने यज्ञ के निर्विघ्न सम्पादनार्थ, मार्ग को कण्टकरहित किया । मैंने एकनिष्ठ साधना तथा अध्ययन मननरूपी आहुतियाँ देते हुए, इस शोध यज्ञ में यजमान की भूमिका निभाई ।

इस महायज्ञ को सम्पन्न करने में मैं सर्वप्रथम निर्देशक, डा० हरिशंकर त्रिपाठी जी के प्रति विनयावनता हूँ, जिन्होंने अपने अमूल्य क्षणों में से कुछ क्षण

मुझे प्रदान किये और अपनी विद्वत्तापूर्ण निर्देशन के द्वारा मेरी त्रुटियों को संशोधित तथा परिमार्जित कर, शोध प्रबन्ध के लेखन में सहयोग प्रदान किया। उन्होंने गुरु के दायित्व का पूर्णरूपेण निर्वाह कर, मुझे यह शोध प्रबन्ध प्रस्तुत करने के योग्य बनाया, इसके लिए मैं उनके चरण कमलों में श्रद्धा सुमन अर्पित करती हूँ। तदनन्तर मैं श्रद्धेय गुरुवर प्रो० सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव [विभागाध्यक्ष, संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय] को, जिनकी अद्भुत प्रेरणा शिष्यजनों का मार्ग प्रशस्त कर, शोध-कार्य हेतु उत्साहवर्धन करती रहती है और प्रो० राधे श्याम [डीन विद्यार्थी कल्याण] तथा अन्ततः कुलपति महोदय डा० डब्ल्यू यू० मलिक को हृदयेन कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ, जिन्होंने मुझे वित्तीय सहायता प्रदान कर शोध-प्रबन्ध को पूर्ण करने में मेरा उत्साहवर्धन किया। मैं इनकी उदारता और अनुकम्पा के लिए आजीवन ऋणी रहूँगी।

अब मैं उन महानात्मा के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ, जिनकी उदारता और महानता का विवरण देना, सूर्य को दिया दिखाने के समान है। ये मेरे पिता श्रद्धेय श्री प्रभात कुमार चटर्जी हैं, जो केवल मेरे जनक ही नहीं, मेरे मार्गदर्शक तथा व्यक्तित्व निर्माता भी हैं। उन्होंने सदा अपने तपःपूर्ण सादगीसम्पन्न जीवन को अध्ययन मनन में ही व्यतीत किया और आज भी करते आ रहे हैं। शोध की प्रेरणा मुझे उन्हीं से मिली। समय-समय पर मेरे मन में उदित होने वाली ज्ञानपिपासा को अपने ज्ञानामृत से तृप्त करते रहे। उन्होंने एक विशाल वटवृक्ष की भाँति मुझे अपनी छत्रछाया में सुरक्षित रखकर जीवन के झंझावातों और विपदाओं के प्रखर आतपों को स्वयं सहते हुए, मुझे इन थपेड़ों से बचाये रखा। अतः आज मैं इस शोध-प्रबन्ध को पूर्ण करने में समर्थ हो सकी हूँ, इसका श्रेय केवल उन्हीं को जाता है। मैं अपने पिता तथा साथ ही अपनी माता श्रीमती प्रोनोती चटर्जी के, (जिन्होंने मुझे गृहकर्मों से यथा-सम्भव मुक्त रखकर, अधिक से अधिक अध्ययन का अवसर प्रदान किया) चरण कमलों में श्रद्धासुमन अर्पित करती हूँ।

मैं अपने परम स्नेहभाजन कनिष्ठ भ्राता श्री शैवाल कुमार चटर्जी की भी हृदय से आभारी हूँ , जिसने शोध प्रबन्ध को पूर्ण करने में सदा मेरी सहायता की । जब मुझे जिस सामग्री की आवश्यकता हुई, उसने शीत, ग्रीष्म तथा वर्षा की परवाह किये बिना, मुझे वह सामग्री उपलब्ध कराई ।

मैं अपने परम स्नेही मित्र मण्डलियों के ऋण से कभी उऋण न हो पाऊँगी। वेद पर शोध करना वस्तुतः सागर से मोती ढूँढ़ने के समान है । पुस्तकें बड़ी कठिनाई से प्राप्त होती हैं । अतः पुस्तकों के अप्राप्य होने से जब-जब मुझे निराशा के कुहासे ने आवृत किया, उन्होंने पुस्तकों की व्यवस्था कर, उस कुहासे को छिन्न भिन्न किया और वाचिक प्रेरणा से शोध सम्पन्न करने के लिए उत्साह-वर्धन करते रहे ।

विश्वविद्यालय के सामान्य पुस्तकालय के अधिकारियों और कर्मचारियों को भी अपना आभार व्यक्त करती हूँ,जिन्होंने यथासम्भव पुस्तकीय सहायता देकर मेरे कार्य की पूर्णता में सहयोग दिया । साथ ही साथ श्री गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत शोध संस्थान के प्राचार्य तथा पुस्तकालयाध्यक्ष महोदय को, हिन्दी साहित्य सम्मेलन पुस्तकालय की पुस्तकालयाध्यक्षा तथा कर्मचारियों को और रामकृष्ण मिशन पुस्तकालय के पुस्तकालयाध्यक्ष को पुस्तकीय सहायता प्रदान करने हेतु हृदयेन आभार व्यक्त करती हूँ ।

शोध पन्थ के पिच्छल होने से जहाँ बड़े से बड़े विद्वानों के पैर फिसल जाते हैं, वहाँ मुझ जैसी अकिंचन शोधार्थिनी की क्या गणना हो सकती है ? त्रुटियों का होना तो उतना ही स्वाभाविक है जितना चाँद पर कलंक का होना । 'सन्देह-पदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तः करणप्रवृत्तयः ' के आधार पर अन्तःकरण को ही प्रमाण मानकर आत्म निवेदन करने का प्रयास किया गया है ।

टङ्कण दोषवश "अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः नियम का पालन न हो पाने के कारण तथा कतिपय स्थलों में अशुद्ध टङ्कण के परिमार्जनार्थ शोध प्रबन्ध की स्वच्छता को अक्षुण्ण बनाये रखने की असमर्थता हेतु क्षमाप्रार्थिनी हूँ ।

विनयावनता

तमिस्रा चटर्जी

(तमिस्रा चटर्जी)

शब्द संकेत सारिणी

अ0 वे0	–	अथर्व वेद
अथर्व0 सं0	–	अथर्ववेद संहिता
उ0 सू0	–	उणादि सूत्र
ऋ0	–	ऋग्वेद
ऋ0 सं0	–	ऋग्वेद संहिता
ऋ0 सं0 भा0	–	ऋग्वेद संहिता भाष्य
ऋ0 का सु0 भा0	–	ऋग्वेद का सुबोध भाष्य
ऋ0 सू0 वै0	–	ऋक् सूक्त वैजयन्ती
ऐ0 ब्रा0	–	ऐतरेय ब्राह्मण
ऐत0 ब्रा0	–	ऐतरेय ब्राह्मण
ओरिजिन0	–	ओरिजिन ऑफ् आइडल वरशिप
का0	–	कात्यायन
काण्व सं0	–	काण्व संहिता
कौषी0 ब्रा0	–	कौषीतकि ब्राह्मण
गो0 ब्रा0	–	गोपथ ब्राह्मण
छान्दो0 उप0	–	छान्दोग्य उपनिषद
जैमि0 उप0 ब्रा0	–	जैमिनीयोपनिषद ब्राह्मण
जैमिनी0 ब्रा0	–	जैमिनीय ब्राह्मण
ता0 ब्रा0	–	ताड्य ब्राह्मण
तु0 निघ0	–	तुलनीय निघण्टु
तु0 या0	–	तुलनीय यास्क
तै0 आ0	–	तैत्तिरीय आरण्यक
तै0 उप0	–	तैत्तिरीयोपनिषद
तै0 सं0	–	तैत्तिरीय.संहिता
निघ0	–	निघण्टु
निरु0	–	निरुक्त

पा0	-	पाणिनि
पा0 धा0 पा0	-	पाणिनीय धातु पाठ
पा0 सू0	-	पाणिनि सूत्र
पृ0	-	पृष्ठ
बृह0	-	बृहद्देवता
बृह0 उप0	-	बृहदारण्यक उपनिषद्
मु0	-	मुद्गल
मैक्डा0	-	मैक्डॉनल0 ए0 ए0
वा0 सं0	-	वाजसनेयी संहिता
वाज0 सं0	-	वाजसनेयी संहिता
वेङ्कट0	-	वेङ्कटमाधव
वै0 इ0	-	वैदिक इण्डेक्स
वै0 इण्ड0	-	वैदिक इण्डेक्स
श0 ब्रा0	-	शतपथ ब्राह्मण
श्वेता0 ब्रा0	-	श्वेताश्वतर ब्राह्मण
सा0	-	सायण
सा0 भा0	-	सायण भाष्य
सात्व0	-	सात्वलेकर, श्रीपाद दामोदर
स्कन्द0	-	स्कन्दस्वामिन्

ABBREVIATIONS

A. B.	–	Aitareya Brāhmaṇa
A. S.	–	Anglo-Saxon
A. S. R.	–	A Sanskrit Reader
A. V.	–	Atharva Veda
Ety.	–	Etymology
Eur.	–	European
F. S.	–	(Prof.) Fatah Singh
G. B.	–	Gopatha Brāhmaṇa
Geld.	–	Geldner. K. F.
Grass.	–	Grassmann
Griff.	–	Griffith. T. H.
J. Up.	–	Jaiminīya Upanishad
K. S.	–	Kāṇva Saṃhitā
Lan.	–	Lanman. C. R.
Lit.	–	Literary
Lit. and Hist. of the Veda	–	Literature and History of the Veda
Mac. D.	–	Mac Donall. A. A.
M. H. B.	–	Mahā-Bhārata
M. W.	–	Monior Williams
Nir.	–	Nirukta
P. P.	–	Pada Pāṭha
Pet.	–	Peterson. P.
Pg.	–	Page
Ṛgd.	–	Ṛgdveda
Ṛgd. M.	–	Ṛgveda Mandal

Ṛgd.S. – Ṛgdveda Saṃhitā

Ṛ.S. – Ṛksūkta Śatī

R.V. – Ṛgveda

S.B. – Śatapatha Brāhmaṇa

S.E.D. – Sanskrit English Dictionary

Sidd.V. – Siddheshwar Verma

S.V. – Siddheshwar Verma

S.V.B. – Śvetāśvatara Brāhmaṇa

T.B. – Tadya Brahmana

T.M.B. – Tādya Mahā Brāhamaṇa

T. Up. – Taittirīya Upanishad

The Vedic Ety. – The Vedic Etymology

Un. S.S. – Uṇādi Sūtra Saṃgraha

Vel. – Velankar H.D.

V.R. – Vedic Reader

V.S. – Vajasaneyī Saṃhitā

Wil. – Wilson H.H.

Zend. – Zendāvestā

विषय सूची

पृष्ठ संख्या

पृष्ठ संख्या

::O::

शोध कार्य की परिधि

वाङ्मय सदा माननीय होता है, चाहे वह किसी भी भाषा का क्यों न हो । सभी के अपने विशिष्ट गुण होते हैं । सभी ने अपने उपकार से मानव समाज को स्वस्थ, सुखी तथा अन्धकार से न्यूनाधिक ऊ-उठाया है । किन्तु वैदिक वाङ्मय की ओर ध्यानाकृष्ट होते ही मन मयूर बरबस प्रफुल्लित होकर नृत्यरत हो उठता है । ऐसी भावना जागृत होती है कि मानो आनन्द सरिता में प्रवाहित हो रही हूँ । यह निश्चय प्रादुर्भूत होता है कि उत्कृष्ट मनुष्य जीवन का सर्वस्व प्राप्तव्य, इसी वाङ्मय में निर्देशित है ।

वैदिक वाङ्मय कहने से इसके अन्तर्गत संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद तथा वेदांग तक सारे साहित्य समाहित हो जाते हैं । इनमें सबसे प्राचीन है संहिता साहित्य । संहितायें चार हैं - ऋग्वेद संहिता, यजुर्वेद संहिता, अथर्ववेद तथा सामवेद संहिता । इन संहिताओं में भी सर्वप्रथम प्राचीन तथा ज्ञान राशि का अक्षय भाण्डार है, ऋग्वेद । 'ऋच्यते स्तूयते अनया इति ऋच्' अर्थात् ऐसे मन्त्र जो वैदिक देवताओं की स्तुति और आह्वान से सम्बन्धित है,उन्हें 'ऋचा' अथवा 'ऋक्' कहते हैं । वेद शब्द 'ज्ञानार्थक विद्' धातु से निष्पन्न है,जिसका शाब्दिक अर्थ ज्ञान है । इस प्रकार देवविषयक अतिगूढ ज्ञान का प्रतिपादन करने वाले छन्दोबद्ध मन्त्रों के संग्रह को ऋग्वेद कहते हैं ।

देव विषयक अतिगूढ ज्ञान का प्रतिपादक होने के कारण ही इसे देवशास्त्र (Mythology) का आदि स्त्रोत मानने में कोई संशय नहीं रह जाता । ऋग्वेद का देवशास्त्र विभिन्न महत्व के अनेक समवर्गीय प्रकृति देवताओं का निरूपण करता है । इन देवताओं का उनके स्वरूप तथा चारित्रिक विशेषताओं के अनुसार त्रिस्तरीय विभाजन किया गया है , जिनमें सूर्य तथा अश्विनादि देवता द्युस्थानीय माने गये हैं । इन्द्रादि अन्तरिक्षस्थानीय तथा अग्नि और सोमादि पृथ्वीस्थानीय देवताओं की श्रृंखला में परिगणित है । प्रस्तुत शोध का विषय ऋग्वेद के

द्युस्थानीय देवता अश्विन् द्वय को बनाया गया है , जिनकी प्रख्याति वैदिक देवशास्त्र में अवियोज्य देवयुगल के रूप में है । वेदत्रयी के देवशास्त्र में अश्विनद्वय अपने अद्वितीय चिकित्सकीय और चामत्कारिक कृत्यों के फलस्वरूप 'दिव्य भिषक्' के रूप में प्रतिष्ठित हुए । ब्राह्मण साहित्य में प्राप्त उद्धरणों के अनुसार क्रमशः उनके सामाजिक प्रतिष्ठा का ह्रासोन्मुख होना तथा सामाजिक प्रतिष्ठा की पुनःप्राप्ति के प्रमुख कारणों के साथ ही दिव्य भिषक् के रूप में उनकी चामत्कारिक चिकित्सा प्रणाली, देवशास्त्रीय अध्ययन की दृष्टि से एक रोचक विषय है । इसलिए मेरा ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ और मैंने केवल उन दस अश्विन् सूक्तों को ही अपने अध्ययन का विषय बनाया, जिनसे इन देवयुग्मों का देवशास्त्रीय स्वरूप उभरकर सामने आता है । देवशास्त्र के माध्यम से ऐसी पुराकथायें (Legends) प्रस्तुत होती हैं जो देवताओं की उत्पत्ति, उनके क्रियाकलाप, आकार प्रकार और चतुर्दिक वातावरण का वर्णन प्रस्तुत करती हैं , जिनसे देवता विशेष का पूरा देवशास्त्रीय स्वरूप प्रकाशित होकर सामने आ जाता है । शोध का उपकेन्द्रीय बिन्दु देवशास्त्र को ही माना जा सकता है, क्योंकि शोध का विषय है - 'ऋग्वेद के देवशास्त्र सम्बन्धी अश्विनी सूक्तों का आलोचनात्मक अध्ययन' । अतएव चार दृष्टिकोणों से इस विषय का अध्ययन किया गया है -

1. वैदिक देवशास्त्र का परिचय तथा देवताओं के वर्गीकरण का आधार ।

2. अश्विनों के देवशास्त्रीय स्वरूप का अध्ययन ।

3. अश्विनों के अलौकिक स्वरूप का अध्ययन ।

4. देवशास्त्रीय अश्विन् सूक्तों में संकलित मन्त्रों का पौरस्त्य एवं पाश्चात्य विद्वानों के मतानुसार व्युत्पत्तिशास्त्रीय आलोचनात्मक अध्ययन तथा संस्कृत, भारोपीय (Indo - European) और इण्डो ईरानियन (Indo - Iranian) भाषाओं में प्रयुक्त शब्दों के पारस्परिक घनिष्ठ साम्य को दर्शाने का यथासम्भव प्रयास ।

उपर्युक्त परिधि के मध्य ही सम्पूर्ण शोध कार्य का विस्तार निहित है ।

शोध कार्य का प्रयोजन

पूर्वोल्लिखित चतुर्धा वर्गीकरणों के आधार पर ही शोधकार्य क्यों सम्पन्न किया गया, यह जिज्ञासा मानसपटल पर उद्वेलित होना स्वाभाविक ही है । मैं यहाँ यह स्पष्ट कर देना चाहूँगी कि इस दिशा में शोध करके कौन से प्रयोजन सिद्ध हो सकते हैं । इनका विस्तृत विवरण निम्नलिखित है :-

1. देवशास्त्रीय अश्विन् सूक्तों का अध्ययन करने से उन सूक्तों में प्रयुक्त पुराकथाओं के माध्यम से हमें अश्विनों के स्वरूप के विभिन्न पहलुओं से अवगत होने का अवसर प्राप्त हुआ , जिससे कतिपय उपयोगी तथ्य उभरकर सामने आये। जैसे - उनके उत्पत्ति से सम्बन्धित कथाओं तथा अन्य कथाओं के माध्यम से तत्कालीन भौगोलिक दशा का ज्ञान प्राप्त होता है । मन्त्रों के गहन अध्ययन से हमें भौगोलिक स्थिति, सूर्य के परिक्रमा का मार्ग, उसकी प्रखरता तथा वर्षाकाल की अवधि का ज्ञान प्राप्त करने में सहायता मिलती है । कथा प्रसंगों के द्वारा यह सिद्ध होता है कि पहले सूर्य का तेज और भी प्रखर था, जो धीरे धीरे कम होता जा रहा है । मन्त्रों में प्राप्त उद्धरणों के आधार पर अश्विनों को प्रातः प्रकाश के साथ समीकृत करने का प्रयास किया गया है । कतिपय विद्वानों ने इन्हें नक्षत्र मण्डल के दो तारों का प्रतिरूप माना है । इन मन्त्रों के अध्ययन के फलस्वरूप नक्षत्रविज्ञान के अन्तर्गत चल रहे अनुसन्धानों को नई दिशा मिलेगी ।

2. दिव्य वैद्य के रूप में अश्विनों का जो स्वरूप दृष्टिगोचर होता है, वह सर्वाधिक महत्वपूर्ण है । दिव्य वैद्य के रूप में उनकी प्रख्याति न केवल वैदिक साहित्य में, अपितु वैदिकोत्तर साहित्य में भी देखी जाती है । यही स्वरूप सर्वाधिक विकसित भी है । अश्विनों के द्वारा विभिन्न प्रकार के व्याधियों से ग्रस्त मानवों का उपचार कर उन्हें दीर्घायु प्रदान करने की अनेकों कथायें वैदिक

साहित्य में उपलब्ध होती है । अश्विनीकुमारों के विभिन्न चिकीत्सकीय कृत्यों को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में आँका जा सकता है । शल्य चिकित्सा, जल चिकित्सा, रश्मि चिकित्सा (Ray - therapy) तथा वर्ण चिकित्सा (colour - therapy) आदि जिन चिकित्सा पद्धतियों का विकास आज हो रहा है, उनका बीजारोपण आज से सदियों वर्ष पूर्व वैदिक युग में हो चुका था, जिसका प्रमाण हमें अश्विन् सूक्तों में प्राप्त होता है । अश्विनों की चिकित्सा प्रणाली क्या थी ? क्या वे मन्त्रों के द्वारा रोगी का उपचार करते थे या औषधियों के द्वारा ? यदि मन्त्रोच्चारण से उपचार करते थे तो उन मन्त्रों के ध्वनि तरंगों का मानव शरीर पर क्या प्रभाव पड़ता था, जिससे रोगी स्वस्थ हो जाता था ? इन विषयों पर विस्तृत वैज्ञानिक अध्ययन किये जा सकते हैं ।

3. ब्राह्मणकाल से महाकाव्य काल तक अश्विनों की ह्रासोन्मुख सामाजिक प्रतिष्ठा के उद्धरण, जो शोध के दौरान उपलब्ध हुए, वे तत्कालीन सामाजिक पूर्ण व्यवस्था की ओर संकेत करते हैं । संहिता काल में जिन्हें देवत्व की कोटि में रखा जाता था, उनके सामाजिक स्तर में ह्रास क्यों हुआ ? वैद्यों को तत्कालीन समाज व्यवस्था में किस वर्ण के अन्तर्गत रखा गया ? इस पर आगे चलकर विस्तृत रूप से अध्ययन किया जा सकता है और इस अध्ययन हेतु पर्याप्त तथ्य प्रस्तुत शोध प्रबन्ध से उपलब्ध हो सकते हैं ।

4. शोध प्रबन्ध के चतुर्थ अध्याय में शब्दों की व्युत्पत्ति शास्त्रीय (Etymological) आलोचना की गई है । शब्दों की व्युत्पत्ति का ज्ञान हो जाने से वैदिक मन्त्रों का अर्थ पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है , जिससे हम वेदों में छिपे अनेक बहुमूल्य तथ्यों को ढूँढ सकते हैं । देवशास्त्र सम्बन्धी अश्विन् सूक्तों में संकलित मन्त्रों का अर्थ स्पष्ट हो जाने से, उनसे प्राप्त अनेक उपयोगी संकेत, हमारे खगोल शास्त्र तथा चिकित्सा विज्ञान से सम्बन्धित अनेक पहलुओं पर प्रकाश डाल सकते हैं । कार्य के कठिन होने के कारण इस दिशा में अभी उल्लेखनीय प्रयास नहीं हुए हैं ।

5. शब्दों की व्युत्पत्तिमूलक आलोचना करने से शब्दों के विषय में विशद ज्ञान प्राप्त होता है , जिससे सुन्दर शब्द कोष बनाया जा सकता है । कोष का निर्माण करने से भाषा विज्ञान के अतिरिक्त समाज विज्ञान तथा विज्ञान सम्बन्धी अनेकों समस्याओं पर प्रकाश पड़ेगा ।

6. शब्दों की आलोचना करने के पश्चात् , उन शब्दों की तुलना भारोपीय भाषाओं [जैसे - जर्मन, गॉथिक, ग्रीक, लैटिन, लिथुआनियन, प्रुशियन, स्लवानिक, टोचारिअन और अंग्रेजी] तथा इण्डो ईरानियन भाषाओं [जैसे- अवेस्तान और पर्शियन] में प्रयुक्त शब्दों से की गई है । इस शोध कार्य के माध्यम से यह पाया गया कि संस्कृत और इन विभिन्न पाश्चात्य भाषाओं में पर्याप्त साम्य है । यह साम्य अर्थ और ध्वनि की दृष्टि से अधिक पाया गया । संस्कृत और इन विभिन्न राष्ट्रों की भाषा में परस्पर साम्य को देखते हुए यह परिकल्पना की जा सकती है कि ये सभी भाषायें किसी एक मूल से निःसृत हैं । इस परिकल्पना की पुष्टि, शोध-प्रबन्ध में दिये गये शब्दों की पारस्परिक तुलना के आधार पर की जा सकती है ।

------------::0::------------

प्रथम अध्याय

वैदिक देवशास्त्र का परिचय

अविच्छिन्न काल की इतिहासोपहत उपाधि से स्वतन्त्र होकर अनवच्छिन्न महाकाल की झाँकी लेने के लिए आज का मानव दो उपाय काम में लाता है : एक साहित्यानुशीलन और दूसरा दृश्य दर्शन । इस प्रसंग में साहित्य के दो व्यापार होते हैं : पहला देवशास्त्रीय (Mythological) साहित्य का सृजन और दूसरा पाठकों के हृत्पटल पर देवशास्त्रीय तत्त्वों का प्रतिफलन । साहित्यिक क्षेत्र में पहले पहल देवकथाओं का प्रतिफलन हुआ, फिर पुराण गाथाओं का, उसके बाद आर्षी कविता बनी और इन सबके पश्चात् आज के साहित्य का उदय हुआ ।

देवशास्त्र क्या है ? धर्म के अन्दर, उसके अत्यन्त व्यापक अर्थ में एक ओर तो मानव द्वारा समादृत दिव्य अथवा अतिभौतिक शक्तियों के विषय में उसकी भावनाएँ आती हैं और दूसरी ओर मानव कल्याण के उन शक्तियों पर निर्भर होने की उसकी भावना, जिसकी अभिव्यक्ति पूजा के विविध रूपों में होती है । देवशास्त्र का सम्बन्ध धर्म के प्रथम पक्ष के साथ है, क्योंकि यह शास्त्र उन सभी गाथाओं अथवा कहानियों को प्रस्तुत करता है,जो देवताओं एवं बीरों के विषय में कही गई है और जिनमें उनके स्वरूप एवं उद्भव, उनके कृत्य एवं परिस्थितियों का विवरण प्रकट होता है । इस प्रकार की गाथाओं का उद्भव, विज्ञानशून्य आदि काल में उत्पन्न हुए मानव के उन प्रयासों में निहित है,जो उसने अपने सम्मुख प्रवर्तमान प्राकृतिक शक्तियों एवं दृश्यों की व्याख्या के रूप में किये थे ।

वैदिक देवशास्त्र का मूल प्राचीनकाल से वैदिक युग तक अविच्छिन्न चलते आये उस विश्वास में है, जो मानव के समक्ष स्थित पदार्थों एवं प्राकृतिक दृश्यों को चेतन एवं दैवी मानता रहा है । ऐसी कोई भी वस्तु जो मन में भय पैदा कर सकती थी, अथवा जिसके विषय में यह भावना बन जाती थी कि

उसका मानव पर भला या बुरा प्रभाव पड़ सकता है, न केवल मानव के लिए आराधना का विषय बन जाती थी अपितु वह उसके प्रार्थना के योग्य भी हो जाया करती थी । फलतः आकाश, पृथ्वी, पर्वत, नदी और पौधों तक की उपासना दिव्य शक्तियों के रूप में चल पड़ी थी । अश्व, गौ, पक्षी एवं अन्य पशुओं का आह्वान किया जाने लगा था । यहाँ तक कि मानव के अपने हाथों बनाये पदार्थ शस्त्र, युद्ध-रथ, ढोल, हल एवं कर्मकाण्ड के उपकरण सवन-पाषाण एवं यज्ञस्तम्भ आदि सभी की उपासना सामान्य बन गई थी ।

जो उक्तियाँ एक विकसित मानव के लिए रूपक या कपोल कल्पित होने के अतिरिक्त और कुछ नहीं होती, वहीं आदिकालीन मानव के लिए दृश्यमान घटनाओं की यथार्थ व्याख्या बन जाती है । वे बौद्धिक जिज्ञासायें जो कि जगत् की उत्पत्ति और उसकी रचना के विषय में की गई विवादों से उत्पन्न होती है, इन पुराकथाओं में अपना हल पाती हैं । इन देवशास्त्रीय पुराकथाओं (Mythological legends) का मूल मानव-मन के उस आद्यकालिक अभिव्यक्ति में है, जिससे वह अशेष प्रकृति को चेतन इकाइयों का एक निकाय समझता आया है । देवशास्त्रीय पुराकथाओं का आरम्भ उस समय होता है जब कल्पना किसी प्राकृतिक घटना की व्याख्या एक ऐसे मूर्त प्राणी के रूप में करती है, जो मानवीय सत्ता के समान हो ।

मानव वर्तमान से खिन्न होकर अतीत से सुख ढूँढ़ता हुआ देवशास्त्र के उस सुदूर शिखर पर जा पहुँचता है, जहाँ से सर्ग रचना का आरम्भ हुआ था और जो देशकाल की परिधि से बाहर है । देवशास्त्र पवित्र इतिहास होने के नाते सत्य है । यह उन तथ्यों का इतिहास है जो सर्ग के आदि बिन्दु पर घटित हुए थे । इसलिए यह सर्ग-प्रवृत्ति के उपरान्त आने वाले मानव-समाज के लिए उसके कर्त्तव्य की कसौटी सिद्ध हुआ है । इसमें सन्देह नहीं कि आज के सुलभ्य

मानव की दृष्टि में देवशास्त्र कल्पित मात्र हैं, किन्तु परम्परा में पगे धर्मप्रवण नरनारियों के लिए यह शाश्वत सत्य का मनोरञ्जक विकास है ।

देवशास्त्र की विशेषताएं - धार्मिक इतिहास के अध्ययन में वैदिक देवशास्त्र का अलग ही महत्त्व है । इसके प्राचीनतम स्त्रोत, ऋग्वेद में, हमें प्रकृति के मानवीकरण और उसकी उपासना पर आधारित धार्मिक विश्वासों का प्राचीन स्तर प्राप्त होता है । वैदिक देवशास्त्र में मानवीकरण की वह प्रक्रिया स्पष्ट रूप से झलकती है, जिसके द्वारा प्राकृतिक दृश्य देवताओं के रूप में परिणत हुए थे । यह प्रक्रिया अपने इस रूप में विश्व के अन्य किसी भी साहित्य में दिखलाई नहीं पड़ती । वैदिक देवशास्त्र और उसी के साथ वैदिक भाषा, इतनी स्वच्छ और पारदर्शक है कि उसमें बहुधा एक देवता का उसके भौतिक आधार के साथ स्पष्ट सम्बन्ध दिखलाई पड़ता है । अनेक स्थानों पर इस मानवीय रूप रचना का आरम्भिक चित्र तक सामने आ जाता है । वेद के देवता तो यशः सम्पन्न मानवीय प्राणी हैं, जो मानवीय उद्देश्यों एवं भावनाओं से प्रभावित हैं और जो मानव की भाँति उत्पन्न तो होते हैं पर उनकी मृत्यु कभी नहीं होती । वे बिना किसी अपवाद के, प्राकृतिक दृश्यों के दिव्यीकृत प्रतिरूप हैं । किन्तु मानवीकरण की कोटियाँ उनकी अपनी अलग-अलग हैं । जब देवता का नाम वही रहता है, जो कि उसके प्राकृतिक आधार का है तब व्यक्तिभाव अपनी प्राथमिक अवस्था में रहता है । जैसे-अग्नि, द्यौ, पृथ्वी और उषस् आदि। जब एक देवता का नाम उसके भौतिक आधार के नाम से भिन्न होता है, तब वह भौतिक पदार्थ से दूर सरकता चला जाता है । जैसे मरुद्गण । ऐसी दशा में मानवीकरण की प्रक्रिया आसानी से आगे बढ़ चुकी होती है । वैदिक देवताओं को एक दूसरे से पृथक् करने वाली विशेषताएं बहुत थोड़ी हैं । बहुसंख्यक गुण और शक्तियाँ तो सब देवताओं में एक समान हैं । इसका एक कारण तो यह है कि प्रकृति की वह शक्तियाँ, जिनके ये देवता प्रति-

रूप है, अनेक बातों में समान हैं, जबकि अभी ये देवता मानव के रूप में पूरी तरह विकसित नहीं हो पाये हैं । वैदिक देवताओं का यथार्थ स्त्रोत एक ही है, किन्तु उन देवताओं में उन-उन संज्ञाओंके कारण विभेद आ गया है, जो कि किन्हीं ऐसे गुणविशेषों का बोध कराती हैं जिन्होंने शनैः शनैः अपने स्वतन्त्र रूप बना लिये हैं ।

वैदिक देवशास्त्र का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण स्त्रोत भारतीय साहित्य की प्राचीनतम रचना ऋग्वेद है । इसकी गाथाओं में विभिन्न महत्त्व के अनेक परस्पर मिलित प्रकृति-देवताओं का वर्णन मिलता है । यह बहु-देववाद ऋग्-वैदिक काल के अन्त में उभरती हुई भावात्मकता से प्रभावित होता हुआ इस वेद के दशम मण्डल में, एक प्रकार के एकदेववाद अथवा ~~एक प्रकार से~~ सर्वदेववाद (अद्वैतवाद) में बदल जाता है ।

देवशास्त्र के अध्ययन में कुछ अंशों तक काव्यात्मक अन्तर्दृष्टि के अति-रिक्त, सतर्कता और निर्णयों की गम्भीरता की अत्यन्त आवश्यकता है । उपलब्ध सामग्री में निहित अस्पष्टता ही बहुसंख्यक महत्त्वपूर्ण देवशास्त्रीय (**Mythological**) समस्याओं पर वैदिक विद्वानों में व्याप्त अत्यधिक मतभेद का कारण है । ऐसे शोधकार्यों को, जिनका अभीष्ट वैदिक देवों के चरित्र तथा व्यवहारों का अध्ययन करना है, किसी भी निष्कर्ष पर पहुँचने से पहले प्रत्येक देवता अथवा पुराकथा सम्बधित समस्त सामग्री का संग्रह, वर्गीकरण तथा उनका अन्य समानान्तर स्थलों के साथ तुलना करने के अनन्तर उनका सूक्ष्म परीक्षण करना चाहिये ।[1]

---

1. **Bloomfield - Zeitschrift der Deutschen Morgenländischen Gesellchaft. Pg. 48, 542.**

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में दस ऐसे अश्विनी सूक्तों को शोध का विषय बनाया गया है, जो देवशास्त्र से जुड़े हुए हैं । अश्विनी कुमारों से सम्बन्धित विभिन्न देवशास्त्रीय पुराकथाओं (Mythological legends) का प्रस्फुटन इन दस सूक्तों में हुआ है । इन देवशास्त्रीय पुराकथाओं की सूची इस प्रकार है :

(अ) <u>अश्विनों के जन्म तथा विवाह से सम्बन्धित पुराकथा</u> :

(i) शरण्यु और विवस्वान् की कथा ।
(ii) सूर्या तथा अश्विनों के विवाह की कथा ।

(ब) <u>अश्विनीकुमारों के चिकित्सकीय कर्मों से सम्बन्धित पुराकथायें</u> :

(i) पंगु विश्पला की कथा ।
(ii) नेत्रहीन ऋज्राश्व की कथा ।
(iii) परावृज ऋषि की कथा ।
(iv) उपमन्यु की कथा ।
(v) कुष्ठ रोग से पीड़ित घोषा की कथा ।
(vi) चर्म रोग से पीड़ित श्यावाश्व की कथा ।
(vii) प्रसव पीड़ा से पीड़ित युवनाश्व की कथा ।
(viii) वृद्ध च्यवन ऋषि को पुनर्यौवन प्रदान करने की कथा ।
(ix) कलि को युवा बनाने की कथा ।
(x) दध्यङ् की कथा ।
(xi) कण्व ऋषि की कथा ।

(स) <u>पीड़ित जनोद्धारक के रूप में अश्विनीकुमारों से सम्बन्धित पुराकथायें</u> :

(i) समुद्र में गिरे हुए भुज्यु की कथा ।
(ii) वन्दन ऋषि की कथा ।

(iii) जल में पड़े हुए रेभ की कथा ।

(iv) अत्रि की कथा ।

(v) विपत्तिग्रस्त वर्तिका की कथा ।

(vi) शत्रुओं से घिरे हुए जाहुष की कथा ।

(vii) तृषित गोतम की कथा ।

(viii) शर की कथा ।

(ix) इन्द्र-वृत्र युद्ध में इन्द्र की सहायता ।

‡द‡ <u>उदार दाता के रूप में अश्विनीकुमारों से सम्बन्धित पुराकथायें</u> :

(i) कक्षीवान की कथा ।

(ii) पेदु को अश्व प्रदान करने की कथा ।

(iii) विमद को पत्नी प्रदान करने की कथा ।

(iv) वध्रिमती को पुत्र प्रदान करने की कथा ।

(v) विश्वक की कथा ।

(vi) शयु की कथा ।

इन्हीं देवशास्त्रीय पुराकथाओं के माध्यम से ही अश्विनी कुमारों के स्वरूप, चरित्र तथा उनके द्वारा कृत प्रमुख कृत्यों का ज्ञान स्पष्ट रूप से होजाता है । वेदों के प्रमुख देव विशिष्टीकृत मानव हैं,जो मानवों जैसी आकांक्षा-ओं और प्रेरणाओं से ओतप्रोत, मानवों की तरह जन्में, किन्तु अमर व्यक्ति हैं । यह सभी लोग बिना किसी अपवाद के प्रकृति की गोचर घटनाओं अथवा तत्त्वों के दैवीकृत प्रतिनिधि हैं ।[1] अश्विनीकुमार भी प्रकृति के किस रूप का दैवीकृत प्रतिनिधित्व करते हैं अथवा उनका मानवत्वारोपित स्वरूप कैसा है, इसकी विशद विवेचना शोध प्रबन्ध के आगामी अध्याय में की गई है ।

---

1. ओल्डेनबर्ग - रिलीजन देस वेद, 59।-4

वैदिक देवताओं के वर्गीकरण का आधार

देवताओं के लीला क्षेत्र सम्पूर्ण जगत् को वैदिक कवियों ने पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक इन तीन भागों में बाँटा है । द्युलोक, अन्तरिक्ष और पृथिवी ऋग्वेद की प्रिय त्रिलोकी है, जिसका प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से बार-बार गुणगान किया गया है ।[1] इसे जगत् का त्रिस्तरीय विभाजन भी कहते हैं किन्तु अथर्ववेद के एक मन्त्र[2] तथा वाजसनेयी संहिता[3] में आये एक पंक्ति के अनुसार एक चौथा क्षेत्र स्वः बन जाता है । आकाश गुम्बद को पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्युलोक की त्रिकुटी के और स्वः अथवा प्रकाश मण्डल के मध्य स्थित

---

1. यदन्तरिक्षे पतथः पुरुभुजा यद् वेमे रोदसी अनु ।ऋ० 8/10/6।

2. पृष्ठात् पृथिव्या अहमन्तरिक्षमारुहमन्तरिक्षाद् दिवमारुहम् ।
   दिवो नाकस्य पृष्ठात् स्वर्ज्योतिरगामहम् ।।अथर्व० 4/14/3।

3. पृथिव्या अहमुदन्तरिक्षमारुहमन्तरिक्षाद् दिवमारुहम् ।
   दिवो नाकस्य पृष्ठात् स्वर्ज्योतिरगामहम् ।।

   ।वा० सं० 17/67।

माना गया है । परन्तु इस चौथे वर्गीकरण का और कहीं उल्लेख प्राप्त न होने से इसे मान्यता नहीं दी गई है । सर्वत्र त्रिस्तरीय विभाजन ही मान्य है ।

वैदिक देवता भारोपीय जातियों में से किसी भी जाति के देवताओं की अपेक्षा प्राकृतिक दृश्यों के अधिक समीप है । फलतः रूप रेखा का अनिर्धारण और व्यक्तित्व का अभाव ये दो बातें वैदिक देवशास्त्र की विशेषताएं है । फलतः वेद के प्राचीन व्याख्याकार यास्क कहते हैं कि देवों का रूप नितरां मानवीय नहीं हैं, जैसे कि सूर्य पृथिवी तथा अन्य देवों के दृश्य रूप ।[1]

वैदिक देवशास्त्र में देवताओं की संख्या निश्चित नहीं है । ऋग्वेद एवं अथर्ववेद में देवताओं की संख्या 33 बताई गई है ।[2] इस संख्या को 33 का तीन गुना भी माना गया है ।[3] एक मन्त्र में बताया गया है कि स्वर्ग में 11, पृथिवी पर 11 तथा जल में 11 देवता रहते हैं ।[4] इसी तरह अथर्ववेद

---

1. अपुरुषविधाः स्युरित्यपरम् । अपि तु यद् दृश्यतेऽपुरुषविधं तत् । यथाऽग्निर्वायुरादित्यः पृथिवी चन्द्रमा इति ।। [निरु० 7/7]

2. पत्नीवतस्त्रिंशतं त्रींश्च देवाननुष्वधमा वह मादयस्व [ऋ० 3/6/9]
   यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवा अङ्गे सर्वे समाहिताः [अथर्व० 10/7/13]

3. विश्वैर्देवैस्त्रिभिरेकादशैरिह [ऋ० 8/35/3]

4. ये देवासो दिव्येकादश स्थ पृथिव्यामध्येकादश स्थ ।
   अप्सुक्षितो महिनैकादश स्थ ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम् ।। [ऋ० 1/139/11]

में देवताओं को द्युस्थानीय, अन्तरिक्षस्थानीय और पृथिवीस्थानीय इन तीन वर्गों में बाँटा गया है ।[1] तैंतीस संख्या में सभी देवताओं का समावेश नहीं होता, क्योंकि तैंतीस से अधिक देवताओं का उल्लेख मिलता है ।[2] एक मन्त्र में देवताओं की संख्या 3339 भी बताई गई है ।[3] ऋग्वेद में उनके भी तीन

---

1. ये देवा दिविषदो अन्तरिक्षसदश्च ये चेमे भूम्यामधि ॥अथर्व0 10/9/12॥

2. त्रीणि शता त्री सहस्राण्यग्निं त्रिंशच्च देवा नव चासपर्यन् ।
   औक्षन् घृतैरस्तृणन् बर्हिरस्मा आदिद्धोतारं न्यसादयन्त ॥ ॥ऋ0 3/9/9॥
   वेद यस्त्रीणि विदथान्येषां देवानां जन्म सनुतरा च विप्रः ॥ऋ0 6/51/2॥

3. आ नासत्या त्रिभिरेकादशैरिह देवेभिर्यातं मधुपेयमश्विना ॥ऋ0 1/34/11॥
   श्रुष्टीवानो हि दाशुषे देवा अग्ने विचेतसः ।
   तान् रोहिदश्व गिर्वणस्त्रयस्त्रिंशतमा वह ॥ ॥ऋ0 1/45/2॥
   विश्वैर्देवैस्त्रिभिरेकादशैरिहाऽद्भिर्मरुद्भिर्भृगुभिः सचाभुवा
   सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं पिबतमश्विना ॥ ॥ऋ0 8/35/3॥
   अग्निस्त्रीणि त्रिधातून्या क्षेति विदथा कविः ।
   स त्रींरेकादशाँ इह यक्षच्च पिप्रयच्च नो विप्रो दूतः परिष्कृतो नभन्तामन्यके समे ॥ ॥ऋ0 8/39/9॥
   त्रीणि शता त्री सहस्राण्यग्निं त्रिंशच्च देवा नव चासपर्यन् ॥ऋ0 3/9/9॥

वर्गों का उल्लेख मिलता है ।[1] जब देवता द्युलोक, पृथिवी और जल से सम्बद्ध होते हैं, तब उनका तीन भागों में विभाजन माना जाता है ।[2] ब्राह्मणों में भी देवताओं की संख्या 33 बताई गई हैं । शतपथ और ऐतरेय ब्राह्मण में 8 वसुओं, 11 रुद्रों और 12 आदित्यों के तीन वर्ग प्राप्त होते हैं किन्तु शतपथ[3] में 31 के अतिरिक्त द्यौस् और पृथिवी, या इन्द्र और प्रजापति[4], दो देवता और माने गये हैं । ऐतरेय ब्राह्मण में ये दो देवता वषट्कार और प्रजापति हैं, जिनके योग से 33 संख्या पूरी होती है । नैघण्टुक के पञ्चम काण्ड में प्रत्येक वर्ग में 11 से भी अधिक देवताओं की गणना है । कुछ ऐसे महत्त्वपूर्ण देवता भी हैं, जैसे :- (1) इला, रात्रि, वनस्पति, अश्व, शकुनि : (2) मृत्यु मन्यु, तार्क्ष्य, क्षेत्रपति, दधिक्रा : (3) वृषाकपि, मनु, वसु, समुद्र, तथा दध्यङ् आदि ।

---

1. वेद यस्त्रीणि विदथान्येषां देवानां जन्म सनुतरा च विप्रः (ऋ0 6/51/2)

2. शं नो देवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वती सह धीभिरस्तु
   शमभिषाचः शमु रातिषाचः शं नो दिव्याः पार्थिवाः शं नो अप्याः (ऋ07/35/11)
   मां धुरिन्द्रं नाम देवता दिवश्च गमश्चापां च जन्तवः (ऋ0 10/49/2)
   देवां आदित्यां अदितिं हवामहे ये पार्थिवासो दिव्यासो अप्सु ये (ऋ010/65/9)

3. अष्टौ वसव एकादशरुद्रा द्वादशादित्या इमे एव द्यावापृथिवी त्रयस्त्रिंश्यौ त्रयस्त्रिंशद्वै देवाः प्रजापतिश्चतुस्त्रिंशः (श0ब्रा0 4/5/7/2)

4. अष्टौ वसव एकादश रुद्रा द्वादशादित्यास्त एकत्रिंशदिन्द्रश्चैव प्रजापतिश्च त्रयस्त्रिंशाविति । (श0ब्रा0 11/6/3/5)

देवताओं के अध्ययन की सुविधा के लिए वैदिक देवों को कई प्रकार से वर्गीकृत किया गया है :-

1. यास्क का त्रिस्तरीय विभाजन : ऋग्वेद[1] के तीन विभागों का अनुसरण करके यास्क[2] ने विभिन्न देवताओं को, या एक ही देवता के विभिन्न रूपों को पृथ्वीस्थान, अन्तरिक्ष या मध्यमस्थान और द्युस्थान इन तीन वर्गों में बाँटा है । पृथ्वीस्थानीय देवता हैं - अग्नि, सोम, पृथिवी आदि । अन्तरिक्ष या मध्यमस्थान में हैं - इन्द्र, रुद्र, वायु, पर्जन्य, मातरिश्वन् , अपां नपात् आदि;तथा द्युस्थानीय देवताओं में - सूर्य, वरुण, मित्र, पूषन् , विष्णु, अश्विनौ, द्यौ, सवितृ तथा उषस् प्रमुख हैं । यास्क का यह भी कथन है कि उनके पूर्ववर्ती नैरुक्तों के अनुसार देवता केवल तीन हैं - पृथिवी पर अग्नि, अन्तरिक्ष में वायु अथवा इन्द्र,तथा द्युलोक में सूर्य । इस धारणा का आधार ऋग्वेद के इस प्रकार के मन्त्र हो सकते हैं -

"सूर्यो नो दिवस्पातु वातो अन्तरिक्षात्
अग्निर्नः पार्थिवेभ्यः ।" ॥ऋ0 10/158/1॥

यास्क कहते हैं कि इनमें से प्रत्येक देवता के अपने-अपने क्रियाकलाप के कारण अनेक अभिधान हैं ।

---

1. ये देवासो दिव्येकादश स्थ पृथिव्यामध्येकादश स्थ ।
अप्सुक्षितो महिनैकादश स्थ ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम् ॥॥ऋ0 1/139/11॥

2. तिस्त्र एव देवता इति नैरुक्ताः । अग्निः पृथिवीस्थानः ।
वायुर्वेन्द्रोवाऽन्तरिक्षस्थानः । सूर्यो द्युस्थानः । ॥निरु0 7/2॥

2. याज्ञिकों का वर्गीकरण : याज्ञिकों का सिद्धान्त यह है कि एक ही देवता के कई नाम नहीं हैं, अपितु देवता ही भिन्न-भिन्न हैं। जब पृथक-पृथक स्तुतियाँ की गई हैं, तो देवता भी पृथक्-पृथक् ही हैं।[1] अर्थात् याज्ञिकों के सिद्धान्त में देवता बहुत हैं, नैरुक्त चाहे तीन ही मानते रहें।

3. बृहद्देवताकार शौनक का वर्गीकरण : बृहद्देवता में भी सम्पूर्ण देवताओं को इन्हीं तीन प्रमुख देवों का विविध रूप मानकर देवों के त्रित्वपाद का प्रतिपादन किया गया है। शौनक का कहना है कि मुख्यतः ये ही तीन देवता हैं और शेष इनकी विभूतियाँ हैं।[2] यही कारण है कि एक मन्त्र में एक देवता और शेष इनकी विभूतियाँ हैं। मन्त्रों में एक देवता को दूसरे का उत्पादक कहा गया है।

4. महत्ता के अनुसार वर्गीकरण - विभिन्न वैदिक देवताओं का उनकी आपेक्षिक महत्ता के अनुसार भी वर्गीकरण किया जा सकता है। इस प्रकार का वर्गीकरण ऋग्वेद के उस मन्त्र में मिलता है, जहाँ उन्हें महान् और लघु, युवा और वृद्ध कहा गया है। आपेक्षिक महत्ता के अनुसार दो देवता अन्य सभी देवों की

---

1. अपि वा पृथगेव स्युः। पृथग्घि स्तुतयो भवन्ति। निरुक्त 7/2।

2. अग्निरस्मिन्नथेन्द्रस्तु मध्यतो वायुरेव च।
   सूर्यो दिवीति विज्ञेया तिस्रएवेह देवताः।।

   एतासामेव माहात्म्यान्नामान्यत्वं विधीयते।
   तत्तत्स्थानविभागेन तत्र तत्रेह दृश्यते।।

   तासामियं विभूतिर्हि नामानि यदनेकशः।
   आहुस्तासां तु मन्त्रेषु कवयोऽन्योन्ययोनिताम्।।

   बृह0 69-73

अपेक्षा महान् माने जा सकते हैं । वे हैं-इन्द्र और वरुण । उनके पश्चात् यज्ञ के दो देवता अग्नि और सोम का स्थान है । इन महान् देवों के अतिरिक्त ऋग्वेद में बहुत से ऐसे अल्प महत्व सम्पन्न देवता भी हैं जिनके दिव्य गुण सुविकसित नहीं हो पाये हैं जैसे - ऋभु तथा वास्तोष्पति आदि ।

5. नामों की आवृत्ति के आधार पर वर्गीकरण : ऋग्वेद में प्रयुक्त हुए देवताओं के नामों की संख्या के आधार पर इन देवताओं को पाँच वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है - ।1। इन्द्र, अग्नि, सोम ।2। अश्विन् , मरुत् , वरुण ।3। उषस् , सविता, बृहस्पति ।4। वायु, द्यावा-पृथिवी, विष्णु, रुद्र ।5। यम,पर्जन्य । किन्तु नामों की संख्या के आधार पर किया गया यह वर्गीकरण सर्वांश मान्य नहीं हो सकता,क्योंकि बहुत से देवताओं के नामों की आवृत्ति अधिक बार होने पर भी उनका महत्त्व उन देवताओं से कम पाया जाता है जिनके नामों की आवृत्ति अपेक्षाकृत कम हुई है ।

6. काल के आधार पर वर्गीकरण : इस वर्गीकरण का आधार पुराकथाशास्त्रीय धारणाओं की कालगत सापेक्षिकता हो सकती हैं । इसके अन्तर्गत देवों का वर्गीकरण इस आधार पर किया जाता है कि उनका अस्तित्व भारतीय भारत-ईरानी अथवा भारोपीय कालों में से किसके अन्तर्गत आता है । इस दृष्टिकोण से बृहस्पति, रुद्र और विष्णु को सर्वथा भारतीय देवशास्त्र की ही सृष्टि मानी जायेगी, क्योंकि इनके सम्बन्ध में कोई ऐसा प्रमाण नहीं मिलता जिससे यह कहा जा सके कि इस काल से पूर्व भी इनका अस्तित्व था । इसके अतिरिक्त कुछ देवशास्त्रीय अस्तित्व भारत ईरानी काल से ही चले आ रहे हैं । द्यौस् को भारोपीय काल में भी ढूंढा जा सकता है ।

7. संख्या के आधार पर वर्गीकरण : भारतीय देवशास्त्र में देवताओं का विवरण

कहीं एकाकी, तो कहीं द्वित्व, तो कहीं समूह के रूप में उपलब्ध होता है । इस आधार पर देवताओं का वर्गीकरण तीन भागों में किया जा सकता है:-

॥1॥ एकल देवता, ॥2॥ देवता युग्म तथा ॥3॥ देव गण

॥1॥ एकल देवता - इस वर्गीकरण के अन्तर्गत उन देवताओं को रखा जा सकता है जिनकी स्तुति ऋग्वेद में अकेले ही की गई है । जैसे : इन्द्र, विष्णु, सविता, सूर्य, उषस् अग्नि, बृहस्पति, सोम, द्यौ, वरुण आदि ।

॥2॥ देवता युग्म - वैदिक देवशास्त्र की अपनी विशेषता यह भी है कि यहाँ बहुत से देवताओं की स्तुति युग्मों में की जाती है । इनके नामों का देवता द्वन्द्व समास बनता है जिसमें दोनों पर द्विवचन में उदात्त होता है एवं ये एक दूसरे से ~~विभक्त या~~ विगृह्य रहते हैं । इस प्रकार लगभग 12 देवताओं के देवता द्वन्द्व का कम से कम 60 ऋक् सूक्तों में स्तवन किया गया है । देवता द्वन्द्व हैं जैसे:- मित्रावरुणा, इन्द्राग्नी, उषासानक्ता, इन्द्रावरुणा, द्यावापृथिवी, सोमारुद्रा, इन्द्राबृहस्पती, अग्निसोमा आदि ।

॥3॥ देव गण - वैदिक देवशास्त्र में देवताओं के कतिपय गण देखे जाते हैं, जो बहुधा किसी देवता विशेष के साथ संबद्ध रहते हैं । ये गण हैं :-मरुद् गण, रुद्र गण, आदित्य गण, वसुगण, साध्य, अङ्गिरस्, ऋभु और विश्वे देवाः आदि। इनमें से रुद्रगण को एक सम्पूर्ण गण मानकर उनकी संख्या ऐतरेय और शतपथ ब्राह्मण में 11 और तैत्तिरीय संहिता[1] में 33 बताई गई है । अपेक्षाकृत छोटा आदित्यगण है जिसकी संख्या ऋग्वेद में 7 या 8 तथा ब्राह्मणों में 12 बताई गई है ।

---

1. त्रिंशत्त्रयश्च गणिनो रुजन्तो दिवं रुद्राः पृथिवीं च सचन्ते । तै0सं0 14/11/1

8. भावात्मक देवता - ऋग्वेद में दो प्रकार के देवता भावात्मकता पर आश्रित हैं । प्रथम वर्ग में वे देवता आते हैं, जो मनोभावों के सीधे मानवीकरण हैं, जैसे काम । इस प्रकार के देवता बहुत ही अल्प हैं । इनका मूल, सूक्ष्म विचारों की अभिवृद्धि में है । दूसरा वर्ग, उन देवताओं का है, जिनके नाम धातुओं में 'तृ प्रत्यय' लगाकर बने हैं और जो कर्तृत्व के बोधक हैं जैसे-धाता, अथवा किसी व्यापार विशेष के जैसे-प्रजापति । इसके अतिरिक्त त्वष्टा, श्रद्धा, अदिति और दिति आदि भी इसी कोटि में आते हैं ।

9. ब्लूमफील्ड का वर्गीकरण - पाश्चात्य विद्वानों में सम्भवतः ब्लूमफील्ड का वर्गीकरण ही कुछ वैज्ञानिक आधार पर अवस्थित है । वैदिक देवताओं में अग्नि, उषस् आदि कुछ ऐसे देवता हैं, जिनका नाम उन्हीं प्राकृतिक तत्वों के द्योतक हैं, जिनसे वे उत्पन्न हुए हैं । दूसरे प्रकार के देवता वे हैं जिनके नाम उन प्राकृतिक तत्वों से पर्याप्त दूर हट चुके हैं, जिनसे उनका उद्भव हुआ है । जैसे-विष्णु और पूषा । तीसरे प्रकार के देवता वे हैं, जिनके विषय में यह तो निश्चित है कि वे प्रकृति के किसी तत्त्व से उत्पन्न हुए हैं , पर वे विशिष्ट तत्त्व कौन से हैं इसका निश्चित निर्णय नहीं हो सकता । जैसे :-इन्द्र वरुण तथा अश्विनौ । इनमें प्रागैतिहासिक, भारोपीय तथा भारत-ईरानी काल के देवताओं को मिलाकर पाँच वर्ग बनते हैं :-

।1। प्रागैतिहासिक काल के देवता : जिनका उल्लेख अन्य आर्य देवसमूहों तथा अवेस्ता में प्राप्त होता है , उन्हें इस वर्ग में रखा जा सकता है । जैसे :- द्यौ , वरुण, मित्र, अर्यमा आदि ।

।2। पारदर्शी अथवा स्पष्ट देवता (Transparent Gods) : जिनका मानवीकरण अपूर्ण है और जो देवता होने के अतिरिक्त प्रकृति के किसी विशेष तत्त्व को भी सूचित करते हैं , जैसे :-अग्नि, उषस् , वायु और सूर्य आदि ।

(3) अल्प पारदर्शी, अर्ध स्पष्ट अथवा धूमिल देवता (Translucent gods):
जिन देवताओं का व्यक्तित्व उस विशिष्ट प्रकृति तत्व से पृथक होकर विकसित हो चुका है जिनसे उनकी उत्पत्ति है, पर अदृश्य नहीं हुआ है, ऐसे देवता इस कोटि में आते हैं। जैसे :- विष्णु (सूर्य)।

(4) अपारदर्शी अथवा अस्पष्ट देवता (Opaque gods): वे जो अनेक उपाख्यानों से संयुक्त होकर अपने मूल रूप से बहुत दूर जा चुके हैं और जिनका उद्भव जानने का कोई साधन न हो जैसे :- इन्द्र, वरुण तथा अश्विनौ।

(5) अमूर्त भावात्मक तथा प्रतीकात्मक देवता - ऐसे देवता जो किसी क्रिया विशेष अथवा भाव को सूचित करते हैं अथवा देवता या राक्षस के रूप में कामना, भय, आदि व्यक्त करते हैं, जैसे :- प्रजापति विश्वकर्मा, बृहस्पति, पुरुष, काल, श्रद्धा, काम, निर्ऋति, मन्यु आदि।

10. उज़ेनर् का वर्गीकरण : 'ग्याटरनामेन्' के रचयिता प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् उज़ेनर् का मत है कि आर्यों के देवसमूह में देवताओं के स्वरूप का विकास शनैः शनैः तीन अवस्थाओं में से हुआ है। उन्होंने अपने मत का आधार रोमन और लिथुआनिअन धर्म के देवताओं को बनाया। उनके तीन प्रकार के वर्गीकरण निम्नलिखित हैं :-

(1) क्षणिक देवता (Augenblick gotter) : ऐसे देवता जो किसी विशेष क्रिया के ऊपर केवल उतने ही क्षण तक अधिकार रखते हैं जब तक वह क्रिया होती रहती है। ऐसे देवता सभ्यता के बहुत प्रारम्भिक काल में पाये जाते हैं। वैदिक साहित्य में इनका कोई चिह्न नहीं है।

(2) विशेष देवता (Sonder goetter) : ऐसे देवता जो जीवन या प्रकृति के किसी विशेष क्षेत्र से सम्बन्धित होते हैं और उस पूर्ण अधिकार रखते हैं। जैसे- उषस्, अग्नि आदि।

(3) <u>वैयक्तिक देवता</u> (Persoenlich gotter): जब 'विशेष देवता' धीरे धीरे अन्य देवताओं के गुणों को आत्मसात् करके अपने व्यक्तित्व को विकसित कर लेते हैं और उस विशेष क्षेत्र से पृथक् होकर स्वतन्त्र हो जाते हैं तो उन्हें इस कोटि में रखा जाता है । जैसे :-इन्द्र, वरुण आदि ।

उपर्युक्त वर्गीकरणों को देखते हुए प्राकृतिक आधार का सहारा लेकर देवताओं का वर्गीकरण करना तर्कसंगत प्रतीत होता है । यद्यपि इस वर्गीकरण के आधार को पूर्णतया दोषमुक्त नहीं कहा जा सकता , क्योंकि कतिपय देवताओं के प्राकृतिक आधार के विषय में शंका सम्भव है । अथवा किसी देवता को असंगत दृश्य के साथ एकीकृत करने की सम्भावना भी उत्पन्न हो सकती है। फिर भी विभाजन की इस सरणि में कुछ सुविधाएं स्पष्ट हैं । इनके द्वारा समान स्वरूप के देवताओं को एक वर्ग में रखा जा सकता है । इससे विभिन्न देवताओं के तुलनात्मक अध्ययन में सुगमता होगी ।

---------::0::---------

द्वितीय अध्याय

अश्विनीकुमारों का देवशास्त्रीय स्वरूप

अश्विनी कुमार ऐसे युगल भारोपीय देवता हैं, जिनके मौलिक स्वरूप का निर्धारण करना वेद व्याख्याताओं के लिए एक पहेली रहती आई है। आर्य-काल में अश्विनी कुमारों के अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए कोई भाषावैज्ञानिक प्रमाण नहीं हैं। विकास क्रम में अश्विनी कुमारों ने बहुत नाम तथा रूप बदले हैं। ऋग्वेद[1] के बहुप्रयुक्त उपाधि 'प्रत्ना' को देखते हुए उनकी प्राचीनता का आभास होता है। इसी आधार पर अश्विनी कुमारों का आदिमूल वेद पूर्व काल में खोजने का प्रयास किया गया है। उनकी यह प्राचीनता ग्रीक दिउस्-क्यूराई आदि से तुलना करने से तो सिद्ध होता ही है, साथ ही वैदिक तथा परवैदिक ग्रन्थों में उनके स्वरूप के विषय में दी गई व्याख्याओं की अनेकरूपता भी इसकी पुष्टि करती है। आह्वानों की संख्या के आधार पर अश्विनी कुमारों के महत्त्व का आकलन करके यह देखा गया कि ऋग्वेद में इन्द्र, अग्नि और सोम के बाद युगल देवता अश्विनों का ही महत्त्व है।

अश्विन् शब्द की व्युत्पत्ति - अश्विन् शब्द की व्युत्पत्ति 'अशूङ् व्याप्तौ' धातु से 'विनि प्रत्यय' करने पर हुई है। संसार को अपनी किरणों से व्याप्त कर लेने के कारण सूर्य को 'अश्व' कहा गया है। मैक्डॉनल[2] का मत है कि अश्व शब्द सूर्य की किरणों का भी वाचक है। अतः अश्विन् शब्द सूर्य या प्रकाश का द्योतक है। ब्राह्मण[3] ग्रन्थों में भी संसार को अपनी किरणों से व्याप्त कर लेने के कारण 'अश्व' कहा गया है। यास्क[4] के

---

1. शुभं पृक्षमिषमूर्जं वहन्ता होता यक्षत्प्रत्नो अध्रुग्युवाना - ।ऋ० 7/62/4।
2. वैदिक माइथोलौजी पृष्ठ 99 - ए०ए० मैक्डॉनल
3. बृहदारण्यक उपनिषद् 1/1/2.
4. अश्विनौ यद् व्यश्नुवाते सर्वं रसेनान्यो ज्योतिषा न्यः - ।निरु० 12/1।

अनुसार अश्विनी कुमारों में से एक रस से व्याप्ता है, दूसरा प्रकाश से । इसलिए इनमें से एक मध्यमस्थानीय है और एक द्युलोकस्थ । परन्तु ये दोनों अवियोज्य होने के कारण द्युलोकस्थ देवताओं में ही इन दोनों का एकत्र वर्णन किया जाता है ।

कतिपय विद्वानों ने अश्विनौ का अर्थ अश्ववान् ग्रहण किया है । आचार्य और्णवाभ[1] कहते हैं कि 'अश्व' शब्द से 'मत्वर्थीय इनि' प्रत्यय करने पर 'अश्विनी' शब्द बनता है । इस प्रकार अश्विनौं का अर्थ है 'वेगवन्तौ' या 'अश्ववन्तौ' । अश्वी का अर्थ है - 'जिसके पास अश्व हों', इसी के आधार पर ऐतिहासिकों[2] का कथन है कि ये पुण्यकर्मा राजा हैं, जो अश्ववान् हैं । बालेनसेन[3] तथा हॉपकिन्स[4] महोदय का विचार है कि अश्विनों के नाम में अश्वों के स्वामित्व का ही भाव निहित है परन्तु यह दिखलाने के लिए कोई प्रमाण नहीं है कि उन्हें इसलिए ऐसा कहते थे, क्योंकि ये अश्वों पर सवारी करते थे । अश्विनी कुमारों के जन्म से सम्बन्धित एक पुराकथा के आधार पर इनके अश्विन् नामकरण के औचित्य पर प्रकाश पड़ता है । उस कथा में ऐसा वृत्तान्त आया है कि अश्वी रूपधारिणी सरण्यू और अश्वरूपधारी विवस्वान् के संगम से दो युग्म बालकों का जन्म हुआ । अश्वी से उत्पन्न होने के कारण उन्हें अश्विनीकुमार कहा गया । वैदिक मन्त्रों में

---

1. अश्वैरश्विनावित्यौर्णवाभः - (निरु0 12/1)
2. राजानौ पुण्यकृतावित्यैतिहासिकाः - (निरु0 12/1)
3. Balensein - Zeitschrift der Deutschen Morgenlän-dischen Gesellschaft - Pg. 41, 496.
4. Hopkins - Religions of India, Pg. 80.

सरण्यू और विवस्वान के अश्वरूप धारण करने का कोई संकेत नहीं हैं, किन्तु कथा को यह मोड़ कथाकार ने उपर्युक्त उद्देश्य की पूर्ति के लिये ही दिया है। परवर्ती साहित्य में यह कथा अत्यधिक पुष्पित और पल्लवित हुई। अश्वा रूप धारिणी सरण्यू से उत्पन्न होने के कारण महाभारत एवं पुराणों में अश्विनों के स्थान पर अश्विनी कुमार नाम अधिक प्रचलित हुआ। यद्यपि व्याकरण की दृष्टि से 'अश्विन्' का तात्पर्य 'अश्व से उत्पन्न हुआ' नहीं है, पर ऐतिहासिक दृष्टि से इस शब्द की यही सर्वाधिक सन्तोषजनक व्याख्या है। इन देवताओं के युग्म होने के कारण अश्विन् शब्द का प्रयोग सदैव द्विवचन में होता है।

अश्विनों के लिए ऋग्वेद में 'नासत्या' और 'दस्त्रा' ये दो उपाधियाँ अनेकशः प्रयुक्त हुए हैं। इन दो उपाधियों में 'नासत्या' अत्यधिक प्राचीन है और बोगाज़क्यूई के मृत्फलकों में अश्विनों के लिए प्रयुक्त पाया जाता है। नासत्या का अर्थ 'जो असत्य न हो', 'सत्ययुक्त' तथा 'सत्य संकल्प' आदि ग्रहण किया जाता है। कुछ विद्वान् 'नासा' शब्द से नासत्या की उत्पत्ति मानते हैं क्योंकि, मत्स्य पुराण[1] में अश्विनों के जन्म से सम्बन्धित

---

1. नासापुटाभ्यामुत्सृष्टं परो यमिति शङ्कया
तदैतस्तौ जातावश्विनाविति निश्चितम्। 36 ।

दस्रौ सुतत्वात्संजातौ नासत्यौ नासिकाग्रतः
ज्ञात्वा चिराच्च तं देवं सन्तोषमगात्परम्।
विमानेनागमत्स्वर्गं पत्या सह मुदान्विता।। 37 ।।

— मत्स्य पुराण 11/36-37

पुराकथा में यह वर्णन मिलता है कि सरण्यू ने आदित्य के शुक्र को नासिका के छिद्रों से निकाल दिया । उसी से अश्विनों का जन्म हुआ । बृहद्देवताकार ने अन्तिम श्लोक में कहा है कि विवस्वान् के शुक्र को सूंघकर सरण्यू ने अश्विनों को उत्पन्न किया ।[1] इसी कथा का उल्लेख नीतिमञ्जरी[2] में भी आया है । इन वर्णनों से अश्विनों का 'नासा' से सम्बन्ध आभासित होता है किन्तु इस कथा में यथार्थता के स्थान पर कल्पना का बाहुल्य ही अधिक देखा जाता है । सम्भवतः ऋग्वेद में प्रयुक्त नासत्या उपाधि को देखकर ही परवर्तीकालीन साहित्य में इस कल्पना को स्थान मिला । नासत्य शब्द अवेस्ता में[3] एक दैत्य के नाम के रूप में आता है फिर भी इस पर अधिक प्रकाश नहीं डाला गया ।

---

1. सरण्यूश्च विवस्वन्तं विदित्वा हयरूपिणम् ।
   मैथुनायोपचक्राम तां च तत्रारुरोह स: ॥
   ततस्तयोस्तु वेगेन शुक्रं तदपतद्भुवि ।
   उपाजिघ्रच्च सा त्वश्वा तच्छुक्रं गर्भकाम्यया ॥
   आघ्रातमात्राच्छुक्रात्तु कुमारौ संबभूवतुः ।
   नासत्यश्चैव दस्रश्च यौ स्तुतावश्विनाविति ॥- बृहद्देवता 7/4-6 पृ0 79।

2. ततस्त्वष्टा सरण्यूनामिकां पुत्रीं विवस्वते प्रायच्छत् । विवस्वानेषा सरण्यूर्न भवतीति विज्ञाय स्वयमप्यश्ववो भूत्वा तामश्वरूपिणीं प्रायासीत्। ततः संक्रीडमानयोस्तयोः रेतः पृथिव्यां पपात । अथ सा गर्भकामा तत्पतितं रेतः आजघ्रौ । ततस्तस्याः सकाशादश्विनौ अजायेतामिति । -
   नीतिमञ्जरी पृष्ठ 299.

3. Spigel - Die Arische Periode, Pg. 207.
   Kalinate - Babylonion and Oriental Record, Pg.3,193.

द्वितीय उपाधि दस्त्र के अनेक अर्थ किये गये हैं । सायण ने 'दर्शनीय' मैक्डॉनल ने 'आश्चर्यजनक या विचित्र' तथा गोल्डस्टूकर ने 'नाशक' अर्थ ग्रहण किया है । ऋग्वेद[1] में नासत्य और दस्त्र शब्द अश्विनों के सम्मिलित रूप से विशेषण हैं, जिसका प्रमाण इन शब्दों के सदा द्विवचन में प्रयुक्त होने से मिलता है । बोगाज़क्यूई के मृत्फलक पर भी नासत्या शब्द द्विवचन में ही प्रयुक्त हुआ है । परन्तु कालान्तर में ये दोनों उपाधियाँ अश्विनों के दो व्यक्तिवाचक नाम बन गये हैं[2] । सम्भवतः सर्वप्रथम बृहद्देवताकार[3] ने इन शब्दों का अश्विन्-द्वय में से एक के नाम के रूप में उल्लेख किया है । महाभारत[4] में भी अश्विनों के इन्हीं दो नामों का उल्लेख हुआ है ।

अश्विनों का जन्म वृत्तान्त

अश्विनों के जन्म के विषय में ऋग्वेद[5] में एक महत्त्वपूर्ण मंत्र प्राप्त होता है, जिसमें कहा गया है कि देवताओं ने अमरणधर्मा सरण्यू को मर्त्यों से छिपा

---

1. ता वल्गू दस्त्रा पुरुशाकतमा - ऋग्वेद ॥6/62/5॥
   अश्विनावहे गच्छतं नासत्या मा विवेनतम् - वही ॥5/78/1॥

2. Keigy - Der Rigveda (quoted from Arrowsmith's translation).

3. नासत्यश्चैव दस्त्रश्च यौ स्तुतावश्विनाविति - बृहद्देवता ॥7/6 पृ0 79॥
4. महाभारत - आदिपर्व ॥66/35॥
5. अपागूहन् अमृतां मर्त्येभ्यः कृत्वी सवर्णाम् अददुः विवस्वते
   उत् अश्विनौ अभरद् यत् तदासीत् अजहात् उद्वा मिथुना सरण्युः

   - ऋग्वेद ॥10/17/2॥

लिया और उसी प्रकार की सवर्णा को विवस्वान् को सौंप दिया । ऐसा होने पर सरण्यू ने अश्विन्-द्वय को जन्म दिया और तत्पश्चात् चली गई । यही मन्त्र अथर्ववेद[1] में भी आया है । इसी भाव से सम्बन्धित एक और मन्त्र ऋग्वेद तथा अथर्ववेद[2] में प्राप्त होता है, जिसका अर्थ इस प्रकार है - "त्वष्टा जो दहेज अपनी पुत्री को देता है उससे यह सारा संसार व्याप्त हो जाता है । विवाह होने के पश्चात् यम की माता और विवस्वान की पत्नी खो गई ।"

यह दोनों ही मन्त्र अत्यन्त अस्पष्ट हैं किन्तु इन मन्त्रों के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि अश्विन्-द्वय, विवस्वान् और सरण्यू के पुत्र थे। सरण्यू त्वष्टा की पुत्री थी । इन्हीं मन्त्रों के आधार पर परवर्तीकालीन वैदिक तथा लौकिक साहित्य में एक रोचक कथा का संघटन किया गया है । इस पुराकथा के अन्तर्गत विवस्वान्, उसकी पत्नी सरण्यू, पुत्र यम-यमी, सवर्णा तथा अश्विनों की उत्पत्ति आदि समस्त संकेतों को एकत्र गुम्फित कर लिया गया है । यास्काचार्य[3] ने अत्यन्त संक्षेप में इस कथा का उल्लेख किया है -

---

1. अपागूहन्नमृतां मर्त्येभ्यः कृत्वा सवर्णामदधुर्विवस्वते ।
   उताश्विनावभरद् यत् तदासीदजहादु द्वा मिथुना सरण्यूः ।।
   - अथर्ववेद ।।8/2/33।

2. त्वष्टा दुहित्रे वहतुं कृणोति तेनेदं विश्वभुवनं समेति । - ऋग्वेद।।10/17/1।
   यमस्य माता पर्युह्यमाना महो जाया विवस्वतो ननाश ।
   - अथर्ववेद ।।8/1/53।

3. अत्रेतिहासमाचक्षते - त्वाष्ट्री सरण्यूर्विवस्वत आदित्याद् यमौ मिथुनौ जनयाञ्चकार, सा सवर्णामन्यां प्रतिनिधायाश्वं रूपं कृत्वा प्रदुद्राव, स विवस्वानादित्य आश्वमेव रूपं कृत्वा तामनुसृत्य संबभूव । - ततोऽश्विनौ जज्ञाते सवर्णायां मनुः । - निरुक्त ।।2/1/5।

'त्वष्टा की पुत्री सरण्यू ने विवस्वान आदित्य से यम और यमी के जोड़े को जन्म दिया । तत्पश्चात् सरण्यू ने दूसरी समान रूप वाली को अपना प्रतिनिधि बनाकर अश्वी जैसा रूप धारण करके चली गई । तब विवस्वान् आदित्य ने अश्व का रूप धारण कर उसका अनुसरण किया । उससे अश्विनों तथा सवर्णा से मनु उत्पन्न हुए । यह कथा निरुक्तकार यास्क से पूर्ववर्ती है, जैसा कि उनके प्रथम वाक्य से ही स्पष्ट होता है ।

बृहद्देवताकार[1] शौनक ने कुछ विस्तार से इस कथा का वर्णन किया

---

1. अभवन्मिथुनं त्वष्टुः सरण्यूस्त्रिशिराः सह, स वै सरण्यूं प्रायच्छत् स्वयमेव विवस्वते ततः सरण्यवां जज्ञाते यमयम्यौ विवस्वतः, तौ चाप्युभौ यमावेव ज्यायांस्ताभ्यां तु वै यमः -

बृहद्देवता ॥6/162-163, पृष्ठ 78॥

सृष्ट्वा भर्तुः परोक्षं तु सरण्यूः सदृशीं स्त्रियम्, निक्षिप्य मिथुनं तस्याम् अश्वा भूत्वापचक्रमे अविज्ञानाद्विवस्वांस्तु, तस्यामजनयन्मनुं राजर्षिरभवत्सोऽपि विवस्वानिव तेजसा स विज्ञाय त्वपक्रान्तां सरण्यूमश्वरूपिणीं, त्वाष्ट्रीं प्रति जगामाशु वाजी भूत्वा सलक्षणः, सरण्यूश्च विवस्वन्तं विदित्वा हयरूपिणम्, मैथुनायोपचक्राम तां च तत्रारुरोह सः, ततस्तयोस्तु वेगेन शुक्रं तदपतद्भुवि, उपाजिघ्रच्च सा त्वश्वा तच्छुक्रं गर्भकाम्यया ।

- बृहद्देवता ॥7/1-6 पृष्ठ 79॥

है । अन्तिम श्लोक में बृहद्देवताकार[1] ने लिखा है कि यास्क ऐसा इतिहास सरण्यू देवी से सम्बन्धित दो ऋचाओं में मानते हैं । इससे प्रतीत होता है कि बृहद्देवता के समय भी यह कथा प्राचीनतम रूप में निरुक्त में ही प्राप्य थी । बृहद्देवताकार ने सरण्यू का विवस्वान् के पास से चले जाने का कोई कारण व्यक्त नहीं किया है । परन्तु पुराणों में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि सूर्य के प्रखर तेज को सहने में असमर्थ होने के कारण सरण्यू विवस्वान् के पास से वन में चली गई थी । विष्णु पुराण में अश्वी रूपधारिणी सरण्यू से अश्विन-द्वय की कथा इस प्रकार वर्णित है[2] - विश्वकर्मा की पुत्री संज्ञा सूर्य की पत्नी हुई । उसने मनु और यम नामक दो पुत्र और यमी नामक पुत्री को जन्म दिया, संज्ञा अपने पति का तेज सहन न कर सकने के कारण अपने समान छाया उत्पन्न करके और उसे पति की सेवा सौंप कर, स्वयं तपस्विनी बनकर चली गई । सूर्य को संदेह हुआ और उसने समाधि लगाकर जान लिया कि संज्ञा

---

1. इतिहासमिमं यास्कः सरण्यूदेवते द्वमृचे ।
   विवस्वतश्च त्वष्टुश्च त्वष्टेति सह मन्यते ।।

   - बृहद्देवता (7/7 पृ० 79)

2. सूर्यस्य पत्नी संज्ञाभूत्तनया विश्वकर्मणः ।
   मनुर्यमो यमी चैव तदपत्यानि वै मुने ।।
   असहन्ती तु सा भर्तुस्तेजश्छायां युयोज वै ।
   भर्तृशुश्रूषणेऽरण्यं स्वयं च तपसे ययौ ।।
   ततो विवस्वानाख्याते तथैवारण्यसंस्थिताम् ।
   समाधिदृष्ट्या ददृशे तामश्वां तपसि स्थिताम् ।।
   वाजीरूपधरः सोऽयं तस्यां देवावथाश्विनौ ।
   जनयामास रेवन्तं रेतसोऽन्ते च भास्करः ।।

   - विष्णुपुराण (3/2/2-7)

अश्वी का रूप धारण कर तप कर रही है । अश्वी रूपिणी संज्ञा से दो अश्विनीकुमार उत्पन्न हुए । मत्स्य पुराण[1] में भी यही कथा वर्णित है । वायु पुराण[2] तथा ब्रह्म पुराण[3] में भी अश्विनों के जन्म की यह कथा अत्यन्त

---

1. विवस्वान्कश्यपात्पूर्वमादित्यामजायत । तस्य पत्नीत्रयं तद्वत्संज्ञा राज्ञी प्रभा तथा । ततस्तेजो मयं रूपमसहन्ती विवस्वतः । नारीमुत्पादयामास स्वशरीरादनिन्दिताम् कर्मचेष्टितम् । त्वष्टुः समीपगममदाचचक्षे च शेषवान् । तमुवाच ततस्त्वष्टा सान्त्वपूर्वं द्विजोत्तमः । तवासहन्ती भगवन्महस्तीव्रं तमोनुदम् । ततः स भगवान ज्ञात्वा भूर्लोकममराधिपः । कामयमास कामार्त्तो मुख एव दिवाकरः । अश्वरूपेण महता तेजसा च समावृतः । तद्रेतसस्ततो जातावश्विनाविति निश्चितम् ।।

   – मत्स्य पुराण 11/1-37

2. वायु पुराण – 84 वाँ अध्याय ।

3. स्तूयमानो मुनिगणैरश्वां भानुरथागमत् ।
   वडवाया मुखे लग्नं मुखं चाश्वस्वरूपिणम् ।।

   ज्ञात्वा त्वाष्ट्री च भर्त्तारं मुखाद्वीर्यं प्रसुस्रुवे ।
   तयोर्वीर्येण गङ्गयामश्विनौ समजायताम् ।।

   दृष्टुं ते विस्मयाविष्टा आजग्मुःश्वशुरस्तथा ।
   अभिप्रायं विदित्वा तुश्वशुरं भानुरब्रवीत् ।।

   उषायाःप्रीतये त्वष्टः कुर्वत्यास्तप उत्तमम् ।
   यन्त्रारूढं च मां कृत्वा तेजांस्यनेकशः ।।

   यावत्सौख्यं भवेदस्यास्तावच्छिन्धि प्रजापते ।
   भर्त्तां च संगता यत्र गौतम्याश्वरूपिणी ।
   अश्विनोर्यत्रचोत्पत्तिरश्वतीर्थं तदुच्यते ।।

   – ब्रह्म पुराण 89/34-43

विस्तार से वर्णित है । ब्रह्म पुराण में आये कथा प्रसंग में कतिपय मौलिक परिवर्तन देखे जा सकते हैं । जैसे इस कथा में संज्ञा का उषा नाम मिलता है । इस प्रकार उषा सूर्य की पत्नी के रूप में यहाँ वर्णित है । इसके अतिरिक्त दूसरी महत्त्वपूर्ण बात का संकेत यह मिलता है कि त्वष्टा ने सूर्य के कतिपय किरणों को काट दिया था । अन्यथा इससे पहले सूर्य का तेज और भी प्रखर था । महाभारत के आदिपर्व में यह वर्णन आया है कि बडवा रूपधारिणी सूर्यपत्नी महाभागा त्वाष्ट्री ने आकाश में दोनों अश्विनीकुमारों को प्रसव किया है ।[1] नीतिमञ्जरीकार ने ऋग्वेद में आये कथा के अनुसार ही अश्विनों के जन्म वृत्तान्त का उल्लेख किया है । नीतिमञ्जरी[2] में भी यह कहा गया है कि देवताओं ने सरण्यू को छिपा दिया था । वह स्वयं नहीं गई थी ।

ऋग्वेद से प्रारम्भ कर महाभारत पर्यन्त अश्विनों के जन्म सम्बन्धी पुराकथा का विभिन्न रूप में विकास स्पष्ट रूप से देखा जाता है । इन कथाओं में इस बात को सर्वत्र अङ्गीकार कर लिया गया है कि अश्विन्-द्वय

---

1. त्वाष्ट्री तु सवितुर्भार्या वडवारूपधारिणी ।
असूयत महाभागा सा न्तरिक्षे श्विनावुभौ ।।

– महाभारत ॥आदिपर्व 67/35॥

2. अमृतां मरणधर्मरहिताम् श्नां सरण्यूं देवा अपागूहन् । किं च देवाः सवर्णां सरण्यूसदृशीमन्यां स्त्रियं ॥कृत्वी॥ कृत्वा तस्मै विवस्वते अददुः प्रायच्छन् । उतापि च यथदा सरण्यूः सरणशीला द्वा मिथुना यमयम्यौ तस्यां सवर्णायं जहात् व्यक्तवती । त्यक्त्वा आश्वं रूपं कृत्वा गतवती तदा सा अश्वरूपिणी सरण्यूः अश्विनाभरत् अहरत् । जायापतिभ्यां अश्वरूपाभ्यां सम्भोगकाले यद्रेतः पतितमासीत् तदेवाश्विनौ जनयामासेत्यर्थः ।

–नीतिमञ्जरी ॥पृष्ठ 300॥

विवस्वान् और सरण्यू की यमज सन्तानें हैं । इसके अलावा भी एक महत्त्वपूर्ण चमत्कारजन्य तथ्य सामने आता है, जो कायापरिवर्तन की अवधारणा से जुड़ा हुआ है । प्राचीन काल में हमारे महान् मनीषियों में यह क्षमता देखी जाती थी कि वे अपनी आत्मा से दूसरे शरीर में प्रवेश करने में सक्षम होते थे । शंकराचार्य ने भी कामशास्त्र की शिक्षा ग्रहण करने के लिए राजा अमरुक के मृत शरीर में प्रवेश किया था । ऐसी धारणाएँ हमारे धर्म और दर्शन ग्रन्थों में पाई जाती है । सरण्यू का अपने पति के तेज को सहन न कर पाने के कारण चले जाना और अश्वी का रूप धारण करना और कुछ भी नहीं केवल कायापरिवर्तन की प्रक्रिया है । अपने ही समान छाया को छोड़ जाने की कल्पना को पीछे भी यही तथ्य निहित है । यह सत्य है कि सरण्यू ने जब आत्मा से अश्वी के शरीर में प्रवेश किया तो उसका पहले वाला शरीर निर्जीव हो गया । उसी की कल्पना कथा में, सरण्यू के प्रतिरूप छाया के रूप में की गई है । अब एक प्रश्न उत्पन्न होता है कि सरण्यू के निर्जीव शरीर में चेतना का संचार कैसे हुआ ? जिससे वह मनु आदि सन्तानों को जन्म दे सकी । इस प्रश्न का उत्तर भी विज्ञानसम्मत है । हमारे वैदिक ग्रन्थों में सर्वत्र सूर्य को प्राणशक्ति अथवा चेतना का स्त्रोत माना गया है । आज का विज्ञान भी इस तथ्य को स्वीकार करता है । सूर्य के प्रभाव से ही प्राणी जीवित रहता है । उसकी ऊष्मा से शरीर में चेतना का संचार होता है । इसीलिए सूर्य अर्थात् विवस्वान के संस्पर्श से सरण्यू के निर्जीव शरीर अर्थात् छाया में भी प्राण शक्ति का संचार हो गया होगा, जिससे वह चेतन हो उठी और सन्तानों को जन्म दिया । ब्रह्म पुराण की कथा में जो उल्लेख आया है कि विवस्वान की कुछ किरणों को त्वष्टा ने काट छाँटकर छोटा कर दिया था, यह कथन भी अयुक्तिक नहीं है क्योंकि आज के वैज्ञानिक इस बात को सिद्ध कर चुके हैं कि सूर्य के तेज में पहले से पर्याप्त कमी आई है और जितना समय व्यतीत होता जायगा उसका तेज और भी घटता जायगा । सम्भवतः इसी भौगोलिक तथा वैज्ञानिक

सत्य को हमारे मनीषियों ने अपनी दूरदृष्टि से देख लिया होगा और इसी के आधार पर एक कथा गढ़ ली गई। त्वष्टा के द्वारा सूर्य की किरणों का काटना, सूर्य के तेज के कम हो जाने की बात की ओर ही संकेत कर रहा है, इसलिए इन पुराकथाओं को सर्वथा निराधार नहीं समझना चाहिए।

अश्विनीकुमारों का मानवीय स्वरूप

ऋग्वेद में अश्विनीकुमार - ऋग्वेद में इन्द्र, अग्नि और सोम के बाद युगल देव अश्विनों का ही महत्त्व है। ऋग्वेद के 69 सूक्त सम्पूर्ण रूप से इन देव युगलों को समर्पित किये गये हैं। केवल एक सूक्त[1] में उनकी स्तुति सिनीवाली तथा सरस्वती के साथ सम्मिलित रूप से हुई है।

अश्विनों के शारीरिक आकार प्रकार के विषय में ऋग्वेद में अनेक उद्धरण प्राप्त होते हैं। इन्हें अनेक स्थानों पर युवा कहा गया है।[2] इन्हें प्राचीन भी कहा गया है। यह उज्ज्वल[3], शुभस्पती[4], स्वर्णकान्तिवाले[5] और

---

1. ऋग्वेद - ।10/184/2।
2. नू मे हवमा शृणुतं युवाना यासिष्टं वर्तिरश्विना विरावत्
   - ऋग्वेद ।7/67/10।
3. आ शुभ्रा यातमश्विना - वही ।7/68/1।
4. ताविद् दोषा ता उषसि शुभस्पती - वही ।8/22/14।
   उत् नो देवावश्विना शुभस्पती - वही ।10/93/6।
5. आ नूनं यातमश्विना रथेन सूर्यत्वचा।
   भुजी हिरण्यपेशसा कवी गम्भीरचेतसा - वही ।8/8/2।

मधुवर्ण[1] हैं । उनके अनेक रूप हैं ।[2] वे अत्यन्त सुन्दर हैं ।[3] वे कमल पुष्प की माला को धारण करते हैं ।[4] वे मन के समान शीघ्रगामी[5], शक्तिशाली[6] तथा पौरुषयुक्त है । वे गम्भीर चेतना वाले, निगूढ़ मानसिक शक्तिवाले, अत्यन्त बुद्धिमान् ज्ञानी तथा गुह्य शक्तियों से युक्त हैं । ये दोनों युगल तथा अवियोज्य हैं । इसलिए एक सूक्त का तो प्रयोजन ही यह है कि इनकी तुलना विभिन्न युगल पदार्थों से की जाय , जैसे कि चक्षु, हाथ, पैर, पंख या जोड़ों

---

1. धियंजिन्वा मधुवर्णा शुभस्पती - ऋग्वेद ।8/26/6।
2. पुरु वर्पांस्याश्विना दधाना नि पेदव ऊहथुराशुमश्वम्

   -वही ।1/117/9।
3. ता वल्गू दस्रा पुरुशाकतमा - वही ।6/62/5।

   क्व१त्या वल्गू पुरुहूताद्य दूतो न स्तोमोऽविदन्नमस्वान्

   - वही ।6/63/1।
4. गर्भं ते अश्विनौ देवावा धत्तां पुष्करस्रजौ - वही ।10/184/2।
5. मनोजवसा वृषणा मदच्युता - वही ।8/22/16।
6. युवं शक्रा मायाविना समीची निरमन्थतम् - वही ।10/24/4।

में चलने वाले पशु पक्षी जैसे - कुत्ते, बकरी, हंस और श्येन ।[1] फिर भी कतिपय मंत्रों में यदाकदा उनके पृथक् होने का संकेत भी मिल जाता है । जैसे एक मन्त्र में कहा गया है कि वे नाना प्रकार से उत्पन्न हुए[2] और यत्र तत्र उत्पन्न हुए । एक को विजयी राजकुमार तथा दूसरे को द्यौस् का पुत्र कहा गया है ।[3] ऋग्वेद[4] के एक मन्त्र में अकेले ही एक अश्विन् का उल्लेख हुआ है । परवर्ती

---

1. अश्विनावेह गच्छतं नासत्या मा विवेनतम्
   हंसाविव पततमा सुताँ उप ।।
   अश्विना हरिणाविव गौराविवानु यवसम्
   हंसाविव पततमा सुताँ उप ।।
   अश्विना वाजिनीवसू जुषेथाँ यज्ञमिष्टये
   हंसाविव पततमा सुताँ उप ।। - ऋग्वेद [7/78/1-3]
   हंसाविव पतथो अध्वगाविव सोमं सुतं महिषेवाव गच्छथः -वही [8/35/8]
   श्येनाविव पतथो हव्यदातये सोमं सुतं महिषेवाव गच्छथः -वही [8/35/9]

2. नाना जातवरेपसा - वही [5/73/4]

3. इहेह जाता समवावशीतामरेपसा तन्वा नामभिः स्वैः ।
   जिष्णुर्वामन्यः सुमखस्य सूरिर्दिवो अन्यः सुभगः पुत्र ऊहे ।।
   - वही [1/181/4]

4. परिज्मने नासत्याय क्षे ब्रुवः - वही [4/3/6]

साहित्य में तो दोनों की पृथक्-पृथक् उपाधियाँ भी प्राप्त होती हैं । पृथक रूप से वर्णन होने पर भी युग्म रूप में ही स्तुतियों का बाहुल्य है ।

ऋग्वेद के कतिपय मन्त्रों में सूर्या को अश्विनों की पत्नी के रूप में चित्रित किया गया है । ऋग्वेद[1] के एक मन्त्र में कहा गया है कि सूर्या ने स्वयं अश्विनों को अपने पति के रूप में वरण किया । अश्विनो[2] सूर्या के दो पति हैं और वह सदा उनके रथ पर बैठती है । ऋग्वेद[3] के अन्य कई मन्त्रों में भी सूर्य की युवती पुत्री सूर्या के अश्विनों के रथ में बैठने का उल्लेख है । नासत्या[4] अत्यन्त शोभा के साथ जीती हुई सूर्या को लेकर रथ पर आरूढ़ होते हैं और सम्पूर्ण देवता उनके कार्य का अनुमोदन करते हैं । सायण ने इस सम्बन्ध में एक अन्तःकथा का उल्लेख किया है । सूर्य अपनी पुत्री सूर्या

---

1. आ वां पतित्वं सख्याय जग्मुषी,
   योषा अवृणीत जेन्या युवां पती ।
   - ऋग्वेद ॥1/119/5॥

2. तद्षु वाम् अजिरं चेति यानं
   येन पती भवथः सूर्यायाः । - वही ॥4/43/3॥

3. आ वां रथं युवतिस्तिष्ठदत्र, जुष्ट्वी नरा दुहिता सूर्यस्य ।
   - वही ॥1/118/5॥

   युवो रथं दुहिता सूर्यस्य, सह श्रिया नासत्या वृणीत । वही॥1/117/13॥

4. आ वां रथं दुहिता सूर्यस्य कार्ष्मेवातिष्ठद् अर्वता जयन्ती ।
   विश्वेदेवा अन्वमन्यन्त हृद्भिः समु श्रिया नासत्या सचेथे ।।
   -वही॥1/116/17॥

को सोम को प्रदान करना चाहते थे किन्तु सभी देवता उसे प्राप्त करना चाहते थे। उन्होंने स्थिर किया कि सूर्य को लक्ष्य कर वे एक दौड़ का आयोजन करेंगे और उसमें जीतने वाला सूर्या का पाणिग्रहण करेगा। अश्विनों अपने अश्व (गर्दभ, अर्वन्) पर दौड़े और सर्वप्रथम आये। अतः सूर्या उन्हीं के रथ पर चढ़ी।[1] अन्त के वाक्य से स्पष्ट है कि सायण ने यह कथा ऐतरेय ब्राह्मण के आधार पर वर्णित की है। कहीं-कहीं अश्विनों की पत्नी का नाम 'अश्विनी देवी' प्रयुक्त हुआ है। अश्विनी नाम की देवी से सूर्या का ही बोध अपेक्षित है।

ऋग्वेद के कुछ अन्य सूक्तों में सोम को सूर्या का पति कहा गया है। दशम मण्डल का 85वाँ सूक्त इस सम्बन्ध में विशेष महत्त्वपूर्ण है। इसके नवम तथा चतुर्दश मन्त्रों में सोम को सूर्या का पति तथा अश्विनों को 'वर का परिचर' कहा गया है। वे सोम की वरयात्रा में आते हैं।[2] इस विरोधी वक्तव्य

---

1. सविता स्वदुहितरं सूर्याख्यां सोमाय राज्ञे प्रदातुमैच्छत्। तां सूर्यां देवा वरयामासुः। ते अन्योन्यमूचुः। आदित्यमवधिं कृत्वा आजिं धावाम। यः अस्माकम् उज्जेष्यति तस्येयं भविष्यति इति। तत्र अश्विनौ उदजयताम्। सा च सूर्या जितवतः तयोः रथमारुरोह। अत्र प्रजापतिर्वै सोमाय राज्ञे दुहितरं प्रायच्छत् इति ब्राह्मणमनुसन्धेयम्। — सायण

2. सोमो वधूयुरभवदश्विनास्तामुभा वरा।
   सूर्यां यत् पत्ये शंसन्तीं मनसा सविताददात्॥
   —ऋग्वेद (10/85/9)

   यदश्विना पृच्छमानावयातं त्रिचक्रेण वहतुं सूर्यायाः।
   विश्वेदेवा अनु तद् वामजानन् पुत्रः पितराववृणीत पूषा॥
   —ऋग्वेद (10/85/14)

का कारण यह है कि दशम मण्डल में संकलित होने के कारण ये मन्त्र पहले उद्धृत प्रथम मण्डल के मन्त्रों से परवर्ती हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि ऋग्वेद के प्रारम्भिक काल में उषस् ॥सूर्या॥ से घनिष्ठ सम्बन्ध के कारण अश्विनों की उसके पति रूप में मान्यता थी, किन्तु धीरे-धीरे सोम के चन्द्रमा के रूप में विकसित होने पर उषस् अर्थात् सूर्या ॥कहीं-कहीं सूर्या के स्थान पर उषस् नाम आया है अतः सूर्या और उषस् को एक ही मानना उचित होगा॥ का पतित्व सोम को स्थानान्तरित कर दिया गया । दशम मण्डल के इसी सूक्त के प्रथम तीन मन्त्रों में सोम का निश्चित रूप से चन्द्रमा से तादात्म्य किया गया है। नीतिमञ्जरीकार[1] द्याद्विवेद ने भी सायण के भाष्य में दी गई उपर्युक्त कथा के आधार पर 45वें नीति श्लोक की रचना की है ।

सभी देवों की अपेक्षा अश्विनों को ही सर्वाधिक घनिष्ठ रूप से 'मधु' के साथ सम्बद्ध किया गया है । वे स्वयं मधु के समान वर्ण[2] वाले हैं । उनका रथ भी मधुवर्ण है और उसमें सदा मधु वर्तमान रहता है । मधु के अत्यन्त प्रेमी

---

1. सविता स्वदुहितरं सूर्याख्यां सोमाय राज्ञे प्रदातुमैच्छत् । तां सूर्यां सर्वे देवा वरयामासुः । तेऽन्योन्यमूचुः । आदित्यमवधिं कृत्वाऽऽजिं धावाम योऽस्माकं मध्ये उज्जेष्यति तस्येयं भविष्यतीति । तत्राश्विनावुदजयताम् । सा च सूर्या जितवतोस्तयो रथमारुरोह । - नीतिमञ्जरी ॥पृ0 97-98॥

2. ऋग्वेद - 8/22/6

होने के कारण इन्हें 'मधूयु' तथा 'माध्वी' कहा गया है । उनके पास मधु से पूर्ण एक दृति या चर्मपात्र[1] रहता है जो पक्षी इन्हें वहन करते हैं वह इस मधु का पान करते हैं ।[2] ऋग्वेद[3] के एक स्थान पर उल्लेख है कि उन्होंने एक बार मधु के सौ घड़े उड़ेले । मधुमक्खियों को भी वे ही मधु प्रदान करते हैं ।[4] यह मधु दण्ड[5], जिससे यज्ञ और स्तोताओं को मधु बिखेरते हैं, यह इन्हीं की विशिष्टता है । जिस पुरोहित के पास इन्हें आने का निमन्त्रण दिया गया है उसे मधु हस्त कहा गया है ।[6]

अश्विनों के रथ का ऋग्वेद में अनेकशः वर्णन उपलब्ध होता है । इनके रथ की बनावट विचित्र है । यह रथ त्रिगुणित है । इसमें तीन चक्र, तीन बन्धुर और कुछ हिस्से त्रिगुणित हैं ।[7] रथ पूर्णतया स्वर्णिम है ।[8] इसके सभी

---

1. ऋग्वेद 4/45/3 दृतिं वहेथे मधुमन्तमश्विना ।
2. वही 4/45/3-4
3. वही 1/117/6 शतं कुम्भाँ असिञ्चतं मधूनाम् ।
4. वही, 10/40/6, 1/112/21
5. वही, 1/112/3, 1/157/4
6. वही, 10/41/3.
7. त्रिवन्धुरो वृषणा वातरंहा - ऋग्वेद ।1/118/1।
8. त्रिवन्धुरेण त्रिवृता रथेन त्रिचक्रेण सुवृता यातमर्वाक् - वही ।1/118/2।

   हिरण्ययेन पुरुभू रथेनेमं यज्ञं नासत्योप यातम् - वही ।4/44/4।

अवयव चक्र अक्ष और रश्मि सब स्वर्णिम है ।[1] इसमें एक सहस्त्र किरणें[2] अथवा अलंकार है ।[3] यह मन के समान तीव्रगामी[4] तथा हल्का चलने वाला है ।[5] इनके रथ के निर्माता ऋभुगण हैं ।[6] उनके रथ को घोड़े खींचते हैं । बहुधा

---

1. हिरण्ययां वां पवयः प्रुषायन् - ऋ० ॥1/180/1॥

   हिरण्ययी वां रभिरीषा अक्षो हिरण्ययः

   उभा चक्रा हिरण्ययः - वही ॥8/5/29॥

   रथो यो वां त्रिवन्धुरो हिरण्याभीशुरश्विना - वही ॥8/22/5॥

2. सहस्त्रकेतुं वनिनं शतद्वसुम् - वही ॥1/119/1॥

3. अतः सहस्त्रनिर्णिजा रथेना यातमश्विना - वही ॥8/8/11॥

4. यो वामश्विना मनसो जवीयान्

   रथः स्वश्वो विश आजिगाति ।। - वही ॥1/117/2॥

5. आ नूनं रघुवर्तनिं रथं तिष्ठाथो अश्विना - ऋग्वेद ॥8/9/8॥

6. रथं यं वामृभवश्चक्रुरश्विना -

   वही ॥10/39/12॥

पंखों वाले घोड़ों[1] और रासभों[2] के द्वारा भी खींचे जाने का उल्लेख दृष्टिगोचर होता है। हंस[3], श्येन[4] आदि पक्षियों के द्वारा रथ खींचने के प्रसंग भी ऋग्वेद में यत्र-तत्र उपलब्ध हो जाते हैं। उनका रथ द्युलोक के छोर तक पहुँचता है और पाँचों देशों में व्याप्त है। यह द्युलोक की परिक्रमा करता है।[5] यह एक दिन में द्युलोक और पृथिवी का चक्कर काट लेता है।[6] 'वर्तिस्' शब्द का प्रयोग एक अपवाद को छोड़कर अन्य सर्वत्र अश्विनों के पथ के लिए हुआ है।[7]

---

1. उग्रो वां ककुहो ययिः - ऋ० ।5/73/5।

   वच्यन्ते वां ककुहा अप्सु जाताः - वही ।1/184/3।

2. कदा योगो वाजिनो रासभस्य येन यज्ञं नासत्योपयाथः - वही ।1/34/9।

   तद्रासभो नासत्या सहस्रमाजा यमस्य प्रधने जिगाय - वही ।1/116/2।

3. यातमच्छा पतत्त्रिभिर्नासत्या सातये कृतम् - वही ।10/143/5।

4. आ वां श्येनासो अश्विना वहन्तु - वही ।1/118/4।

5. ता वां रथं वयमद्या हुवेम स्तोमैरश्विना सुविताय नव्यम्।

   अरिष्टनेमिं परि द्यामियानम् - वही ।1/180/10।

6. रथो ह वामृतजा अद्रिजूतः परि द्यावापृथिवी याति सद्यः - वही ।3/58/8।

7. रुद्रा हिरण्यवर्तिनी - वही ।5/75/3।

अश्विनों का कोई एक निश्चित स्थान निर्धारित नहीं है इनके स्थानों का विभिन्न प्रकार से निर्देश हुआ है । ऋग्वेद में ऐसी अवधारणायें प्राप्त होती है कि अश्विनों सुदूर[1], द्युलोक[2], पृथिवीलोक, अन्तरिक्ष[3] और यहाँ तक कि समुद्र[4] और वायु[5] से आते हैं । वे द्युलोक के समुद्र पर[6], द्युलोक के सलिल पर, वनस्पति

---

1. तेन नो वाजिनीवसू परावतश्चिदा गतम् - ऋग्वेद 8/5/30
2. दिवश्चिद् रोचनादध्या नो गन्तं स्वर्विदा - वही 8/8/7
3. आ नो यातं दिवस्पर्यान्तरिक्षादधप्रिया - वही 8/8/4

   यदन्तरिक्षे यद् दिवि यत्पञ्च मानुषाँ अनु

   नृम्णं तद् धत्तमश्विना - वही 8/9/2
4. यत्स्थो दीर्घप्रसद्मनि यद् वादो रोचने दिवः

   यद्वा समुद्रे अध्याकृते गृहेऽत आ यातमश्विना - वही 8/10/1
5. आ यातं नहुषस्पर्यान्तरिक्षात्सुवृक्तिभिः - वही 8/8/3
6. यद्दो दिवो अर्णव इषो वा मदथो गृहे ।

   श्रुतमिन्मे अमर्त्या ।।

   - वही 8/26/17

पर, गृह में एवं पर्वत श्रृंग[1] पर निवास करते हैं। वे पीछे, सामने, ऊपर तथा नीचे से आते हैं।[2] तात्पर्य यह है कि अश्विनौ सर्वव्यापी है। दिन में तीन बार आह्वान किये जाने के कारण ही सम्भवतः एक स्थान पर इनके तीन पदों का उल्लेख प्राप्त होता है।[3]

यजुर्वेद में अश्विनीकुमार

वैदिक संहिताओं में दूसरा स्थान यजुर्वेद का है। यजुर्वेद में प्रकृति देवी की कर्मकाण्डीय उपासना है। यजुष् शब्द की निष्पत्ति यज् धातु से हुई है, जिससे स्पष्ट होता है कि इस वेद का सम्बन्ध यजन कर्म से है। यजुर्वेद की दो शाखायें उपलब्ध होती हैं - ॥1॥ शुक्ल यजुः और ॥2॥ कृष्ण यजुः। शुक्ल यजुर्वेद की दो संहिताओं में से अन्यतम माध्यन्दिन या वाजसनेयी संहिता[4]

---

1. यानि स्थानान्यश्विना दधाथे दिवो यह्वीष्वोषधीषु विक्षु।
   नि पर्वतस्य मूर्धनि सदन्तेषं जनाय दाशुषे वहन्ता ॥ - ऋ० ॥7/70/3॥

2. आ पश्चातान्नासत्या पुरस्तादाश्विनायातमधरादुदक्तात्।
   - वही ॥7/72/5॥

3. त्रीणि पदान्याश्विनोराविः सान्ति गुहा परः - वही ॥8/8/23॥

4. शुक्लयजुर्वेद वाजसनेयी संहिता -
   19/33-35, 20/67-69, 21/48-58.

में अश्विनों की देवी सरस्वती के साथ सम्मिलित रूप से तीन सूक्तों में स्तुति की गई है तथा एक सूक्त[1] में सूर्यादि के साथ स्तुति की गई है, वाजसनेयी संहिता के ही दो सूक्त पूर्ण रूप से अश्विनों को समर्पित है । यजुर्वेद में वर्णित दर्शपूर्णमास याग[2] में हविः ग्रहण, स्तम्बयजुः हरण तथा अग्निसम्मार्जन के प्रसंग में अश्विनों की ऐसी बाहुओं का वर्णन हुआ है, जो आर्त्तों की रक्षा करते हैं तथा यज्ञ को वर्धित और रक्षित करते हैं । यहाँ अश्विनों के लिए हिरण्यवर्तनी[3] विशेषण का प्रयोग हुआ है । ऋग्वेद में ये ही एकमात्र ऐसे देवता हैं, जिनके लिए इस उपाधि का प्रयोग किया गया है ।

शुक्लयजुर्वेद में अश्विनों का एक नवीनतम रूप उभरकर प्रकाश में आता है । वह है दैवी होता अथवा अध्वर्यू का रूप । कतिपय मन्त्रों में देवताओं के होतृ के रूप में यज्ञ को निर्विघ्न सम्पादित कराने के लिए आह्वान किया गया है ।[4]

---

1. शुक्लयजुर्वेद वाजसनेयी संहिता - 38/12.
2. देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्याम् ।
   पूष्णो हस्ताभ्याम् अग्नये जुष्टं गृह्णामि ॥- शुक्ल यजुर्वेद ।1/10।
3. ता नासत्या सुपेशसा हिरण्यवर्तनी नरा - वही ।20/74।
4. होता यक्षद्दैव्या होतारा भिषजाश्विनेन्द्रं न जागृवि - वही ।21/36।
   ध्रुवक्षितिर्ध्रुवयोनिर्ध्रुवाऽसि ध्रुवं योनिमा सीदसाध्रुया
   उरव्यस्य केतुं प्रथमं जुषाणाऽश्विनाऽध्वर्यु सादयतामिह त्वा -वही ।14/1।

   दैव्या होतारा भिषजा पातमिन्द्रं सचा सुते - वही ।20/62।

यजुर्वेद की यज्ञीय उपासना का मूल प्रेरणा स्त्रोत ऋग्वेद का पुरुषसूक्त[1] है जहाँ ब्रह्म पुरुष को पशुरूप में कल्पित कर, उसी से विश्व की उत्पत्ति की कल्पना की गई है । सत्य तो यह है कि सृष्टि एक यज्ञ है और सृष्टि यज्ञ में विराट पुरुष, पुरुष पशु है । देवों ने इसे पुरुष पशु बनाकर यज्ञात्मक प्रजापति स्वरूप इसी के लिए यजन किया और अश्विनों की कल्पना इसी पुरुष पशु की मेधा और सरस्वती की कल्पना वाक् के रूप में की गई । इसका आधार ऋग्वेद में मिलता है क्योंकि ऋग्वेद में अश्विनों को अद्वितीय मेधा सम्पन्न देवता माना गया है । मेधा और वाक् का सदा से ही जो अन्योन्याश्रय सम्बन्ध रहा है वह यजुर्वेद के वाक् देवी सरस्वती और मेधा सम्पन्न अश्विनों की सम्मिलित स्तुति में ही झलकता है ।[2] परवर्तीकालीन साहित्य में देवी सरस्वती का ही विकास बुद्धि और विद्या की देवी के रूप में हुआ । वाक् और मेधा दोनों का समन्वय कर, उसे एक ही देवी पर आरोपित कर दिया गया । यजुर्वेद[3] में अश्विनों को यजमान में बुद्धि धारण कराने की प्रार्थना की गई है । एक पुराकथा में वर्णित है कि जब इन्द्र ने नमुचि नामक

---

1. ऋग्वेद 10/90

2. तनूपा भिषजा सुतेऽश्विनोभा सरस्वती ।
   मध्वा रजांऽसीन्द्रियमिन्द्राय पथिभिर्वहन् ।। - यजुर्वेद 20/56

   अश्विना पिबतां मधु सरस्वत्या सजोषसा । - वही 20/90

   तिस्रस्त्रेधा सरस्वत्यश्विना भारतीडा । - वही 20/63

   होता यक्षत्तिस्रो देवीर्न भेषजं त्रयस्त्रिधातवोऽपसो ।
   रूपमिन्द्रे हिरण्ययमश्विनेडा न भारती वाचा सरस्वती ।। वही 21/37

3. ता न आ वोढमश्विना रयिं पिशङ्गसंदृशं धिष्ण्या वरिवोविदम् ।
   - वही 20/83

राक्षस का वध किया था। तब सरस्वती ने सोम को अभिषुत किया और अश्विनों ने उसी सोमरस में स्फूर्ति और शक्ति का सम्मिश्रण करके, औषधि-रूप सोम को, इन्द्र को पानार्थ दिया। सोमपान के द्वारा ऊर्जासमन्वित होकर उन्होंने नमुचि का वध किया था। इसी पुराकथा की ओर संकेत करते हुए अश्विनों की स्तुति की गई है।[1] इन स्तुतियों के माध्यम से यह प्रार्थना की गई है कि जैसे नमुचि के वध में अश्विनों ने इन्द्र की सहायता की थी, उसी प्रकार अश्विनौ यज्ञ में यजमान की रक्षा करें और सहायक बनें।[2] 'सुकर्मणा' और 'सुपेशसा' विशेषण यजुर्वेद के कई मन्त्रों में अश्विनों के लिए प्रयुक्त हुआ है।[3]

---

1. अश्विना नमुचेः सुतꣳ सोमꣳ शुक्रं परिस्रुता।
   सरस्वती तमाभरद् बर्हिषेन्द्राय पातवे ।। - यजुर्वेद ।20/59।
   यमश्विना सरस्वती हविषेन्द्रमवर्धयन्।
   स बिभेद बलं मघं नमुचावासुरे सचा ।। - वही ।20/68।

2. पातं नोऽश्विना दिवा पाहि नक्तꣳ सरस्वति - वही ।20/62।
   अश्विना गोभिरिन्द्रियमश्वेभिर्वीर्यं बलम्।
   हविषेन्द्रꣳ सरस्वती यजमानमवर्द्धयन् ।। - वही ।20/73।

3. ता भिषजा सुकर्मणा - वही ।20/75।
   ता नासत्या सुपेशसा हिरण्यवर्तनी नरा - वही ।20/74।

   उषासानक्तमश्विना दिवेन्द्रꣳ सायमिन्द्रियैः।
   संजानाने सुपेशसा समञ्जाते सरस्वत्या ।। - वही ।20/61।

कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय संहिता में अश्विनों देवताओं में सर्वाधिक कम वयस्क ~~काके~~ देवता माने गये हैं ।[1] ये दोनों युवा हैं । तैत्तिरीय संहिता में भी अश्विनों की शामक और रक्षक बाहुओं का उल्लेख मिलता है ।[2]

अथर्ववेद में अश्विनीकुमार - अथर्ववेद के पाँच सम्पूर्ण सूक्त अश्विनों को समर्पित हैं । दो सूक्तों[3] में बृहस्पति के साथ एक सूक्त[4] में श्येन के साथ, एक सूक्त[5] में द्यौष्पिता के साथ, एक सूक्त[6] में सौमनस्य के साथ, एक में धर्म[7] तथा एक में मधु[8] के साथ सम्मिलित रूप से स्तुति की गई है ।

अथर्ववेद में भी ऋग्वेद में आये हुए वर्णन की भाँति अश्विनों के द्वारा

---

1. तैत्तिरीय संहिता ‖अनु० 7/काण्ड 2/प्रश्न 7‖
2. यो में हृदोस्यश्विनोस्त्वा बाहुभ्यां सध्यासम्- तैत्तिरीय संहिता ‖अनु० 5/काण्ड 3/प्रश्न 2‖
3. अथर्ववेद - ‖5/26/12, 6/69/1-3‖
4. वही - 3/3/4
5. वही - 6/4/3
6. वही - 7/52/1-2
7. वही - 7/73/1-5,8.
8. वही - 9/1/11, 16, 17, 19.

कमलपुष्पों की माला धारण करने का उल्लेख किया गया है ।[1] निगूढ़ मानसिक शक्ति सम्पन्न देवता के रूप में ऋग्वेद में वर्णित अश्विनों के स्वरूप को ध्यान में रखते हुए ही अथर्ववेद में यजमान में मेधा धारण कराने के लिए इनका आह्वान किया गया है ।[2] यजुर्वेद में वर्णित यज्ञ के रक्षक और संवर्धक के रूप में अश्विनों का जो स्वरूप उभरा है उसी का विकास अथर्ववेद में भी देखा जाता है ।[3] अथर्ववेद में अश्विनों के चरित्र का एक नया पहलू, प्रेम के देवता

---

1. तावन्मे अश्विना वर्च आ धत्तां पुष्करस्त्रजा - अथर्ववेद ।3/22/4।

2. संज्ञानं नः स्वेभिः संज्ञानमरणेभिः ।
संज्ञानमश्विना युवमिहास्मासु नि यच्छतम् ।। - अथर्ववेद ।7/52/1।

यथा सोमः प्रातःसवने अश्विनोर्भवति प्रियः ।
एवा मे अश्विना वर्च आत्मनि वर्च ध्रियताम् ।। - वही ।9/1/11।

यथा मधु मधुकृतः संभरन्ति मधावधि ।
एवा मे अश्विना वर्च आत्मनि ध्रियताम् ।। - वही ।9/1/16।

3. पातां नो देवाश्विना शुभस्पती उषासानक्तोत न उरुष्यताम् ।
अपां नपादभिहृती गयस्य चिद् देव त्वष्टर्वर्धय सर्वतातये ।।
- वही ।6/3/3।

धाता विधाता भुवनस्य यस्पतिर्देवः सविताभिमातिषाहः ।
आदित्या रुद्रा अश्विनोभा देवाः पान्तु यजमानं निर्ऋथात् ।।

- वही ।5/3/9।

के रूप में उभरकर प्रकाश में आया है , जो ऋग्वेद और यजुर्वेद में नहीं मिलता। विवाह के अनन्तर नवदम्पति के परस्पर मिलन हेतु अश्विनों की स्तुति की गई है ।[1] वर प्रेयसी अर्थात् वधू को अपने समीप आने और उसे कामभावना से संयोजित करने के लिए अश्विनों की स्तुति करता है । इसके अतिरिक्त नव-विवाहित दम्पति को एक ही वस्त्र में आवृत होकर, अश्विनीकुमारों का रूप धारण कर अर्थात् परस्पर एकरूप होकर, काम भाव से परिपूर्ण हो सक्तुमन्थ के पान का निर्देश दिया गया है ।[2] अथर्ववेद के एक मन्त्र में अश्विनों की श्येन के साथ स्तुति की गई है ।[3] सम्भवतः अश्विनों के क्षिप्रगामी होने, तथा उनकी गति श्येन के समान होने के कारण उनकी स्तुति श्येन के साथ की गई है, अथवा ऋग्वेद में प्राप्त वर्णन के अनुसार ॥कि उनका दिव्य रथ श्येन पक्षियों के द्वारा खींचा जाता था॥ उनकी स्तुति श्येन के साथ की गयी होगी । यह स्तुति भी केवल एक सूक्त के, एक ही मन्त्र के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं की

---

3. श्येनो हव्यं नयत्वा परस्मादन्यक्षेत्रे अपरुद्धं चरन्तम् ।
   अश्विना पन्थां कृणुतां सुगं त इमं सजाता अभिसंविशध्वम् ।।

   अथर्ववेद ॥3/2/4॥

2. शिवा भिष्टे हृदयं तर्पयात्वनमीवो मोदषीष्ठाः सुवर्चाः ।
   सवासिन्नौ मन्थमे तमश्विनौ रूपं परिधाय मायाम् ।।

   अथर्ववेद ॥2/29/6॥

1. सं चेन्नयाथो अश्विना कामिना सं च वक्षथः ।
   सं वां भगासो अग्मत सं चित्तानि समुव्रता ।।

   वही, ॥2/30/2॥

गई है ।

ब्राह्मणों में अश्विनीकुमार - संहिताओं के पश्चात् जिस साहित्य की रचना हुई वह ब्राह्मण साहित्य के नाम से जाना जाता है । इन ब्राह्मण ग्रन्थों का मुख्य विषय, वैदिक यज्ञों के विधि-विधानों का निरूपण करना और तत्सम्बन्धी तथ्यों का उल्लेख करना है । प्रत्येक संहिता से सम्बन्धित ब्राह्मण ग्रन्थों की रचना हुई । ऋग्वेद के ब्राह्मण ग्रन्थ ऐतरेय[1] और कौषीतकि ब्राह्मण[2] में अश्विनों और सूर्य-पुत्री सूर्या के विवाह वृत्तान्त का विशद वर्णन किया गया है । कौषीतकि ब्राह्मण में यह प्रसंग सोमयाग के अवसर पर 'आश्विन शास्त्र' या अश्विनों से सम्बन्धित एक सहस्त्र ऋचाओं के 'आश्विन' के नाम से अभिहित होने के कारण की व्याख्या के लिए आया है। इन दोनों ब्राह्मणों में वर्णित कथा, ऋग्वेद की कथा से थोड़ी भिन्न है । इन ब्राह्मणों में वर्णित कथा में अश्विनों सूर्या को प्राप्त करने के लिए किसी प्रकार की प्रतियोगिता में दौड़ नहीं लगाते । प्रजापति या सूर्य अन्य देवों के इच्छा

1. ऐतरेय ब्राह्मण ॥4/2/1-3॥

2. प्रजापतिर्वै सोमाय राज्ञे दुहितरं प्रायच्छत् सूर्यां सावित्रीम् । तस्यै सर्वे देवा वरा आगच्छन् । तस्या एतत् सहस्त्रं वहतुमन्वाकरोत् यदेतत् आश्विनम् इति आचक्षते ------ तस्मिन् देवा न समजानत ममेदम् अस्तु ममेदम् अस्तु इति । ते संजानाना अब्रुवन् आजिमस्यायामहै स यो न उज्जेष्यति तस्येद भविष्यतीति -------।

- कौषीतकि ब्राह्मण ॥18/1॥

करने पर भी अपनी पुत्री, सोम को ही देते हैं। किन्तु जब ये बाद में 'वहतु' के रूप में एक सहस्त्र ऋचायें बाँटने लगते हैं तो उनके लिए देवों में प्रतिस्पर्धा होती है। इसके लिए आजि या दौड़ होती है और पर्याप्त कर्मकाण्डीय जटिलताओं के पश्चात् अपने रासभ पर अश्विनौ दौड़ में जीतते हैं और ऋचाओं का नाम उनके नाम पर पड़ता है।

शुक्लयजुर्वेदीय शतपथ ब्राह्मण में किसी विशेष शारीरिक रूप सौन्दर्य का वर्णन नहीं उपलब्ध होता, केवल एक स्थान पर अश्विनौ का कमलपुष्पों की माला की भाँति सर्वत्र व्याप्त होने का उल्लेख मिलता है।[1] यजुर्वेद में अश्विनौ का जो होतृ रूप उभरता है उसी का परवर्तीकालीन विकास शतपथ ब्राह्मण में देखा जाता है। शतपथ में एक कथा इसी प्रसंग में आई है जिसमें अश्विनौ को देवताओं का अध्वर्यु कहा गया है। दूसरी चिति के चयन के अवसर पर एक कथा इस प्रकार आई है - 'देवताओं ने अश्विनौ से कहा, तुम दोनों ब्रह्मा और चिकित्सक हो। तुम हमारे लिए इस दूसरी चिति को बनाओ। उन्होंने पूछा कि फिर हमको इससे क्या लाभ होगा? उन्होंने उत्तर दिया कि हमारी इस अग्नि चिति में तुम दोनों अध्वर्यु बन जाना। वे राजी हो गये। अश्विनौ ने उनके लिए यह दूसरी चिति बनाई। इसलिए कहा जाता है कि दोनों अश्विन् देवों के अध्वर्यु हैं।[2]

---

1. अश्विनाविमे हीदं सर्वमाश्नुवातां पुष्करस्त्रजाविति

   -शतपथ ब्राह्मण ।4/1/5/16।

2. त्वां देवताऽभिगृणन्तित्यत्येतदिमा ब्रह्म पीपिहि सौभगायेतीमा ब्रह्माव सौभगायेत्येतदश्विनाऽध्वर्यू सादयतामिह त्वेत्यश्विनौ ह्यध्वर्यू उपाधत्ताम्।

   - वही ।8/2/1/5।

कृष्ण यजुर्वेद के ब्राह्मण ग्रन्थ तैत्तिरीय ब्राह्मण में वर्णित सौत्रामणि होम में अभिषेक के प्रसंग में अश्विनों की शामक और रक्षक बाहुओं का वर्णन किया गया है। मन्त्र में कहा गया है कि यजमान में ब्रह्म कान्ति और वर्चस्व की सिद्धि के लिए अश्विनों की बाहुओं से उसका अभिसिञ्चन करता हूँ।[1] तैत्तिरीय ब्राह्मण में अश्विनों को स्वर्णिम पंखों से युक्त देवता माना गया है।[2] ऋग्वेद में केवल अश्विनों के लिए ही प्रयुक्त 'रुद्रवर्तनी'[3] और 'हिरण्यवर्तनी'[4] उपाधि का प्रयोग तैत्तिरीय ब्राह्मण में भी स्थान-स्थान पर किया गया है। यजुर्वेद में प्रयुक्त 'सुपेशसा'[5] और 'सुकर्मणा'[6] उपाधियों का भी तैत्तिरीय ब्राह्मण में प्रयोग हुआ है। ऋग्वेद में अश्विनों के रथ का जिस रूप में वर्णन प्राप्त होता है, उसी रूप में तैत्तिरीय ब्राह्मण में भी वर्णन किया गया है। तीन वन्धुर वाले, मन के समान शीघ्रगामी, देवताओं के द्वारा काम्य मनुष्य जिस पर आरूढ़ होकर देवताओं के समीप जाते हैं, उसी रथ पर आरूढ़ होकर गमन करो, ऐसे वर्णन उपलब्ध होते हैं।[7] इससे यह प्रतीत होता है कि तैत्तिरीय

---

1. देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे, अश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां तेजसे ब्रह्मवर्चसायाभिषिञ्चामि। - तैत्तिरीय ब्राह्मण ॥2/6/5/2॥
2. हिरण्यपर्णौ अश्विभ्याम् - तैत्तिरीय ब्राह्मण ॥2/6/14/7॥
3. तदश्विना भिषजा रुद्रवर्तनी - वही ॥2/6/4/14॥
4. हिरण्यवर्तनी नरा - वही ॥2/6/14/66॥
5. ता नासत्या सुपेशसा - वही ॥2/6/14/66॥
6. ता भिषजा सुकर्मणा - वही ॥2/6/14/66॥
7. त्रिवन्धुरो मनसाऽऽयातु युक्तः। विशो येन गच्छथो देवयन्तीः। कुत्राचिद्यामश्विना दधाना। स्वश्वा यशसाऽऽयातमर्वाक्।

   - वही ॥2/8/7/55॥

ब्राह्मण में अश्विनों के दिव्य रथ की कल्पना एक तारक के रूप में की गई है। जिसके सहारे, देवकामी धर्मात्मा पुरुष तर जाते हैं अर्थात् वह रथ दिव्य वाहक के रूप में पुण्यकर्मा मनुष्यों को भूलोक से देवलोक तक पहुँचाने में सहायक होता है। रथ की कुछ नवीन विशिष्टताओं का इस ब्राह्मण में उल्लेख किया गया है जो अन्य ब्राह्मण ग्रन्थों तथा संहिताओं में नहीं मिलता। यहाँ अश्विनों के रथ को द्यावापृथिवी को बाधित करने वाला, स्वर्णिम तथा घृतवर्तनी कहा गया है। यहाँ घृत का अर्थ जल है अर्थात् घृत समान जल से परिपूर्ण मार्ग वाला। यह विभिन्न प्रकार के आयुधों और भक्तजनों को दिये जाने वाले अन्न से परिपूर्ण है, जो राजाओं का पालक है और शक्तिशाली सेचन समर्थ अश्वों से जुता हुआ है।[1] बुद्धि तथा यज्ञ के रक्षक के रूप में यजुर्वेद में वर्णित स्वरूप का ही विकास ब्राह्मणों में देखा जाता है।[2]

---

1. आ वां रथो रोदसीबद्धधानः हिरण्ययो वृषभिर्यात्विश्वैः।
   घृतवर्तनिः पविभीरुचानः। इषां वोढ़ा नृपतिर्वाजिनीवान्।
   - तैत्तिरीय ब्राह्मण [2/8/7/5]

2. हे अश्विनौ। आसु धीषु कर्मानुष्ठानबुद्धिषु नोऽस्मानविष्टवतं ॥ रक्षतम्।
   - वही [2/4/3/2]

   इमं यज्ञम्अश्विना वर्धयन्ता। इमौ रयिं यजमानाय धत्तम्।
   इमौपशून्रक्षतां विश्वतो नः।
   - वही [2/5/4/1]

गृह्यसूत्रों में वर्णित स्वरूप - ब्राह्मण साहित्य के पश्चात् वैदिक साहित्य की श्रृंखला में आरण्यक और उपनिषदों का ही स्थान है । किन्तु इनमें अश्विनीकुमारों का कोई लौकिक स्वरूप अथवा चारित्रिक विशेषता उपलब्ध नहीं होती । उपनिषदों के पश्चात् सूत्र ग्रन्थों की परम्परा प्रारम्भ होती हैं । सूत्र ग्रन्थ भी कई प्रकार के होते हैं जैसे - श्रौतसूत्र, गृह्य सूत्र और धर्मसूत्र आदि । इन सूत्र ग्रन्थों में केवल गृह्यसूत्रों में ही यत्र-तत्र संक्षिप्त रूप में अश्विनों के किसी चारित्रिक विशेषता अथवा अंगविशेष का वर्णन उपलब्ध हो जाता है । गृह्यसूत्रों में उपलब्ध अश्विनों के स्वरूप में, प्राचीन वैदिक ग्रन्थों में वर्णित स्वरूप की अपेक्षा कोई महत्वपूर्ण अन्तर नहीं दिखाई पड़ता । पारस्कर तथा आश्वलायन गृह्यसूत्र में उन्हें 'पुष्करस्त्रजौ' कहा गया है तथा उन्हें अत्यन्त बुद्धिमान मानकर अपने अन्दर मेधा के संचार के लिए उनका आह्वान किया गया है ।[1] आश्वलायन गृह्यसूत्र में जातकर्म संस्कार के उपलक्ष्य में, बालक के कानों में मन्त्र का जप करते हुए अश्विनों से, बालक में मेधा धारण कराने के लिए प्रार्थना की गई है ।[2] गोभिल गृह्यसूत्र में अश्विनों के बाहुओं के माहात्म्य का वर्णन है । उपनयन के अवसर पर आचार्य अपने दाहिने हाथ से शिष्य के दाहिने हाथ को अँगूठे के साथ, वाजसनेयी संहिता के एक मंत्र को पढ़कर, पकड़ता है । उस मन्त्र का भाव इस प्रकार है - 'देव

---

1. मेधा मे अश्विनावुभौ आधत्तां पुष्करस्त्रजौ - पारस्कर गृह्यसूत्र ।1/3/19।

2. मेधां ते देवः सविता, मेधां ते सरस्वती
   मेधां ते देवानाधत्तां पुष्करस्त्रजौ - आश्वलायन गृह्यसूत्र ।1/15/2।

सविता की प्रेरणा से, अश्विनों की बाहुओं से मैं इसे ग्रहण करता हूँ ।'[1]
हिरण्यकेशी गृह्यसूत्र में विवाह के अवसर पर अश्विनों से, वधू के उरोजों को सुरक्षित रखने की प्रार्थना की गई है ।[2]

महाकाव्यों [रामायण तथा महाभारत] में अश्विनीकुमार - रामायण तथा महाभारत इन दो महाकाव्यों में अश्विनों की कोई ऐसी नवीन विशिष्टता नहीं प्राप्त होती, जिसे परवर्तीकालीन विकास कहा जा सके । रामायण के बालकाण्ड में अश्विनों को रूपयौवन से सम्पन्न तथा अत्यन्त सुन्दर कहा गया है ।[3]

ऋग्वेद से लेकर महाकाव्यों [रामायण तथा महाभारत] तक अश्विनों के लौकिक स्वरूप की विवेचना करने से कतिपय प्रमुख तत्त्व जो प्रकाश में आये वह यह है कि अश्विनों सरण्यू और विवस्वान की यमज सन्तानें हैं । दोनों सुन्दर रूप समन्वित युवा हैं । आभूषणों में विशेषरूप से कमलपुष्प की माला धारण करते हैं । अद्वितीय बुद्धि संवलित और दयालु देवता हैं । अपनी बलिष्ठ बाहुओं से यजमान तथा यज्ञ की रक्षा करते हैं और उसे संवर्धित करते हैं । इसलिए उनकी बाहुओं का वर्णन परवर्ती वैदिक साहित्य में भी मिलता है परन्तु इनसे यह स्पष्ट नहीं होता कि वस्तुतः अश्विनों का 'प्राकृतिक स्वरूप' क्या था ? वे प्रकृति के किस पहलू का प्रतिनिधित्व करते हैं । इसका विशद विवेचन आगे किया जा रहा है ।

---

1. देवस्य ते सवितुः प्रसवे अश्विनोर्बाहुभ्यां गृह्णामि ।
   - गोभिल गृह्यसूत्र [2/10/26]
2. हिरण्यकेशी गृह्यसूत्र [1/7/25]
3. रूपयौवनसम्पन्नौ अश्विनौ रूपसम्मतौ - रामायण [बालकाण्ड 17/14]

अश्विनीकुमारों का प्राकृतिक स्वरूप

अश्विनों के प्राकृतिक स्वरूप के सम्बन्ध में ऋषियों की भाषा बहुत अस्पष्ट है। इससे यही विदित होता है कि वे स्वयं ही इस बात को न समझ पाये होंगे कि इन दोनों देवताओं का आधार कौन सा प्राकृतिक दृश्य था । ऋग्वेद में प्राप्त उल्लेखों से यह ज्ञात होता है कि अश्विनों प्रकाश के ही दिव्यीकृत प्रतिरूप रहे होंगे । प्रातःकाल के अन्य देवताओं का, जैसे : प्राणबोधक उषस् , उदीयमान सूर्य और रात्रिनाशक अग्नि का आह्वान अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट रूप से किया गया है ।

सर्वप्रथम तो इनके नाम ही प्रकाश के साथ सम्बन्ध की ओर सङ्केत करते हैं । 'अश्व' सूर्य की किरणों का प्रतीक है । वस्तुतः अश्विनों किस के प्रतिरूप हैं,यह तो यास्क के समकालीन व्याख्याकारों के लिए भी समस्या बन चुकी थी । उनके आविर्भाव का समय प्रायः महत् उषाकाल बताया गया है , जब लाल किरणों के बीच अंधकार बना रहता है ।[1] तब अश्विनों पृथिवी पर अवतीर्ण होकर हविष् को स्वीकार करने के लिए अपना रथ जोतते हैं ।[2] इनके रथ जोतने से उषा का जन्म होता है। अपने रथ पर बैठकर वे उषा का अनुसरण करते हैं ।[3] इन उद्धरणों से यह प्रतीत होता है कि अश्विनों के आविर्भाव का समय उषस् से पूर्व या उषस्

---

1. कृष्णा यद् गोष्वरुणीषु सीदद्, दिवो नपातश्विना हुवे वाम् ।
   - ऋग्वेद ।10/61/4।
2. या सुरथा रथीतमोभा देवा दिविस्पृशा, अश्विना ता हवामहे ।
   - वही ।1/22/2।
3. नूवद् दस्त्रा मनोजुवा रथेन पृथुपाजसा, सचेथे अश्विनोषसम् ।
   - वही ।8/5/2।

और सूर्योदय के बीच में है क्योंकि,एक स्थान में उषा के द्वारा अश्विनों को जगाने का वर्णन मिलता है ।[1] प्रातःकालीन देवता होने के कारण अश्विनों अन्धकार का अपसारण करते हैं ।[2] कभी-कभी दुरात्माओं का पीछा भी करते हैं ।[3] प्रकाश से सम्बन्धित देवता होने के कारण तेज अथवा प्रकाश से सम्बन्धित ~~देवता होने के कारण तेज अथवा प्रकाश से सम्बन्धित~~ अनेक विशेषण अश्विनों के लिए प्रयुक्त हुए हैं । वे प्रकाशमान या शुभ्र[4] हैं । तेज के स्वामी होने के कारण इन्हें 'शुभस्पती'[5] भी कहा गया है । इनके शरीर की ज्योति सुनहरी है । अतः इन्हें 'हिरण्यपेशसा'[6] कहा गया है । प्रातः काल अथवा प्रातः

---

1. प्र बोधयोषो अश्विना - ऋग्वेद ॥8/9/17॥
2. तमोहना तपुषो बुध्न एता - वही ॥3/39/3॥
3. रक्षोहणा सम्भृता वीळुपाणि - वही ॥7/73/4॥

   हत रक्षांसि सेधतममीवा: - वही ॥8/35/16॥
4. आ शुभ्रा यातमश्विना स्वश्वा गिरो दस्रा जुजुषाणा युवाकोः ।

   हव्यानि च प्रतिभृता वीतं नः ।। - वही ॥7/68/1॥
5. ऋग्वेद ॥8/22/18॥

   वही ॥10/39/6॥
6. आ नूनं यातमश्विना रथेन सूर्यत्वचा ।

   भुजी हिरण्यपेशसा कवी गम्भीरचेतसा ।।

   - वही ॥8/8/2॥

कालीन प्रकाश से घनिष्टतया सम्बन्ध होने के कारण अश्विनों को प्रातःकाल खिलने वाले कमलपुष्पों की माला धारण करते हुए वर्णित किया गया है ।[1] उषाकाल की सुनहरी किरणों से सम्बद्ध होने के कारण अश्विनों के रथ को स्वर्णनिर्मित या 'हिरण्यय' बताया गया है ।[2] उनका भ्रमण मार्ग भी रक्तिम और सुनहरा बताया गया है । अश्विनों की उत्पत्ति भी उनके प्रकाश से स सम्बन्ध को द्योतित करता है । संहिताओं से लेकर महाकाव्यों तक अश्विनों का जन्म विवस्वान् और सरण्यू से स्वीकारा गया है । विवस्वान् उदीयमान सूर्य हैं और उनकी पत्नी सरण्यू उषा का ही दैवी रूप है । सायण ने 'सरण्यू' का अर्थ 'क्षरणशीला' ग्रहण किया है । जब सूर्य का तेज प्रखर होता है, तो क्षरणशीला उषा की रक्तिमा भाग कर छिप जाती है । संसार को किरणों से व्याप्त करने के कारण सूर्य को अश्व कहा गया है । कुछ समयान्तराल के बाद दोनों का पश्चिम में मिलन होता है, उससे अश्विनों का जन्म होता है और दोनों पूर्व में अपने घर लौटते हैं । सूर्य तो प्रखर तेजस्विता का प्रतिनिधित्व करते ही हैं । साथ ही साथ सरण्यू या उषा भी प्रकाश की देवी के रूप में वर्णित हैं । अतः दोनों के मिलन से उत्पन्न सन्तान भी प्रकाश से सम्बन्धित होगी ही इसमें कोई संदेह नहीं । उषा का अश्विनों की माता

---

1. गर्भं ते अश्विनौ देवौ आधत्तां पुष्करस्रजा - ऋ० ।10/184/2।
   तावन्मे अश्विना वर्च आधत्तां पुष्करस्त्रजा - अथर्ववेद ।3/22/4।
   ----- कुमारं पुष्करस्त्रजम् - वाजसनेयी संहिता ।2/33।
   अश्विनाविमेहीदं सर्वमाश्नुवातां पुष्करस्त्रजाविति -
   शतपथ ब्राह्मण ।4/15/16।
   पद्मस्त्रजौ - श्रीमद्भागवत ।9/3/15।
2. हिरण्ययेन पुरुभू रथेन इमं यज्ञं नासत्या उपयातम् - ऋग्वेद 4/44/4।

होना समय की दृष्टि से भी समीचीन प्रतीत होता है । पहले उषा का उदय होता है फिर अश्विनों की उत्पत्ति का समय आता है । ॠग्वेद के एक सूक्त में वर्णित है कि अश्विनों का विवाह सूर्य की पुत्री सूर्या से हुआ था । यह ॠग्वेद के दशम मण्डल का 85वाँ सूक्त है जो 'सूर्या सूक्त' के नाम से जाना जाता है । ॠग्वेद में यह वर्णन मिलता है कि सूर्या ने स्वयं अश्विनों को अपने पति के रूप में वरण किया था ।[1] इस कार्य का अनुमोदन सभी देवताओं ने किया था ।[2] सूर्या के साथ विवाह भी इसी तथ्य पर प्रकाश डालता है कि सूर्य पुत्री सूर्या प्रकाश से सम्बन्धित देवी थी अतः उनके साथ अश्विनों का वैवाहिक सम्बन्ध होना ही उनका प्रकाश से घनिष्ठ सम्बन्ध का परिचायक है । कहीं कहीं पर अश्विनों की पत्नी का नाम अश्विनी आता है, जो सम्भवतः सूर्या का ही दूसरा नाम होगा । मैक्डॉनल[3] के अनुसार प्रातःकालीन प्रकाश के पुरुष देवों के रूप में उन्हें अनेकशः स्त्री के रूप में कल्पित सूर्य के साथ सम्बद्ध किया गया है , जिन्हें या तो सूर्या या अधिक सामान्यतया सूर्य की पुत्री कहा गया है ।

यजुर्वेद में अश्विनों के प्राकृतिक स्वरूप की ओर कोई प्रकाश नहीं डाला

---

1. आ वां पतित्वं सख्याय जग्मुषी
   योषावृणीत जेन्या युवां पती - ॠग्वेद ॥1/119/5॥
2. आ वां रथं दुहिता सूर्यस्य काष्मेवातिष्ठद् अर्वता जयन्ती ।
   विश्वेदेवा अन्वमन्यन्त हृद्भिः समु श्रिया नासत्या सचेथे ॥
   - ॠग्वेद ॥1/116/17॥

3. ए०ए० मैक्डॉनल - वैदिक माइथोलॉजी, पृष्ठ 95.

गया है । केवल एक मन्त्र में एक स्थान पर अश्विनों को 'स्वर्णिम' कहा गया है ।[1] यह उनके प्रकाशमय स्वरूप की ओर किया गया एक संकेत मात्र हो सकता है ।

अथर्ववेद में प्रातःसवन के अवसर पर सोमपान हेतु अश्विनों का आह्वान किया गया है ।[2] प्रातःसवन यज्ञ में सोम अश्विनों को बहुत प्रिय था ऐसा वर्णन एक मन्त्र में आया है ।[3] अथर्ववेद के एक मन्त्र में अश्विनों से द्युलोक के प्रकाश में तपे हुए दुग्ध रूपी तेज के पान की प्रार्थना की गई है ।[4] इन वर्णनों से इसी तथ्य पर प्रकाश पड़ता है कि वे प्रकाश से सम्बद्ध देवता थे और यह प्रकाश अधिक सम्भवतया प्रातःकालीन प्रकाश ही था ।

ऐतरेय ब्राह्मण[5] में उषस् और अग्नि की तरह अश्विनों को भी प्रातः

---

1. हिरण्ययमश्विना - यजुर्वेद ॥21/37॥

2. प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे, प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना ।
   प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोमसुतं रुद्रं हवामहे ।।
   - अथर्ववेद ॥3/16/1॥

3. यथा सोमः प्रातः सवने अश्विनोर्भवति प्रियः ।
   एवा मे अश्विना वर्च आत्मनि ध्रियताम् ।। - वही ॥9/1/11॥

4. यदुस्रियास्वाहुतं घृतं पयोऽयं स वामश्विना भाग आ गतम् ।
   माध्वी धर्तारा विदथस्य सत्पती तप्तं घर्मं पिबतं रोचने दिवः ।।
   - वही ॥7/73/4॥

5. एते वाव देवाः प्रातर्यावाणो यदग्निरुषा अश्विनौ । - ऐतरेय ब्राह्मण ॥2/15॥

काल का देवता कहा गया है । इस ब्राह्मण ग्रन्थ[1] में भी प्रकाश की देवी सूर्या के साथ अश्विनों के विवाह की कथा वर्णित है और यही वर्णन कौषीतकि ब्राह्मण[2] में भी आया है । वैदिक कर्मकाण्ड में वे सूर्योदय के साथ सम्बद्ध रहते आये हैं ।

शतपथ ब्राह्मण में अश्विनों को पृथ्वी और आकाश का द्योतक माना गया है । ब्राह्मणकार ने अश्विनों के कमलों की बड़ी सुन्दर व्याख्या की है। अग्नि पृथिवी का कमल है और सूर्य आकाश का । पृथ्वी और आकाश ही अश्विनों हैं । ये समस्त जगत को व्याप्त कर लेते हैं, इसलिए पृथ्वी और आकाश है ।[3] शतपथ ब्राह्मण में अश्विनों को लोहित श्वेत वर्ण का बताया गया है ।[4] इसलिए यज्ञ में उन्हें लोहित श्वेत बकरा प्रदान किया जाता है । प्रातःकालीन सूर्य का वर्ण लोहित ही होता है ।

तैत्तिरीय ब्राह्मण में भी प्रकाश की देवी सूर्या और अश्विनों के विवाह की कथा वर्णित है ।[5] ब्रह्मपुराण में अश्विनों के जन्म की कथा का

---

1. ऐतरेय ब्राह्मण ॥4/2/1/3॥
2. कौषीतकि ब्राह्मण ॥18/1॥
3. इमे वै द्यावापृथिवी प्रत्यक्षमश्विनौ । इमे हीदं सर्वमाश्नुवातां पुष्करस्त्रजौ इति । अग्निरेव अस्यै ॥पृथिव्याः॥ पुष्करम् आदित्यो, अमुष्यै ॥दिवः॥
   – शतपथ ब्राह्मण ॥4/9/5/16॥
4. श्येत अश्विनो भवति । श्येताविव ह्यश्विनौ । लोहित आश्विनो भवति। तद् यदेतया यजते । = वही (5/5/4/1)
5. अन्तादिवो बाधते वर्तनिभ्याम् । युवो रिश्रयं परियोषा वृणीत । सूरो दुहिता परितक्म्यायाम् । यद्देवयन्तमवथश्शचीभिः ।
   – तैत्तिरीय ब्राह्मण ॥2/8/7/56॥

विस्तृत वर्णन मिलता है , जिसमें ब्रह्मपुराणकार ने विवस्वान् की पत्नी का नाम उषा दिया है ।[1] क्योंकि इस कथा का प्राकृतिक आधार इनके लिए स्पष्ट था । ब्रह्मपुराण में यह वर्णन स्पष्ट रूप से मिलता है कि विवस्वान् का अपनी पत्नी के पीछे दौड़ना, सूर्य का ही उषा के पीछे दौड़ने की प्राकृतिक घटना की ओर संकेत करता है ।[2] नीतिमञ्जरीकार द्याद्विवेद ने भी सायण के भाष्य में दी गई अश्विनों के विवाह की कथा के आधार पर 45वें श्लोक की रचना की है ।[3] उन्होंने भी सूर्या को सूर्य की पुत्री का ही रूप स्वीकार किया है। इससे अश्विनों का प्रकाश के साथ घनिष्ट सम्बन्ध होना सिद्ध हो जाता है ।

निरुक्तकार यास्क ने द्यावापृथिवी, सूर्य और चन्द्रमा तथा दिन और

---

1. तस्य पत्नी उषा ख्याता त्वाष्ट्री त्रैलोक्यसुन्दरी ।

   - ब्रह्म पुराण ।89/3।

2. धावन्तीं तां प्रियामश्वाम् अश्वरूपधरः स्वयम् ।
   पर्यधावद् यतो याति उषा भानुस्ततस्ततः ।।

   - वही ।89/28।

3. सविता स्वदुहितरं सूर्याख्यां सोमाय राज्ञे प्रदातुमैच्छत् -------------
   तमाश्विनावुदजयताम् । सा च सूर्या जितवतोस्तयो रथमारुरोह ।

   - नीतिमञ्जरी पृष्ठ 97-98

रात्रि को अश्विनों के प्राकृतिक आधार के रूप में उपन्यस्त किया है ।[1] शतपथ ब्राह्मण में अश्विनों को पृथिवी और आकाश कहा गया है । किन्तु यह विचार तर्कसंगत प्रतीत नहीं होता, क्योंकि अश्विनों सदा साथ रहने वाले देवता हैं , जबकि पृथिवी तथा आकाश के विषय में ऐसा नहीं है । वे सूर्य के पुत्र हैं, उनका सूर्य से विशेष सम्बन्ध है । उन्हें पृथिवी और आकाश मान लेने पर इसकी समुचित व्याख्या नहीं की जा सकती । अश्विनों जैसे अस्पष्ट देवताओं के साथ आकाश और पृथिवी जैसे स्पष्ट देवताओं के साथ कोई संबंध प्रकट नहीं होता । पारस्परिक पार्थक्य के कारण और चन्द्रमा का प्रातःकाल से कोई सम्बन्ध न होने के कारण सूर्य और चन्द्रमा की व्याख्या भी सन्तोष-जनक नहीं है । गोल्डस्टूकर का मत है कि ब्रह्मवेला के समय होने वाला झुट-पुट ही, जिसमें रात्रि ॥अन्धकार॥ एवं दिन ॥प्रकाश॥ दोनों का सम्मिश्रण होता है , अश्विनों पद से वाच्य है । उनके अनुसार यही यास्क का अपना विचार रहा होगा। अश्विनों में एक अन्धकारमय है और दूसरा प्रकाशमय । अश्विनों के सूर्यपुत्र या आकाश पुत्र होने की बात इसी से समझ में आती है । दुर्गाचार्य की वृत्ति के आधार पर रौथ का मत है कि यास्क अश्विनों को इन्द्र तथा सूर्य समझते हैं ।

---

1. अथातो द्युस्थाना देवताः । तासामश्विनौ प्रथमागामिनौ भवतः । अश्विनौ यद् व्यश्नुवाते सर्वं रसेन अन्यो ज्योतिषा अन्यः । तत् कौ अश्विनौ ? द्यावापृथिव्यावित्येके अहोरात्रौ इत्येके । सूर्याचन्द्रमसौ इत्येके । राजानौ पुण्यकृतौ इति ऐतिहासिकाः । तयोः कालः उर्ध्व-रात्रात् प्रकाशीभावस्य अनुविष्टम्भम् अनु । तयोर्मागौ हि मध्यमो ज्योतिर्मार्गः आदित्यः । – निरूक्त ॥12/1/1॥

अश्विनों में से एक रस से पृथ्वी को व्याप्त करता है और दूसरा प्रकाश से । परन्तु वास्तविकता तो यह है कि यास्क ने इस विषय में अपना कोई मत दिया ही नहीं है । सूर्य और इन्द्र जैसे अत्यन्त स्पष्ट एवं पूर्ण देवों का अश्विनों जैसे युगल देवों के रूप में संयोग होने का कोई कारण नहीं है । यह यास्क का मत कभी नहीं हो सकता ।

श्रोडर[1] तथा हॉपकिन्स[2] महोदय के अनुसार सूर्य के विलीन हो गये प्रकाश को पुनः प्राप्त करने अथवा खोज निकालने वालों के रूप में ही मूलतः अश्विनों की कल्पना की गई होगी । हॉपकिन्स की दृष्टि में यह सम्भव प्रतीत होता है कि अपृथकत्वेन संबद्ध यह युगल उषःकाल के पूर्ववर्ती धुंधले प्रकाश का प्रतिरूप रहा हो । ऐसा प्रकाश जो कि आधा अन्धकार और आधा प्रकाश होता है । इसलिए अश्विनों में से केवल एक को द्यौस का पुत्र कहा गया है । मीरियन्थ्यूस भी इसी मत से सहमत है ।

कतिपय पाश्चात्य विद्वानों ने अश्विनों के प्राकृतिक स्वरूप की व्याख्या तारे के रूप में की है । वेबर उन्हें जेमिनी तारामण्डल के युगल तारों का प्रतिरूप मानते हैं ।[3] ओल्डेनबर्ग इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि अश्विनों का भौतिक

---

1. Shröder - Wiener Zeitschrift für die kunde des morgelandes (Vienna Oriental Journal) - Pg. 9,13).

2. Hopkins - Religions of India, Pg. 83.

3. Weber - Indische Studian, Pg. 5.234, Rajsuya - 100.

आधार 'सुबह का तारा' रहा होगा, क्योंकि अग्नि उषा और सूर्य के अतिरिक्त यही एक दूसरा 'प्रातःप्रकाश' है। मैनहार्ट[1] तथा बालेनसेन[2] के मत का अनुसरण करते हुए ही ओल्डेनबर्ग इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं। अश्विनों का काल उनका प्रकाशमय रूप, उनके द्वारा की जाने वाली द्युलोक परिक्रमा इस मत में ठीक बैठते हैं: किन्तु उनका द्वित्व फिर भी अव्याख्यात ही रह जाता है। संध्या तारों के साथ मिलाकर अश्विनों की युग्म रूप में कल्पना की गई है। प्रातःकालिक तारों के साथ सायंकालीन तारों की याद स्वाभाविक है। भोर का तारा प्रातःकाल के आने का सूचक है और इस प्रकार वह नवजीवन का प्रतीक है। परन्तु इस मत को मानने में एक बाधा उत्पन्न होती है। वह यह कि भोर और संध्या के तारे कभी एक साथ नहीं रहते। यहाँ तक कि उनका उदय भी एक दिन नहीं होता। जबकि अश्विनौ युग्म देवता है। इस समस्या का समाधान ग्रीसबोल्ट ने अनेक प्रमाणों के आधार पर करने का प्रयास किया है। उनका कथन है कि ऋग्वेद[3] में अश्विनों को पृथक्-पृथक् जन्म लेते हुए भी वर्णित किया गया है। जैसे ऋग्वेद[4] में उषा एवं संध्या को साथ द्योतित करने के लिए 'उषसा' अभिधान प्रयुक्त हुआ है। उसी प्रकार सम्भवतः इन दोनों तारों के पृथक्-पृथक् होने पर भी साथ-साथ उल्लेख है। तथापि यह मानना पड़ेगा कि सायं और भोर का तारा मानने वाला मत अत्यन्त दुरारूढ़ और भ्रामक है।

---

1. मैनहर्ट - रूसी इथ्नोलोजी, पृष्ठ - 7, 312 और बाद

2. Balensein - Zeitschrift der Deutschen Margenlandischen Gesellschaft, Pg. 41,496.

3. ऋग्वेद संहिता - 5/73/4 तथा 1/181/4

4. ऋग्वेद संहिता - 1/188/6

श्री अरविन्द[1] ने अश्विनों के लिए प्रयुक्त दो उपाधियों 'हिरण्यवर्तनी' और 'रुद्रवर्तनी' के आधार पर इनके प्राकृतिक स्वरूप की व्याख्या की है। उनका कथन है कि, "रुद्रवर्तनी' का भाष्य अर्वाचीन विद्वानों ने 'लाल रास्ते वाला' किया है और यह मान लिया है कि यह विशेषण तारों के लिए बिल्कुल उपयुक्त है और वे उदाहरण के लिए दूसरे शब्द 'हिरण्यवर्तनी' को प्रस्तुत करते हैं जिसका अर्थ होता है 'सुनहरे या चमकीले रास्ते वाला'। 'रुद्र' का अर्थ ~~[illegible]~~ एक समय में 'चमकीला', 'गहरे रंग का लाल' यह अवश्य रहा होगा। 'रुधृ' और 'रुश्' धातु इस अर्थ के वाचक हैं। जैसे रुधिर 'रक्त' या 'लाल' का वाचक है अथवा जैसे लैटिन भाषा के 'रुबर' (ruber), रुटिलस् (rutilus) रूफुस (rufus) इन सबका अर्थ लाल है। 'रोदसी' का, जो आकाश तथा पृथिवी के द्वन्द्ववाची शब्द है, सम्भवतः 'चमकीला' अर्थ रहा होगा जैसा कि आकाशीय और पार्थिव लोकों के वाचक शब्द 'रजस्' और 'रोचना' का है। दूसरी ओर क्षति और हिंसा का अर्थ भी इस शब्द परिवार में समान रूप से अन्तर्निहित है। अतः 'रुद्र' का 'भीषण' या 'प्रचण्ड' अर्थ भीउतना ही उपर्युक्त है, जितना 'लाल')'अश्विनों' 'रुद्रवर्तनी' तथा 'हिरण्यवर्तनी' इन दोनों प्रकार के स्वरूपों को धारण करते हैं, क्योंकि ये 'प्रकाश' और 'प्राणबल' दोनों की शक्तियाँ है। 'हिरण्यवर्तनी' रूप में इनकी चमकीली सुनहरी गति होती है और 'रुद्रवर्तनी' रूप में वे अपनी गतियों में प्रचण्ड होते हैं।" सुनहरी गति का होना ही उनके 'प्रकाश' के साथ सम्बन्ध को सूचित कर रहा है।

वी०एस० अग्रवाल[2] महोदय ने अपने एक प्रकाशित लेख में अश्विनों के

---

1. श्री अरविन्द - वेद रहस्य, पृष्ठ -124
2. वी०एस० अग्रवाल - 'एन एक्सपोजीशन आफ दअश्विन् सूक्त आफ ऋग्वेद' ।विश्वेश्वरानन्द इण्डोलॉजीकल जरनल-1966, पृष्ठ 1-34।

प्राकृतिक स्वरूप की व्याख्या में तीन की संख्या को अधिक महत्व दिया है। उनका कथन है कि अश्विनों का आह्वान दिन में तीन बार किया जाता है, जो दिन और रात्रि के त्रिधा वर्गीकरण की ओर संकेत करता है। दिन को जैसे प्रातः, मध्याह्न और सायं इन तीन भागों में विभक्त किया गया है, उसी प्रकार रात्रि का भी त्रिविध विभाजन किया गया है। अश्विन् द्वय में से एक प्रातःकाल की सन्धिवेला (जब रात्रि समाप्त होती है और दिन आरम्भ होता है) में आधा अन्धकार और आधे प्रकाश की स्थिति का नियमन करते हैं और दूसरे सायंकाल की सन्धिवेला (जब दिन समाप्त होता है और रात्रि आरम्भ होती है) में आधा प्रकाश और आधे अन्धकार की स्थिति का नियमन करते हैं। अथवा यह भी कहा जा सकता है कि अश्विन् शब्द अश्व शब्द से बना है, जो सूर्य का प्रतीक है। सूर्य जो समस्त ब्रह्माण्ड की गतिशीलता का प्रधान स्त्रोत माना जाता है। अश्विनों की युग्मता ब्रह्माण्ड की आधारभूत युग्म शक्तियों का प्रतिनिधित्व करती है। जैसे - दिन और रात, प्रकाश और अन्धकार आदि। 24 घंटों में 12 घंटे दिन और 12 घंटे रात का नियत चक्र चलता ही रहता है। दिन और रात भी युग्म रूप में पूरे ब्रह्माण्ड की क्रियाशीलता का नियन्त्रण करते रहते हैं। उसी प्रकार अश्विन् द्वय भी प्रकृति की ऐसी ही युग्म शक्तियों के प्रतीक है। इसलिए उनकी कल्पना युग्म रूप में की गई है। अग्रवाल महोदय ने अश्विनों के दिव्य रथ की व्याख्या भी प्राकृतिक धरातल पर करने का प्रयास किया है। वैदिक ब्रह्माण्ड विज्ञान (Vedic-cosmology) में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की गतिशीलता की उपमा एक गतिमान रथ से दी गई है। उनके रथ में तीन चक्र है जिसका प्रयोग उन्होंने सूर्या के स्वयंवर में किया था। दो चक्र तो छः महीने में होने वाले ऋतुजन्य परिवर्तनों के प्रतीक है अर्थात् वर्ष के दो अर्धाङ्गों ग्रीष्म और शीत का प्रतिनिधित्व, रथ के दो चक्र करते हैं। तीसरा चक्र अलौकिक होने से अदृश्य है, जिसे सृष्टि के आदि स्त्रोत

को जानने वाले ही जान सकते हैं । ऋग्वेद[1] में इन तीनों चक्रों की बड़ी सुन्दर व्याख्या की गई है । अग्रवाल महोदय ने रथ की व्याख्या प्रस्तुत करने के लिए ऋग्वेद के मन्त्रों का सहारा लिया है । इन उद्धरणों से यही विदित होता है कि इन्होंने भी अश्विनों का सम्बन्ध किसी न किसी रूप में प्रकाश के साथ ही जोड़ने का प्रयास किया है ।

वस्तुतः अश्विनों किसी ऐसे प्राकृतिक दृश्य से सम्बद्ध है, जो आधा प्रकाश और आधा अन्धकारमय है । इस दृष्टि से गोल्डस्टूकर का मत ही अधिक समीचीन प्रतीत होता है कि, वे अन्धकार और प्रकाश के घुले मिले रूप हैं । 'धुंधला प्रकाश' और 'सुबह का तारा' इन दो धरातलों पर इन देव-युग्मों के प्राकृतिक स्वरूप की परिकल्पना अधिक समीचीन प्रतीत होती है ।

----------::0::----------

1. द्वे चक्रे ब्रह्मणा ऋतम् विदुः । -ऋग्वेद ॥10/85/16॥

अथैकं चक्रं यद् गुहा । - वही ॥10/55/16॥

दिव्य वैद्य के रूप में अश्विनीकुमार

ऋग्वेद से लेकर सम्पूर्ण वैदिक साहित्य में अश्विनों, शारीरिक व्याधि से ग्रस्त मनुष्यों को स्वास्थ्य एवं नवजीवन प्रदान करते हुए वर्णित किये गये हैं। ऋग्वेद में उन्हें देवों का वैद्य कहा गया है ।[1] सभी प्रकार के कष्टों से आर्तजनों का त्राण करना ही दिव्य कृपा की शान्तिमय अभिव्यक्ति है । अपनी रोगोपशामक शक्ति के द्वारा वे रोग से पीड़ितों का उपचार करते हैं ।[2] ऋग्वेद में उनके वैद्यक कर्मों से सम्बन्धित अनेक कथायें हैं । इन कथाओं की संख्या ऋग्वेद में किसी भी देवता से सम्बन्धित कथाओं से अधिक है । दिव्य वैद्य के रूप में अश्विनों का स्वरूप अन्य स्वरूपों की अपेक्षा अधिक उभरकर सामने आता है । न केवल ऋग्वेद में बल्कि ब्राह्मणों, पुराणों और महाकाव्यों में भी अश्विनों के स्वरूप के इसी पहलू का विकास अधिक पाया जाता है । परवर्ती साहित्य में उनका मानवीय और प्राकृतिक स्वरूप, वैद्यक स्वरूप के प्रदीप्त प्रकाश में धूमिल सा पड़ता नजर आता है । साथ ही उन देवशास्त्रीय पुराकथाओं का परवर्तीकालिक साहित्य में अधिक प्रस्फुटन होता है, जिनमें अश्विनों के विभिन्न उपचारजन्य कृत्य वर्णित हैं ।

शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिन संहिता में अश्विनों की स्तुति दिव्य भिषक्

---

1. उत त्या दैव्या भिषजा शं नः करतो अश्विना

 - ऋग्वेद 8/18/8

2. ताभिर्नो मक्षू तूयमश्विना गतं भिषज्यतं यदातुरम्

 - वही 8/22/10

के रूप में की गई है ।[1] एक मन्त्र में दिव्य भिषक् अश्विनों से यज्ञ की विभिन्न जीवाणुओं से रक्षा करने की प्रार्थना की गई है ।[2] कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय संहिता में अश्विनों से नेत्रों की ज्योति को पुनः वापस लौटाने के लिए प्रार्थना की गई है ।[3]

अथर्ववेद में भी उन्हें देवों का वैद्य कहा गया है और मृत्यु को दूर रखने के लिए अश्विनों से प्रार्थना की गई है ।[4] तैत्तिरीय ब्राह्मण में भी अश्विनों को 'भिषजा रुद्रवर्तनी'[5] कहकर सम्बोधित किया गया है । तैत्तिरीय ब्राह्मण में कहा गया है कि वे देवताओं के भिषक् है और उनके अमरत्व को बनाये रखने के लिए अमोघ रसायन है ।[6] महाभारत के आदिपर्व में एक स्थान पर दैवी भिषक् अश्विनों की स्तुति, नेत्र ज्योति को पुनः लौटाने के लिए,करने को कहा गया है ।[7]

---

1. तनूपा भिषजा सतेऽश्विनोभा - शुक्लयजुर्वेद ॥माध्यन्दिन संहिता 20/56॥
   ता भिषजा सुकर्मणा - वही ॥20/75॥
   भिषङ्.नासत्या भिषजाश्विनाश्वा - वही ॥21/33॥
2. पातं नो अश्विना,दैव्या होतारा भिषजा पातं - वही ॥20/62॥
3. पुनर्मे अश्विना युवं चक्षुराधत्तम् । - कृष्ण यजुर्वेद ॥तैत्तिरीय संहिता 5/3/2॥
4. प्रत्यौहतामश्विना मृत्युमस्मद् देवानामग्ने भिषजा शचीभिः-अथर्ववेद॥7/53/1॥
5. तदश्विना भिषजा रुद्रवर्तनी - तैत्तिरीय ब्राह्मण ॥2/6/4/14॥
6. यौ देवानां भिषजौ हव्यवाहौ । विश्वस्य दूतावमृतस्य गोपौ तौ नक्षत्रं जुजुषाणोपयाताम् ।
   नमोऽश्विभ्यां कृणुमोऽश्वयुग्भ्याम् । - तैत्तिरीय ब्राह्मण ॥3/1/2/11॥
7. अश्विनौ स्तुहि तौ देवभिषजौ, त्वां चक्षुष्मन्तं कर्त्तारावितिः -
   महाभारत ॥आदिपर्व॥ ॥3/56॥

दिव्य वैद्य के रूप में सर्वत्र स्तुत्य होने पर भी ब्राह्मण ग्रन्थों में प्राप्त उद्धरणों के अनुसार यह ज्ञात होता है कि देवताओं में उन्हें उच्च स्थान नहीं प्राप्त था , क्योंकि ब्राह्मणकालीन समाज व्यवस्था में वैद्यों को गरिमामय स्थान नहीं प्रदान किया जाता था । इसलिए अश्विनों को सोमपान का अधिकार भी नहीं दिया गया था । कालान्तर में जब अश्विनों ने अपने भिषक् कर्मों के द्वारा च्यवन ऋषि को वृद्धावस्था से पुनः युवा बना दिया तो उन्होंने सोमयाग में अश्विनों को सोमपान का अधिकारी बनाकर उचित मर्यादा प्रदान की । सम्भवतः संहिताकाल में वैद्यों के सामाजिक स्थान में ऐसा पतन नहीं हुआ था । क्योंकि वैदिक संहिताओं में ऐसा कोई संकेत नहीं है जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि अश्विनों मूलतः सोमयाग से बहिष्कृत थे । ऋग्वेद के एक मन्त्र में उन्हें सोम का प्रेमी बताया गया है तथा एक दूसरे मन्त्र[1] में उषा तथा सूर्य के साथ सोमपान के लिए उनका आवाहन भी किया गया है । वाजसनेयी संहिता में भी वाजपेय यज्ञ के अवसर पर इन्द्र तथा सरस्वती के साथ विशेष रूप से उन्हीं को सोमपान के लिए आमंत्रित किया गया है । अश्विनों का अथर्ववेद के एक मन्त्र में सोमपान के लिए आह्वान किया गया है ।[2] वैद्यों की सामाजिक प्रतिष्ठा में ह्रास ब्राह्मणकालीन समाज से ही प्रारम्भ हुआ होगा, ऐसा माना जा सकता है ।

---

1. सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं पिबतमश्विना ।।

- ऋग्वेद ।8/35/1।

2. यथा सोमः प्रातः सवने अश्विनोर्भवति प्रियः - अथर्ववेद ।9/1/11।

तैत्तिरीय संहिता[1] में गृहयाग के संदर्भ में अश्विनों को अपवित्र कहा गया है । यह कथा पुराण प्रसिद्ध है कि एक बार अग्निष्टोम याग में अश्विनों यज्ञ के कटे सिर को पुनः स्थापित करने गये, तो देवताओं ने कहा कि अश्विन् द्वय अशुद्ध हैं क्योंकि वे मनुष्यों के विचरण करते हैं । मनुष्य कर्म अर्थात् वैद्यक कर्म करते हैं । वैद्यक का कार्य ब्राह्मणों के लिए अपवित्र होता है । अपवित्र हो जाने की वजह से ब्राह्मण भिषग्वृत्ति नहीं करते । इसलिए बहिष्पवमान स्तोत्र के द्वारा अश्विनों को पवित्र किया गया और सोम का अधिकारी बनाया गया। इसी स्तोत्र के द्वारा विद्वज्जन अपने आपको पवित्र करते हैं । यही कथा मैत्रायणी संहिता[2]

---

1. यज्ञस्य शिरोच्छिद्यत ते देवा अश्विनावब्रुवन्भिषजौ वै स्थ इदं एव नावत्रापि गृह्यतामिति ताभ्यामेतमाश्विनगृह्वन्तौ वै तौ यज्ञस्य शिरः प्रत्यधत्तां यदाश्विनो गृह्यते यज्ञस्य निष्कृत्यै तौ देवा अब्रुवन्नपूतौ वा इमौ मनुष्य-चरौ । भिषजाविति तस्माब्राह्मणेन भेषजं न कार्यमपूतो ह्येषोमेध्यो यो भिषक्तौ बहिष्पवमानेन पावयित्वाताभ्यामेतमाश्विनगृह्वन्तस्माद्बहिष्पव-मानेन स्तुत आश्विनो गृह्यते । तस्मादेवं विदुषा बहिष्पवमान उपसद्यः पवित्रं वै बहिष्पवमान आत्मानमेव पवयते । – तैत्तिरीय संहिता 2/6/9/ 37-38.

2. यज्ञस्य वै सृष्टस्य शिरोऽछिद्यत, तस्मै देवाः प्रायश्चित्तिमैच्छन्नप वा एतौ तर्हि देवानां भिषजा आस्तामश्विना असोमपौ । ता उपाधावन्, यथा भिषजमुपधावन्त्येवमिदं यज्ञस्य शिरः प्रतिधत्तमिति ता अब्रूतां,※ग्रहं नौ गृह्वन्तु, सोमपीथमन्नवावहा इति, तद्वा अश्विनौ प्रत्यधत्तां, तस्मादा-श्विनीभिरभिष्टुवन्त्यश्विनौ हि प्रत्यधत्तां, तौ वै बहिष्पवमानेनैव पाव-यित्वा ताभ्यां पूताभ्यां यज्ञियाभ्यां भूताभ्यां ग्रहमगृह्णंस्तस्माद्बहिष्पव-माने स्तुत आश्विनो गृह्येते ।

– मैत्रायणी संहिता 14/6/1-2।

※ भागो ना अस्त्विति, वृणाथामित्यब्रुवन् ता अब्रूतां,

और कठ संहिता[1] में भी प्राप्त होती है । शतपथ ब्राह्मण में जो कथा वर्णित है वह इस प्रकार है - ऋषि च्यवन से ज्ञात होने के पश्चात् जब अश्विनौं कुरुक्षेत्र में यज्ञस्थान पर पहुँचे और देवताओं से यज्ञ भाग न देने की वजह पूछी तो देवताओं ने बताया कि, 'तुम लोग चिकित्सा के प्रसंग में मनुष्यों के बीच बहुत अधिक रहते हो । अतः हम तुम्हें यज्ञ के अयोग्य समझते हैं ।[2] महाभारत में वनपर्व के।24वें अध्याय में भी इन्द्र के द्वारा कहे गये वक्तव्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि देवताओं में अश्विनौं का स्थान नहीं था । जब ऋषि च्यवन ने इन्द्र से अश्विनौं को सोम देने की बात कही तब इन्द्र बोले, 'यह दोनों अश्विनीकुमार स्वर्ग में देवताओं की दवा करते हैं इसलिए इनको सोमदान करना उचित नहीं है । यह दोनों चिकित्सा करने वाले, कामरूपी और मनुष्य लोक में घूमने वाले हैं, तब किस रीति से सोम को पाने योग्य है ?" अन्ततः ऋषि च्यवन के बार बार कहने पर भी जब इन्द्र तैयार नहीं हुए और अपना वज्र उठा लिया, तब

---

1. यज्ञस्य वै शिरोऽच्छिद्यताथ तर्ह्यश्विना असोमपौ भिषजौ देवानामास्तां तौ देवा अब्रुवन्, भिषजौ वै स्थ इदं यज्ञस्य शिरः परिधत्तमिति वा अब्रुवतां वार्यं वृणावहै सोमपीथो नौ देवेष्वस्तु ग्रहो नौ गृह्यतामिति तौ देवा बहिष्पवमानेन पावयित्वा ताभ्यां शुचिभ्यां मेधाभ्यां भूताभ्यां ग्रहमगृह्णंस्तस्मात् स्तुते बहिष्पवमान आश्विनो गृह्यते ।

   - कठ संहिता ।27/4/5।

2. सुकन्ये केनावमत्वौं स्वः केनासमृद्धाविति तौ हच्यवन प्रत्युवाच कुरुक्षेत्रेऽमी देवा यज्ञं तन्वते ते वां यज्ञादन्तर्यन्ति तेनासर्व्वौ स्थस्तेनासमृद्धाविति तौ ह ततऽएवाश्विनौ प्रेयतुस्तावाजग्मतुर्देवान्यज्ञं तन्वानान्स्तुते बहिष्पवमाने । उप नौ ह्वयध्वमिति ते ह देवाऽऊचुर्न वामुपह्वयिष्यामहे बहुमनुष्येषु सꣳसृष्टमचारिष्टं भिषज्यन्ताविति ।

   - शतपथ ब्राह्मण ।4/1/5/13-14।

च्यवन ने इन्द्र के, ऊपर उठे हुए वज्र युक्त बाहु को स्तम्भित कर दिया। तब भयभीत होकर देवराज इन्द्र ने च्यवन की बात मान ली और अश्विनों को सोमपान का अधिकार प्रदान किया।[1]

इन कथाओं से यह विदित होता है कि पहले वैद्य के रूप में उन्हें देवताओं में स्थान नहीं मिलता था। कालान्तर में उन्होंने अपना उचित स्थान प्राप्त कर लिया था। किन्तु यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उन्हें देवताओं की कोटि में परिगणित न किये जाने की विचारधारा सर्वप्रथम ब्राह्मण साहित्य में ही उपजी है। इसके पहले ऐसा कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं होता जिससे यह माना जा सके कि अश्विनों का महत्व किसी भी देवता से कम था।

अश्विनों की उपचारजन्य पद्धतियाँ विभिन्न प्रकार की थी, जिनमें आधुनिक काल में उपलब्ध लगभग सभी पद्धतियाँ सम्मिलित पाई जाती हैं। उन्होंने किन-किन व्याधियों का उपचार अपने दिव्य, अलौकिक शक्ति से किया,

---

1. इन्द्र उवाच - उभावेतौ न सोमार्हौ नासत्याविति मे मतिः।
भिषजौ दिवि देवानां कर्मणा तेन नाऽर्हतः ॥

चिकित्सकौ कर्मकारौ कामरूपसमन्वितौ ।
लोके चरन्तौ मर्त्यानां कथं सोममिहाऽर्हतः॥

ततोऽस्मै प्राहरद्वज्रं घोररूपं शचीपतिः ।
तस्य प्रहरतो बाहुं स्तम्भयामास भार्गवः ॥

भूयस्तम्भितभुजः सृक्किणी लेलिहन्मुहुः ।
ततो ब्रवीद्देवराजश्च्यवनं भयपीडितः॥

सोमार्हावश्विनावेतावद्यप्रभृति भार्गव ।
भविष्यतः सत्यमेतद्वचो विप्र प्रसीद मे ॥-

- महाभारत (वनपर्व) अध्याय - 124.

उनका तथा उनसे सम्बन्धित पुराकथाओं का वर्णन निम्नलिखित है -

1. पंगु को चलने योग्य बनाना

खेल नामक राजा की विश्पला नामक स्त्री के पैर को युद्ध में शत्रुओं ने काट दिया था। खेल के पुरोहित अगस्त्य ने अश्विनों की स्तुति की और उन्होंने रात्रि के अन्धकार में आकर, विश्पला के कटे हुए पैर के स्थान पर लोहे का पैर लगा दिया।[1] नीतिमञ्जरीकार[2] तथा बृहद्देवताकार ने भी इस कथा का उल्लेख किया है। आधुनिक काल में इस पद्धति का प्रयोग बहुतायत से देखने को मिलता है। कटे हुए पैर के स्थान पर स्टील के बुश से बना हुआ नकली पैर लगा दिया जाता है, जिससे पंगु व्यक्ति पुनः चलने फिरने में समर्थ हो जाता है।

---

1. याभिः विश्पलां धनसाम् अथर्व्यम् सहस्रमीळ्हे आजावजिन्वतम् -
ऋग्वेद ॥1/112/10॥

अगस्त्ये ब्रह्मणा वावृधाना, सं विश्पलां नासत्या अरिणीतम्।
- वही ॥1/117/11॥

चरित्रं हि वेरिव अच्छेदि पर्णम् आजा खेलस्य परितक्म्यायाम्।
सद्यः जङ्घाम् आयसीं विश्पलायै, धने हिते सर्तवे प्रत्यधत्तम् ॥
- वही ॥1/116/15॥

निः प्रति जङ्घां विश्पलायाः अधत्तम्। - वही ॥1/118/8॥

युवं वन्दनमृश्यदादुदूपथुर्युवं सद्यो विश्पलामेतवे कृथः। वही ॥10/39/8॥

2. अगस्त्य पुरोहितः खेलो नाम राजा तस्य सम्बन्धिनी विश्पला नाम स्त्री संग्रामे शत्रुभिश्छिन्नपादाऽऽसीत्। पुरोहितेनागस्त्येन स्तुतस्त्वाश्विनौ रात्रावागत्य तस्या अयोमयं पादं समधत्ताम् इति-नीतिमञ्जरी, पृष्ठ-94.

2 अन्धे को नेत्रज्योति प्रदान करना

वृषागिर् नामक राजा के ऋज्राश्व नामक एक पुत्र था। एक बार उसने वृकी के लिए एक सौ एक मेष मार डाले। पिता ने उसे शाप देकर अन्धा बना दिया। तब अश्विनों ने उन्हें पुनः नेत्रों की ज्योति प्रदान की।[1] इसी प्रकार उन्होंने नेत्रविहीन परावृज नामक ऋषि को नेत्रज्योति प्रदान कर पुनः चलने में सक्षम बनाया।[2] तैत्तिरीय संहिता में एक स्थान पर अश्विनों से

---

1. शतं मेषान् वृक्ये चक्षदानं, ऋज्राश्वं तम् पिता अन्धे चकार।
   तस्मै अक्षी इति नासत्या विचक्षे, आ अधत्तं दस्रा भिषजौ अनर्वन्॥
   —ऋग्वेद 1/116/16

   शुनम् अन्धाय भरम् अह्वयत् सा, वृकीः अश्विना वृषणा नरौ इति।
   जारः कनीनः इव चक्षदानः, ऋज्राश्वः शतम् एकं च मेषान्॥
   — वही 1/117/18

   शतं मेषान् वृक्ये ममहानम्, तमः प्रणीतम् अशिवेन पित्रा।
   आ अक्षी इति ऋज्राश्वे अश्विनौ अधत्तम्, ज्योतिः अन्धाय चक्रथुः विचक्षे॥
   — वही 1/117/17

2. याभिः शचीभिः वृषणा परावृजं प्रान्धं, श्रोणं चक्षस एतवे कृथः॥
   — वही 1/112/8

पुनः दर्शन सामर्थ्य प्रदान करने की प्रार्थना की गई है ।[1] महाभारत के आदिपर्व में अन्धे को दृष्टि प्रदान करने की कथा वर्णित है । उपमन्यु ने एक बार भूख से व्याकुल होकर आक के पत्ते खा लिए थे । उससे उसकी आँखें फूट गईं और वह अन्धा हो गया । उपाध्याय ने उसे देवताओं के वैद्य अश्विनीकुमारों की स्तुति करने को कहा । स्तुति से प्रसन्न होकर अश्विनीकुमारों ने उसे सुन्दर आँखें प्रदान की ।[2] नीतिमञ्जरीकार ने नेत्रहीन ऋषि कण्व की कथा का उल्लेख किया है , जो नेत्र के बिना चलने में असमर्थ होकर एक ही स्थान पर निवास करते थे। उन्हें अश्विनों ने महान तेजयुक्त चक्षुरिन्द्रिय प्रदान किया ।[3] आज इस पद्धति को 'ग्राफ्टिंग' के नाम से जाना जाता है । इस पद्धति के द्वारा किसी दूसरे व्यक्ति की आँखों को नेत्रहीन के आँखों के स्थान पर जोड़ देने से वह व्यक्ति पुनः देखने में समर्थ हो जाता है । जो पद्धति आज इतने लोगों को दृष्टि प्रदान करने में सक्षम है, उसका बीजारोपण आज से कई हजार वर्ष पूर्व हो चुका था, जिसका प्रमाण हमें इन्हीं अश्विनी सूक्तों से उपलब्ध हो जाता है ।

---

1. पुनर्मे अश्विना युवं चक्षुरा धत्तम् । - तैत्तिरीय संहिता ॥5/3/2॥

2. स तैरर्कपत्रैर्भक्षितैः क्षारतिक्तकटुरुक्षैस्तीक्ष्णविपाकैश्चक्षुष्युपहतोऽन्धोऽपि चङ्क्रम्यमाणः कूपे पपात । तमुपाध्यायः प्रत्युवाच अश्विनौ स्तुहि तौ त्वां चक्षुष्मन्तं करिष्यतो देवभिषजाविति । उपाध्यायेनोपमन्युरश्विनौ स्तोतुमुपचक्रमे देवावश्विनौ वाग्भिर्ऋग्भिः इत्येवं तेनाभिष्टुतावश्विनावाजग्मतुराहतुश्चैनं प्रीतौ स्वस्तवानया गुरुभक्त्योपाध्यायस्य । चक्षुष्मांश्च भविष्यसीति श्रेयश्चावाप्स्यसीति । - महाभारत ॥आदिपर्व॥ 3/52-75.

3. अपि च कण्वाय क्षीणस्य दृष्टिराहित्येन गन्तुमशक्तस्मन् एकस्मिन्नेव स्थाने निवसते ऋषये महः तेजसं चक्षुरिन्द्रियं अदत्तमिति । - नीतिमञ्जरी, पृष्ठ 107.

3. चर्म रोग का उपचार

घोषा नामक स्त्री त्वग्रोग से पीड़ित होकर पिता के घर में ही वृद्धावस्था को प्राप्त हो रही थी । उसका विवाह होना असम्भव हो गया था । अश्विनों ने उसे चर्मरोग से मुक्ति दिलाकर पुनः स्वस्थ किया और उपयुक्त पति की प्राप्ति करवाई ।[1] बृहद्देवताकार ने भी इसी कथा का उल्लेख किया है । बृहद्देवता[2] में कहा गया है कि वह 60 वर्ष की आयु तक अपने पिता के गृह में ही किसी दुष्ट रोग के कारण कुरूप होकर, निवास कर रही थी । उसकी स्तुति से प्रसन्न हुए और उसके शरीर में प्रवेश कर उसे सदा के लिए युवा बना दिया । रोग से मुक्ति दिलाकर सुन्दर बना दिया । उसे एक पति तथा सुहस्त्य ऋषि जैसा पुत्र प्रदान किया । नीतिमञ्जरीकार[3] ने भी इस कथा का वर्णन किया है । इसके साथ ही नीतिमञ्जरी में श्यावाश्व की कथा का भी उल्लेख किया गया है , जिसकी त्वचा कुष्ठरोग से काली पड़ गई थी । अश्विनों ने उन्हें पुनः दीप्तियुक्त त्वचा प्रदान की थी ।[4]

---

1. ऋग्वेद - 10/65/12

2. आसीत्कक्षीवती घोषा पापरोगेण दुर्भगा, उवास षष्टिं वर्षाणि पितुरेव गृहे पुरा । आतस्थे महतीं चिन्तां न पुत्रो न पतिर्मम, जरां प्राप्ता, मुधा तस्मात् प्रपद्ये हं शुभस्पती चिन्तयन्तीति सूक्ते द्वे यो वां परि ददर्श सा, स्तुतौतावश्विनौ देवौ प्रीतौ तस्या भान्तरं प्रविश्य विजरारोगां सुभगां चक्रतुश्च तौ भर्तारं ददतुस्तस्यै सुहस्त्यं च सुतं मुनिम् ।

   - बृहद्देवता 17/42-47।

3. घोषा नाम ब्रह्मवादिनी कक्षीवतो दुहिता सा कुष्ठिनी सती कस्मैचिद्वराय अदत्ता पितृगृहे निषण्णा जीर्णाऽऽसीत् । साऽश्विनोरनुग्रहान्नष्टकुष्ठा सती पतिं लेभे । - नीतिमञ्जरी, पृष्ठ 104.

4. युवां श्यावाय कुष्ठरोगेण श्यामवर्णाय ऋषये रुशतीं दीप्तात्वम् ।दीप्तत्वचं। अदत्तम् । - नीतिमञ्जरी, पृष्ठ 106.

4. प्रसव कर्म का कुशलतापूर्वक सम्पादन

ऋग्वेद में अश्विनों के द्वारा प्रसव कर्म के सम्पादन की कोई-कथा उपलब्ध नहीं होती । अथर्ववेद में कहा गया है कि वे ही स्त्रियों में गर्भ को उत्पन्न करते हैं ।[1] प्रायः सभी गृह्यसूत्रों में गर्भाधान संस्कार के अवसर पर गर्भ स्थापित करने के लिए अश्विनों का आह्वान किया गया है । महाभारत के द्रोणपर्व में युवनाश्व के कुशलतापूर्वक प्रसव सम्पन्न कराये की कथा आई है । किसी समय राजा युवनाश्व शिकार खेलते हुए प्यास से व्याकुल हो गये । उनका घोड़ा भी थक गया । उसने दूर यज्ञ के धुँए को देखा । उसके अनुरोध से उस सत्र के स्थान में जाकर प्यास से पीड़ित होने के कारण यज्ञ से शुद्ध हुए पृषदाज्य (दही और घी मिश्रित वस्तु) का सेवन किया । उससे उनके उदर में एक पुत्र उत्पन्न हुआ । वैद्यक विद्या जानने वाले अश्विनी कुमारों ने उनके उदर में पुत्र का संचार होते जानकर, यत्नपूर्वक उस पुत्र को बाहर करके राजा युवनाश्व के क्रोड में समर्पण किया ।[2] इस कथा के अन्तर्गत सत्य कितना है और कल्पना कितनी, यह तो नहीं कहा जा सकता । किन्तु आधुनिक चिकित्साविद् पुरुष से गर्भ उत्पन्न कराने में अभी तक समर्थ नहीं हो सके हैं । यदि भविष्य में वे ऐसी क्रिया में समर्थ होंगे तो इस कथा की सत्यता पर कोई प्रश्न चिन्ह नहीं रह जायेगा ।

---

1. गर्भं ते अश्विनौभाधत्तां पुष्करस्त्रजा ।

- अथर्ववेद (5/25/3)

2. मृगयां विचरन्राजा तृषितः क्लान्तवाहनः
धूमं दृष्ट्वाऽगमत्तत्रं पृषदाज्यमवाप सः
तं दृष्ट्वा युवनाश्वस्य जठरे सुनृतां गतम्
गर्भाद्धि जह्नतुर्देवावश्विनौ भिषजां वरौ
तं दृष्ट्वा पितुरुत्सङ्गे शयानं देववर्चसम् ।।

-महाभारत(द्रोणपर्व) (62/1-4)

5. <u>वृद्ध को यौवन प्रदान करना</u>

वृद्ध च्यवन ऋषि को युवा बनाकर अश्विनों ने पत्नी का प्रिया बना दिया । यह कथा ऋग्वेद के अनेक स्थलों में आई है ।[1] च्यवन को पुनर्यौवन प्रदान करने की पुराकथा का विकास परवर्ती वैदिक साहित्य में अधिक देखा जाता है । इसका मूल रूप तो ऋग्वेद में उपलब्ध होता है, उसके पश्चात् शत-पथ ब्राह्मण में यह कथा विस्तार से कही गई है । इससे भी अधिक विस्तार से महाभारत में तथा अत्यन्त परिष्कृत और संक्षिप्त रूप में श्रीमद्भागवत महा-पुराण में कही गई है । शतपथ ब्राह्मण[2] की कथा संक्षेप में इस प्रकार है : जब भार्गव और आंगिरस ऋषिगण स्वर्ग जाने लगे तो वे च्यवन को यहीं छोड़ गये । वे अत्यन्त कुरूप, प्रेतों के समान विकराल आकृति वाले थे । राजा शर्याति के शिविर के पास घूमते हुए उसके पुत्रों ने उन्हें देखा और लोष्ठों से मारा । च्यवन ने उन्हें उन्मत्त कर दिया । वे आपस में लड़ने लगे । तब शर्याति अपनी पुत्री सुकन्या को लेकर च्यवन के पास गये और उसे स्वीकार करके क्रोध शान्त करने की प्रार्थना की । ऐसा ही हुआ । एक दिन अश्विनों ने सुकन्या को देखा और उसकी इच्छा की । उन्होंने उससे अपने बूढ़े और कुरूप पति को छोड़ देने के लिए कहा । जब सुकन्या ने च्यवन से यह बताया तो ऋषि ने कहा कि तुम अश्विनों से कहना कि, 'तुम स्वयं असमृद्ध तथा असम्पूर्ण हो, फिर भी मेरे

---

1. युवाम् च्यवानम् अश्विना जरन्तं, पुनः युवान चक्रथुः शचीभिः ।।

   - ऋग्वेद ।1/117/13।

   ऋग्वेद - 1/116/10, 1/118/6, 5/74/5, 7/68/6, 7/71/5, 10/39/4 1/119/7, 1/112/5, 1/119/6, 1/119/7.

2. यत्र वै --------------- सयूयेन व्ययसा चक्रमे तेनोदेयाय ।

   -शतपथ ब्राह्मण ।4/1/5/1-12।

पति की निन्दा करते हो । यदि वे पूछे कैसे ? तो उनसे कहना कि पहले मेरे पति को युवा बना दो, तब बताऊँगी । दुबारा जब अश्विनों आये तो ऐसा ही हुआ । उन्होंने एक दिन ह्रद में स्नान करवाकर च्यवन को युवा बना दिया ।

महाभारत में इस कथा ने एक नया मोड़ लिया है । महाभारत में वर्णित च्यवन की कथा में तपस्या की शक्ति को सर्वोपरि ठहराया गया है । महाभारत में वनपर्व के दो अध्यायों में च्यवन ऋषि की यह कथा प्राप्त होती है । महाभारत में वर्णित कथा का रूप इस प्रकार है - पयोष्ठी नदी के तट पर महर्षि च्यवन दीर्घकाल तक तपस्या करते रहे, जिससे उनके शरीर पर मिट्टी तथा घास आदि जम जाती है । एक दिन शर्याति अपनी चार पत्नियों तथा पुत्री सुकन्या के साथ क्रीड़ा करता हुआ उधर आ निकलता है । सुकन्या सखियों के साथ खेलती हुई वल्मीक के पास जा पहुँचती है । वल्मीक के अन्दर से चमकती हुई दो आँखें दिखाई पड़ती हैं । कौतूहलवश सुकन्या उनमें काँटा चुभा देती है । च्यवन क्रुद्ध होकर राजा के सैनिकों का मल-मूत्र बन्द कर देते हैं । जब राजा को अपनी कन्या द्वारा च्यवन को कष्ट देने का वृत्तान्त पता चलता है तो वे सुकन्या के साथ क्षमा याचना करने पहुँचते हैं । च्यवन सुकन्या की माँग करते हैं । राजा उन्हें अपनी पुत्री प्रदान करता है । एक दिन अश्विनीकुमार सुकन्या को देखते हैं और उससे अपने वृद्ध पति को छोड़ कर अपने में से किसी एक का वरण करने की सलाह देते हैं । सुकन्या इसे नहीं मानती । उसके पातिव्रत से प्रसन्न होकर अश्विनीकुमार उसके पति को युवक बना देने के लिए एक सरोवर में प्रविष्ट कराते हैं और स्वयं भी प्रविष्ट होते हैं । सरोवर से तीनों एक ही आकृति के सुन्दर युवकों के रूप में निकलते हैं पर

सुकन्या अपने पति को पहचान जाती है ।[1] यह कथा का पूर्वांश है इसके उत्तरांश में अश्विनों को सोमपान का अधिकारी बनाने की कथा जुड़ी हुई है , जिसका उल्लेख वनपर्व के 124वें अध्याय में हुआ है ।

---

1. कस्यचित्त्वथ कालस्य त्रिदशावश्विनौ नृप ।
कृताभिषेकां विवृतां सुकन्यां तामपश्यताम् ।।

तां दृष्ट्वा दर्शनीयाङ्गी देवराजसुतामिव ।
ऊचतुः समभिद्रुत्य नासत्याश्विनाविदम् ।।

ततः सुकन्या सव्रीडा तावुवाच सुरोत्तमौ ।
शर्यातितनयां वित्तं भार्यां मां च्यवनस्य च।।

अथाऽश्विनौ प्रहस्यैतामब्रूतां पुनरेव तु ।
कस्मादेवंविधा भूत्वा जराजर्जरितं पतिम् ।।

त्वमुपास्से ह कल्याणि कामभोगबहिष्कृतम् ।
सा त्वं च्यवनमुत्सृज्य वरयस्वैकमावयोः ।।

रता हं च्यवने पत्यौ मैवं मा पर्यशंकतम् ।
तावब्रूतां पुनस्त्वेमामावां देवभिषग्वरौ ।।

युवानं रूपसंपन्नं करिष्यावः पतिं तव ।
ततस्तस्याऽऽवयोश्चैव वृणीष्वान्यतमं पतिम् ।।

उवाच वाक्यं यत्ताभ्यामुक्तं भृगुसुतं प्रति ।
तच्छ्रुत्वा च्यवनो भार्यामुवाच क्रियतामिति ।।

ऊचतु राजपुत्रीं तां पतिस्तव विशत्वपः ।
ततोऽम्भश्च्यवनः शीघ्रं रूपार्थी प्रविवेश ह ।।

अश्विनावपि तद्राजन्सरः प्राविशतां तदा ।
ततो मुहूर्तादुत्तीर्णाः सर्वे ते सरस्तदा ।।

दिव्यरूपधराः सर्वे युवानो मृष्टकुण्डलाः ।
निश्चित्य मनसा बुद्ध्या देवी वव्रे स्वकं पतिम् ।।

महाभारत॥वनपर्व॥ अध्याय 123.

श्रीमद्भागवतकार ने 26 श्लोकों में इस कथा का वर्णन किया है । कथा की रूपरेखा पूर्णतः महाभारत के अनुसार है किन्तु उसे थोड़ा परिष्कृत रूप प्रदान कर दिया गया है । श्रीमद्भागवत्कार ने यह लिखा है कि च्यवन ऋषि अश्विनों से अपने को युवा बनाने की प्रार्थना करते हैं और बदले में सोमपान का अधिकारी बनाने का वचन देते हैं । तब वैद्यशिरोमणि अश्विनीकुमारों ने च्यवन का अभिनन्दन कर कहा, 'ठीक है' और उसके पश्चात् उनसे कहा कि यह सिद्धों के द्वारा बनाया हुआ कुण्ड है, आप इसमें स्नान कीजिए । कुण्ड में प्रवेश करने के अनन्तर वे अद्वितीय रूप सम्पन्न युवा के रूप में परिणत हो गये ।[1]

नीतिमञ्जरीकार ने भी च्यवन ऋषि के पुनर्यौवन प्राप्त करने की कथा का वर्णन किया है । परन्तु उनकी कथा पूर्ण रूप से ऋग्वेद की कथा पर आधारित है , जिसमें राजा शर्याति और सुकन्या का कोई उल्लेख नहीं किया गया है ।[2] इसी प्रकार कलि नामक राजा को भी पुनः युवा बनाकर पत्नी प्रदान

---

1. कस्यचित् त्वथ कालस्य नासत्यावाश्रमागतौ । तौ पूजयित्वा प्रोवाच वयो मे दत्तमीश्वरौ । ग्रहं ग्रहीष्ये सोमस्य यज्ञे वामप्यसोमपोः । क्रियतां मे वयोरूपं प्रमदानां यदीप्सितम् । बाढमित्यूचतुर्विप्रमभिनन्द्य भिषक्तमौ ।
निमज्जतां भवानस्मिन् ह्रदे सिद्धविनिर्मिते पुरुषास्त्रयः उत्तस्थुरपीच्या वनिताप्रियाः पद्मस्रजः कुण्डलिनस्तुल्यरूपाः सुवाससः ।

– श्रीमद्भागवत महापुराण ॥9/3/11-15॥

2. वलीपलितादिभिरूपेतो जीर्णांगः पुत्रादिभिः परित्यक्तश्च्यवनाख्य ऋषिः अश्विनौ तुष्टाव ॥स्तु॥ तावश्विनौ तस्मै ऋषये जरामपगमय्य पुनर्यौवनमकुरुतामिति । – नीतिमञ्जरी, पृष्ठ 82.

करने की कथा मिलती है । इस कथा का उल्लेख केवल ऋग्वेद[1] में ही प्राप्त होता है, अन्यत्र कहीं नहीं ।

ऋग्वेद में प्राप्त कथा के साथ ब्राह्मण और पुराणों में उपलब्ध कथाओं में पर्याप्त भेद परिलक्षित होने पर भी एक तथ्य सभी में समान है । विकास-क्रम की दीर्घ अवधि का भी उस तथ्य पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा । वह तथ्य है अश्विनों के द्वारा वृद्ध च्यवन ऋषि को किसी सरोवर के जल में स्नान करवाकर, युवा बना देना । यह बात ऋग्वेद से लेकर महाभारत तक की कथाओं में बराबर कही गई है । सम्भवतः यह आधुनिक जलचिकित्सा पद्धति (Hydropathy) का प्राचीन रूप रहा होगा, जिसका विकास अथर्ववेद में देखा जाता है । जल-चिकित्सा पद्धति में औषधियुक्त अथवा मन्त्रःपूत जल के द्वारा शरीर की जीर्णावस्था को दूर कर, दुर्बल शरीर में शक्ति का संचार करने का प्रयास प्राचीनकाल में किया जाता था । सम्भवतः च्यवन को पुनः युवा बनाने की कथा के द्वारा इसी प्रयास की ओर संकेत किया गया है । हॉपकिन्स महोदय का कथन है कि आधुनिक 'अमृतसर' को 'अमृतत्व का सरोवर' इसलिए कहा जाता था क्योंकि इस सरोवर में स्नान करके एक कुष्ठ रोगी स्वस्थ हो गया था । जब आज के युग में ऐसे विश्वास लोगों में विद्यमान है तो वृद्ध च्यवन को दिव्य सरोवर के जल में स्नान कराकर पुनः युवा बनाने की कथा को भी नकारा नहीं जासकता।

6. मस्तक का स्थानान्तरण

यह अश्विनों के उपचारजन्य कृत्यों में एक अनूठा प्रयास है । उन्होंने अथर्वा के पुत्र दध्यन्च के मस्तक को धड़ से अलग कर, उसमें अश्व का सिर जोड़कर

---

1. पुनः कलेरकृणुतं युवद् वयः । - ऋग्वेद ।।10/39/8।।

मधुविद्या ग्रहण की थी । पश्चात् पुनः दध्यञ्च के धड़ में उनका सिर जोड़ दिया । इस कथा का वर्णन ऋग्वेद के कतिपय स्थलों में हुआ है ।[1] यह कथा शतपथ ब्राह्मण में बड़े विस्तार के साथ वर्णित है और च्यवन की कथा के साथ जुड़ी हुई है । कथा का यह भाग पूर्णतया कर्मकाण्डीय है , यद्यपि इसका बीज ऋग्वेद से ही प्राप्त होता है । शतपथ ब्राह्मण में विष्णु के प्रसंग सोमयाग के प्रवर्ग्य नामक कृत्य का उल्लेख किया गया है । इस अत्यन्त रहस्य-मय यज्ञीय कृत्य को अपने निरतिशय महत्त्व के कारण 'यज्ञ का सिर' या मुख्य भाग कहा गया है । जब तक देवता इस कृत्य को नहीं जानते थे, तब तक वे मानो शिरोविहीन यज्ञ किया करते थे । दध्यङ् ऋषि इस प्रवर्ग्य या मधु विद्या को जानते थे । अश्विनों उस विद्या को जानने के लिए दध्यङ् के पास पहुँचे । इन्द्र ने दध्यङ् को यह विद्या अश्विनों को बताने का निषेध कर रखा था, नहीं तो वे दध्यङ् का सिर काट लेंगे । अश्विनों को जब यह पता लगा तो उन्होंने दध्यङ् की अनुमति से एक अश्व का सिर लाकर उनके धड़ पर जोड़ दिया और ऋषि से सारी मधुविद्या प्राप्त कर ली । जब इन्द्र ने दध्यङ्

---

1. आथर्वणायाश्विना दधीचेऽश्व्यं शिरः प्रत्यैरयतम् ।
   स वां मधु प्र वोचदृतायन्त्वाष्ट्रं यद्दस्रावपिकक्ष्यं वाम् ।।
   - ऋग्वेद ।1/117/22।

   युवं दधीचः मनः आ विवासथः, अथ शिरः प्रतिवाम् अश्व्यम वदत् ।
   - वही ।1/119/9।

   दध्यङ् ह यन्मध्वाथर्वणो, वामश्वस्य शीर्ष्णा प्र यदीमुवाच ।
   - वही ।1/116/12।

के अश्व सिर को काट डाला तो अश्विनों ने दध्यङ् का पहले वाला मानव सिर लाकर जोड़ दिया ।[1]

शतपथ ब्राह्मण के चतुर्दश काण्ड में आये बृहदारण्यक उपनिषद् में भी दध्यङ् द्वारा अश्वसिर से अश्विनों को प्रवर्ग्य की इस मधुविद्या को प्रदान करने का उल्लेख है ।[2] बृहद्देवता[3] में कथा ब्राह्मण के अनुसार ही वर्णित है ।

---

1. तद्ध हाश्विनोरनुश्रुतमास । दध्यङ्ङ् ह वा आथर्वण एतꣳ शुक्रमेतं यज्ञं वेद यथा - यथैतद्यज्ञस्य शिरः प्रतिधीयते यथैष कृत्स्नो यज्ञो भवति । स होवाच इन्द्रेण वाऽउक्तोऽस्म्येतं चेदन्यस्माऽनुब्रूयास्ततऽएव ते शिरश्छिन्द्यामिति तस्माद्वै बिभेमि यद्वै मे स शिरो न छिन्द्यान्न वामुपनेष्यऽइति । तौ होचतुः । आवां त्वा तस्मात्त्रास्यावहेऽइति कथं मा त्रास्येथेऽइति यदा नाऽउपनेष्यसेऽथ ते शिरश्छित्त्वाऽन्यत्रापनिधास्यावोऽथाश्वस्य शिरऽआहृत्य तत्ते प्रतिधा यावस्तेन नावनुवक्ष्यासि स यदा नावनुवक्ष्यस्यथ ते तदिन्द्रः शिरश्छेत्स्यत्यथ ते स्वꣳ शिरऽआहृत्य तत्ते प्रतिधा स्यावऽइति तथेति । तौ यदोपनिन्येऽथास्य शिरश्छित्त्वाऽन्यत्रापनिदधतुरथाश्वस्य शिरऽआहृत्य-तद्धास्य प्रतिदधतुस्तेन हाभ्यामनूवाच स यदाभ्यामनूवाचाकास्य तदिन्द्रः शिरश्चिच्छेदाथास्य स्वꣳ शिरऽआहृत्य तद्धास्य प्रतिदधतुः ।
   - शतपथ ब्राह्मण ।14/1/1/20-24।
2. इदं वै तन्मधु दध्यङ् आथर्वणो अश्विभ्यामुवाच तदेतद् ऋषिः पश्यन्नवोचद् आथर्वणाय अश्विना दधीचे अश्व्यं शिरः प्रत्यैरयतं ।
   - बृहदारण्यक उपनिषद ।2/5/16-18।
3. प्रादाद्ब्रह्मापि सुप्रीतः --------- न्यधत्तामस्य यच्छिरः ।
   - बृहद्देवता ।3/18-22।.

बृहद्देवताकार तथा नीतिमञ्जरीकार[1] ने भी कथा में कोई मौलिक परिवर्तन नहीं किया है ।

यह कथा भले ही चमत्कारजन्य प्रतीत हो रही हो तथापि इसके मूल में वैज्ञानिक तथ्य हैं इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता । आधुनिक पाश्चात्य चिकित्साविद् मस्तिष्क के स्थानान्तरण पर गम्भीरतापूर्वक गवेषणा कर रहे हैं । वह एक व्यक्ति के मस्तिष्क को किसी दूसरे व्यक्ति के मस्तिष्क के स्थान पर रखकर यह देख रहे हैं कि, मस्तिष्क के बदल जाने पर दूसरा व्यक्ति क्या उसी तरह कार्य करेगा, जैसा कि पहला व्यक्ति करता था, जिसका मस्तिष्क दूसरे व्यक्ति के मस्तिष्क के स्थान पर स्थानान्तरित किया गया है । अभी यह गवेषणा समाप्त नहीं हो पाई है और चिकित्साविद् किसी निर्णय पर नहीं पहुँच पाये हैं । हो सकता है भविष्य में यह प्रयास भी सफल हो जाय । अतः अश्विनों के द्वारा मस्तक के स्थानान्तरण की प्रक्रिया भी कुछ इसी प्रकार की स्थानान्तरण की प्रक्रिया की ओर संकेत कर रही है , जो उन दिनों केवल कल्पना मात्र ही रही होगी परन्तु आज उसे सत्य प्रमाणित करने के लिए निरन्तर प्रयास जारी है । अतः इस कथा को सर्वथा कपोल कल्पित और चामत्कारिक मानकर इसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए ।

अश्विनों के चिकित्सकीय कृत्यों से सम्बन्धित पुराकथाओं में केवल च्यवन को यौवन प्रदान करने की कथा और दध्यङ् के मस्तक के स्थानान्तरण की कथा के अतिरिक्त अन्य पुराकथाओं का विकास परवर्ती वैदिक साहित्य में

---

1. इन्द्रो दधीचो ---------- मानुषं शिरः प्रत्यधत्ताम् इति ।

— नीतिमञ्जरी, पृष्ठ 87.

नहीं देखा जाता । शेष उपचारजन्य पुराकथाओं का केवल ऋग्वेद तक ही सीमित रहना कुछ आश्चर्यजनक प्रतीत होता है , क्योंकि वैदिक देवताओं से सम्बन्धित अधिकांश कथाएं किसी न किसी रूप में यदि ब्राह्मण ग्रन्थों में नहीं तो कम से कम पौराणिक साहित्य में तो अवश्य ही वर्णित है । ऐसा प्रतीत होता है कि इन कथाओं में अधिकसंख्यक का कोई न कोई ऐतिहासिक आधार अवश्य है । अश्विनों का मनुष्यों के कल्याण एवं आरोग्य से विशेष सम्बन्ध होने के कारण कुछ असामान्य एवं चमत्कारी प्रतीत होने वाली घटनाओं को अश्विनों से सम्बन्धित कर लिया गया है । सत्य एवं ऐतिहासिक होने के कारण इनका प्राकृतिक दृश्यों पर आश्रित काल्पनिक कथाओं की भाँति मनमाना विकास नहीं हो सका है ।

----------::0::----------

पीड़ित जनोद्धारक के रूप में अश्विनीकुमार

ऋग्वेद में अश्विनीकुमार, एक विशिष्ट प्रकार के सहायता करने वाले देव माने गये हैं। वे कष्ट में पड़े लोगों का उद्धार करते हुए, ऋग्वेद में सर्वत्र वर्णित हैं। यह देवयुग्म अन्य देवों की अपेक्षा सर्वाधिक शीघ्रतापूर्वक सहायता करने वाले देवता माने गये हैं। सामान्य रूप से ये सभी प्रकार की विपत्तियों से मुक्त करने वाले हैं।[1] इस प्रकार की कृपाओं के लिए नित्य ही इनका स्तवन किया गया है। इन कथाओं में से कतिपय कथाओं का विकास ऋग्वेद के बाद एक दो ब्राह्मणों और संहिताओं में देखा जाता है। अन्यथा शेष कथाओं का कोई उल्लेख परवर्ती वैदिक साहित्य में नहीं मिलता। नीतिमञ्जरीकार धाद्विवेद ने ऋग्वेद की कथा के आधार पर समस्त सहायता कर्मों से सम्बन्धित कथाओं का वर्णन किया है, पर उनमें कोई मौलिक परिवर्तन दृष्टिगोचर नहीं होता है। इसी प्रकार एक दो कथायें बृहद्देवता में भी मिल जाती हैं। पीड़ित मानवों के उद्धार से सम्बन्धित अश्विनों की विभिन्न चमत्कार जन्य पुराकथाओं का उल्लेख इस प्रकार है -

भुज्यु की कथा

तुग्र नामक एक राजा थे जो अश्विनों के कृपापात्र थे। उन्होंने दूसरे द्वीप में निवास करने वाले अपने शत्रुओं के उत्पात से पीड़ित होकर उन पर विजय

---

1. धियः अवथः कर्मन्निष्टये, ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ।।
   - ऋग्वेद 1/112/2

   पृथुयामना सुवृता रथेन दस्राविमं शृणुतं श्लोकमद्रेः ।
   किमङ्ग वां प्रत्यवर्तिं गमिष्ठाहुर्विप्रासो अश्विना पुराजाः ।।
   - वही 1/118/3

प्राप्त करने के लिए अपने पुत्र भुज्यु को विशाल सेना के साथ नौका में भेज दिया। वह नौका के द्वारा समुद्र के मध्य पहुँचकर वायु के प्रचण्ड वेग के कारण भिन्न दिशा में पहुंच गया और अपनी सेना से भी बिछड़ गया । वह पानी में गिर-कर विशाल जल तरंगों के मध्य थपेड़े खाते हुए डूबने लगा । एक स्थान पर यह भी उल्लेख मिलता है कि लहरों के मध्य पड़े हुए भुज्यु ने आश्रय के लिए एक लकड़ी के लट्ठे को पकड़ लिया था । वह तीन दिन और तीन रात्रियों तक उसी दशा में पड़ा रहा । असहाय होकर उसने अश्विनों की स्तुति की । अश्विनों अपने विचार की भाँति वेगवान् और सुसन्नद्ध रथ पर आरूढ़ होकर, जो सौ पैरों तथा छः अश्वों से युक्त था[2], तत्क्षण भुज्यु के समीप आये और समुद्र से भुज्यु को सौ डाड़ों वाले जलयान में बैठाकर सेना सहित अपने पिता तुग्र

---

1. तुग्रो ह भुज्युमश्विनोदमेघे रयिं न कश्चिन्ममृवाँ अवाहाः ।
   तमूहथुर्नौभिरात्मन्वतीभिरन्तरिक्षप्रुद्भिरपोदकाभिः ।।

   - ऋग्वेद ।1/116/3।

   युवं तुग्राय पूर्व्येभिरेवैः पुनर्मन्यावभवतं युवाना ।
   युवं भुज्युमर्णसो निः समुद्राद्विभिरूहथुरृज्रेभिरश्वैः ।।

   - वही ।1/117/14।

2. तिस्रः क्षपस्त्रिरहातिव्रजद्भिर्नासत्या भुज्युमूहथुः पतङ्गैः ।
   समुद्रस्य धन्वन्नार्द्रस्य पारे त्रिभी रथैः शतपद्भिः षळश्वैः ।।

   - वही ।1/116/4।

के घर तक पहुँचा दिया ।[1] तैत्तिरीय ब्राह्मण में काम्यपशुयाजानुवाक्य के संदर्भ में यह कथा वर्णित है, जिसमें कहा गया है कि भुज्यु नामक किसी राजा को, जो समुद्र में निमग्न था, उसे अश्विनों श्रमरहित, भयरहित तथा शीघ्रगामी पक्षी विशेष के द्वारा तट पर ले आये थे ।[2] नीतिमञ्जरीकार[3] ने ऋग्वेद के अनुसार ही इस कथा का उल्लेख विस्तार से किया है ।

---

1. अनारम्भणे। तत्। अवीरयेथाम्। अनास्थाने। अग्रभणे। समुद्रे ।
   यत्। अश्विना। ऊहथुः। भुज्युम्। अस्तम्। शतारित्राम्। नावम्। आतस्थिवांसम् ।।
   - ऋग्वेद 1/116/5

   ता भुज्युं विभिरद्भ्यः समुद्रात्तुग्रस्य सूनुमूहथू रजोभिः ।
   अरेणुभिर्योजनेभिर्भुजन्ता पतत्रिभिरर्णसो निरुपस्थात् ।।
   - वही 6/62/6

   युवं भुज्युमवविद्धं समुद्र उदूहथुरर्णसो अस्त्रिधानैः ।
   पतत्रिभिरश्रमैरव्यथिभिर्दंसनाभिरश्विना पारयन्ता ।।
   - वही 7/69/7

2. युवं भुज्युमवविद्धँ समुद्रे उदूहथुरर्णसो अस्त्रिधानैः ।
   पतत्रिभिरश्रमैरव्यथिभिः । दँसनाभिरश्विना पारयन्ता ।।
   - तैत्तिरीय ब्राह्मण 2/8/7/57

3. तुग्रो नाम कश्चिदश्विनोः प्रियो राजर्षिः । स च द्वीपान्तरवर्तिभिः शत्रुभिरत्यन्तमुपद्रुतः सन् तेषां जयाय स्वपुत्रं भुज्युं सेनया सह नावा प्राहैषीत्। सा च नौर्मध्येसमुद्रमतिदूरं गत्वा वायुवशेन भिन्नाऽऽसीत् । तदानीं स भुज्युः शीघ्रमश्विनौ तुष्टाव । स्तुतौ च तौ सेनया सहितमात्मीयासु चतसृषु नौष्वारोप्य त्रिभी रथैः, षळश्वैः शतपद्भिः सह पितुस्तुग्रस्य समीपं त्रिभिरहोरात्रैः प्रापयामासतुरिति । - नीतिमञ्जरी, पृष्ठ सं0 71.

<u>रेभ की कथा</u>

जैसे भुज्यु को जल से बचाया था । उसी प्रकार रेभ नामक ऋषि का भी जल से उद्धार किया था । आक्रमकों के द्वारा आहत बँधे हुए, मृत समझे जाने के कारण परित्यक्त, दस रात्रियों तथा नौ दिनों तक जल में पड़े हुए रेभ को अश्विनों ने उसी प्रकार बाहर निकाला था जैसे स्रुव के द्वारा सोम बाहर निकाला जाता है । इस कथा का भी वर्णन ऋग्वेद[1] के बाद नीतिमञ्जरी[2] में मिलता है, अन्यत्र कहीं नहीं ।

बाल गंगाधर तिलक ने रेभ और भुज्यु की कथा में छिपे भौगोलिक तत्वों को ढूँढ निकालने का प्रयास किया है । उन्होंने इन कथाओं की व्याख्या भौगोलिक दृष्टिकोण से की है । उनका कथन है कि भुज्यु और रेभ की कथा, उत्तरी ध्रुव प्रदेश की भौगोलिक स्थिति की ओर संकेत करती है । तिलक महोदय के अनुसार भुज्यु और रेभ सूर्य के नाम हैं । भुज्यु तीन दिन और तीन रात तथा रेभ नौ दिन और दस रात पानी में रहे थे । शीत ऋतु में सूर्य दक्षिणायन की ओर अग्रसर होता हुआ मकर रेखा तक जाता है । इसके बाद फिर उत्तर को लौटता

---

1. याभी रेभं निवृतं सितमद्भ्य । - ऋग्वेद ॥1/112/5॥

   दश रात्रीः अशिवेन नव धून् अवनद्धं श्नथितम् अप्सु अन्तरिति ।
   विप्रुतं रेभम् उदनि प्रवृक्तम् उन् निन्यथुः सोमम् इव स्रुवेण ॥
   - वही ॥1/116/24॥

   अश्वं न गूळ्हमश्विना दुरेवैर्ऋषिं नरा वृषणा रेभमप्सु ।
   सं तं रिणीथो विप्रुतं दंसोभिर्न वां जूर्यन्ति पूर्व्या कृतानि ॥
   - वही ॥1/117/4॥

2. पुरा खलु रेभमृषिं पाशैर्बद्ध्वा असुराः कूपे कस्यचिद्दिवसस्य सायंकाले प्रचिक्षिपुः। स चाश्विनौ स्तुवन् दशरात्रिर्नवाहानि च कूपमध्ये तथैवावतस्थे । दशमेऽहनि प्रातरश्विनौ तं कूपादुदतारयताम् । - नीतिमञ्जरी, पृष्ठ 102.

है। परन्तु दक्षिण यात्रा के अन्त और उत्तर यात्रा के प्रारम्भ में उसकी गति ऐसी धीमी हो जाती है कि वह कुछ दिनों तक स्थिर सा प्रतीत होता है। पञ्चांग में भी उन दिनों दिनमान प्रायः एक सा ही रहता है। अतः तिलक महोदय के मतानुसार यह ध्रुव प्रदेश की स्थिति का सूचक है, क्योंकि वहाँ दिन और रात भिन्न लम्बाई के होते हैं। सूर्य अदृश्य होने पर अन्तरिक्ष के दिव्य जल में निमग्न रहता है। उसी के साथ उसका उद्धार होता है। भुज्यु और रेभ का जल में निमग्न रहना, सूर्य का अन्तरिक्षीय जल मे निमग्न रहने की भौगोलिक स्थिति का ही सूचक है।[1]

अत्रि की कथा

इन्होंने 'अत्रि सप्तवध्रि' पर भी कृपा की थी। ऋग्वेद में यह कथा इस प्रकार वर्णित है[2] - एक दैत्य की कुटिलता के फलस्वरूप अत्रि अपने साथियों सहित जलते हुए गड्ढे में गिर गये थे। उन्होंने अश्विनों की स्तुति की। अश्विनों ने इस ऋषि को शीतल और स्वास्थ्यकर पेय पिलाया, उसे अग्नि ज्वालाओं से बचाया और सम्पूर्ण साथियों सहित गड्ढे से बाहर निकाला। कतिपय विद्वानों ने 'सम्पूर्ण साथियों सहित' अर्थ ग्रहण न करके, 'सम्पूर्ण इन्द्रियों सहित' अर्थ ग्रहण किया है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि अश्विनों ने अत्रि को बिना किसी शारीरिक क्षति के पूर्णतया स्वस्थ रूप से ऊपर उठाया।

---

1. ऋग्वेद पर एक ऐतिहासिक दृष्टि (तिलक का उद्धरण) - पं० विश्वेश्वर नाथ रेऊ

2. हिमेनं अग्निं घ्रंसम् अवारयेथां पितुमतीम् ऊर्जम् अस्मै अधत्तम्।
ऋबीसे अत्रिम् अश्विना अवनीतम् उत् निन्यथुः सर्वगणं स्वस्ति॥

- ऋग्वेद 1/116/8

ऋषिं नरावंहसः पाञ्चजन्यमृबीसादत्रिं मुञ्चथो गणेन।
भिनन्ता दस्योरशिवस्य माया अनुपूर्वं वृषणा चोदयन्ता॥

- वही 1/117/3

ऋग्वेद 5/78/4

वही 10/39/9.

नीतिमञ्जरीकार[1] ने बिना किसी मौलिक परिवर्तन के ऋग्वेद के आधार पर ही कथा का वर्णन किया है किन्तु तिलक महोदय[2] ने स्वतन्त्र रूप से इस कथा की व्याख्या की है। उनका कथन है कि अत्रि सूर्य का प्रतीक है। वह सप्त-रश्मि, सप्तवध्री या सप्ताश्व है। वह (ध्रुव प्रदेश पर) 10 मास गर्भ (प्रकाश) में रहता है और गर्भ से निकलते ही निर्ऋति की गोद में चला जाता है। अदृश्य हो जाता है। यह 10 महीने दिन और 2 महीने रात वाले ध्रुव प्रदेश का दृश्य है जो अत्रि की कथा के माध्यम से प्रस्फुटित हो रहा है। अत्रि का गढे में गिरना सूर्य के निर्ऋति की गोद में जाने का संकेत है। पृथ्वी और आकाश के बीच की माँ की कोख में सूर्य रूपी गर्भ रहता है और गर्भ से निकलने पर वह (सूर्य) अदृश्य हो जाता है।

तिलक के विरोधी विद्वानों का वक्तव्य है कि अत्रि की कथा का ध्रुव प्रदेश से सम्बन्ध नहीं जोड़ा जा सकता क्योंकि ऐसा मानने से दो कठिनतायें उत्पन्न हो सकती है। पहला तो यह कि ध्रुव प्रदेश में 10 महीने का दिन नहीं होता। प्रातःकाल और संध्याकाल भी इसी में आते हैं। दूसरी कठिनाई यह है कि क्या सूर्य 10 महीने प्रकाशित रहकर स्वयं ही गर्भ से छुटकारा पाना (अँधेरे में जाना) चाहता है? वेदों में सूर्य के लिए अँधेरे को बन्धन कहा है।

---

1. अत्रिम् ऋषिम् असुराः शतद्वारपीडायन्त्रगृहे प्रवेश्य तुषाग्निम् अबाधिषत। तदानी तेन ऋषिणास्तुतावश्विनौ अग्निमुदके पशमय्य तस्मात्पीडायन्त्रगृहात् अविकलेन्द्रियवर्गं सन्तं निरगमयतामिति।

   – नीतिमञ्जरी, पृष्ठ संख्या 77.

2. ऋग्वेद पर एक ऐतिहासिक दृष्टि – (तिलक का उद्धरण)-

   पं० विश्वेश्वर नाथ रेऊ

अत्रि की कथा की व्याख्या वर्षा ऋतु के परिप्रेक्ष्य में की जा सकती है । दस महीने तक वर्षा की प्रतीक्षा की गई । दशग्वों का दस महीने का यज्ञ समाप्त हुआ । वर्षा ऋतु में बादल आये और सूर्य को ढक लिया । अत्रि का गड्ढे में गिरने का तात्पर्य सूर्य के ढक जाने, दिखलाई न पड़ने से है । तप्त कारागृह, वर्षा के अभाव में होने वाले उमस का प्रतीक है क्योंकि उसमें ताप रहता है, ज्वाला नहीं रहती । ऐसे समय में अत्रि रूपी सूर्य अश्विनों से प्रार्थना करता है कि 10 मास से गर्भ में रही वर्षा को बाहर करो (बरसाओ) । वर्षा हो जाने से मेघ छट जायेंगे और सूर्य (अत्रि) स्वयं प्रकट हो जायगा । अश्विनों के द्वारा तप्त कारागृह को शीतल करने का तात्पर्य वर्षा कराने से है । वर्षा से उमस समाप्त हो गया, चारों तरफ शीतलता छा गई, तब अत्रि रूपी सूर्य मुक्त हो गया ।

<u>वन्दन ऋषि की कथा</u>

वन्दन नामक ऋषि कूप में गिर पड़े थे । मृतप्राय होकर कूप से बाहर आने में असमर्थ होने के कारण उन्होंने अश्विनों की स्तुति की । अश्विनों ने उन्हें कूप से बाहर निकालकर, सूर्य के प्रकाश में पहुँचा दिया ।[1]

---

1. उद्वन्दनमैरयतं स्वर्दृशे - ऋग्वेद (1/112/5)

   यत् विद्वांसा निधिम् इव अपगूळ्हम्, उत् दर्शतात् ऊपथुः वन्दनाय ।

   - वही (1/116/11)

   युवं वन्दनं निर्ऋतं जरण्यया रथं न दस्रा करणा समिन्वथः ।-वही (1/119/8)

   सुषुप्वांसं न निर्ऋतेरुपस्थे सूर्यं न दस्रा तमसि क्षियन्तम् ।
   शुभे रुक्मं न दर्शतं निखातमुदूपथुरश्विना वन्दनाय ।।

   - वही (1/117/5)

   वन्दनो नाम कश्चिदृषिः दैत्याश्रमं गत्वा कंचित्कालं स्थितः। कस्मिंश्चिद्दिवसे तैः कूपे निपातितः उत्तरीतुमशक्नुवन् अश्विनावस्तौत् । तमश्विनौ कूपादुन्निन्यतुरिति । - नीतिमञ्जरी, पृष्ठ संख्या 85.

गोतम की कथा

मरुस्थल में स्थित गोतम ऋषि की तृष्णा को दूर करने के लिए अश्विनों के द्वारा कूप के सतह को ऊपर उठाने और कूप के द्वार को तिरछा करने की कथा ऋग्वेद[1] के केवल एक ही मन्त्र में उल्लिखित है। इसके पश्चात् नीतिमञ्जरीकार[2] ने इस कथा का उल्लेख किया है। उन्होंने इस कथा में एक बात और जोड़ दी है कि, अश्विनों ने दूसरे स्थान में स्थित कूप का स्थानान्तरण भी किया था, क्योंकि विस्तृत मरुस्थल में कोई कूप न था और गोतम तृषित थे।

शर की कथा

गोतम की भाँति ही ऋचत्क के पुत्र शर की पिपासा को दूर करने के लिए अश्विनों ने कूप के सतह को ऊपर उठाकर जल को ऊपर ला दिया, जिसे पीकर शर की तृष्णा दूर हुई। इस कथा का भी उल्लेख ऋग्वेद[3] के केवल एक ही मन्त्र में हुआ है। इसके पश्चात नीतिमञ्जरी[4] में इसका वर्णन मिलता है।

---

1. परा अवतं नासत्या अनुदेथाम् उच्चाबुध्नं चक्रथुः जिह्मबारम्।
   क्षरन् आपः न पायनाय राये सहस्राय तृष्यते गोतमस्य ।।
   - ऋग्वेद 1/116/9

2. कदा चिन्मरुभूमौ वर्तमानस्य स्तोतुर्गोतमस्य ऋषेः समीपं देशान्तरे वर्तमानं कूपमुत्खाय अश्विनौ प्रापयेतां प्रापय्य च कूपं स्नानपानादिलौक्यार्थं उपरिमूलमधोबिलमवस्थापयताम्। - नीतिमञ्जरी, पृष्ठ संख्या 80.

3. शरस्य चित् आर्चत्कस्य अवतात् आ नीचात् उच्चा चक्रथुः पातवे वारिति वाः।।
   - ऋग्वेद 1/116/22

4. युवाम् ऋचत्कपुत्रस्य शरस्य चिद् एतत् पिपासितस्य पातवे नीचीनाद् कूपाद् उच्चैः उपरिष्टाद् वाः उदकम् आचक्रथुः आभिमुख्येन कृतवन्तौ।
   - नीतिमञ्जरी, पृष्ठ संख्या 100.

जाहुष की कथा

जाहुष नामक राजा शत्रुओं से घिर गया था । अश्विनों उसे अपने सर्व-भेदी रथ में बिठाकर पर्वतों का भेदन कर, रात्रि के समय ही शत्रुसेना के बाहर ले गये थे ।[1]

वर्तिका की कथा

एक बार वर्तिका (एक पक्षी विशेष) को वृक ने आहारार्थ अपने जबड़ों में जकड़ लिया था । असहाय होकर उसने अश्विनों की सहायता के लिए प्रार्थना की । अश्विनों ने उसे वृक के जबड़ों से मुक्त करवाकर प्राणदान दिया ।[2] इस

---

1. परिविष्टं जाहुषं विश्वतः सीं सुगेभिः नक्तम् ऊहथुः रजोभिः ।
   विभिन्दुना नासत्या रथेन वि पर्वतान् अजरयु अयातम् ॥
   - ऋग्वेद (1/116/20)

   निरंहसस्तमसः स्पर्तमत्रिं नि जाहुषं शिथिरे धातमन्तः-वही (7/71/5)

   हे नासत्या जाहुषो नाम कश्चिद् राजा तं सर्वतः परिविष्टं शत्रुभिः परिवृतं राजानं नक्तं सुगेभिः रञ्जकैः मार्गैः विशेषेण सर्वस्य भेदकेन आत्मीयेन रथेन ऊहथुः। तस्माच्छत्रुसमूहान्निरगमयतम् । नित्यतरुणौ तेन सह पर्वतान् शत्रुभिरारोढुमशक्यान् शिलोच्चयान् व्ययातं विशेषेणागच्छतम् ।
   - नीतिमञ्जरी, पृष्ठ 99.

2. आस्नः वृकस्य वर्तिकाम् अभीके युवं नरा नासत्या अमुमुक्तम् ।
   - ऋग्वेद (1/116/14)

   अजोहवीदश्विना वर्तिका वामास्नो यत्सीममुञ्चतं वृकस्य ।
   - वही (1/117/16)

   याभिर्वर्तिकां ग्रसिताममुञ्चतं - वही (1/112/8)

   वर्तिका चटकसदृशस्य पक्षिणः स्त्री ताम् अरण्ये वर्तमानेन शुना ग्रस्ताम् अश्विनाव अमोचयतम् । - नीतिमञ्जरी, पृष्ठ 92.

कथा से यह स्पष्ट हो जाता है कि अश्विनौ केवल मानवों की ही नहीं, पशु पक्षियों की भी सहायता किया करते थे । निरुक्तकार यास्क ने इस कथा की नवीन ढंग से व्याख्या की है । उन्होंने वर्तिका को उषा तथा वृक को सूर्य का प्रतीक माना है । सूर्य के द्वारा अभिग्रस्त उषा ने अपनी रक्षा हेतु अश्वि-नीकुमारों का आह्वान किया और उन्होंने उषा को सूर्य से मुक्त कराया ।[1] इस प्रकार यास्क ने इस कथा के मध्य छिपे हुए प्रातःकाल की उस स्थिति की ओर संकेत किया है जब उषा के बाद सूर्योदय होता है और धीरे-धीरे सूर्य का प्रखर तेज उषा को भी अपने में समेट लेता है ।

इन्द्र की सहायता

शुक्ल यजुर्वेद की वाजसनेयी संहिता[2] के एक सूक्त में, जहाँ अश्विनौ की स्तुति सरस्वती के साथ की गई है । उसी के कतिपय मन्त्रों में तथा तैत्ति-रीय ब्राह्मण के कर्मकाण्डीय प्रसंगों में अनेक बार इस कथा का उल्लेख किया गया

---

1. आह्वयदुषा अश्विनावादित्येनाभिग्रस्ता तामश्विनौ प्रामुमुचतुरित्याख्यानम्।
   - निरुक्त ।5/4/65।

2. यमश्विना नमुचेरासुरादधि सरस्वत्यसुनोदिन्द्रियाय ।
   इमन्तꣳ शुक्रम्मधुमन्तमिन्दुꣳ सोमꣳ राजानमिह भक्षयामि ।।
   - शुक्ल यजुर्वेद ।19/34।

   अश्विना नमुचेः सुतꣳ सोमꣳ शुक्रं परिस्रुता ।
   सरस्वती तमाभरद् बर्हिषेन्द्राय पातवे ।।
   - वही ।20/59।

   यमश्विना सरस्वती हविषेन्द्रमवर्द्धयन् ।
   स बिभेद बलं मघं नमुचावासुरे सचा ।।
   - वही ।20/68।

है । कथा में कहा गया है कि नमुचि नामक असुर के साथ जब इन्द्र ने युद्ध किया था तब इन्द्र के बल को वर्धित करने के लिए अश्विनों ने नमुचि के पास विद्यमान शुद्ध, माधुर्ययुक्त, आह्लादक, परमैश्वर्यप्रद, बलवर्धक सोम का आहरण किया था । सरस्वती देवी ने उस सोम को इन्द्र तक पहुँचाया और उस बल-वर्धक सोम का पान कर अश्विनों में जिस बल का संचार हुआ, उसी पराक्रम के द्वारा उन्होंने नमुचि का वध किया । इस प्रकार अश्विनों की सहायता से इन्द्र नमुचि का वध करने में सक्षम हुए । तैत्तिरीय ब्राह्मण[1] में सौत्रामणि यज्ञ के ग्रहहोम, प्रयाजयाज्य आप्रिय तथा पशुत्रय वपादीनां याज्यानुवाक्य के संदर्भ में इस कथा का उल्लेख मिलता है । इस कथा का कोई उल्लेख ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में नहीं मिलता और न ही परवर्ती पौराणिक साहित्य में कोई उल्लेख हुआ है ।

पीड़ित व्यक्तियों की सहायता से सम्बन्धित पुराकथाओं में केवल भुज्यु और वर्तिका की कथा का उल्लेख परवर्तीकालीन वैदिक साहित्य में हुआ है ।

---

1. यमश्विना नमुचेरासुरादधि सरस्वत्यसनोदिन्द्रियाय ।

- तैत्तिरीय ब्राह्मण ।2/6/3/9।

अश्विना नमुचेस्सुतम् । सोमꣳ शुक्रं परिस्नुता । सरस्वती तमाभरत् । बर्हिषेन्द्राय पातवे । - वही ।2/6/12/6।

मघमिन्द्राय जभ्रिरे । यमश्विना सरस्वती । हविषेन्द्रमवर्धयन् । स बिभेद बलं मघम् । नमुचावासुरे सचा । तमिन्द्रं परावत्सचा । अश्विनोभा सरस्वती ।

- वही ।2/6/13/6।

अन्यथा अन्य किसी कथा का विकास परवर्ती वैदिक साहित्यों में नहीं देखा जाता । पीड़ित जनों के उद्धार से सम्बन्धित कथाओं का केवल ऋग्वेद तक ही सीमित रह जाना आश्चर्यजनक प्रतीत होता है । इन्द्र की सहायता से सम्बन्धित कथा ऋग्वेद में कहीं नहीं वर्णित है । परवर्ती साहित्य में केवल तैत्तिरीय ब्राह्मण के अतिरिक्त यह कथा और कहीं भी नहीं मिलती । सम्भवतः यह कोई सच्ची ऐतिहासिक घटना रही होगी इसलिए परवर्ती साहित्य में इसका मनमाना विकास न हो सका ।

------------::0::------------

उदार दाता के रूप में अश्विनीकुमार

पीड़ित जनों की सहायता करने के साथ ही साथ अपने स्तोताओं को दान देने वाले उदारदाता के रूप में भी अश्विनों की प्रख्याति कुछ कम नहीं है। अपने स्तोताओं को धन, बल, बुद्धि तथा अन्य अभीप्सित वस्तुएं प्रदान करते हुए ऋग्वेद में सर्वत्र वर्णित हैं। इनकी दानशीलता से सम्बन्धित अनेक पुराकथायें ऋग्वेद तथा नीतिमञ्जरी में विस्तार के साथ वर्णित है -

कक्षीवान् की कथा

पज्र कुलोत्पन्न कक्षीवान् ने ज्ञानार्थ अश्विनों की स्तुति की। उसकी स्तुति से तुष्ट होकर अश्विनों ने न केवल उसे प्रभूत बुद्धि सम्पन्न किया अपितु, उसके लिए सौ पात्रों के बराबर 'सुरा' अथवा 'मधु' को, एक बलिष्ठ अश्व के खुर के समान निर्मित 'कारोतर' नामक पात्रविशेष से उसी प्रकार प्रवाहित किया जैसे छन्ने से जल प्रवाहित होता है।[1]

---

1. युवं नरा स्तुवते पज्रियाय कक्षीवते अरदतं पुरन्धिम्।
   कारोतरात् शफात् अश्वस्य वृष्णः शतं कुम्भान् असिञ्चतं सुरायाः।।

   - ऋग्वेद 1/116/7

   तद्वां नरा शंस्यं पज्रियेण कक्षीवता नासत्या परिज्मन्।
   शफादश्वस्य वाजिनो जनाय शतं कुम्भाँ असिञ्चतं मधूनाम्।। - वही 1/117/6

   कक्षीवान् पुरा तमसा तिरोहितज्ञानः सन् ज्ञानार्थमश्विनावाजुहाव तस्मै अश्विनौ प्रभूतां धियं दत्तवन्तौ। अपि च कारोतरो नाम वैदलचर्म-वेष्टितो भाजनविशेषः तस्मिन्सुरायाः स्रावो क्रियते। सुरायाः स्रावकाः कारोतरात् यथा सुरां स्रावयन्ति एवमेव युवां वृष्णः सेचनसमर्थस्य युष्म-दीयस्याश्वस्य शफात् खुरात् सुरायाः शतकुम्भान् असंख्यातान् सुराघटान् अक्षारयतम्।

   - नीतिमञ्जरी, पृष्ठ सं0 76.

पैद्व की कथा

अश्विनों ने पैद्व नामक व्यक्ति को इन्द्र द्वारा प्रेरित एक क्षिप्र, बलिष्ठ, श्वेत, अतुलनीय और दैत्यों का वध करने वाला अश्व प्रदान किया, जिसकी सहायता से वह अनेक युद्धों में विजेता हो सके ।[1]

विमद की कथा

अश्विनों युवा 'विमद' के लिए अपने रथ पर बिठाकर पत्नी लाये थे , जिसका नाम 'कमद्यू' था । यह स्त्री 'पुरुमित्र' की सुन्दरी प्रेयसी प्रतीत होती है । इस प्रकार विमद को पत्नी प्रदान कर उसे विवाहित बना दिया।[2]

---

1. यम् अश्विना ददथुः श्वेतम् अश्वम् अघाश्वाय शश्वत् इत् स्वस्ति ।
   तत् वां दात्रमहि कीर्तेन्यं भूत् पैद्वः वाजी सदम् इत् हव्यः अर्यः ।।
   — ऋग्वेद ।1/116/6।

   पुरु वर्पांस्यश्विना दधाना नि पेदव ऊहथुराशुमश्वम् ।
   सहस्रसां वाजिनमप्रतीतमहिहनं श्रवस्य १ तरुत्रम् ।। —वही ।1/117/9।

   युवं पेदवे पुरुवारमश्विना स्पृधां श्वेतं तरुतारं दुवस्यथः ।
   शर्यैरभिद्युं पृतनासु दुष्टरं चर्कृत्यमिन्द्रमिव चर्षणीसहम् ।।—वही।1/119/10।

   पैद्वनामि कश्चित्तोऽश्विनौ तुष्टाव । तस्मै प्रीतौ कंचित् श्वेत [वर्ण] मश्वं दत्तवन्तौ । स चाश्वः प्रौढं जयं चकारेतिएतदत्र प्रतिपाद्यते ।
   — नीतिमञ्जरी, पृष्ठ 73.

2. यौ अर्भाय विमदाय जायां सेनाजुवा न्यूहथुः रथेन ।।—ऋग्वेद ।1/116/1।
   युवं शचीभिर्विमदाय जायां न्यूहथुः पुरुमित्रस्य योषाम् ।।—वही ।1/117/20।
   ऋग्वेद — 10/39/7
   वही — 10/65/12

   यौ अश्विनौ तरुणाय विमदाय [भार्ये] जायां स्वकीयेन रथेन न्यूहथुः तदीयं गृहं प्रापयामासतुः ।
   — नीतिमञ्जरी, पृष्ठ सं0 69.

शयु की कथा

शयु की एक गाय निवृत्तप्रसवा होकर दूध देना बन्द कर चुकी थी । अश्विनों ने उस वन्ध्या गाय को दुग्ध से पूरित कर दिया और उस दुग्ध से सिञ्चित गाय को पुनः शयु को प्रदान किया ।[1]

वध्रिमती की कथा

वध्रिमती नामक किसी राजा की पुत्री का पति नपुंसक था । पुत्र प्राप्ति की अभिलाषा से उसने अश्विनों की स्तुति की । अश्विनों ने उसे हिरण्यहस्त नामक पुत्र प्रदान कर उसकी मनोकामना पूर्ण की ।[2] तिलक महोदय इस कथा की व्याख्या प्राकृतिक दृष्टिकोण से करते हुए कहते हैं कि - वेदों में

---

1. शयवे चित् नासत्या शचीभिः जसुरये स्तर्यं पिप्यथुः गाम् - ऋग्वेद ।।/।।6/22।

   अधेनुं दस्रा स्तर्यं विषक्तामपिन्वतं शयवे अश्विना गाम् ।।-
   - वही ।।/।।7/20।

   युष्मदीयैः कर्मभिः श्रान्ताय शयुनाम्ने ऋषये निवृत्तप्रसवां स्तरीः गाम् अग्निहोत्रार्थं दोग्ध्रीं पयसाऽऽपूरितवन्तौ । - नीतिमञ्जरी, पृष्ठ सं0 101.

2. श्रुतं तद् शासुरिव वध्रिमत्या हिरण्यहस्तमश्विनौ अदत्तम् ।।
   - ऋग्वेद ।।/।।6/13।

   हिरण्यहस्तमश्विना रराणा पुत्रं नरा वध्रिमत्या अदत्तम् ।
   त्रिधा ह श्यावमश्विना विकस्तमुज्जीवस ऐरयतं सुदानू ।।
   - वही ।।/।।7/24।

   वध्रिमती नाम्नी कस्यचिद्राजर्षेः पुत्री सा नपुंसकभर्तृका पुत्रलाभायाश्विनाजुहाव । तदाह्वानं श्रुत्वाऽश्विनावागत्य तस्यै हिरण्यहस्ताख्यं पुत्रं ददतुः ।

   - नीतिमञ्जरी, पृष्ठ सं0 90.

उषा को सूर्य की पत्नी और माता दोनों कहा है । अतः उषा (वध्रिमती) वर्षा और अँधेरे के कारण अपने पति सूर्य से दूर हो जाती है । इससे उस समय उसका पति (सूर्य) नपुंसक के समान है परन्तु अन्त में अश्विनों की कृपा से उसे (उषा को) हिरण्यहस्त (सूर्य) रूपी पुत्र मिलता है । ऋग्वेद में सूर्य को हिरण्य-पाणि कहा है (यहाँ पर हस्त और पाणि किरणवाची ही हैं) ।[1]

विश्वक की कथा

अश्विनों के एक स्तोता कृष्ण का पुत्र विष्णाप्व लुप्त हो गया था । कृष्ण एक ऋषि थे, जिनका विश्वक नाम भी मिलता है । वह सदा सरल मार्ग पर चलने वाले तथा अश्विनों के भक्त थे । उनके खोये हुए पुत्र विष्णाप्व को लाकर पिता विश्वक के सामने इस प्रकार प्रस्तुत किया, जैसे कोई खोया हुआ पशु अचानक अपने स्वामी के सामने आ जाता है ।[2]

---

1. ऋग्वेद पर एक ऐतिहासिक दृष्टि - पं० विश्वेश्वरनाथ रेऊ ।

2. अवस्यते स्तुवते कृष्णियाय ऋजूयते नासत्या शचीभिः ।
   पशुं न नष्टमिव दर्शनाय विष्णाप्वं ददथुः विश्वकाय ।।
   - ऋग्वेद (1/116/23)

   युवं नरा स्तुवते कृष्णियाय विष्णाप्वं, ददथुर्विश्वकाय ।
   घोषायै चित्पितृषदे दुरोणे पतिं जूर्यन्त्या अश्विनावदत्तम् ।।
   - वही (1/117/7)

   स्तुतिं कुर्वते कृष्णियाय आर्जवमिच्छते विश्वकाय एतत्संज्ञकाय ऋषये आत्मीयैः कर्मभिः विष्णाप्वनामानं पुत्रं दर्शनार्थं ददथुः, यथा कश्चिद्विनष्टं पशुं स्वामिनो दृष्टिपथं प्रापयति तद्वत् । - नीतिमञ्जरी, पृष्ठ सं० 101.

अश्विनों की दानशीलता से सम्बन्धित कोई भी कथा ऐसी नहीं है, जिसका विकास परवर्ती वैदिक साहित्य में हुआ हो । केवल वैद्यक कर्मों से सम्बन्धित कतिपय कथाओं को छोड़कर अन्य कोई कथा न तो ब्राह्मणों में प्राप्त होती है और न ही पुराणों में । जबकि वैदिक देवों से सम्बन्धित अधिकांश कथाएँ किसी न किसी रूप में यदि ब्राह्मण ग्रन्थों में नहीं, तो कम से कम पौराणिक साहित्य में तो अवश्य ही उल्लिखित की गई है । सम्भवतः ये चमत्कारी प्रतीत होने वाली कथायें, जो अश्विनों से सम्बन्धित है, सत्य और ऐतिहासिक है । इसलिए इनका मनमाना विकास सम्भव नहीं हो सका है ।

----------::0::----------

अश्विनीकुमार और पाश्चात्य देवयुग्म

भारोपीय काल में अश्विनों के अस्तित्व को प्रमाणित करने के लिए हमारे पास कोई भाषावैज्ञानिक प्रमाण तो नहीं है किन्तु वैदिक 'अश्विनों', ग्रीक 'दिओस्कौरोई' तथा लैटिश 'ईश्वरपुत्रों' के स्वरूप में इतना घनिष्ट साम्य है कि उन्हें हम केवल संयोग कह कर उपेक्षित नहीं कर सकते। तीनों देवयुग्मों का स्वरूप साम्य यह मानने को बाध्य करता है कि इन देवयुग्मों का भारोपीय काल में अवश्य ही किसी न किसी रूप में अस्तित्व रहा होगा किन्तु धीरे-धीरे विकास क्रम से उसने विभिन्न धर्मों के देवशास्त्र में विभिन्न नाम तथा रूप धारण किये।

अश्विनों की बहुप्रयुक्त उपाधि 'नासत्या' [ना - स - अत - ति - या - अन्ना] का उल्लेख एशिया माइनर [तुर्की] के बोगाज़क्युई नामक स्थान में मिले मृत्फलक पर प्राप्त होता है। यह फलक 14वीं शताब्दी ई0पू0 का है। संभवतः ईरानी काल से पूर्व का है , क्योंकि संस्कृत का दन्त्य स् प्राचीन फारसी में [अवेस्ता में भी] निरपवाद रूप से ह् में परिवर्तित हो जाता है। यहाँ नासत्या शब्द में स् अपने मूल रूप में सुरक्षित है। इससे प्रतीत होता है कि उस समय तक यह वर्ण परिवर्तन नहीं हुआ था।

वैदिक अश्विनों को दो सुन्दर युवकों के रूप में चित्रित किया गया है। वे चतुर अश्वारोही हैं। कष्ट में पड़े हुए व्यक्तियों की रक्षा के लिए वे तत्क्षण जाते हैं। उषा उनकी बहन अथवा कहीं कहीं पत्नी के रूप में वर्णित है। उन्हें द्यौ का पुत्र [दिवो नपाता] भी कहा गया है।

ठीक इसी प्रकार ग्रीक देवशास्त्र में दिओस्कौरोई (Διόσκουροι) की कल्पना दो सुन्दर तथा स्वस्थ नवयुवकों के रूप में की गई है। उनके नाम 'कैस्टर' (Caster) तथा 'पोलक्स' (Pollux) है। ये 'ज्यैउस्' के पुत्र हैं। 'हैलेना' [उषा, हेलियोस् = सूर्य] उनकी बहन है। संकट के समय वे सुन्दर अश्वों

पर सवार होकर अपनी कृपापात्र सेना की सहायता करने आते हैं। अश्विनों की भाँति उनका भी कष्ट में पड़े हुए मनुष्यों की रक्षा के लिए आह्वान किया जाता है। उनका एक 'अनक्तेस्' भी है जिसका अर्थ रक्षक होता है।

लैटिश देवशास्त्र में भी अश्विनों से समानता रखने वाले युगल 'ईश्वर-पुत्रों' का उल्लेख मिलता है। वे भी सदा युग्म रूप में रहते हैं। उन्हें भूरे रंग के अश्वों[1] पर आरूढ़ चित्रित किया गया है। अश्विनों की भाँति वे भी सूर्य की पुत्री से विवाह करते हैं। ईश्वरपुत्रों के सूर्य की पुत्री से विवाह करने की कथा लैटिश लोकगीतों का प्रिय विषय है।[2]

अवेस्ता[3] में 'नाओङ्हैश्या' नामक दस्यु का उल्लेख आया है, जिसका साम्य 'तरोमत्' (Tarōmat) के साथ पाया जाता है। नाओङ्हैश्या का प्रधान कार्य अव्यवस्था उत्पन्न करना है , जिसे 'स्पेन्डरमत्'(Spendarmat) ने परास्त किया था। अवेस्तन् दस्यु 'नाओङ्हैश्या' और संस्कृत देवयुगल अश्विनों की बहुप्रयुक्त उपाधि 'नासत्या' शब्द में साम्य है। बोगाज़क्यूई के कूटफलक पर नासत्या और नाओङ्हैश्या का उल्लेख 'ना - स - अत - ति - या - अन्ना' के रूप में हुआ है। यह तो स्पष्ट है कि भारतीय और ईरानी दोनों नाम एक ही है, पर वे दोनों एक ही दिव्य शक्ति के बोधक है अथवा नहीं, इस विषय में सन्देह है। अवेस्ता में प्राप्त वर्णनों के आधार पर

---

1. ए०रि०ई० 12वाँ भाग, पृष्ठ 102 ब

2. वही तथा देशमुख : ओरिजिन० पृष्ठ 115.

3. Zend - X/9/10.

यह विदित होता है कि 'नाओङ्हैथ्या' की 'स्पेन्डरमत्' के साथ शत्रुता थी। ग्रे महोदय[1] का विचार है कि 'नाओङ्हैथ्या' और 'नासत्या' ये दोनों ही उपाधियाँ, दो भिन्न-भिन्न देवताओं की है। इनमें से एक (नाओङ्हैथ्या) मनुष्य को मिट्टी में मिला देता है अर्थात् मृत्यु का प्रतीक है। यह विनाश का देवता है और दूसरा (नासत्या) जीवन दाता है। दोनों ही स्थितियों में ये शब्द (नाओङ्हैथ्या और नासत्या) एक दैवी उपाधि ही है परन्तु 'नाओङ्हैथ्या' का सम्बन्ध विनाश से होने के कारण इन्हें दैत्य के रूप में जाना गया है।

भारतीय देवयुगल अश्विनों का ईरानी देवशास्त्र में दस्यु के रूप में सम्बोधित किये जाने का एक कारण, दोनों आर्य जातियों का पारस्परिक विरोध भी हो सकता है। भारतीय देवताओं को ईरानी देवशास्त्र में दस्यु कहा जाता है। आर्यों के प्रधान देवता इन्द्र का अवेस्ता में दस्यु के नाम से उल्लिखित होना ही इसका प्रमाण है। इसके आधार पर हम यह मान सकते हैं कि भारतीय देव 'नासत्या' और ईरानी दस्यु 'नाओङ्हैथ्या' में कोई अन्तर नहीं है।

इस प्रकार इन युगल देवों की पारस्परिक समान विशेषतायें भी सूचित करती है कि भारोपीय काल में उनकी कल्पना के बीज अवश्य वर्तमान थे, जो भारतीय, ग्रीक, लैटस तथा ईरानी (और सम्भवतः ट्यूटानिक) आदि जातियों में जाकर पल्लवित हुए।[2] अवेस्ता में प्राप्त 'नाओङ्हैथ्या' नामक दस्यु, 'नासत्या' का ही अपकृष्ट रूप है। अतः यह प्रतीत होता है कि नासत्या शब्द अवेस्ता की रचना तथा जरथुस्त्र के धर्म के उदय से बहुत पहले का है।

---

1. H. Gray - The Foundations.
2. ह0की0 ग्रिसवोल्ड : रिलीजन आफ दि ऋग्वेद, पृष्ठ 255.

तृतीय अध्याय

अश्विनीकुमारों का अलौकिक स्वरूप

प्रस्तुत अध्याय में, विचार की स्थिरता, रचना की संगति तथा रूप-रेखा की उस सुबोध स्पष्टता और निश्चयात्मकता की दिशा में प्रकाश डाला गया है, जो हमारी विचारशीलता को अश्विनों के अलौकिक स्वरूप की व्याख्या की ओर ले जाती है । अश्विनों से सम्बन्धित विभिन्न आध्यात्म-परक व्याख्यायें यह घोषित करने के लिए पर्याप्त है कि वेद वस्तुतः विद्या और गभीरतम ज्ञान की पुस्तक है ।

देवशास्त्रीय अश्विन् सूक्तों में आध्यात्मिक व्यापारों की एक असाधारण श्रृंखला है,जो अश्विनों के अलौकिक, दिव्य स्वरूप को उजागर करती हैं । यह स्पष्ट है कि अश्विनों का प्रारम्भिक प्राकृतिक (भौतिक) स्वरूप, 'आकाशीय तारामण्डल के दो तारों' अथवा 'धुंधले प्रकाश' के रूप में होने पर भी, वे ग्रीक गाथा शास्त्र की भाँति यहाँ भी अपने विशुद्ध प्राकृतिक स्वरूप को खोकर एथेनी उषा की देवी की तरह एक अलौकिक स्वरूप और आध्यात्मिक व्यापारों को प्राप्त कर चुके हैं ।

विभिन्न ऋचाओं के माध्यम से यह विदित होता है कि अश्विन् दो युगल दिव्य शक्तियाँ हैं, जिनका मुख्य व्यापार है मनुष्य के अन्दर क्रिया तथा आनन्दभोग के रूप में प्राणमय सत्ता को पूर्ण करना । इसीलिए उनका तादात्म्य प्राण और अपान के साथ स्थापित किया गया है । वे आनन्दभोग के तीव्रगामी देवता हैं । वे अपने साथ अनेक सुखभोगों को रखते हैं । इनकी प्रेरक शक्तियाँ स्पष्ट ही सोमरस के पीने से अर्थात् दिव्य आनन्द के अन्तः प्रवाह से उत्पन्न होती है । साथ ही अश्विनों सत्य की, ज्ञानयुक्त कर्म की और यथार्थ भोग की शक्तियाँ हैं । ये वे शक्तियाँ हैं जो उषा के साथ प्रकट होती हैं । क्रिया की वे अमोघ शक्तियाँ हैं जो चेतना के समुद्र में से पैदा हुई हैं । ऋग्वेद[1] में अश्विनों को सिन्धु का पुत्र कहा गया है । यहाँ सिन्धु का तात्पर्य

---

1. या दस्त्रा सिन्धुमातरा, मनोतरा रयीणाम्, धिया देवा वसुविदा -ऋग्वेद 1/46/2

चेतना के सागर से है । ऋग्वेद[1] के कतिपय मन्त्रों में, अश्विनों को नौका के द्वारा अपने भक्तों को पार कराने का प्रसंग मिलता है । यह नौका सामान्य नहीं है । यह वही अलौकिक नौका है जिसमें बैठाकर वे स्तोताओं को पहले किनारे पर पहुँचा देते हैं, जो विचारों तथा मानव मन की अवस्थाओं से परे हैं, अर्थात् जो अतिमानस चेतना है । सूर्या जो सत्य के देवता सूर्य की दुहिता हैं, उनकी वधू बनकर उनके रथ पर आरूढ़ होती है । इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि अश्विन् द्वय सत्य की शक्तियाँ हैं ।

अश्विनद्वय घोड़े की सवारी करने वाले देवता हैं । उनका वर्णन बहुधा गतिसूचक विशेषणों से हुआ है - जैसे तीव्रगामी ॥उवत्पाणि॥ तथा अपने मार्ग पर प्रचण्डता से गमन करने वाले ॥रूद्रवर्तनी॥ । ये अश्व शक्ति का और विशेष रूप से जीवनशक्ति और प्राण का प्रतीक है । अश्विनों के विशेषण रूद्रवर्तनी का भाष्य अर्वाचीन विद्वानों ने 'लाल रास्ते वाले' किया है और यह मान लिया है कि यह विशेषण तारों के लिए बिल्कुल उपयुक्त है और वे उदाहरण के लिये इसके समान दूसरे शब्द 'हिरण्यवर्तनी' को प्रस्तुत करते हैं जिसका अर्थ है 'सुनहरे या चमकीले रास्ते वाले' । महर्षि अरविन्द[2] ने इस विशेषण की विशद व्याख्या की है । उनका कथन है कि, "रूद्र का अर्थ है - भीषण या प्रचण्ड । रूद्र का अर्थ एक समय में 'चमकीला' 'गहरे रंग का लाल' यह अवश्य रहा होगा। 'रूधु' या 'रूधु' धातु इस अर्थ के वाचक हैं, जैसे 'रुधिर' शब्द 'रक्त' या 'लाल' का वाचक है;अथवा जैसे लैटिन भाषा के 'रूबर'(ruber),'रुटिलस' (rutilus) , 'रूफस्' (rufus) इन सबका अर्थ 'लाल' है । दूसरी ओर क्षति और हिंसा का का अर्थ भी इस शब्द परिवार में समान रूप से अन्तर्निहित है । इसलिए रूद्र

---

1. नावा मतीनां पाराय - ऋग्वेद ॥1/46/7॥
2. ऋषि अरविन्द - वेदरहस्य, पृष्ठ 122.

का 'भीषण' या 'प्रचण्ड' अर्थ भी उतना ही उपयुक्त है, जितना 'लाल'। अश्विनों को 'रुद्रवर्तनी' इसलिए कहा गया है क्योंकि वे 'प्राण बल' की शक्तियाँ हैं। रुद्रवर्तनी रूप में वे अपनी गतियों में प्रचण्ड होते हैं।"

भारतीय धर्म तथा दर्शन में तीन की संख्या का बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसे मंगलसूचक तथा शुभ माना जाता है। अश्विनों का इस तीन की संख्या के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध देखा जाता है। जैसे - इनका दिन में तीन बार आह्वान किया जाता है। उनका रथ त्रिगुणित है जिसमें तीन चक्र, तीन बन्धुर (सारथि स्थान) और तीन स्तम्भ है।[1] सोमयाग के अवसर पर सोम के प्रातःसवन, मध्याह्न सवन तथा सायं सवन के उपलक्ष्य पर अश्विनों का तीन बार आह्वान किया जाता है। यदि सोमयाग को शरीर यज्ञ के रूप में परिकल्पित कर लिया जाय तो इस शरीरयज्ञ में अश्विन् द्वय को प्राण और अपान स्वरूप दो जीवनी शक्ति के रूप में माना जा सकता है। दिन के तीन बार आह्वान में मन, प्राण और पञ्चभूत जैसे त्रिगुटों का सम्मिलित रूप से समावेश होता है। दिन में तीन बार अश्विनों के आह्वान का तात्पर्य ही है कि वे प्राण और अपान नामक दो जीवनी शक्ति के रूप में आकर अपने बल और चेतना के द्वारा, शरीर रूपी यज्ञ के तीन प्रमुख अवयवों मन, प्राण तथा पञ्चभूतों को वर्धित करें। अश्विन् युग्म की कल्पना सृष्टि कार्य के निमित्तभूत पृथ्वी और आकाश की

---

1. त्रिवन्धुरेण त्रिवृता रथेन त्रिचक्रेण सुवृता यातमर्वाक्।

पिन्वतं गा जिन्वतमर्वतो नो वर्धयतमश्विना वीरमस्मे ।।

- ऋग्वेद (1/118/2)

भाँति, उन आदि युग्मों के रूप में भी की जा सकती है, जिनसे सृष्टि प्रक्रिया का विकास हुआ ।

वी०एस० अग्रवाल[1] महोदय ने अश्विनों के रथ की सुन्दर अलौकिक व्याख्या प्रस्तुत की है । उन्होंने रथ को एक शरीर के समान माना है । रथ को शरीर मानने की अवधारणायें ऋग्वेद में भी पाई जाती है (शरीरं रथं इवा तु) । अश्विनों के रथ की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि वह तीन स्तम्भों तथा तीन सारथि स्थानों वाला है । वह अलौकिक रासभों के द्वारा खींचा जाता है, तथा जो मधुपूर्ण है । इन तीनों स्तम्भों के समान सन्तुलन से रथ का भारसाम्य बना रहता है । अग्रवाल महोदय के अनुसार ये तीनों स्तम्भ मन, प्राण और पन्चभूत है । इन तीनों तत्वों के यथोचित भारसाम्य से ही शरीर रूपी रथ का भी सन्तुलन बना रहता है । अश्विनों का रथ तीन चक्रों वाला है और घृत इन चक्रों के मार्ग को मसृण और सुगमतापूर्वक चलने योग्य बनाते हैं । ऐसा उल्लेख वेदों में भी मिलता है । (घृतवर्तम् कृतं रथम्) उन्होंने चक्रों को प्राणाग्नि तथा घृत को रेतस् (वीर्य) का प्रतीक माना है । रेतस् वह तत्व है जिससे सृष्टि प्रक्रिया सम्पन्न होती है । यही प्राणाग्नि, शरीर रूपी रथ के अबाध गति से अग्रसर होने का प्रमुख स्त्रोत है ।

तीनों चक्रों को प्राणाग्नि का प्रतीक मानने वाला वक्तव्य तर्कसंगत प्रतीत नहीं होता । चक्रों को प्राणाग्नि के स्थान पर, काल की गति का प्रतीक मानना अधिक युक्तियुक्त होगा , क्योंकि चक्र ही रथ की गति का प्रधान साधन है । चक्र ही रथ को आगे बढ़ा कर ले जाता है । उसी प्रकार

---

1. वी०एस०अग्रवाल - 'एन एक्सपोजीशन ऑफ द अश्विन् सूक्त ऑफ ऋग्वेद' (विश्वेश्वरानन्द इण्डोलाजिकल जरनल, 1966, पृष्ठ 1-34)

शरीररूपी रथ को गति प्रदान करने वाला तत्व काल है । काल को अप्रतिहत गति प्रदान करता है रेतस् ।वीर्य। । रेतस् से सृष्टि प्रक्रिया सम्पन्न होती है और एक के पश्चात् दूसरी नवीन सृष्टि काल की गति को सतत प्रवाहशील बनाये रखती है । इसलिए अश्विनों के रथ के तीनों चक्र काल के ही चक्र है, जो जीवन रूपी रथ को आगे बढ़ाते हैं । अश्विनों के रथ को खींचने वाले दिव्य रासभ, तीव्र जीवनी शक्ति के प्रतीक है । यह वह अलौकिक शक्ति सम्पन्न रासभ है, जिसकी देवता भी कामना करते हैं ।

अश्विनों का रथ मधु का आहरण करता है । उन्हें यह मधु मधुमक्खियों के छत्तों से प्राप्त होता है । वैदिक वाङ्मय में मधु अमृतत्व, स्वर्ग तथा जीवन का प्रतीक माना जाता है ।प्राणों वै मधु। । आत्मा तथा परमात्मा दोनों का वर्णन मधुमायी पक्षी के रूप में किया गया है, तथा सूर्य की कल्पना मधुमक्खी के छत्ते के रूप में की गई है ।असौ वा आदित्यो देवमधु। । मानव शरीर अश्विनों के मधु पूरित रथ का सटीक उदाहरण है । रथ का मधु से पूर्ण होना शरीर का जीवन युक्त होना है । हम शरीर रूपी रथ में, मधु रूपी जीवन्तता का आहरण सूर्य रूपी मधुमक्खी के छत्ते से करते हैं ।

अश्विनों को समर्पित सूक्तों की विवेचना से यही स्पष्ट होता है कि इन देवयुग्मों का आह्वान आन्तरिक शक्ति के संचार के लिए ही किया गया था । यज्ञ कर्मों में उनका आवाहन क्रिया को पूर्ण करने वालों के रूप में किया जाता था । और वह पूर्ण भी करते थे । वे यज्ञीय शक्तियों में आनन्द लेने वाले देवता हैं । यज्ञीय क्रिया को वे अपनी वह भीक्ष्ण गति ।रुद्रवर्तनी। प्रदान करते हैं जो उन्हें बेरोक टोक उनके मार्ग पर ले जाती है, और जो सब विरोधों को दूर कर देती है । अपने अलौकिक रूप में, वे वाणी को ग्रहण कर एक शक्तिशाली विचार में, ऊपर ले जाते हैं । नासत्या के रूप में ये अपने में सत्य

की ज्योति को धारण करते हुए, मनुष्य को अन्धकार से पार ले जाते हैं । सर्वत्र अश्विनों से शक्ति की इस माँग का उद्देश्य यही है कि क्रिया, कार्य साधक बन जाय और महान् यात्रा में वेग आ जाय । इस प्रकार अश्विन द्वय प्राण और अपान के रूप में, मानव मात्र में जीवनी शक्ति का संचार करने वाले, महान् मानवीय प्रगति के अधिपति हैं ।

----------::0::----------

चतुर्थ अध्याय

देवशास्त्र सम्बन्धी अश्विनी सूक्तों का व्युत्पत्तिशास्त्रीय (Etymological) आलोचनात्मक अध्ययन

व्युत्पत्ति शास्त्र का परिचय

शोध प्रबन्ध के इस ।चतुर्थ। अध्याय में अश्विनी सूक्तों की व्युत्पत्ति शास्त्रीय (Etymological) आलोचना की गई है । व्युत्पत्ति शास्त्र भाषा-विज्ञान (Linguistic) की एक प्रमुख विधा है । यह ध्वनि विज्ञान, शब्दविज्ञान तथा अर्थविज्ञान का सम्मिलित योग है । जिसके आधार पर किसी भी शब्द का मूल खोजा जाता है । इस शास्त्र में यह पता लगाया जाता है कि कोई शब्द विशेष मूलतः किस भाषा का है । साथ ही इस बात का पता लगाने का भी प्रयास किया जाता है कि मूल शब्द का अर्थ तथा रूप क्या था ? किन परि-स्थितियों तथा किन कारणों से उसमें ध्वनि या अर्थ सम्बन्धी परिवर्तन हुए ?

व्युत्पत्ति शास्त्र के लिए अंग्रेजी शब्द 'एटिमोलॉजी' (Etymology) है । यह यूनानी भाषा का शब्द है और इसका अर्थ 'यथार्थ लेखा-जोखा' (Etumos - यथार्थ, Logos - लेखा जोखा। है । व्युत्पत्ति का अर्थ विशेष उत्पत्ति है । प्राचीन काल में भारत में इस शास्त्र को 'निरुक्त' कहते थे । जो छः वेदांगों में से एक था । निरुक्त शास्त्र के जन्मदाता यास्क माने जाते हैं । यास्काचार्य ने एक शब्द की एक ही व्युत्पत्ति न देकर एक से अधिक व्युत्पत्तियाँ भी दी है । प्लेटो के समय में तथा उनके पूर्व यूनान में इस शास्त्र का अध्ययन प्रचलित था । किसी शब्द की ध्वनि और उसके द्वारा व्यक्त किये गये अर्थ में कुछ सम्बन्ध होता है । इस सम्बन्ध को सिद्ध करने के लिए व्युत्पत्तियाँ दी गई। मध्ययुग तक आते आते जब लोगों का देश-देशान्तर तथा उनकी भाषाओं से परि-चय बढ़ा तो संसार की सारी भाषाओं को किसी एक भाषा से निकली सिद्ध करने के लिए अर्थ तथा ध्वनि की दृष्टि से मिलते जुलते शब्दों के बहुत से संग्रह बने । भारोपीय (Indo-European) तथा भारत-ईरानी (Indo-Iranian) भाषाओं में साम्य पाया गया ।

शोध-प्रबन्ध के इस अध्याय में कुल दस सूक्तों का चयन किया गया है ।

उनमें संकलित मन्त्रों में आये हुए शब्दों की व्युत्पत्ति मूलक आलोचना की गई है। इन सूक्तों का चयन ऋग्वेद संहिता के प्रथम, षष्ठ, सप्तम तथा दशम मण्डलों से किया गया है। मन्त्रों का पदपाठ, अन्वय तथा हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत करने के अनन्तर एक, एक शब्द की व्युत्पत्तिमूलक आलोचना की गई है। आलोचना का मुख्य आधार, शब्दों के अर्थ को बनाया गया है। अर्थ के अनुसार शब्द की मूल धातु, उपसर्ग तथा प्रत्यय का पता लगाने के बाद पाणिनीय सूत्रों के आधार पर शब्द विशेष के निर्माण की प्रक्रिया को स्पष्ट किया गया है। तदनन्तर विभिन्न भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों के द्वारा गृहीत शब्द विशेष के अर्थों को उल्लिखित करते हुए, अन्ततः उत्पत्ति को देखते हुए शब्द का अर्थ क्या है , मंत्र के संदर्भ में शाब्दिक, लाक्षणिक और भावार्थ में से किस अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, इसकी भी स्पष्ट विवेचना करते हुए, निजी विचार व्यक्त किये गये हैं।

------------::0::------------

1-112-1-25

1. ईळे द्यावापृथिवी पूर्वचित्तये- ईळे । द्यावापृथिवी इति । पूर्वऽचित्तये

ऽग्निं घर्मं सुरुचं यामन्निष्टये। अग्निम् । घर्मम् । सुऽरुचम् । यामन् । इष्टये

याभिर्भरे कारमंशाय जिन्वथ- याभिः । भरे । कारम् । अंशाय । जिन्वथः

स्ताभिरूषु ऊतिभिरश्विना गतम्॥ ताभिः । ऊँ इति । सु । ऊतिऽभिः ।

अश्विना । आ । गतम् ।

अन्वय - ॥अहम्॥ द्यावापृथिवी ईळे पूर्वचित्तये अपि च यामन् इष्टये अग्निः धर्मं सुरुचं, भरे अंशाय याभिः कारं जिन्वथः, ताभिः ऊतिभिः अश्विना!उ सु आ गतम् ।

अनुवाद - मैं द्यावापृथिवी की ॥अश्विनों के प्रति॥ पूर्व मनन हेतु स्तुति करता हूँ, दीप्तिमान और शोभनकान्तिवाले अग्नि की यज्ञ में आगमन हेतु स्तुति करता हूँ। जिन (रक्षाओं)के द्वारा संग्राम में अपने अंश के लिए ॥जय प्राप्त करने के लिए॥ कार नामक शंख की ध्वनि करते हो। उन्हीं रक्षाओं के साथ अश्विनों! हमारे समीप भली-भाँति आओ।

ईळे - 'ईड् स्तुतौ' धातु, उत्तमपुरुष एकवचन में इट्, अदादि होने से शप् का लोप। 'ईळे' स्तुति अर्थ में प्रयुक्त है, क्रियापद होने पर भी पादादि में स्थित होने के कारण निघात नहीं हुआ। डकारस्य ळकारो बह्वृचाध्येतृसंप्रदायप्राप्तः तथा च पठ्यते - 'अज्मध्यस्थडकारस्य ळकारं बह्वृचा जगुः, अज्मध्यस्थढकारस्य ळहकारं वै यथाक्रमम्' इस सूत्र के अनुसार दो अच् के मध्यवर्ती डकार का ळकार हो गया, यथा ई + ड + ए = ईळे। सायण - स्तौमि, √ईड् स्तुतौ, उत्तमैकवचनम् इट्, अदादित्वात् शपो लुक्, अनुदात्तेत्त्वात् लसार्वधातुकानुदात्तत्वे धातुस्वरः। अन्यत्र - ॥ऋ० सं० 1/1/1, 1/44/4, 1/112/1, 8/19/21, 10/20/2॥ - स्तौमि ॥7/53/1॥

प्रकर्षेण स्तौमि ‡6/16/4‡- स्तुतवान् स्तुत्वा च निरु0 ‡7/4‡- इळे याचामि ईलिरध्येषणाकर्मा पूजाकर्मा वा । स्कन्द0, वेङ्कट, मुद्गल ‡ऋ0सं0भा0‡-स्तौमि । Griffith (The hymns of Ṛgveda) - warship. Willson (Ṛgveda Saṃhitā)-praise, Moniar Williams - worship or prayer. Macdonall (Vedic Reader)-praise Grassmann (Rig-veda)-Preise (praise) , Geldner (Der Ṛgveda)-rufe (call or reputation).

द्यावापृथिवी - द्यौश्च पृथिवी च इति द्यावापृथिवी, द्विवचनान्त शब्द है । सा0- 'दिवो द्यावा' ‡पा0सू0 6/3/29‡ इति द्यावादेश, आद्युदात्तो निपातितः, पृथिवीशब्दो 'षिद्गौरादिभ्यश्च' इति ङीषन्तोऽन्तोदात्तः, 'देवताद्वन्द्वे च' इति उभयपदप्रकृतिस्वरत्वम् 'अपृथिवीरुद्रपूषमन्थिषु' इति पर्युदासात् 'नोत्तरपदेऽनुदात्तादौ' इति निषेधाभावः, 'वा छन्दसि' इति पूर्वसवर्णदीर्घत्वम् । अन्यत्र ‡ऋ0 सं0 1/35/9, 2/1/15, 3/3/11, 4/14/2, 9/68/10, 10/1/7‡- द्यावापृथिव्यौ । स्कन्द0, वेंकट0, मुद्गल0 - द्यावापृथिव्यौ । Griff. (The Hyms of Ṛgd) - Heaven and earth, Willson, Macdonall - Heaven and earth. Monior Williams - Heaven and earth Grass. (Rig-veda) - Erd und Himmel ich (earth and heaven), Geldner (Der Rgveda) - Himmel urd Erde (Heaven and earth).

इस मन्त्र में द्यावापृथिवी की स्तुति प्र नैपातिक देवता के रूप में की गई है । इसका आह्वान ऋक्संहिता में छः सूक्तों में प्राप्त होता है । ये आकाश और पृथिवी की प्रतिनिधि देवता हैं । इनका परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध ही इस युग्म रचना का आधार है । मन्त्रों में इन्हें अन्य नाम - रोदसी, द्यावाक्षामा, द्यावाभूमि भी दिये गये हैं । इन्हें अनेक बार माता-पिता भी माना गया है । द्यावापृथिवी कई नैतिक और भौतिक गुणों से युक्त हैं और इनका यज्ञ से भी पर्याप्त सम्बन्ध है । पुरोहितगण पृथ्वी की तुलना वेदी से और द्यौस् की तुलना दक्षिणा से करते हैं ।

पूर्वऽचित्तये - 'चिती' संज्ञाने' धातु, 'क्तिन्' प्रत्यय भाव अर्थ में। चतुर्थी एकवचन, 'तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्या' सूत्र से, 'ईळे' क्रिया का हेतु बतलाने के कारण चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग हुआ है। सा० - पूर्वमेवाश्विनोः प्रज्ञापनाय, √चिती संज्ञाने, अस्मात् अन्तर्भावितण्यर्थात् भावे क्तिन्, मरुद्वृधादित्वात् पूर्वपदान्तोदात्तत्वम्। अन्यत्र - ॥ऋ० सं० 1/84/12, 1/159/3॥ प्रज्ञापन के अर्थ में प्रयुक्त। स्कन्द० - पूर्वज्ञानाय। वेंकट - प्रज्ञापनाय। मुद्गल प्रज्ञापनाय। Griff. (The Hymns of Ṛgd) - First thought will. (Ṛgd.S.) - Preliminary meditation. Macdonall (Vedic Reader)- First thought, Moniar Williams - First notion or conception. Grass. (R.V.)-ersten andacht (first devotion), Geld.(D.R.)- Zuert zu gedenken (first thought).
निरु० ॥1/3॥ - चित्तं चेतते। Siddheshwar Verma (The etymology of of Yaska) - 'the mind' is traced to √चित् 'to think'. Indo European - quit (to watch) Old. Bulgarian - Cisti (honouring).

संस्कृत के पूर्व शब्द का रूप अवेस्ता में paurva और ओल्ड स्लावोनिक में Prūvū मिलता है। यहाँ पर पूर्वमनन अथवा पूर्व चिन्तन अर्थ ही अधिक युक्तिसंगत होगा।

अग्निम् - अग्नि शब्द की व्युत्पत्ति 'अञ्जूव्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु' 'दह् भस्मीकरणे' तथा 'णीञ् प्रापणे' इन तीनों धातुओं से मिलकर हुई है, ऐसा माना जा सकता है। 'अञ्ज्' धातु अकार, 'दह्' धातु से निष्पन्न 'दग्ध' शब्द से गकार तथा 'णीञ्' प्रापणे धातु से निष्पन्न 'नीतः' शब्द से नी को लिया गया, जिसमें दीर्घ ईकार के ह्रस्व होने पर अग्नि शब्द बना। पुल्लिंग, द्वितीया, एकवचन। सा० - अग्निनामकं देवम्, सामान्येन सर्वदेवतानां लक्षणस्याभिहितःवादनन्तरं यतः प्रतिपदं विशेषेण वक्तव्यत्वम् आकांक्षितम् अतोऽनुक्रमेण वक्ष्यामः। तत्र पृथिवीलोके स्थितोऽग्निः प्रथमं व्याख्यायमस्ते। कस्मात् प्रवृत्तिनिमित्तादग्निशब्देन देवताभिधीयत इति प्रश्नस्य 'अग्रणीः' इत्यादिकमुत्तरम्। देवसेनामग्रे स्वयं

नयतीत्यग्रणी: । एतदेकमग्निशब्दस्य प्रवृत्तिनिमित्तकम् । निरुक्तकार यास्क ने अग्नि शब्द का निर्वचन इस प्रकार किया है - 'अथातोऽनुक्रमिष्यामोऽग्नि: पृथिवीस्थानस्तं प्रथमं व्याख्यास्यामो अग्नि:, कस्मादग्रणीर्भवत्यग्रं यज्ञेषु प्रणीयतेऽग्रं नयति सन्नममान: अर्थात् अग्नि ही अग्रणी होता है।यज्ञों में अग्नि ही समस्त देवताओं से पहले ले जाया जाता है । अथवा सभी वस्तुओं को आत्मसात् कर लेता है , इसीलिए अग्नि कहा जाता है ॥निरु0 7/4॥।स्थौलाष्ठीवि नामक आचार्य का मत है - 'न क्नोपयति न स्नेहयति अक्नोपनो भवतीति' अर्थात् किसी द्रव्य को स्निग्ध ॥आर्द्र॥ नहीं करता अपितु रूक्ष बना देता है । नैरुक्त शाकपूणि ने अग्नि शब्द की निष्पत्ति तीन धातुओं से बताई है - शाकपूणिरितादक्ताद्दग्धाद्वा नीतात्स खल्वेतेरकारमादत्ते गकारमनक्तेर्वा दहतेर्वा नी: परस्तयैषा भवति ' अर्थात् √इण् गतौ से अ, √अन्ज् अथवा √दह् धातु से बने शब्द दग्ध से गकार तथा √नी धातु से न् को ग्रहण कर अग्नि शब्द की व्युत्पत्ति हुई है । ब्राह्मणों में अधिकांशतया, अग्नि के देवताओं में अग्रणी होने से अग्र शब्द से व्युत्पत्ति मानी गई है । ऐतरेय ब्राह्मण ॥1/4॥ अग्निर्मुखं प्रथमो देवतानाम् । ऐत0 ब्रा0 ॥1/1॥ - अग्निर्वै: देवानामवम: । तैत्तिरीय ब्राह्मण ॥2/4/3/3॥ - अग्निरवमो देवतानाम् इति च । वाजसनेयी संहिता - 'स वा एषोऽग्रे देवतानामजायत तस्मादग्निर्नाम' इति।

Sidd. V.(The ety. of Yāska) - अग्नि is derived from

॥1॥ √इ ॥=अ॥ + √अन्ज् or √दह् ॥=ग॥ + √नी

One who moves, shines (or burns) and leads.

॥2॥ अग्र + √नी 'he who leads to the front' or 'he who is brought to the fore front (in a sacrifice) or

॥3॥ अंग + √नी 'he who reduces (everything) into subjecti
Here a verb √नी has been read in the suffix. Indo european - egni-S (fire), Latin-ignis (fire)

घर्मम् - 'घृ क्षरणदीप्त्योः' धातु, 'मनिन्' प्रत्यय, नपुंसकलिंग, द्वितीया, एकवचन ।

अग्नि का विशेषण । सा० - प्रवृञ्जनेन दीप्तम् । अन्यत्र - ॥ऋ०सं० 1/112/7॥ महावीरम् ॥1/119/2॥ - महावीरस्थं यद्वा क्षरणशीलाज्यादिकं हविः, ॥1/119/6॥ -दीप्यमानं तुषाग्निम्, ॥8/9/7॥ प्रवर्ग्यसंबन्धि घर्माख्यं हविश्च । ॥10/16/10॥ यज्ञम् । स्कन्द० - दीप्तम् । वेंकट० - आदित्यः । मुद्गल - प्रवृंजनेन दीप्तम् । Griff. (The hymns of Rgd)-fair, wil. (Rgd.S.)-hot, Mac.D. (V.R.)-hot milk offering. M.W.-Heat or wormth, Grass.(Rgd)-lichte (luminous). Geld.(D.R.)- glanzerichen.

घर्मम् से मिलते जुलते शब्द अन्य भाषाओं में Avestā - garema, Latin-faru-S, Greek-θερμο'-S(warm). Gothic-Varmya German-Warm, English-Warm.

यहाँ पर दीप्तिवान अर्थ अधिक उपयुक्त होगा ।

सुऽरुच्यम् - 'सु' उपसर्ग पूर्वक, 'रुच् दीप्तावभिप्रीत्या' धातु, से भाव अर्थ में 'क्विप्' प्रत्यय, द्वितीया, एकवचन अग्नि का विशेषण, 'नञ्सुभ्याम्' सूत्र से उत्तर पद पर उदात्त उपसर्ग 'सु' को पदपाठ में अवग्रह के द्वारा पृथक् किया गया है । सा० - शोभनकान्तियुक्तम् । अन्यत्र - ॥ऋ० सं० 2/2/4॥ - शोभन-दीप्तिम् ॥3/2/5॥ - प्रशस्त दीप्तिमन्तम् । स्कन्द० वेंकट० - सुदीप्तम् । मुद्गल - शोभनकान्तियुक्तम् । Griff. (The hymns of Rgd.)- bright glow, Wil. (Rgd.S.)- bright shining. Mac.D. (V.R.)- shine, M.W. - bright light or shining brightly.

Grass.(Rgd) - glut (glow).

अर्थ हुआ शोभन कान्ति वाले ।

यामन् - 'या प्रापणे' धातु, 'आतो मनिन्' और 'कृत्यल्युटो बहुलम्' सूत्र से भाव अर्थ में 'मनिन्' प्रत्यय, नित् होने से आद्युदात्त । सा० - यामनि अश्विनोरागमने सति । अन्यत्र - ॥ऋ० सं० 1/33/2॥ - प्रवृत्ते युद्धे ॥1/116/13॥ - यामनि, याति गच्छतीति याम् स्तोत्रम् , 'आतोमनिन्क्वनिवनिपश्च' इति मनिन् , 'सुपां सुलुक्' इति सप्तम्या लुक् । ॥2/36/2॥ - गमनसाधने रथेऽवस्थिताः ॥3/2/14॥ - यज्ञे, ॥4/24/2॥ युद्धे, ॥5/44/4॥ - यज्ञगमने, ॥6/15/5॥ - संग्रामे, ॥7/58/2॥ - गमने ॥10/3/4॥ - यज्ञः । स्कन्द० - यान्ति । मुद्गल - अश्विनोरागमने सति । Griff. (The hymns of Rgd)-approach. Wil. (R.S.)-approach. Mac.D. (Vedic Index Page 212) के अनुसार यामन् शब्द ऋग्वेद में किसी युद्ध में अभियान अथवा चढ़ाई करने का द्योतक है । M.W. - Coming. Grass. (Rgd.) - Komm' (Come).

ऋग्वेद में यह शब्द युद्ध अभियान, यज्ञ तथा गमन के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । परन्तु यहाँ आगमन अर्थ ही उचित होगा ।

इष्टये - 'यज्ञ में', 'इषु इच्छायाम्' धातु 'क्तिन' प्रत्यय, सप्तमी एकवचन, यज्ञ के अर्थ में प्रयुक्त, यज्ञ से यजमान की कामनाओं अथवा इच्छाओं की पूर्ति हो जाती है, इसलिए 'इषु इच्छायाम्' धातु से निष्पन्न इष्टि शब्द का, यज्ञ के अर्थ में प्रयोग हुआ है । तदीययागार्थमाहवनीयरूपेण अश्विनोरागमने सति 'तितुत्र०' इत्यादिना इट्प्रतिषेधः, यद्वा यजतेः क्तिनि 'वचिस्वपि०' ॥पा०सू० 8/1/15॥ इत्यादिना संप्रसारणम् । वश्चादिना षत्वेष्टुत्वम् । पूर्वस्मिन् पक्षे 'मन्त्रे वृष०' इति क्तिन् उदात्तत्वम् द्वितीये तु व्यत्ययेन - सा० । अन्यत्र - ऋ० सं० ॥1/30/12॥ अभिलषितार्थम् , ॥1/57/2, 1/113/5-6, 1/129/4, 6/70/4, 7/92/3॥ - यागाय ॥10/36/6॥ अभिलषितसिद्ध्यर्थम् । स्कन्द० - यागाय । वेंकट - यज्ञे अभिलषितसिद्ध्यर्थम् । मुद्गल - तदीययागार्थम् आहवनीयरूपेण स्थापितम् Wil. (Rgd. S.)-Worship. Mac.D. (V.R.)-sacrifice. M.W.-Sacrifices. Grass.

(Ṛgd)-andacht (devotion) Geld.(D.R.)- Einsatz (intonation).
अतः यहाँ यज्ञ अर्थ ही समीचीन होगा ।

भरे - संग्राम में । 'भृञ् भरणे' धातु से निष्पन्न । सप्तमी, एकवचन । सा० - संग्राममागैतत्, संग्रामे । अन्यत्र - ऋ० सं० ३3/30/22३ भरः संग्रामः, ३5/36/5३ - संग्रामे भरणवति यज्ञे वा, ३9/97/58३ - संग्रामे, ३10/49/1३ - सर्वस्मिन्नपि संग्रामे । निघ० ३14/24३ - भर इति संग्रामनाम । स्कन्द० - असुरैः सह संग्रामे । वेंकट - संग्रामे । मुद्गल० - संग्रामे । Griff. (The hymns of Ṛgd)-Fight. Wil. (Ṛgd.S.), M.W.-battle. Grass.(Ṛgd.), Geld (D.R.) - Kampfe (fight). Mac. D. (V.R.) - battle.
ऋग्वेद में अन्यत्र भरे शब्द 'प्र' उपसर्ग के साथ प्रयुक्त होता है जिसका अर्थ है प्रकृष्ट रूप से कर्म का संपादन । जैसे ऋ० सं० ३1/57/1, 1/102/1३ - प्रकर्षेण संपादयामि । परन्तु प्रस्तुत मन्त्र में भरे को संग्राम का वाचक माना गया है । Siddheshwar Verma (The ety.of Yāska)-'battle' has been traced to √भृ 'to bear'. Indo European - 'bher' (to bear). Greek - phérō (I bear). Old Slavonic-'berjo' (fifht).

कारम् - शंखनामवाची शब्द । 'डुकृञ् करणे' धातु, 'घञ्' प्रत्यय । क्रियतेऽनेनेति । कारः, करणे घञ्, नपुं०, प्रथमा, एकवचन । 'कर्षात्वतः' सूत्र से अन्तोदात्त। शब्दकारिणं शंखम् - सा०। अन्यत्र - ऋ० सं० ३1/131/5३ - शब्दं सिंहनादलक्षणम्, ३9/41/1३ - शब्दम् । स्कन्द० - कारशब्दोऽत्र शंखवचनः, महान्तं शंखशब्दं कृतवन्तौ स्थः इत्यर्थः । वेंकट - शंखम् । मुद्गल - शंखकारिणं शब्दम् । Griff.(The hymns of Rgd)-spoil. Wil.(Rgd.S.)-Conch shell. Mac.D.(V.R.)-sound, M.W.-a battle song.

वस्तुतः कार शब्द का एक अर्थ 'शब्द' भी है जैसा कि ऋ0 सं0 1/131/5 तथा 9/41/1 में प्रयुक्त है । परन्तु ऋ0 सं0 (1/180/8) में 'काराधुनीव' शंख के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । यहाँ पर भी शंख के वाचक के रूप में रूढ़ अर्थ में प्रयुक्त हुआ है ।

जिन्वथः - आपूरण अर्थ में प्रयुक्त । 'जिवी प्रीणनार्थः' धातु, शबादि विकरण से पित् होने के कारण अनुदात्त नहीं हुआ । लट् लकार, मध्यम पुरुष, द्विवचन । सा0 - मुखेनापूरयतम्(अन्यत्र - ऋ0 सं0 (1/112/6) - प्रीणयथः गतमन्यत् (1/112/22, 5/74/4, 8/22/7, 6/49/11, 8/7/21), 10/9/3) - प्रीणयथः स्कन्द0 - प्रीणितवन्तौ आपूरितवन्तौ स्थ । वेंकट - शब्देन पूरयामासथुः । मुद्गल - मुखेनापूरयथः । Griff. (The hymns of Rgd) War cry. Wil. (Rgd.S.)- Sound. Grass. (Rgd)-Streiter (warrior). Geld.(D.R.)- Siege (Victory).

ऊतिऽभिः - 'रक्षाओं के साथ', 'अव रक्षणे' धातु, 'क्तिन्' प्रत्यय 'ज्वरत्वर0' सूत्र से वकार की उपधा को ऊठ् आदेश 'ऊतियूतिजूतिसातिहेतिकीर्तयश्च' (पा0सू0 3/3/97) से 'क्तिन्' उदात्त हुआ, तृतीया, बहुवचन । पालनैः सह - सा0, स्कन्द0 - गमनैः, वेंकट - परिरक्षणैः । मुद्गल - पालनैः । Griff. (The hymns of Rgd.)-aids. Wil. (Rgd S.) - appliances. Mac.D. (V.R.)- help. M.W.-help or protection. Grass. (Rgd) - Hülfen (aids). Geld. (D.R.) - hilfen (aids).

अन्यत्र - ऋ0 सं0 (1/7/4, 7/19/3, 8/5/24, 9/4/5) - रक्षाभिः Prof. Fatah Singh (The Vedic Etymology) -

(1) The heavenly paths of God.

(2) divine protection from UT (?) or seems to be suggested below from Śrutih (from Sṛ 'to go)-

ऊतयः खलुवैतानाम याभिर्देवा यजमानस्य हवमायान्ति । ये वै पन्थानोया सुत-यस्तावावाऊतयः (ऐ० ब्रा० 1/2) । The derivation of Ūtih 'protection favour', may better be taken to be from √av 'to protect' (Nir. 408) and Ūtih 'the path' from root √Ut probably meaning 'to go' as suggested in the first half of the passage.

अश्विना - अश्विन् शब्द की व्युत्पत्ति विभिन्न विद्वान् विभिन्न प्रकार से मानते हैं । कुछ लोग 'अशूङ् व्याप्तौ' धातु से 'विनि' प्रत्यय करने से अश्विन् शब्द की व्युत्पत्ति मानते हैं । संसार को अपनी किरणों से व्याप्त कर लेने के कारण सूर्य 'अश्व' कहलाता है । उपनिषद् ग्रन्थों[1] में भी संसार को अपनी किरणों से व्याप्त कर लेने के कारण सूर्य को 'अश्व' कहा गया है । मैकडानल[2] का मत है कि अश्व शब्द सूर्य की किरणों का द्योतक है । अतः 'अश्विन्' शब्द सूर्य या प्रकाश का वाचक है । यास्काचार्य ने 'अश्विन्' का निर्वचन - 'अश्विनौ यद् व्यश्नुवाते सर्वं रसेनान्यो ज्योतिषाऽन्यः' (निरु० 12/1/1) किया है । यास्क के अनुसार अश्विनौ में एक रस से जगत को व्याप्ता है, दूसरा प्रकाश से । अतः

---

1. बृहदारण्यक उपनिषद् 1/1/2

2. ए०ए० मैकडॉनल - वैदिक माइथोलॉजी,

इससे प्रतीत होता है कि उन्होंने भी व्युत्पत्ति का आधार 'अशूङ् व्याप्तौ' धातु को ही माना है । एक रस से व्यापता है और दूसरा प्रकाश से इसलिए यास्क ने इनमें से एक को मध्यमस्थानीय और दूसरे को द्युलोकस्थ देवता कहा है । किन्तु ये दोनों अवियोज्य होने के कारण, द्युलोकस्थ देवताओं में ही इन दोनों का एकत्र वर्णन किया जाता है । आचार्य और्णवाभ[1] के अनुसार 'अश्व' शब्द से मत्वर्थीय 'इनि' प्रत्यय करने पर अश्विनी शब्द बनेगा , जिसका अर्थ है 'अश्ववन्तौ' या 'वेगवन्तौ'; अश्वी का अर्थ है जिसके पास अश्व हो, इसके आधार पर ऐतिहासिकों[2] का कथन है कि अश्विनौ पुण्यकर्मा राजा है, जो ~~सदा~~ अश्ववान् है । बालेनसेन[3] तथा हॉपकिन्स[4] महोदयों का भी यही मत है कि 'अश्विन्' शब्द में अश्वों के स्वामित्व का ही भाव निहित है । अश्विनौ से सम्बन्धित एक पुराकथा के आधार पर इनके अश्विन् नामकरण के औचित्य पर प्रकाश पड़ता है । उस कथा के अनुसार अश्व रूपधारी विवस्वान् और अश्वी रूपधारिणी सरण्यू के संगम से दो युग्म बालकों का जन्म हुआ । अश्वी से उत्पन्न होने के कारण इन्हें अश्विनौ कहा जाता है । यद्यपि व्याकरण की दृष्टि से 'अश्विन्' का तात्पर्य 'अश्व से उत्पन्न हुआ' नहीं है पर ऐतिहासिक दृष्टि से इस शब्द की यही व्याख्या सर्वाधिक सन्तोषजनक है । यहाँ छान्दस प्रयोग के कारण 'अश्विनौ' के स्थान पर 'अश्विना' दीर्घत्व प्राप्त हुआ है ।

---

1. निरुक्त ॥12/1/1॥ अश्वैरश्विनावित्यौर्णवाभः

2. वही, ॥12/1/1॥ राजानौ पुण्यकृतावित्यैतिहासिका

3. Balensein - Zeitschrift der Deutschen Märgenländischen Gesellschaft. Pages 41, 496.

4. Hopkins - Religions of India. Page 80.

सु आ गतम् – 'भलीभाँति आओ', सु और आ उपसर्ग पूर्वक 'गम्' धातु, लोट् लकार, मध्यम पुरुष, द्विवचन, 'बहुलं छन्दसि' सूत्र से विकरण का लुक्। क्रियापद होने से निघात। सा० – सुष्टु आगच्छतम्। स्कन्द० – शोभनमागच्छतमिति। वेंकट – सुष्ठु आगच्छतम्। मुद्गल – सुष्ठु आगच्छतम्। Griff. (The hymns of Ṛgd) – Come hither. Wil. (Ṛgd S.) – Come willingly hither. Grass. (Ṛgd) – Schnell herbei (Come swiftly near to me).

2. युवोः दानाय सुभरा असश्चतो रथमा तस्थु – वचसं न मन्तवे ।
याभिर्धियोऽवथः कर्मन्निष्टये ताभिरु षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥

युवोः । दानाय । सुऽभराः । असश्चतः । रथम् । आ । तस्थुः । वचसम् । न । मन्तवे । याभिः । धियः । अवथः । कर्मन् । इष्टये ताभिः । ऊँ इति । ऊतिऽभिः । अश्विना । आ गतम् ॥

अन्वय – सुऽभराः असश्चतः युवोः रथम् आ तस्थुः दानाय वचसम् न मन्तवे ॥अपि च॥ कर्मन् इष्टये धियः याभिः अवथः ताभिः ऊतिभिः अश्विना! सु आ गतम्।

अनुवाद – स्तोत्रों से भलीभाँति पोषित अनन्य भक्त, तुम्हारे रथ के पास आकर दान के लिए उसी प्रकार खड़े हो जाते हैं जिस प्रकार ॥शिष्य॥ ज्ञानी

॥गुरु॥ के वचनों को सुनने के लिए जाता है । यज्ञादि कर्मों ॥ में लगे हुए स्तोताओं की जिन ॥साधनों॥ के द्वारा रक्षा करते हो, उन्हीं रक्षाओं के साथ, हे अश्विनों ! भली भाँति हमारे पास आओ ।

टिप्पणी :

दाना॑य - दान के लिए, दान शब्द चतुर्थी एकवचन । सा० - युष्मत्कर्तृकदानार्थम् धनलाभायेत्यर्थः । अन्यत्र - ॠ० सं० ॥1/48/4, 2/13/13, 6/45/32/ 8/46/26, 9/81/1 तथा 10/61/2॥ में दान के अर्थ में प्रयुक्त । स्कन्द० - दानार्थम् । वेंकट - दानाय।धनलाभायेत्यर्थं - मुद्गल । Griff. (The hymns of Ṛgd)- give, Wil. (Ṛgd.S.) - Bounty, M.W. - act of giving. Grass. (Ṛgd) - huld (favour).

सुऽभरा॑: - स्तोत्रों से भरे पूरे भक्तजन, सु उपसर्ग पूर्वक, 'भृञ् भरणे' धातु, प्रथमा बहुवचन । सा० - शोभनस्तोत्रभरणा: अन्यत्र - ॠ० सं० ॥2/3/4॥- सुपूर्णम् , ॥2/3/9॥ - शोभनयज्ञो, शोभनभरणो वा ॥10/35/12॥ - सुसमृद्धम्। स्कन्द० - सुपूर्णा: । वेंकट - सुनिर्भरा: । मुद्गल - शोभनस्तोत्रभरणा: । Griff. (The hymns of Ṛgd) - ample. Wil. (Ṛgd.S.) - Earnest, M.W.-well compacted. Mac.D.(V.R.)-booty Grass. (Ṛgd.)-Wuchtig (weighty), Geld. (D.R.) - leichtlastenden (light load).

सुभरा का अर्थ है 'जिनका भली-भाँति भरण पोषण हुआ हो ऐसे लोग' । परन्तु यहाँ इसका अर्थ होगा 'स्तोत्रों से भरे पूरे भक्तजन'।

अस॑श्चत: -'अनन्य भक्त,' 'सश्चतिर्गतिकर्मा' धातु, 'शतृ' प्रत्यय छान्दस प्रयोग के कारण दीर्घत्व का अभाव । पुल्लिंग, प्रथमा, बहुवचन । सा० -

अन्यत्रानासक्ता: । अन्यत्र - ऋ0 सं0 ॥1/142/6॥ - असज्यमाना: परस्परविप्रकृष्टाः, ॥9/62/24॥ - असंगा: ॥9/73/4॥ - संगतवर्जिता: पृथक्पृथग्दित्यवस्थिता:, ॥9/74/6॥ - परस्परमसक्ता: ॥9/85/10॥ - असंसक्ता: पृथक्पृथगित्यर्थ: यद्वा चिरमकृत्वा शीघ्रमभिषुण्वन्त:, ॥9/86/27॥ - परस्परमसंगता: । स्कन्द0 - असंगच्छमाना:, असंयुक्ता । वेंकट - असक्तारौ । मुद्गल - अन्यत्रानासक्ता: । निरु0 ॥5/2/7॥ - असज्यमाने इति वा अत्युदस्यन्त्याविति वा ॥अनुपक्षीण या अविपर्यसित॥ । Griff. (The hymn of Ṛgd) - unfailing. Wil. (Rgd. S.)- exclusive aderers, Mac. D. (V. R.) - inexhaustible. M. W. in an inexhaustible manner. Grass. (Ṛgd)-unersehäpft (inexhaustible).

असश्चत: का शाब्दिक अर्थ है, जो अन्यत्र आसक्त न हो । प्रस्तुत मन्त्र में इसका अर्थ होगा केवल अश्विनों में आसक्त अर्थात् 'अनन्य भक्त' ।

रथम् - 'रमु क्रीडायाम्' अथवा 'गत्यर्थक रंह्' धातु, नपुंसकलिंग, ~~प्रथम पुरुष~~ द्वितीया, एकवचन । यास्क ने रथ को युद्धोपकरणों में प्रधान बताया है और अनेक प्रकार से इस शब्द की व्युत्पत्ति की है - ॥1॥ 'गत्यर्थक रंह्' धातु से ॥2॥ 'स्थिर्' धातु के द्वारा वर्ण विपर्यय से रथ शब्द बन सकता है । ॥3॥ 'रम्' धातु और 'स्था' धातु ॥जिसमें सुख से बैठा जाय॥ से भी की जा सकती है । ॥4॥ ध्वन्यर्थक 'रप्' या 'रस्' धातु । 'रमन्तेऽस्मिन्निति रथ:' । ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर रथ शब्द का प्रयोग ऐसे वाहन के रूप में हुआ है, जिसमें सुख से बैठकर गमन किया जाता है । Griff. (The hymn of Ṛgd), Wil. (Ṛgd. S.) - Car, Mac. D. (V. R.) - Car. M. W. - Chariot. Grass. (Ṛgd), Geld. (D. R) - Wagen (Car).

आ तस्थुः - 'आकर खड़े हो जाते हैं'। आ उपसर्ग पूर्वक, 'स्था' धातु लिट् लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन। परोक्षभूत में स्था धातु का प्रयोग। सा० - आतिष्ठन्तीति, प्राप्नुवन्ति। स्कन्द०, वेंकट०, मुद्गल - आतिष्ठन्ति। Griff. (The hymn of Rgd.) - mounted. Wil. (Rgd.S.)- stand round (your car).

वचसम् - 'वचनों को', 'वच्' शब्द से 'अर्शआदित्वात्' मत्वर्थीय 'अच्' प्रत्यय। द्वितीया, एकवचन। सा० - न्यायोपेतेन वाक्येन। अन्यत्र - ऋ० सं० (1/76/4) - स्तोत्रेण स्तुतः, (7/37/6) - वचोरूपं स्तोत्रम्, (8/86/1) - स्तुतेः सम्बन्धिनौ, (10/151/1) - वचनेन स्तोत्रेण। स्कन्द०, वेंकट-शब्दम्। मुद्गल-न्यायोपेतेन वाक्येन युक्तम्। Griff. (The hymn of Rgd.) - eloquent. Wil. (Rgd. S.) - words.
यहाँ उपदेशात्मक वाक्य के अर्थ में प्रयुक्त। M.W. - speech. Mac. D.(V.R.)- speech.

धियः - यज्ञादि कर्मों में लगे हुए स्तोताओं। 'ध्यै चिन्तायाम्' धातु 'क्विप् च' से 'क्विप्' प्रत्यय, 'चशब्देन दृशिग्रहणानुकर्षणात् संप्रसारणम्' से धी बना। ध्यायन्तीति धियः। धी शब्द, प्रथमा, बहुवचन। सा०-स्तोतारः। अन्यत्र - ऋ० सं० (1/23/3) - कर्मणः बुद्धेर्वा, 'सावेकाच०' इति ङस् उदात्तत्वम् 'षष्ठ्याः पतिपुत्र०' इति संहितायां विसर्जनीयस्य सकारः। (1/3/12) - सर्वाण्यनुष्ठातुप्रज्ञानानि। (1/117/23) - सर्वाणि कर्माणि, (4/41/8) - स्तुतयः, (5/47/6) - स्तुतीः, (9/19/2) - अस्मदीयानि कर्माणि, (10/7/4) - स्तुतयः स्कन्द०, वेंकट - यजमानानाम्। मुद्गल - ध्यातॄन् विशिष्टज्ञानोपेतान् Griff. (The hymns of Rgd) - thought.
(ग्रिफित महोदय ने केवल चिन्ता के अर्थ में ही धियः शब्द का प्रयोग किया है, वस्तुतः धियः का शाब्दिक अर्थ तो बुद्धि है। उनके अनुसार धियः का अर्थ होगा

चिन्तन में लीन रहने वाला यजमान॥ । Will. (Ṛgd.S.) - pious. Mac. D. (V.R.) - thought. M.W. - thought or devotion. Grass.(Ṛgd.)- andacht (pious), Geld.(D.R.) - heiligen (image of a saint). प्रस्तुत मन्त्र में 'धियः' भाव अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । इसका अर्थ यहाँ पर, विशिष्ट ज्ञान सम्पन्न, ध्यान करने वाले स्तोता के संदर्भ में लिया गया है ।

अ॑वथः - 'रक्षा करते हो' 'अव रक्षणे' धातु, लट् लकार, मध्यम पुरुष, द्विवचन ।

सा० मुद्गल - रक्षथः । अन्यत्र - ऋ० सं० ॥5/63/1॥ - रक्षथः ॥5/86/1, 7/69/4, 8/22/10॥ - रक्षथः । स्कन्द० - गच्छथः । निरुक्तकार यास्क ने 'अव धातु' को गत्यर्थक माना है, 'अवतिर्गत्यर्थः' ॥तु निघ० 2/14॥. Griff. (The hymns of Ṛgd.)-help, Wil. (Ṛgd.S.) - M.W. - defend. Mac. D. (V.R.) - help.

क॑र्मन् - 'कर्मों में' कर्म शब्द, 'सुपांसुलुक्०' सूत्र से सप्तमी का लोप, 'नङि.संबुद्ध्योः' से न् का लोप नहीं हुआ है । सा०, स्कन्द, मुद्गल - कर्मणि । Griff. (The hymns of Ṛgd.)-further holy acts, Wil.(Ṛgd.S.)- engaged in acts, M.W.-acts, Grass.(Ṛgd.)-Werk (Work), Geld.(D.R.)- handlung (action). Mac. D. (D.R.)- work.

इ॑ष्टये - 'यज्ञ के अर्थ में प्रयुक्त', 'इषु इच्छायाम्' धातु से 'क्तिन्' प्रत्यय करने पर इष्टि शब्द बना । इष्टि शब्द के चतुर्थी एकवचन का रूप है । 'इषु इच्छायाम्' धातु से उत्पन्न इष्टि शब्द का अर्थ यज्ञ इसलिए है, क्योंकि यजमान यज्ञ के द्वारा ही अपनी इच्छाओं की पूर्ति करता है । लक्षणा के द्वारा इष्टि शब्द का याग अर्थ ही अधिक प्रचलित हो गया है । सा०, मुद्गल - भागार्थं प्रवृत्तान् । अन्यत्र - ऋ० सं० 1/57/2, 1/113/5-6, 1/129/4, 6/70/4, 7/92/3, 8/38/4॥ - यागाय, ॥1/30/12, 10/36/6॥ - अभिलषितार्थम् । स्कन्द - यागात्मनः ।

वेंकट - अभिलषिताय । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - hely acts, Wil. (Ṛgd. S.) - acts of worship, M.W. - Worshipped with sacrifices, Mac. D. (V.R.) - sacrifice. Grass. (Ṛgd.) - meilgen werk (holy work), Geld. (D.R.) - heiligen handlung (holy action).
यहाँ 'यज्ञ' अर्थ ही समीचीन है ।

3. युवं तासां दिव्यस्य प्रशासने युवम् । तासाम् । दिव्यस्य । प्रऽशासने
विशां क्षयथो अमृतस्य मज्मना । विशाम् । क्षयथः । अमृतस्य । मज्मना ।
याभिर्धेनुमस्वं? पिन्वथो नरा याभिः । धेनुम् । अस्वम् । पिन्वथः । नरा
ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ताभिः । ऊँ इति । सु । ऊतिऽभिः । अश्विना
आ गतम् ।।

अन्वय - नरा! दिव्यस्य अमृतस्य मज्मना, युवं तासां विशां प्रशासने क्षयथः ।
याभिः अस्वं धेनुं पिन्वथः । ताभिः ऊतिभिः अश्विना! सु आ गतम् ।

अनुवाद - हे नेताओं (अश्विनौ)! दिव्य (सोमरसरूपी) अमृत के बल से तुम दोनों उन प्रजाओं का शासन चलाने में समर्थ होते हो । जिन (रक्षाओं) के द्वारा (शयु नामक ऋषि की) दूध न देने वाली गाय को दुधारू बना दिया । उन्हीं रक्षाओं के साथ हे अश्विनौ ! हमारे समीप भली-भाँति आओ । (सायण ने 'युवं तासां विशां प्रशासने क्षयथः' का एक दूसरा अर्थ विकल्प से ग्रहण किया है । वह इस प्रकार है - असाधारण बल के द्वारा तुम लोग प्रजा के लिए अलौकिक, द्युलोक में उत्पन्न सोम रूपी अमृत की वर्षा करते हो) ।

दिव्यस्य - 'द्यौ अवखण्डने' धातु, 'यत्' प्रत्यय, षष्ठी एकवचन । सा० - दिवि-
भवस्य स्वर्गे समुत्पन्नस्य । अन्यत्र - ऋ० सं० (1/144/6) - दिवि
भवस्य देवादेः विद्युदात्मना वृष्ट्यर्देवा, (6/22/9) - दिवि भवस्य । स्कन्द -
दिव्य, इन्होंने दिव्य शब्द को उत्कृष्टता का वाचक माना है, 'देवशब्दोऽत्रात्य-
न्तोत्कृष्टवचन' वेंकट - देवगणस्य । Griff. (The hymns of Rgd.)-heavenl
Wil. (Rgd.S.) - celestial, Mac.D. (V.R.)- Coming from heaven,
divine, N.w.-Celestial or divine. Grass. (Rgd.), Geld. (D.R.)-
himmlischen (celestial).
'दिव्य' का अर्थ है द्युलोकसम्बन्धी, अलौकिक । यहाँ 'दिव्य' शब्द अमृत का
विशेषण है । द्युलोक में उत्पन्न होने के कारण अमृत (सोम रस) को दिव्य विशेषण
से विभूषित किया गया है ।

प्रऽशासने - 'शासन चलाने में' 'प्र' उपसर्ग, 'शासु' धातु 'ल्युट्' प्रत्यय, सप्तमी
एकवचन । प्रकृष्ट रूप से शासन करने के अर्थ में प्रयुक्त । सा० -
प्रकृष्टानुशासने शिक्षणे । स्कन्द० - अनुशासने वचने । वेंकट - प्रशासने । सात्व-
लेकर (ऋग्वेद का सुबोध भाष्य) - राज्य शासन चलाने के लिए । Griff. (The
hymns of Rgd.)-supreme dominion, Wil. (Rgd.S.) - to rule over,
Mac.D. (V.R.) - to govern. M.W. - to give instruction, Grass.
(Rgd.)-machtgebiet. (authoritative order).

विशाम् - विश् शब्द के षष्ठी बहुवचन का रूप है । 'सावेकाच०' सूत्र से विभक्ति
को उदात्त हुआ है । सा०, मुद्गल - प्रजारूपाणाम् । अन्यत्र - ऋ०सं०
(1/65/5, 9/108/10) प्रजानाम् , (1/36/1) - प्रजारूपाणां, 'सावेकाच०' इति
विभक्तेरुदात्तत्वम् , (6/1/8) - ऋत्विग्यजमानलक्षणानाम् ,(7/7/4) - पतिर्विश्वस्य

पतिवाँ, ॥8/23/20॥ स्वामिनम् , ॥10/20/4॥ - यजमानमनुष्याणाम् ।
स्कन्द, वेंकट - मनुष्याणाम् । सात्त्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ - प्रजा । Griff.
(The hymns of Ṛgd.)-folk. Wil. (Ṛgd.S.) - (people of three world) beings. M.W. - people. Mac.D. (V.R.) - people.

वस्तुतः 'विश' शब्द कतिपय सन्दिग्ध आशय रखता है । राजा के सन्दर्भ में इसका आशय 'प्रजा' है । कहीं-कहीं पर जन अथवा समस्त जनता के एक उप-विभाजन के विशेष आशय में प्रयुक्त हुआ है । किन्तु ऐसा प्रयोग बहुत सामान्य नहीं है । कहीं पर इसका आशय यजमान भी देखा जाता है । यहाँ पर 'प्रजा' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है ।

क्षयथः - 'समर्थ होते हो' 'क्षि निवासगत्योः' धातु, लट् लकार, मध्यम पुरुष, द्विवचन।
सा० - ऐश्वर्यकमार्यम् । स्कन्द - निवसथः । वेंकट - वर्तते । मुद्गल-ईशाथे समर्थौ भवथः । सात्त्व० - ॥ऋ० का सु०भा०॥ - निवास करते हो । Griff.
(The hymns of Ṛgd.)-giveth you. Wil. (Ṛgd.S.)-able. Mac.D. (V.R.)- to possess. M.W.-to passess. Grass. (Ṛgd.), Geld. (D.R.)- stämme (grown vigorously).

अमृतस्य - न विद्यते मृतम् अस्मिन्निति अमृतम् । बहुव्रीहि होने से पूर्वपदप्रकृतिस्वर प्राप्त होना था, किन्तु 'नञ्सुभ्याम्' ॥पा०सू० 6/2/171॥ उसे बाधित कर, उत्तर पद पर अन्तोदात्त प्राप्त कराता है । इसे भी बाधित कर 'नञोजरमरमित्रमिताः' ॥पा०सू० 6/2/116॥ से उत्तर पर आद्युदात्त होता है । षष्ठी, एकवचन, पुल्लिंग । जो अमरणधर्मा हो उसे अमृत कहते हैं । यहाँ पर अमृत शब्द सोम रस के सन्दर्भ में प्रयुक्त हुआ है , क्योंकि सोम रस भी अमृतत्व गुण से युक्त पेय है । ऋग्वेद में अनेक स्थलों पर अमृत शब्द का प्रयोग तो हुआ है, परन्तु प्रसंगानुसार अर्थ परिवर्तित हो गया है । ऋ० सं० ॥1/13/5॥ में अमृत को घृत के

विशेषण के रूप में प्रयुक्त किया गया है 'अमृतसमानस्य घृतस्य' (1/43/9, तथा 1/122/11) - मरणरहितस्य, अमरणस्य, (6/7/7) अमरहेतोरुदकस्य । सा० - सोमस्य पानेनोत्पन्नेन । स्कन्द, वेंकट - अमृतस्य । मुद्गल - सोमस्यपानेनोत्पन्ने । Griff. (The hymns of Ṛgd.) Wil. (Ṛgd.S.) - nectar, Mac.D. (V.R.) - immortal. M.W.-spirituous liquor or nectar, Grass. (Ṛgd.)-unsterblichen (immortal).

सात्व० (ऋ० का सु०भा०) - अमृत । यहाँ 'सोम रस' के लिए प्रयुक्त है ।

मज्मना - मज्मन् शब्द के तृतीया एकवचन का रूप है । 'बल के द्वारा', मज्मन् शब्द बल का पर्याय है । निघ० (2/1) - 'मज्मना इति बलनाम' । सा० - बलेन युक्तौ, अन्यत्र - ऋ० सं० (1/112/4, 1/112/17, 2/1/15, 3/46/3, 9/110/9, 10/29/6) - बलेन । स्कन्द, वेंकट, मुद्गल - बलेन सात्व० (ऋ० का सु०भा०) - बल । Griff. (The hymns of Ṛgd.)-might, Wil. (Ṛgd.S.)-infused. M.W.-greatness. Mac.D. (V.R.)-greatness. Grass.(Ṛgd.)-macht kraft (mighty strength). Geld.(D.R.) - herrscherkraft (supreme strength).

धेनुम् - 'गाय को' 'धेनु' शब्द के द्वितीया एकवचन का रूप । धेनु शब्द का अर्थ सर्वत्र गाय ही ग्रहण किया गया है । यहाँ इसका तात्पर्य 'निवृत्त प्रसवा' गौ से है । अर्थात् ऐसी गाय जिसने दूध देना बन्द कर दिया है । सा०, स्कन्द० वेंकट, मुद्गल - गाम् । सात्व० (ऋ० का सु०भा०) - गाय Griff. (The hymns of Ṛgd.), Wil. (Ṛgd. S.) - Cow, M.W. - Cow. Mac.D. (V.R.) - Cow.

अ॒स्वम् - 'दूध न देने वाली' नास्तिः सूः अस्याम् इति अ॒सूः, 'षूङ् प्राणिगर्भ-
विमोचने' धातु से 'सवनं सूः' करने पर संपदादिलक्षण से भाव अर्थ में
'क्विप्' प्रत्यय, 'नञ्सुभ्याम्' से उत्तरपद अन्तोदात्त है । द्वितीया एकवचन ।
धेनुम् का विशेषण । सा० - प्रसवासमर्थाम् न सूयत् इत्यसूः ताम् अस्वम् ।
स्कन्द० - निवृत्तप्रसवामित्यर्थ । वेंकट - निवृत्तप्रसवाम् । सात्व० ‖ऋ० का
सु०भा०‖ - प्रसूत न हुई । Griff. (The hymns of Ṛgd.), Wil. (Ṛgd.S.)-
barren. M.W. - having no property. Mac.D. (V.R.)- poverty.
Grass. (Ṛgd.), Geld. (D.R.) - unfruchtbare (barren).

पि॒न्वथः - 'दुधारु बना दिया' 'पिविमिविसेचने' धातु, इदित्वात् नुम्, लट्
लकार, मध्यम पुरुष, द्विवचन, भौवादिकः । सा० - सिञ्चथः पयसा
पूरितवन्तावित्यर्थः । स्कन्द - पयः सेचितवन्तौ स्थः, दोहनप्रदानसमर्थां कृत-
वन्तौ स्थ इत्यर्थः । मुद्गल - पयसा पूरितवन्तावित्यर्थः । सात्व० ‖ऋ० का
सु०भा०‖ - पुष्ट करके अधिक दुधारु बनाना । Griff. (The hymns of Ṛgd.)-
give milk, Wil. (Ṛgd.S.) - gave milk, Mac.D. - yield abundance
or overflow. Geld. (D.R.) - milchreich (afluent milk).

प्रस्तुत प्रसंग में गाय के सन्दर्भ में प्रयुक्त होने के कारण इसका अर्थ केवल 'प्रचुरता'
न रहकर 'प्रचुर दुग्ध से पूरित करना' हो गया है । सामान्य रूप से पिन्व का
अर्थ प्रचुरता या अधिकता ही है ।

न॒रा - यह पद 'प्रसंगवश अश्विदेवों' को सम्बोधित करने के लिए, नेता के अर्थ में
प्रयुक्त हुआ है । तात्पर्य है प्राणियों का अग्रणी या नेतृत्व करने वाला ।
आमन्त्रित निघात है । वस्तुतः 'नरा' शब्द मनुष्यवाचक है । निघ० ‖2/3‖

और निरू0 (5/1/2) में नरा का अर्थ मनुष्य ग्रहण किया गया है 'नरा मनुष्या नृत्यन्ति कर्मसु' । सा0 - नेतारौ । स्कन्द0 - मनुष्याकारौ । वेंकट, मुद्गल- नेतारौ । सात्व0 - नेताओं । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - lords, Wil. (Ṛgd.S.) - leaders, M.W. - eternal spirit pervading the universe, Grass. (Ṛgd.) - beherrscht (master). Geld.(D.R.) - herren (lord or master).

अन्यत्र - ऋ0 सं0 (1/2/6) - पुरुषौ, 'सुपां सुलुक्0' (पा0सू0 7/39) इत्यादिना संबोधनद्विवचनस्य डादेशः । पदात्परत्वात् 'आमन्त्रितस्य0' (पा0सू0 8/1/19) इत्याष्टमिकनिघातः, (1/116/7, 1/117/2, 1/118/5, 1/182/8, 2/39/8, 3/58/6, 4/47/4, 5/49/1, 6/49/5, 10/40/1) - नेतारौ ।

4. याभिः परिज्मा तनयस्य मज्मना द्विमाता तूर्षु तरणिर्विभूषति । याभिस्त्रिमन्तुरभवद्विचक्षण - स्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥

याभिः । परिऽज्मा । तनयस्य । मज्मना । द्विऽमाता । तूर्षु । तरणिः । विऽभूषति । याभिः । त्रिऽमन्तुः । अभवत् । विऽचक्षणा । ताभिः । ऊँ इति । सु । ऊतिऽभिः । अश्विना । आ । गतम् ॥

अन्वय - परिज्मा तनयस्य मज्मना, द्विमाता याभिः तूर्षु तरणिः विभूषति, याभिः त्रिमन्तुः विचक्षणः अभवत् । ताभिः ऊतिभिः अश्विना! सु आ गतम् ।

अनुवाद - चारों ओर गमन करने वाला, पुत्र के बल से युक्त, दोनों लोकों ॥पृथ्वीस्थान और अन्तरिक्षस्थान॥ का मापन करने वाला अथवा दो माताओं वाला ॥वायु॥ जिन ॥रक्षाओं॥ के द्वारा तीव्र धावकों में सर्वाधिक तीव्र धावक के रूप में विभूषित होता है ॥अर्थात् चारों ओर व्याप्त होता है॥ जिन ॥रक्षाओं॥ के द्वारा त्रिविध ॥अतीत, अनागत और वर्तमान॥ ज्ञान से युक्त ॥कक्षीवान्॥ विशिष्ट ज्ञानसम्पन्न हो गया । उन्हीं रक्षाओं के साथ हे अश्विनौ! हमारे समीप भली-भाँति आओ ।

परिज्मा - 'इधर उधर गमन करने वाला', 'परि' उपसर्ग पूर्वक, 'अज् गतिक्षेपणयोः' धातु, 'श्वन्नुक्षन्' सूत्र से निपात हुआ॥ सा० - परितो गन्ता वायुः । स्कन्द० - सर्वतो गामी वायुः । वेंकट - परितो गन्ता वायुः । सात्व० - चारों ओर जाने वाला । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - Wanderer. Wil. (Ṛgd.S.) - circumanobient (wind). Geld. (D.R.) - Größe (course).
इधर उधर विचरण करने के अर्थ को प्रकट करने वाला 'परिज्मा' शब्द इस प्रसंग में वायु का पर्याय बन गया है ।, क्योंकि वायु भी चारों ओर विचरण करता है, सर्वत्र व्याप्त रहता है । 'परि' उपसर्ग का अर्थ है 'चारों ओर'। Mac. D. ने 'परि' का अर्थ 'round' ग्रहण किया है । Avestā में 'परि' का 'pairi' और Greek में 'περί' मिलता है ।

तनयस्य - तनय शब्द के षष्ठी एकवचन का रूप है । पुत्र के अर्थ में प्रयुक्त । सा०, मुद्गल - आत्मीयस्य, स्कन्द - अपत्यभूतस्य प्राणिजातस्य । वेंकट - आत्मपुत्रस्य अग्नेः । अन्यत्र - ऋ० सं० ॥1/100/11, 6/19/7॥ - पुत्रस्य, ॥7/82/9॥ - पौत्रस्य । ॥1/112/22॥ - धनस्य च तनयशब्द धनवाची । ऋग्वेद के केवल

इसी सूक्त में 'तनय' शब्द को धन का पर्याय माना गया है । Griff. (The hymns of Ṛgd.), Wil. (Ṛgd.S.) - Son, Mac.D. (V.R.) - descendant, M.W. - Son, Geld. (D.R.) - nachkommenschaft (posterity or descendants).

द्विऽमाता - 'दोनों लोकों का मापन करने वाला', द्वि पूर्वक, 'मा मापने' धातु से 'तृच्' प्रत्यय करने से द्विमातृ शब्द बना । प्रथमा, एकवचन। सा० - द्वयोर्लोकयोः निर्माता अग्निः पृथिवीस्थानो वायुरन्तरिक्षस्थानः उभयोर्मिलितयोः उभयनिर्मातृत्वमुत्पन्नं यद्वा द्विमातेति तनयस्य विशेषणम् यद्वा द्विमातृकस्य द्वाभ्यामरणिभ्यां जातस्य ।अन्यत्र - ॠ० सं० ॥1/31/2॥ - द्वयोः अरण्योः उत्पन्नं यद्वा द्वयोर्लोकयोः निर्माता, ॥3/55/6 तथा 3/55/7॥ में भी इसी अर्थ में प्रयुक्त । स्कन्द० - द्वयोः प्राणिजातयोः निर्माता अथवा उत्पादिके प्रकृति मातराविहोच्यते । तेद्वे यस्य एका ब्राह्मभ्यां सृष्टौ अन्या देवसृष्टौ स द्विमाता। वेंकट - द्वयोर्लोकयो निर्माता । सात्व० ॥ॠ० का सु०भा०॥ - दो माताओं से युक्त । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - two mothered son. Wil. (Ṛgd.S.) - The measurer of the two worlds (of heaven and earth). M.W. - having two mothers, born from two mothers or in two ways. Grass. (Ṛgd.) - Zwiegeborne (two fold birth).

'द्विमाता' शब्द का शाब्दिक अर्थ तो 'दो माताओं वाला पुत्र' है पर इसका एक दूसरा अर्थ भी है 'दो लोकों ॥पृथ्वी और अंतरिक्ष॥को मापने वाला । 'द्विमाता' अग्नि का विशेषण भी है , क्योंकि दो अरणियों के घर्षण से अग्नि उत्पन्न होती है । इसलिए इन दो अरणियों को अग्नि की दो माताएँ मानी गई हैं । यहाँ 'द्विमाता' वायु का विशेषण है और वायु पृथ्वी तथा अन्तरिक्ष को मापता है ।

व्याप्त करता है । कतिपय भाष्यकारों ने इसे 'दो माताओं वाले पुत्र' का विशेषण माना है । प्रसंगानुसार 'दो लोकों को मापने वाला' अर्थ ही युक्तिसंगत होगा । 'द्वि' शब्द का रूप अवेस्ता में 'dai' तथा ओल्ड पर्शियन में 'dwi' प्राप्त होता है ।

तूर्षु - 'तीव्र धावकों में' 'तॄ प्लवनतरणयोः' धातु, 'बहुलं छन्दसि' से 'उ' हुआ, 'हलि च' से दीर्घत्व को प्राप्त हुआ अथवा त्वरतेः क्विप्, 'ज्वरत्वर०' से वकार की उपधा को ऊठ् आदेश तथा 'सावेकाच०' सूत्र से विभक्ति का उदात्त । सा० - तरीतृषु धावत्सुमध्ये । स्कन्द० - त्वरन्तीति, स्कन्दस्वामी ने तूर्षु शब्द की उत्पत्ति 'तुर्वी हिंसायाम्' धातु से मानी है, 'तूर्षु इत्येतत्तूर्वति हिंसार्थस्य रूपम्, हिंस्येषु प्राप्नोति हिंस्यानसुरादीन् प्रति गच्छतीत्यर्थः । वेंकट - क्षिप्राणां प्रति मध्ये । सात्व० (ऋ० का तु०भा०) दौड़ने वाली में । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - mid the swift, Wil. (Ṛgd.S.) - Swift, Grass. (Ṛgd.) - siegreich sich in schlachten zeigt (तूर्षु तरणिः), Geld. (D.R.) - Wettkämpfen siegreich sich hervertut (Tūrshu Taraṇih).

तरणिः - 'सर्वाधिक तीव्र धावक के रूप में' 'तॄ प्लवनतरणयोः' धातु 'अर्तिसृभृधम्यश्यवितॄभ्योऽनिः' से 'अनि' प्रत्यय, प्रत्यय पर आद्युदात्त । निर्धारण के अर्थ में सप्तमी, एकवचन । तीव्रगमन की उच्चतम सीमा को सूचित कर रहा है । सा० - अतिशयेन तरिता शीघ्रगामी । अन्यत्र - ऋ० सं० (1/50/4) - तरिता अन्येन गन्तुमशक्यस्य महतोऽध्वनो गन्ता, √तॄ प्लवनतरणयोः, अस्मादन्तर्भावितण्यर्थात्, 'अर्तिसृभृधम्यश्यवितॄभ्योऽनिः' इति अनि प्रत्ययः, प्रत्ययाद्युदात्तत्वम् (10/88/16) - क्षिप्रकारी । निघ० (2/15) 'तरणिः इत्यपि क्षिप्रनाम', क्षिप्राणां मध्ये क्षिप्रः, अत्यन्तशीघ्रः इत्यर्थः । स्कन्द० - तुरः

क्षिप्रा उच्यन्ते । वेंकट० - क्षिप्राणाम् अपि मध्ये अतिशयेन क्षिप्रो । सात्त्व० ॥श्र० का सु०भा०॥ - आगे निकलने वाला । Griff. (The hymns of Rgd.), Wil. (Rgd.S.) - swiftest. Mac. D. (V.R.) - speeding onword. M.W. - moving forwards or quick.

त्रिऽमन्तुः - 'त्रिविध ॥अतीत, अनागत और वर्तमान॥ ज्ञान से युक्त', त्रि पूर्वक 'मन् ज्ञाने' धातु, 'तृच्' प्रत्यय करने से त्रिमन्तृ रूप बना। विभिन्न भाष्यकारों ने इसके अनेक अर्थ ग्रहण किये हैं । सा० - त्रयाणां मन्ता त्रिविधेषु पाकयज्ञहविर्यज्ञसोमयज्ञेषु आसादितज्ञानः । स्कन्द० - त्रयाणामतीतानागतवर्तमानानां ज्ञाता कक्षीवान् । वेंकट - त्रैकाल्यज्ञानात् । सात्त्व० ॥श्र० का सु०भा०॥ - तीन मनन साधनों वाला । Griff. (The hymns of Rgd.) - triple lare, Wil. (Rgd.S.) - The kinds of sacrifice. M.W.- offering three-fold advice.

यह पद कक्षीवान् नामक ऋषि के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है । ऋग्वेद संहिता में केवल इसी मन्त्र में इसका प्रयोग हुआ है ।

विऽचक्षणः - 'विशिष्ट ज्ञान से युक्त', 'वि' उपसर्गपूर्वक 'चक्ष्' धातु से 'अनुदात्तेतश्च हलादेः' सूत्र से 'युच्' प्रत्यय करने पर 'विचक्षणः' शब्द पुल्लिंग प्रथमा, एकवचन में निष्पन्न हुआ । सा० - विशिष्टज्ञानयुक्तः । अन्यत्र - ऋ० सं० ॥1/50/8॥ - सर्वस्य प्रकाशयति ॥1/101/7॥ - सूर्यात्मना प्रकाशमान इन्द्रः, विद्रष्टा सः (10|92|15) - विद्रष्टेन्द्रः। स्कन्द० - ॥9/12/4॥ - विद्रष्टाः, सर्वार्थानां च ज्ञातेव्यर्थः, पण्डितवचनो वा विचक्षणशब्दः, पण्डितश्चाभवत् । वेंकट० - विद्वान् सात्त्व० ॥श्र० का सु०भा०॥ - महान् विद्वान्। Griff. (The hymns of Rgd.)-sapient one, Wil. (Rgd.S.) - learned, M.W.-bright, Grass. (Rgd.)-Einsicht (one sighted), Geld.(D.R.)-hellschend (clear sighted).

यहाँ पर 'विशिष्ट ज्ञान सम्पन्न'

क्षिप्रा उच्यन्ते । वेंकट० - क्षिप्राणाम् अपि मध्ये अतिशयेन क्षिप्रो । सात्व० (ऋ० का सु०भा०) - आगे निकलने वाला । Griff. (The hymns of Rgd.), Wil. (Rgd.S.) - swiftest. Mac. D. (V.R.) - speeding onword. M.W. - moving forwards or quick.

त्रिऽमन्तुः - 'त्रिविध (अतीत, अनागत और वर्तमान) ज्ञान से युक्त', त्रि पूर्वक 'मन् ज्ञाने' धातु, 'तृच्' प्रत्यय करने से त्रिमन्तृ रूप बना। विभिन्न भाष्यकारों ने इसके अनेक अर्थ ग्रहण किये हैं। सा० - त्रयाणां मन्ता त्रिविधेषु पाकयज्ञहविर्यज्ञसोमयज्ञेषु आसादितज्ञानः । स्कन्द० - त्रयाणामतीतानागतवर्तमानानां ज्ञाता कक्षीवान् । वेंकट - त्रैकाल्यज्ञानात् । सात्व० (ऋ० का सु०भा०) - तीन मनन साधनों वाला । Griff. (The hymns of Rgd.) - triple lare, Wil. (Rgd.S.) - The kinds of sacrifice. M.W.- offering three-fold advice.

यह पद कक्षीवान् नामक ऋषि के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है । ऋग्वेद संहिता में केवल इसी मन्त्र में इसका प्रयोग हुआ है ।

विऽचक्षणः - 'विशिष्ट ज्ञान से युक्त', 'वि' उपसर्गपूर्वक 'चक्ष्' धातु से 'अनुदात्तेतश्च हलादेः' सूत्र से 'युच्' प्रत्यय करने पर 'विचक्षणः' शब्द पुल्लिंग प्रथमा, एकवचन में निष्पन्न हुआ । सा० - विशिष्टज्ञानयुक्तः । अन्यत्र - ऋ० सं० (1/50/8) - सर्वस्य प्रकाशयति (1/101/7) - सूर्यात्मना प्रकाशमान इन्द्रः, विद्रष्टा सः (10/92/15) - विद्रष्टेन्द्रः । स्कन्द० - (9/12/4) - विद्रष्टाः, सर्वार्थानां च ज्ञातेव्यर्थः, पण्डितवचनो वा विचक्षणशब्दः, पण्डितश्चाभवत् । वेंकट० - विद्वान् सात्व० (ऋ० का सु०भा०) - महान् विद्वान्। Griff. (The hymns of Rgd.)-sapient one, Wil. (Rgd.S.) - learn

M.W.-bright, Grass. (Rgd.)-Einsicht (one sighted), Geld.(D.R. hellschend (clear sighted).

यहाँ पर 'विशिष्ट ज्ञान सम्पन्न' अर्थ ही उचित होगा ।

5. याभी रेभं निवृतं सितमद्भ्य उद्वन्दनमैरयतंस्वर्दृशे
याभिः कण्वं प्र सिषासन्तमावतं
ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्

याभिः । रेभम् । निऽवृतम् । सितम् । अत्ऽभ्यः । उत् । वन्दनम् । ऐरयतम् । स्वः । दृशे । याभिः । कण्वम् । प्र । सिषासन्तम् । आवतम् । ताभिः । ऊँ इति । ऊतिऽभिः । अश्विना । आ । गतम् ।।

अन्वय – याभिः [ऊतिभिः] निवृतम् , सितम् , रेभम् [अपि च] वन्दनम् अद्भ्यः स्वः दृशे उत् ऐरयतम् । याभिः सिषासन्तम् कण्वम् प्र अवतम् । ताभिः ऊतिभिः अश्विना! आ गतम् ।

अनुवाद – जिन [रक्षाओं] के द्वारा जल में डूबे हुए और बंधे हुए रेभ तथा वन्दन [नामक ऋषियों] को जल से, प्रकाश को देखने के निमित्त ऊपर उठाया । जिन [रक्षाओं] के द्वारा आलोक की कामना करने वाले, कण्व की भलीभाँति रक्षा की । उन्हीं [रक्षाओं] के द्वारा हे अश्विनौ ! हमारे समीप भली भाँति आओ ।

टिप्पणी –

रेभम् – 'रेभ को' 'रेभृ शब्दे' धातु 'नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः' सूत्र से 'अच्' प्रत्यय, पुल्लिंग, द्वितीया, एकवचन । रेभ एक ऋषि का नाम है, जिन्हें असुरों ने जल से डुबो दिया था और अश्विनीकुमारों ने उन्हें जल से ऊपर उठाकर उनके प्राणों की रक्षा की । सभी भाष्यकारों ने रेभ शब्द को ऋषिनामवाची माना है । केवल मैक्डॉनल महोदय ने रेभम् का अर्थ 'singer' ग्रहण किया है ।

निऽवृतम् - 'जल में डूबे हुए' 'नि' उपसर्ग पूर्वक', 'वृञ् आवरणे' धातु से 'क्त' प्रत्यय, नपुंसकलिंग द्वितीया एकवचन । रेभम् का विशेषण । कर्म से निष्ठा' हुई । सा० - निवारितम्। स्कन्द० - नीचैः सम्भक्तं निमग्नमित्यर्थः, स्कन्दस्वामी ने √'वृञ् आवरणे' से नहीं, अपितु '√वृङ् सम्भक्तौ' से निवृत्तम् की उत्पत्ति मानी है । वेंकट० - तिरोहितम्। सात्व० (ऋ० का सु०भा०) - पूर्णरूप से डुबोये हुए । Griff. (The hymns of Rgd.) - Cast (फेंकना) Wil. (Rgd.S.) - cast. Mac.D. (V.R.) - √वृ 'to cover, Grass. (Rgd.) - verhüllt (to weil or to wrap up), Geld. (D.R.)- Gefesselten.

नितरां वृतम् इति निवृतम् । निवृतम् शब्द का अर्थ है 'पूरी तरह से आवृत', प्रस्तुत प्रसंग में जल के सन्दर्भ में प्रयुक्त होने के कारण इसका अर्थ 'जल से पूर्ण रूपेण आवृत अर्थात् जल में डूबा हुआ' होगा ।

सितम् - 'बँधे हुए' 'षिञ् बन्धने' धातु, 'क्त' प्रत्यय, द्वितीया एकवचन, रेभम् और वन्दनम् का विशेषण । सा० - पाशैर्बद्धम् । स्कन्द० - बद्धं च । वेंकट० बद्ध्वा । सात्व० - (ऋ० का सु०भा०) - बँधे हुए । Griff. (The hymns of Rgd.) - prisoned, Wil. (Rgd.S.) - bound, Geld. (D.R. Gefangnen (captured), Grass. (Rgd.) - Gebunden.

अत्ऽभ्यः - 'जल से' 'अड्डिदम्' सूत्र से विभक्ति पर उदात्त । पंचमी बहुवचन का रूप है । सा० - अप्सु सकाशात् । अन्यत्र - ऋ० सं० (1/34/6) - अन्तरिक्षसकाशादप्योषधानि, (1/80/2) - अन्तरिक्षसकाशात् । स्कन्द - हृदोदकात् । वेंकट० - हृदे

सात्व - ऋ0 का सु0भा0 - जलों से । Griff. (The hymns of Ṛgd.), (Ṛgd.S.) - water, M.W. - Water, Mac.D. (V.R.) - water, Geld. (D.R.) - wasser (water), Grass. (Ṛgd.) - fluten (flood or flow).

वन्दनम् - 'वन्दन को' वन्दते स्तौतीति वन्दनः, 'वदि अभिवादनस्तुतयोः' धातु 'नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः' से 'ल्युः' प्रत्यय, पुल्लिंग द्वितीया एकवचन । यह भी ऋषि का नाम है । 'लित् स्वर' के द्वारा प्रत्यय से पूर्व उदात्त हुआ । ऋग्वेद में वन्दन शब्द अनेक अर्थों में प्रयुक्त हुआ है - जैसे स्तुति करना, अभिवादन करना आदि । किन्तु इस मंत्र में वन्दन नामक ऋषि का उल्लेख किया गया है, इसलिए वन्दन शब्द यहाँ नामवाचक है ।

उत् ऐरयतम् - 'ऊपर उठाया' 'उत्' उपसर्ग पूर्वक 'ईर् गतौ' धातु, लंग लकार मध्यमपुरुष द्विवचन । सा0 - उद्गमयत् । अन्यत्र - ऋ0 सं0 1/7/3 - विशेषेण दर्शनार्थं प्रेरितवान् प्रकाशितवान् इत्यर्थः, √ईर् गतौ, व्यन्ताल्लङ् निघातः' 1/51/11 - विविधं प्रेरितवान्, 1/117/24 - उद्गमयतामित्यर्थः 1/118/6 - उदैरयतम्,उद्गमयतम् , 7/82/3 - अभ्युगमयतम् , 10/39/9 - उत्तारितवन्तौ स्थः । स्कन्द0 - उत्तारितवन्तावित्यर्थः । वेंकट0 - उत्तारितौ । सात्व0 ऋ0 का सु0भा0 - ऊपर उठाना ।

Griff. (The hymns of Ṛgd.) - raised, Wil. (Ṛgd.S.) - raised up, Geld. (Ṛgd.) - Heraushaltet (out of).

वैदिक प्रयोगों में बहुधा उपसर्गों का प्रयोग मूल शब्द से अलग हटकर स्वतन्त्र रूप से होता है । इसलिए उत् का प्रयोग ऐरमतम् पद के साथ नहीं हुआ है । परन्तु

जहाँ तक अर्थ का प्रश्न है, वह दोनों को एक साथ मिलाने से ही स्पष्ट हो रहा है । अतः 'उत् ऐरयतम्' का अर्थ है 'ऊपर उठाया' ।

स्वः - 'प्रकाश को', 'स्वः' शब्द के 'स्वरादिनिपातम्' ‖पा०सू० 1/1/37‖ सूत्र से अव्यय हो जाने से 'सुप्' का लोप हो गया है । सु पूर्वक, अर्तिः से विच्', गुणे यणादेशः, 'न्यङ्स्वरौस्वरितौ च' से स्वरित । सा० - आदित्यम्। अन्यत्र - ऋ० सं० ‖3/2/7‖ अन्तरिक्षम्। ‖4/3/11‖ - सूर्योऽपि, ‖5/44/2‖ - स्वर्गे, ‖9/4/2‖ - स्वर्गम् ‖10/20/2‖ - धुलोकमादित्यं सर्वं देवजातं वा । निरु० ‖2/4‖ - स्वरादित्यो भवति, सु अरणः, ईरणः, स्ववृतो रसान्, स्ववृतो भासं ज्योतिषाम्, स्ववृतो भासेति वा । स्कन्द० - सर्वं द्रष्टुं, सर्वजीवलोकम्। वेंकट० - आदित्यम्। सात्व० ‖ऋ० का सु०भा०‖ - प्रकाश । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - light, Wil. (Ṛgd.S.) - The sky, Grass. (Ṛgd.)-licht (light), Geld. (D.R.) - sonme (sun).

इस मन्त्र में 'स्वः' प्रकाश के अर्थ में प्रयुक्त है ।

दृशे - 'देखने के लिए' 'दृशे विख्ये च' धातु से तुमर्थे 'के' प्रत्यय, प्रत्ययान्त में निपात, चतुर्थी, एकवचन । सा० - द्रष्टुम् । अन्यत्र - ऋ० सं० ‖1/23/2‖ द्रष्टुम्, √दृशे विख्ये च' ‖पा०सू० 3/4/11‖ इति तुमर्थे निपात्यते, ‖6/29/3‖- सर्वेषां दर्शनार्थम्, ‖9/48/4‖ - स्वदृशे । स्कन्द० - द्रष्टुं पुनरनुभवितुमित्यर्थः । वेंकट० - द्रष्टुम्। सात्व० ‖ऋ० का सु०भा०‖ - दिखाने के लिए । Griff. (The hymns of Ṛgd.)-to look upon, Wil. (Ṛgd.S.)-beheld, M.W.-looking at, Grass. (Ṛgd.)-schaun (to show), Geld. (D.R.) - wieder zuschen (again to see or to look upon).

सिषासन्तम् - 'आलोक की कामना करने वाले' 'वन षण सम्भक्तौ' धातु से सनि, पुनः 'सनीवन्तर्ध0' सूत्र से विकल्प से इडभाव, 'जनसनखनां सञ्झलोः' से आत्व, द्विर्भाव से अभ्यास का ह्रस्व, 'सन्नियतः' से इत्व प्राप्त होने पर 'सिषासन्तम्' निष्पन्न हुआ। सा0 - आलोकं सम्भक्तुमिच्छन्तम्। स्कन्द0 - स्तुतिभिः संभक्तुमिच्छन्तं, स्तुतवन्तमित्यर्थः। वेंकट0 - वां संभक्तुम् इच्छन्तम्। सात्व0 (ऋ0 का सु0भा0) भक्ति करने की इच्छा करने वाले। Griff. (The hymn of Rgd.)-strove to win, Wil. (Rgd.S.) - longing. M.W. - Wishing to gain or obtain, Grass. (Rgd.) - Verlangenden (to long for), Geld. (D.R.) - vedienst ausgehenden.

अधिकांशतः 'सिषासन्तम्' के दो अर्थ देखे जाते हैं - (1) प्रकाश की कामना करने वाले, और (2) स्तुति करने की कामना करने वाले। इन दो अर्थों में प्रसंगानुसार पहला अर्थ ही अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है, क्योंकि पौराणिक कथा के अनुसार यह विदित होता है कि महर्षि कण्व को असुरों ने अन्धकार में फेंक दिया था। उन्होंने आलोक की कामना करते हुए अश्विनौ का स्मरण किया और अश्विनीकुमारों ने उन्हें अपनी रक्षाओं के द्वारा अन्धकार से बाहर निकाला था। एक दूसरी धारणा के अनुसार यह कहा गया है कि महर्षि कण्व नेत्रहीन थे, उन्होंने प्रकाश को देखने की कामना से अश्विनीकुमारों का स्मरण किया। अश्विनीकुमारों ने उन्हें नेत्र प्रदान किया। इन कथाओं के आधार पर 'प्रकाश की कामना करने वाले' (कण्व ऋषि) ही अर्थ समीचीन होगा।

प्र आवतम् - 'भली भाँति रक्षा की', 'प्र' उपसर्ग 'अव रक्षणे' धातु, लङ् लकार, मध्यमपुरुष, द्विवचन। सा0 - प्रकर्षेण अरक्षतम्। अन्यत्र - ऋ0सं0 (1/36/17) - प्रकर्षेण अरक्षतम्, (1/61/15) - प्रारक्षत् (1/47/5) - रक्षितवन्तौ (1/64/13, 1/112/7, 9, 12, 1/116/21) - अरक्षतम्। (7/83/4, 7/83/6) - प्रकर्षेणारक्षतम्। स्कन्द0 - अवतिरत्रगत्यर्थः, चक्षु प्रदानार्थं प्रकर्षेण गतवन्तौ

स्थः । वेंकट - प्ररक्षथुः । सात्त्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ - भलीभाँति सुरक्षित रखा गया था । Griff. (The hymns of Rgd.) - succoured, Wil. (Rgd.S.) - protected.

6. याभिरन्तकं जसमानमारणे भुज्युं	याभिः । अन्तकम् । जसमानम् । आऽअरणे
याभिरव्यथिभिर्जिजिन्वथुः ।	भुज्युम् । याभिः । अव्यथिऽभिः । जिजिन्वथुः ।
याभिः कर्कन्धुं वय्यं च	याभिः । कर्कन्धुम् । वय्यम् । च । जिन्वथः
जिन्वथस्ताभिरू षु ऊतिभिर-	ताभिः । ऊँ इति । सु । ऊतिऽभिः ।
श्विना गतम् ।।	अश्विना आ गतम् ।।

अन्वय - याभिः ॥ऊतिभिः॥ आरणे जसमानम् अन्तकं, याभिः अव्यथिभिः भुज्युं जिजिन्वथुः । याभिः कर्कन्धुं वय्यं च जिन्वथः । ताभिः ऊतिभिः अश्विना! सु आ गतम् ।

अनुवाद - हे अश्विनौ ! जिन ॥रक्षाओं॥ के द्वारा गहरे कूप में पीड़ित अन्तक को बाहर निकाला ॥उसकी रक्षा की॥, जिन निर्भीक प्रयासों के द्वारा ॥ ॥समुद्र में डूबे हुए॥ भुज्यु को सुरक्षित किया । जिन ॥रक्षाओं॥ के द्वारा कर्कन्धु और वय्य को प्रसन्न किया । उन्हीं रक्षाओं से युक्त होकर हे अश्विनौ ! हमारे समीप भली-भाँति आओ ।

टिप्पणी -

जसमानम् - 'पीड़ित' 'जसु हिंसायाम्' धातु, व्यत्यय से श्यम्, 'शानच्' प्रत्यय
द्वितीया, एकवचन । 'अन्तकम्' का विशेषण । सा० - तैर्हिंस्यमानम् । अन्यत्र - ऋ० सं० (7/68/8) - कर्मभिरुपक्षीयमाणाय । स्कन्द०, वेंकट० - निमज्जन्तम् । सात्व० (ऋ० का सु० भा०) - पीड़ित, Griff. (The hymns of Ṛgd.) - langushing (तड़पता), Wil. (Ṛgd.S.)-Cast, M.W.- to be exhausted. Grass. (Ṛgd.) - schmachtenden (to languish). S.V. (The Ety. of Yāska) - √ जस् 'to be tired' but the corresponding Indo-European Prototype gues means 'to extinguish'. Lithuanian - gésti 'to extinguish'.

आऽअरणे - 'गहरे कूप में' 'आङ्' उपसर्ग 'ऋ गतौ' धातु, 'ल्युट्' प्रत्यय ।
सप्तमी, एकवचन । सा० - अगाधं कूपादि । स्कन्द० - 'आरणशब्दोऽत्रागाधवचनः', यो अगाधेषु य आरणेषु, अगाधे अनादेये उदधे । वेंकट - अगाधे । मुद्गल - अगाधं कूपादि । सात्व० (ऋ० का सु० भा०) गड्ढा । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - deep in the pit, Wil. (Ṛgd.S.) - a deep pool. Grass. (Ṛgd.)-(deep) tiefe, Geld. (D.R.) - Grube (pit).
ऋग्वेद के केवल इसी मंत्र में प्रयुक्त ।

अव्यथिभिः - 'निर्भीक प्रयासों के द्वारा' न व्यथिः इति अव्यथिः, नञ् तत्पुरुष
समास, 'व्यथ् भयचलनयोः' धातु से 'अव्यथ्' शब्द निष्पन्न हुआ । तृतीया, बहुवचन । सा० - व्यथारहिताभिरूतिभिः । स्कन्द० - अभयरूपनिर्भयव्यावर्तिनी भिरुतिभि । वेंकट० - अकम्पिताभिः । सात्व० (ऋ० का सु० भा०) - अथक रक्षाओं के द्वारा । Griff. (The hymns of Ṛgd.) ~~- rescued.~~ unfailing help, Wil. (Ṛgd.S.) ~~- preserved.~~ inflicting no distress, M.W. - untroubled. ~~Grass. (Rgd.) - (secure) richern.~~

यहाँ 'निर्भीक प्रयासों के द्वारा' अर्थ ही समीचीन है ।

जिजिन्वथुः - 'सुरक्षित किया' 'जिवि: प्रीणनार्थः' धातु, लिट् लकार, मध्यम पुरुष, द्विवचन । सा० - युवमतर्पयतम् । स्कन्द० - समुद्राद्-उद्धारणेन प्रीणितवन्तौ स्थः । वेंकट० - ररक्षथुः । सात्व० ऋ० का सु०भा० - सुरक्षित करना । Griff. (The hymns of Rgd.) - rescued. Wil. (Rgd.S.) - preserved, Grass. (Rgd.) - (secure) sichern.

ऋग्वेद में केवल एक बार प्रयुक्त ।

कर्कन्धुं-वय्यं - ये दोनों ही राजर्षि थे । इन्हें अश्विनी कुमारों ने अमृत बूंदों से तृप्त किया था । कर्कन्धु ऋग्वेद में केवल अश्विनों के एक आश्रित का नाम है । यजुर्वेद संहिताओं और उसके बाद से यह शब्द 'बदरीक वृक्ष' (zizyphus,jujuba) और उसके फल के लिए सामान्य शब्द बन गया । बदरीक के लिए प्रयुक्त शब्द से इस शब्द की समानता से ऐसा प्रतीत होता है कि ऋग्वेद के समय में भी यह ज्ञात था, यद्यपि यहाँ बदरीक' का उल्लेख नहीं है । यहाँ कर्कन्धु नामवाची शब्द है ।

जिन्वथः - 'प्रसन्न किया' 'जिवि: प्रीणनार्थः' धातु, लट् लकार, मध्यमपुरुष, द्विवचन । शबादि विकरण से पित्, पित् से क्रियापद का निघात नहीं हुआ । सा० - प्रीणयथः।अन्यत्र - ऋ०सं० ।1/112/22। - रक्षथः, प्रीणयथः भौवादिक: इदित्वात् नुम् ; ।8/22/7। - प्रीणयथ ।6/49/11। - वृष्ट्या तर्पयन्त, ।8/7/21, 10/9/3। - प्रीणयथ । स्कन्द० - अमृतेन तर्पितवन्तौ स्थः । वेंकट० - रक्षथः । सात्व० ऋ० का सु०भा० - संभाला ।

सँभाला । Griff. (The hymns of Rgd.) - comferted, Wil. (Rgd.S.) relieved. Geld. (D.R.) - Comfort .

पुराकथा के आधार पर 'जिन्वथः' का अर्थ यहाँ पर 'प्रसन्न करना' ही उचित होगा ।

7. याभिः शुचन्तिं धनसां सुषंसदं तप्तं घर्ममोम्यावन्तमत्रये । याभिः पृश्निगुं पुरुकुत्समावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ।।

याभिः । शुचन्तिम् । धनऽसाम् । सुऽसंसदम् । तप्तम् । घर्मम् । ओम्याऽवन्तम् । अत्रये । याभिः । पृश्निऽगुम् । पुरुऽकुत्सम् । आवतम् । ताभिः । ऊँ इति । सु । ऊतिऽभिः । अश्विना । आ । गतम् ।।

अन्वय - याभिः धनसां शुचन्तिं सुसंसदम् । अत्रये तप्तं घर्मम् ओम्यावन्तम् । याभिः पृश्निगुं पुरुकुत्सम् आवतम् । ताभिः ऊतिभिः अश्विना! सु आ गतम् ।

अनुवाद - जिन (रक्षाओं) के द्वारा धन का दान करने वाले शुचन्ति को उत्तम गृह प्रदान किया । अत्रि के लिए तप्त और दीप्तिवान् अग्नि को सुखदायक बना दिया । जिन (रक्षाओं) के द्वारा पृश्निगु और पुरुकुत्स की रक्षा की। उन्हीं रक्षाओं के साथ हे अश्विनौ ! हमारे समीप भली भाँति आओ ।

टिप्पणी -

शुचन्तिम् - 'शुचन्ति को' 'शुच् दीप्तौ' धातु, 'औणादिक झिच्' प्रत्यय, पुल्लिंग, द्वितीया, एकवचन । शुचन्ति एक राजा का नाम है, जिसे अश्विनों के द्वारा विशेष सुरक्षा प्राप्त हुई थी ।

धनऽसाम् - 'धन का दान करने वाले को' 'धिवि प्रीणनार्थः' धातु से 'धन' शब्द बना तथा 'षणु दाने' धातु से 'जनसनखनक्रमगमो' सूत्र के द्वारा 'विट्', विट् के अनुनासिक से 'आत्व', द्वितीया एकवचन में 'धनसाम्' रूप निष्पन्न हुआ । सा० - धनस्य संभक्तारम्। अन्यत्र - ऋ० सं० ﴾1/112/16, 8/83/4﴿- धनं संभजमानम् । निरु० ﴾3/2﴿ - धिनोतीति सतः, धिनोतिस्तर्पणार्थः । स्कन्द० - धनानां दातारम्। वेंकट० - सर्वस्वस्य दातारम्। सात्व० ﴾ऋ० का सु० भा०﴿ - धन को बाँटने वाले । Griff. (The hymns of Rgd.) gave wealth. Wil. (Rgd. S.) = enriched. Mac. D. (V.R.) - इन्होंने धन का अर्थ wealth और money ग्रहण किया है । M.W. - desire for riches or hope of gaining wealth. Grass. (Rgd.) - Schatz (treasure) Geld. (D.R.) - Scätzegewinner (profit or gain).

धन सबको तृप्त करता है इसलिए प्रीणनार्थक, तृप्यार्थक 'धिवि' धातु से 'धन' शब्द बनता है । यहाँ 'धन का दान करने वाला' अर्थ ही उचित है । यह शुचन्तिम् का विशेषण है ।

सुऽसंसदम् - 'शोभन गृह' संसीदन्त्यस्मिन्निति संसत्, शोभना संसदमिति सुषंसदम्। 'सु' और 'सम्' उपसर्ग पूर्वक, 'सद्' धातु से 'घञ्' प्रत्यय करने पर नपुंसकलिंग प्रथमा, एकवचन में सुषंसदम् रूप निष्पन्न हुआ । 'नञ्सुभ्याम्०' से उत्तर पद के अन्त में उदात्त । सु उपसर्ग को अवग्रह के द्वारा सूचित किया गया है । सा० - गृहम् । अन्यत्र - ऋ० सं० ﴾9/68/8﴿ - शोभनं संसदनम्। निघण्टु

॥3/4॥ - 'सद्म इति गृहनामानि', निघण्टु में भी सद्म् को गृह का पर्याय माना गया है । इसलिए 'सुषंसदम्' का अर्थ होगा 'शोभन गृह' । स्कन्द० - शोभन-सभम् । वेंकट० - शोभनसहासनम् । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ - उत्तम रहने योग्य घर । Griff. (The hymns of Rgd.) - happy home, Wil. (Rgd.S.) - handsome habitation.

Latin में 'सद्' धातु का रूप 'Sīdo' प्राप्त होता है ।

तप्तम् - 'गर्म' 'तप् संतापे' धातु, नपुंसकलिंग द्वितीया, एकवचन। अग्नि का विशेषण । सा०, मुद्गल - प्रवृन्जनेन संतप्तम् । अन्यत्र - ऋ० सं० ॥1/118/9॥ - अग्निम् । स्कन्द० - अग्निं प्रति । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ गर्म । Griff. (The hymns of Rgd.) - fiery, Wil. (Rgd.S.) - scerching, Mac.D. (V.R.) - heated, M.W.-heated or inflamed. Grass. (Rgd.) - heisser (hot), Geld. (D.R.) - heibe (heathen). Latin-tepēre (hot). Assyrean - 'pefian' (be warm).

ओम्याऽवन्तम् - 'सुखदायक बना दिया', √अवते अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते', 'मनिन्' प्रत्यय, 'ज्वरत्वर०' से वकार की उपधा को 'ऊठ्', फिर उसका गुण, 'छन्दसि च' से 'य' प्रत्यय 'नस्तद्धिते' से 'टि' का लोप, 'ये चाभावकर्मणोः' से प्रकृतिभाव में व्यत्यय से परिवर्तन न होने से 'ओम्यावन्त' शब्द बना । द्वितीया एकवचन । सा० - सुखयुक्तं सुखेन स्प्रष्टुं शल्यमकुरुतम् । स्कन्द० - पालनवन्तं युष्मत्प्रसादात् शीतीभूतम् , स्कन्दस्वामिन् ने √अवतेः पालनार्थम् से 'ओम्यावन्तम्' की व्युत्पत्ति को स्वीकारा है । वेंकट - संशमय्य पालवन्तम् । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ - शान्त बना दिया । Griff. (The hymns of Rgd.) -

Wil. (Ṛgd.S.) - pleasurable. M.W. - Favourable (अनुकूल),
Grass. (Ṛgd.) - linderung (alleviated).

ऋग्वेद में केवल इसी मन्त्र में प्रयुक्त हुआ है ।

अत्रये - 'अत्रि के लिए' 'अद् भक्षणे' धातु से 'अदेस्त्रिनि च' ऊ०सू० 4/508 से औणादिक 'त्रिनि' प्रत्यय करने से अथवा अदस्त्रायन्ते इति अत्राः, 'आतोऽनुपसर्गे कः' से 'क' तथा मत्वर्थीय 'इनि' प्रत्यय करने पर चतुर्थी एकवचन में अत्रये रूप निष्पन्न होगा । अत्रि प्राचीन काल के द्रष्टाओं में से एक हैं, जिनका ऋग्वेद में बहुधा उल्लेख मिलता है । S.V. (The ety. of Yāska, Pg.100) - name of a Sage' is traced to: (1) अत्र 'here'. In the legend about him, an inquiry was made, where to find अत्रि and the reply came 'here go to the third' or (2) न + त्रयः 'not three, but the fourth sage' (in a similar legend about him). Prof. Fatah Singh (The Vedic etymology) -

(1) √अद् 'to eat' 'one who eats everything' means Agni Vāk.

वागेवात्रिर्वाचा ह्यन्नमद्यतेऽत्तिर्हि वै नामैतद्यदत्रिरिति सर्वस्यात्ता भवति ॥श० ब्रा० 14/6/2-6, बृह० उप० 2/3/4, तै० आ० 9/8, अथर्ववेद 4/21/3॥ ।

॥2॥ √त्राय 'to protect' Prana who protects from all the sins.

॥3॥ 'अत्र' 'one who is here तद्वैतद्देवाः । रेतः ॥वाचः सकाशात्पतितं गर्भं॥ चर्मन्वा यस्मिन्वा बभूस्तद्धस्म पृच्छन्त्यत्रैव त्वा इदिति ततोऽत्रिः सम्बभूव ।

प्रो० फतह सिंह ने तीनों व्युत्पत्तियों की विस्तृत व्याख्या इस प्रकार

की है - On the strength of the myths it seems to be probable that originally Atri was 'eater' and symbolized the flames of fire that consumed everything besides darkness, disease and demons. It seems reasonable to conclude that 'Atri' originally represented the "Fire in the house", probably because by it the house holder ate his food. the notion of the fire as 'eating or consuming everything' might have been attached to it next and when this fire became identical with sacrificial fire and Consequently with celestial fire (Dawn-fire) it became, like all other names of Agni, a regular name of a luminous phenomenon.

Thus the word 'Atri' may claim a very heavy antiquity for संस्कृत √अद् from which it has been above derived is widely spread in different languages. Latin - edo Greek-edo. German-essen-English-eat, Lithuanian - edmi, Gothic-At, Zend-Ad.

But there seems to be another derivation (from Atra) claiming the same antiquity. The word Atra might originally be taken to mean "A shelter, the negation of Tra". It may be recalled that in the life of the primitive savage, fire was chief factor that made a place 'A-tra' (no fear or no injury i.e. shelter. It is therefore but natural that a place containing fire which was Atra (injuryless) could be considered a place of a shelter.

Later 'Atra' meaning 'here' (probably because nearness meant a motion towards one's ownself or one's house) was also thought to be at the root of Atri.

The derivation from 'त्रि' with 'अ' also might be taken as coherent and clear, if we adopt the view of Vaidika Darshan (P.P. 189-190).

प्रो0 फतह सिंह ने 'अत्रि' को अग्नि के साथ समीकृत करने का प्रयास किया है । परन्तु यहाँ पर अत्रि का अर्थ अग्नि नहीं है । यहाँ अत्रि का उल्लेख अश्विनों के एक आश्रित के रूप में है । ऋग्वेद में भी अत्रि को प्रमुखतः अश्विनों के एक आश्रित के रूप में व्यक्त किया गया है । इनकी विशिष्ट पुराकथा भी अश्विनों के ही साथ सम्बद्ध है । बर्गेन[1] का मत भी अत्रि को अग्नि का रूप मानने में ही निहित है । उनका तो यहाँ तक विचार है कि यद्यपि अत्रि एक पुरोहित बन गया है , तथापि मूलतः यह अग्नि के ही किसी रूप का द्योतक था । प्रस्तुत मन्त्र में 'अत्रि' अश्विनों के आश्रित, ऋषि का वाचक है ।

पृश्निऽगुम् - 'पृश्नयो नानावर्णा गावो यस्य स पृश्निगुम्' । पृश्नि शब्द अनेकार्थक है । निरुक्त के अनुसार पृश्नि आदित्य और पृथ्वी का भी वाचक है । आदित्य को 'पृश्नि' इसलिए कहा गया है क्योंकि शुभ्र वर्ण आदित्य को व्याप्त किये रहता है, चन्द्रादि की कान्ति को छूने वाला है, और कान्ति से सब ओर से स्पृष्ट है । द्युलोक को पृश्नि इसलिए कहते हैं क्योंकि यह भी चन्द्रादि

---

1. Bergain-La Religion Vedique. Pages 2.467-72.

नक्षत्रों और पुण्यात्माओं से संयुक्त है । 'पृश्नादित्यो भवति, अथ द्यौः, संस्पृष्टा ज्योतिर्भिः पुण्यकृद्भिश्च' - निरु० ॥2/4॥ 'गो' शब्द भी वेदों में अनेकार्थक है । निरु० ॥2/2॥ में 'गो' शब्द के विभिन्न अर्थ दिये गये हैं जैसे - 'गौरिति पृथिव्या नामधेयम्, अथापि पशु नामेह भवत्येतस्मादेव, अथापि चर्म च श्लेष्मा च, अथापि आदित्योऽपि गौरुच्यते, अथाप्यस्यैको रश्मिरपि गौरुच्यते, स्नाव च श्लेष्मा च, ज्यापि, सर्वेऽपि रश्मयो गाव उच्यन्ते । उपर्युक्त अर्थों को देखते हुए 'पृश्निगुम्' शब्द के तीन अर्थ हो सकते हैं - ॥1॥ श्वेत या शुभ्र किरणों वाला अथवा ॥2॥ चितकबरी गायों वाला ॥3॥ इसके अतिरिक्त 'पृश्निगुम्' एक नामवाचक शब्द भी है । पृश्निगुम् एक ऐसे व्यक्ति का नाम है, जिसका ऋग्वेद में पुरुकुत्स और शुचन्ति के साथ अश्विनौ के आश्रित के रूप में उल्लेख हुआ है । सम्भवतः यह शब्द केवल पुरुकुत्स की एक उपाधि मात्र है । गेल्डनर ने ऋग्वेद के एक स्थान पर इसे एक जाति के लोगों के नाम का द्योतक माना है । किन्तु यह सम्भव नहीं है । 'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य०' ॥पा०सू० 1/2/48॥ से 'गो' शब्द का ह्रस्व होने पर, पुल्लिंग द्वितीया एकवचन में 'पृश्निगुम्' रूप निष्पन्न हुआ । मंत्र में यह नामवाची पद है ।

8. याभिः शचीभिर्वृषणा परावृजं	याभिः । शचीभिः । वृषणा । पराऽवृजम् ।
प्रान्धं श्रोणं चक्षस एतवेकृथः ।	प्र । अन्धम् । श्रोणम् । चक्षसे । एतवे । कृथः ।
याभिर्वर्तिकां ग्रसितामुमुंचतं	याभिः । वर्तिकाम् । ग्रसिताम् । अमुंचतम् ।
ताभिरु षु ऊतिभिरश्विना	ताभिः । ऊँ इति । ऊतिऽभिः । अश्विना ।
गतम् ॥	सु । आ गतम् ॥

अन्वय - वृषणा । याभिः शचीभिः परावृजम् अन्धं चक्षसे प्र कृथः, श्रोणम् एतवे प्र कृथः । याभिः ग्रसितां वर्तिकाम् अमुंचतम् । ताभिः ऊतिभिः अश्विना ।

सु आ गतम् ।

अनुवाद - हे कामना सेचक ॥अश्विनौ॥ ! जिन कर्मों के द्वारा परावृज ॥नामक पंगु ऋषि॥ को तथा अन्धे ॥ऋज्राश्व नामक ऋषि॥ को दृष्टि सम्पन्न किया, श्रोण को चलने योग्य बना दिया । जिन ॥रक्षाओं॥ के द्वारा ॥वृक के द्वारा॥ ग्रस्त पक्षी को मुक्त किया । उन्हीं रक्षाओं के साथ हे अश्विनौ ! हमारे समीप भली-भाँति आओ ।

शची॑भिः - 'कर्मों के द्वारा', 'शची' शब्द, स्त्रीलिंग तृतीया, बहुवचन 'शार्ंग-रवादिडीनन्तः' ॥पा० सू० 4/1/73॥ से आद्युदात्त । सा० - प्रज्ञाभिः कर्मभिर्वा । अन्यत्र - ऋ० सं० ॥1/30/15॥ - कर्मणिः शक्तोचितव्यापार-विशेषैः, ॥1/116/22, 1/117/13, 1/118/6॥ कर्मभि । निघण्टु ॥2/1॥ - 'शचीति कर्मनाम' । स्कन्द० - प्रज्ञाभिः कर्मभिर्वा । वेंकट० - मुद्गल - कर्मभिः । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ शक्तियों से । Griff. (The hymns of Rgd.) - powers, Wil. (Rgd.S.) - aids, Grass. (Rgd.) - Kräften (strength), Geld. (D.R.) - Kunsten (Skill).

'शची' का एक दूसरा अर्थ है 'प्रज्ञा' । निघ० ॥3/9॥ - 'शचीति प्रज्ञानाम्', इसी के आधार पर स्कन्दस्वामिन् तथा सायणाचार्य ने विकल्प से 'प्रज्ञा' अर्थ ग्रहण किया है । प्रसंगवश 'कर्म' अर्थ ही यहाँ समीचीन है ।

वृषणा - 'कामना सेचक' 'वृषु सेचने' धातु से 'कनिन्युवृषि०' सूत्र से 'कनिन्' प्रत्यय, 'सुपां सुलुक्०' से आकार तथा 'वा षपूर्वस्य०' सूत्र के द्वारा विकल्प से उपधा को दीर्घ हुआ । सा० - कामानां वर्षितारौ । अन्यत्र - ऋ० सं० ॥1/93/1, 1/108/3, 1/117/3, 6/62/7, 7/70/7, 10/39/1॥ -कामानां

(8/22/7)- वृषणौ, धनानां सेक्तारौ। स्कन्द०, वेङ्क०- वर्षितारौ,
वर्षितारौ, मुद्गल - कामानां वर्षितारौ । सात्व० ॥०का सु०भा०॥ - बलवान्
Griff. (The hymns of Rgd.) - mighty, Wil. (Rgd.S.) - showerers
of benefits, Mac.D. (V.R.) - bull, M.W. - raining sprinkling.
Geld. (D.R.)- Bullen (bull). F.S. (The V. Ety.) -
वृषन् - (1) The sprinkler, (2) The bull from √ Vrs. 'to sprinkle' to rain, वृष्णः, सोमस्य वृष्णा वृषेथाम् (A.V. 7/60/2)

(3) The sun, sprinkling rays (S.B. 14/3/1/26, cf. R.V. 38/22, R.V. 2/12 J.V.B. 1/28/2).

(4) Indra, causing rain etc. (T.M.B. 9/4/3/ S.B. 1/4/1/33).

(5) Agni, sprinkling heat through flames (S.B. 1/4/1/29, B.V. 3/27).

(6) Sacrificial ladel sprinkling ghee (S.B. 1/4/4/3).

(7) Mind, sprinkling ideas (S.B. 1/4/4/3).

'वृषणा' शब्द अश्विनौ के सम्बोधन के रूप में प्रयुक्त है। इसके दो अर्थ हो सकते हैं - ॥1॥ कामना सेचक अर्थात् सभी की कामनाओं को पूर्ण करने वाले और ॥2॥ बलशाली। यहाँ दोनों अर्थ ही युक्तिसंगत हैं। अश्विनी कुमारों ने परावृज्, ऋज्राश्व और श्रोणादि ऋषियों के अंग जनित दोषों को दूर करके उनकी कामनाओं की पूर्ति की और अपने पराक्रम के बल से पक्षी को वृक के ग्रास से मुक्त भी किया। सम्बोधन पद होने के कारण निघात हो गया है।

पराऽवृजम् - 'परावृज को' 'वृजी वर्जने' धातु, 'क्विप् च' से क्विप्, कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरत्व, 'परावृणक्ति तपसा पापं विनाशयतीति परावृक्'। परावृज् ऋषि का नाम है। ऋग्वेद में यह कथा वर्णित है कि परावृज् ऋषि की

जंघाये छिन्न हो गई थी और वे मृतप्राय पड़े थे । अश्विनीकुमारों ने उन्हें अंग प्रदान कर पुनः चलने योग्य बनाकर, नया जीवन दिया था ।

अन्धम् – 'अन्धे को' 'नञ्', 'ध्यै चिन्तायाम्' धातु, 'असुन्' प्रत्यय, पुल्लिंग द्वितीया, एकवचन । सा० – दृष्टिरहितं सन्तम्। अन्यत्र – ऋ० सं० (1/116/16, 2/13/12, 4/4/13, 4/30/19, 10/25/11) – दृष्टिहीनम्। स्कन्द० वेंकट० – अन्धम्। मुद्गल – दृष्टिहीनम्। सात्त्व० (ऋ० का सु०भा०) – अन्धे को । Griff. (The hymns of Rgd.). Wil. (Rgd.S.), M.W., Mac.D. (V.R.) – blind, Grass. (Rgd.), Geld. (D.R.) – blinden (blind).

'अन्ध' का एक दूसरा अर्थ अन्न भी है । निघ० (2/7) में अन्न के अट्ठाइस नामों में 'अन्धः' सर्वप्रथम परिगणित है, 'अन्धमिति अन्ननाम'। निरुक्तकार यास्क का कहना है – 'अन्ध इत्यन्ननामाध्यानीयं भवति । आध्यानीयं भवति तस्मादन्धः इत्युच्यते । अन्नं हि सर्वेषां आध्यानीयं प्रार्थयितव्यं भवति' (निरु० 5/1/6) । अर्थात् अन्न सबसे चिन्तनीय है, प्राणिमात्र को अन्न की चिन्ता और ध्यान बनी रहती है । सभी इसे चाहते हैं । इसलिए अन्न को 'अन्ध' कहा जाता है और 'ध्यै चिन्तायाम्' धातु से इसकी व्युत्पत्ति होती है । किन्तु यहाँ 'दृष्टिहीन' अर्थ ही संगत है ।

श्रोणम् – 'श्रोण को' 'श्रोणृ श्रवणे' धातु से निष्पन्न, पुल्लिंग, द्वितीया, एकवचन । सा० – विगुणजानुकमेव, एवं सन्तम् ऋषिम्। अन्यत्र – ऋ० सं० (2/13/12, 4/30/19, 10/25/11) – विगुणजानुकमेव । स्कन्द० – बधिरं च नार्षदम् । वेंकट० – पंगुम् । मुद्गल – विगुणजानुकम्। सात्त्व० (ऋ० का सु०भा०) लँगड़े को । Griff. (The hymns of Rgd.) – lame, Wil. (Rgd.S.) – Cripple SHROṆA, Grass. (Rgd.) – lahmen (lame or paralysed).

यहाँ ऋषि का नामवाचक पद है । श्रोण ऐसे ऋषि का नाम है, जिनके दोनों घुटने

टूट चुके थे।अश्विनीकुमारों ने उन्हें पुन: चलने योग्य बना दिया।¤ कुछ भाष्यकारों ने इसका अर्थ 'बधिर' भी ग्रहण किया है । परन्तु प्रस्तुत मन्त्र में 'श्रोणम्' शब्द ऐसे ऋषि का वाचक है जो पंगु थे । F.S. (The V.Ety.) - Heap collection from √ Śroṇ or √ Slon 'to be collected or heaped together',
'यदश्लोणात् तच्छ्रोणा' T.B. 1/5/2/8-9.

चक्षसे - 'देखने के लिए' 'चक्षुः ख्यातेर्वा चष्टेर्वा' धातु से निष्पन्न 'चक्षुस्' शब्द के चतुर्थी एकवचन का रूप है । छान्दस प्रयोग के कारण 'चक्षुषा' के स्थान पर 'चक्षसे' प्रयोग मिलता है । 'नब्विषयस्य' से आद्युदात्त । सा० - प्रकाशाय सम्यक् चक्षुषा दर्शनाय । अन्यत्र - ऋ० सं० ¤1/48/8, 7/66/14, 7/81/1, 9/107/3, 10/37/1¤ - प्रकाशाय यद्वा दर्शनाय, ¤8/13/30¤ - दर्शनाय यद्वा द्रष्टव्याय फलाय, ¤10/9/1¤ - सम्यग्ज्ञानाय । स्कन्द० - वेंकट० - दर्शनाय । मुद्गल - दर्शनाय । सात्व० ¤ऋ० का सु०भा०¤ - दृष्टि सम्पन्न । Griff. (The hymns of Ṛgd.) Wil. (Ṛgd.S.) - to see, M.W. - become visible or to see. Grass (Ṛgd.), Geld. (D.R.) - sehen (to see).

एतवे - 'चलने के लिए' 'इण् गतौ' धातु से 'तुमर्थे सेसेन्' सूत्र के द्वारा 'तवेङ्' प्रत्यय । चतुर्थी,एकवचन । सा० - मुद्गल - गन्तुम्। स्कन्द० - वेंकट०- गमनाय । सात्व० ¤ऋ० का सु०भा०¤ - चलने फिरने योग्य । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - to walk. Wil. (Ṛgd.S.) - to go. Grass. (Ṛgd.) - to go or to walk.

प्रकृथ: - 'प्रकृष्ट रूप से करने के अर्थ में प्रयुक्त' 'प्र' उपसर्ग पूर्वक 'डुकृञ् करणे' धातु, लिट् लकार, मध्यम पुरुष द्विवचन, 'बहुलं छन्दसि' से विकरण का लोप। सा० - मुद्गल - प्रकर्षेण कृतवन्तौ। स्कन्द० - कृतवन्तौ स्थः। वेंकट० - प्रचक्रथुः। सात्व० (ऋ० का सु०भा०) -बना दिया। Griff. (The hymns of Ṛgd.) - Ye made, Wil. (Ṛgd. S.) enabled, Mac.D. (V.R.) - made, Avestā - Kareta old Persian - Karta (made).

अमुञ्चतम् - 'मुक्त किया' 'मुच् मुक्तायाम्' धातु, लङ् लकार, मध्यम पुरुष, द्विवचन। सा०, मुद्गल - निर्मुक्तान्। अन्यत्र - ऋ० सं० (1/93/5)- मुक्तवन्तौ, (1/117/16, 1/118/8) - अमोचयतम्, निरमोचयतम्। स्कन्द० - मुचिरत्र, अमोचयत, मोचितवन्तौ स्थः। सात्व० (ऋ० का सु०भा०) - छुड़ाया। Griff. (The hymns of Ṛgd.) - Yet set at liberty, Wil. (Ṛgd. S.) - set free, Mac.D. (V.R.) - to release. Geld. (D.R.) - befreited (to free or to release).

9. याभिः सिन्धुं मधुमन्तमसश्चतं वसिष्ठं याभिरजरावजिन्वतम्। याभिः कुत्सं श्रुतर्यं नर्यमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥

याभिः। सिन्धुम्। मधुमन्तम्। असश्चतम्। वसिष्ठम्। याभिः। अजरौ। अजिन्वतम्। याभिः। कुत्सम्। श्रुतर्यम्। नर्यम्। आवतम्। ताभिः। ऊँ इति। सु। ऊतिऽभिः। अश्विना। आ गतम्॥

अन्वय - अजरौ! याभिः मधुमन्तं सिन्धुम् असश्चतम् । याभिः वसिष्ठौ अजिन्वतम् ।
याभिः कुत्सं श्रुतर्यं, नर्यम् आवतम् । ताभिः ऊतिभिः अश्विना! सु आ
गतम् ।

अनुवाद - हे जरारहित (अश्विनौं)! जिन [रक्षाओं] के द्वारा मधु के सदृश मीठे जल
वाली नदी को प्रवाहित किया । जिनके द्वारा वसिष्ठ को तृप्त
किया । जिन [रक्षाओं] के द्वारा कुत्स, श्रुतर्य और नर्य की रक्षा की । उन्हीं
रक्षाओं के साथ हे अश्विनौं ! हमारे समीप भली-भाँति आओ ।

सिन्धुम् - 'नदी को' 'स्यन्दू प्रस्रवणे' धातु, 'नित्' [उ0सू0 1/9] इत्यनुवृत्तौ
'स्यन्देः संप्रसारण धश्च' [उ0सू0 1/11] से 'उ' प्रत्यय, धकार का
अन्तादेश, 'नित्' होने से आद्युदात्त । सा0 - स्यन्दनशीलां नदीम्। अन्यत्र -
ऋ0 सं0 [1/11/6, 4/30/12] नदीम् , [2/11/9] - स्यन्दन्ते इतस्ततः संचर-
तीति सिन्धुर्मेघः सुवन्तीं शुतुद्री त्वाम् । स्कन्द0 - नदीं स्वरस्वत्याख्याम् ।
वेंकट0 - उदकवतम्। सात्व0 [ऋ0 का सु0भा0] - नदी । Griff. (The
hymns of Rgd.) - flood, Wil. (Rgd.S.) - stream, Mac.D. (V.R.)-
river, M.W. - stream, Avestā - hindu - S, English - Indus.
निघ0 [1/13] - "सिन्धवः इति नदीनाम" ।

मधुमन्तम् - 'मधु के सदृश', 'मदी हर्षे' धातु 'फलिपाटिनमिमनिजनांगुक्पटिनाकि-
धतश्च' [उ0सू0 1/18] से 'उ' प्रत्यय, धकार का अन्तादेश, अनु-
वृत्ति से नित् , नित् होने से आद्युदात्त । मधु शब्द से 'मतुप्' प्रत्यय करने से
'मधुमत्' शब्द बना । लिंग व्यत्यय से 'मधुमत्' शब्द का रूप यहाँ पुल्लिंगवत् हो
गया है । द्वितीया, एकवचन । 'सिन्धुम्' का विशेषण । 'मधु अस्ति अस्मिन्निति

मधुमान् । सा० - मधुसदृशेनोदकेन पूर्णा । अन्यत्र - ऋ० सं० (1/14/10) - मधुरं भागम् (1/112/21) - क्षौद्रम्, (1/116/12, 1/117/22) - मधुविधाम् (2/36/6) - मादकं हविः (4/18/13) - मधुरोपेतमुदकम् । निघ० (1/12) - 'मधु इत्युदकनाम' । स्कन्द० - उदकवतीम् । वेंकट० - उदकवन्तं पीतोदकम्। मुद्गल- मधुसदृशेनोदकेन पूर्णा । सात्व० (ऋ० का सु०भा०) - मीठे रस से युक्त Griff. (The hymns of Ṛgd.) - sweet exhaustless, Wil. (Ṛgd. S.) - Sweet, Mac. D. (V. R.) - most honied, M.W. - a kind of drink mixed with honey, Grass. (Ṛgd.) - honigsüssen (as sweet as honey), Geld. (D. R.) - Honigreich., F. S. (The V. Ety.) - 'honey',

रसो वा एष ओषधि वनस्पतिष्वयन्मधु (A. B. 8/20, J. Up. 1/55/2, S. B. 1/5/4/18 etc.).

इसके अतिरिक्त 'मधु' शब्द के और भी अर्थ प्राप्त होते हैं जैसे दुग्ध, शहद और आज्यादि । मदी हर्षे से व्युत्पन्न होने के कारण 'मधु' शब्द सोम का भी वाचक है । Old - slavanic - medū - Old Bulgarian - medu, Lithuanian - medú' - S, Greek - μέθυ, English - mead,

संस्कृत 'मधु' के समान शब्द है । यहाँ 'मधु' का तात्पर्य 'शहद के समान मीठे' से है ।

अजरौ - 'जरारहित' 'जृष् वयोहानौ' धातु से 'असुङ्' प्रत्यय करने पर 'जरस्' शब्द बना, 'न जरौ जरारहितौ इति अजरौ', प्रथमा, द्विवचन, सम्बोधन पद होने से निघात । सा० - जरारहितौ अश्विनौ । स्कन्द० - जरावर्जितौ । सात्व० (ऋ० का सु०भा०) - जराहीन । मुद्गल - जरारहितावश्विनौ । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - never decay, Wil. (Ṛgd. S.) - exempt from decay, Mac. D. (V. R.) - Unaging.

कुत्सं श्रुतर्यं नर्यम् - ये तीनों शब्द ऋषि नामवाचक हैं। ऋग्वेद में स्थान-स्थान पर इन तीनों ऋषियों का नामोल्लेख किया गया है। इन तीनों में 'नर्य' शब्द के कुछ सामान्य अर्थ निरुक्त (1/4) में देखने को मिलते हैं। वहाँ नर्य के तीन अर्थ ग्रहण किये गये हैं - (1) मनुष्य (2) मनुष्यों के लिए हितकारी और (3) मनुष्य की सन्तान। 'नर्यो मनुष्यो, नृभ्यो हितो, नरापत्यमिति वा'। स्कन्दस्वामिन् ने 'नर्य' का अर्थ 'नरेषु भवम्' किया है। 'श्रुतर्य' शब्द 'श्रु श्रवणे' धातु से 'ण्यत्' प्रत्यय करने पर निष्पन्न हुआ है। वैदिक प्रयोग के कारण गुण को प्राप्त नहीं हुआ। स्कन्दस्वामिन् ने 'श्रावयितारं स्तुतीनाम् स्तोतारम्' अर्थ ग्रहण किया है। ऋग्वेद में यह अश्विनों के आश्रित के रूप में वर्णित है।

10. याभिर्विश्पलां धनसामथर्व्यं	याभिः। विश्पलाम्। धनऽसाम्। अथर्व्यम्।
सहस्रमीळ्ह आजावजिन्वतम्।	सहस्रऽमीळ्हे। आजौ। अजिन्वतम्।
याभिर्वशमश्व्यं प्रेणिमावतं	याभिः। वशम्। अश्व्यम्। प्रेणिम्। आवतम्
ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना	ताभिः। ऊँ इति। सु। ऊतिऽभिः।
गतम्॥	अश्विना। आ गतम्॥

अन्वय - याभिः धनसाम् अथर्व्यं विश्पलां सहस्रमीळ्हे आजौ अजिन्वतम्। याभिः अश्व्यं प्रेणिं वशम् आवतम्। ताभिः ऊतिभिः अश्विना! सु आ गतम्।

अनुवाद - जिन (रक्षाओं) के द्वारा, धन का दान करने वाली, चलने में असमर्थ, विश्पला को सहस्र धन प्राप्ति के निमित्त किये जाने वाले संग्राम में (पुनः चलने योग्य बनाकर) प्रसन्न किया। जिनके द्वारा अश्व के पुत्र स्तुतियों के

प्रेरक, वश को सुरक्षित रखा । उन्हीं रक्षाओं के साथ हे अश्विनौ । हमारे पास भली-भाँति आओ ।

अथर्व्यम् - 'चलने में असमर्थ' 'थर्वतिश्चरतिकर्मा' धातु 'ण्यत्' प्रत्यय, छान्दस प्रयोग के कारण गुण का अभाव होने से 'थर्व्य' शब्द बना, 'न थर्व्यम् इति अथर्व्यम्' अर्थात् चलने में असमर्थ' । विश्पला का विशेषण द्वितीया एकवचन । सा० मुद्गल - अगच्छन्तीम् । स्कन्द० - अचरन्तीम् । वेंकट० - अगन्त्रीम् । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ अथर्वकुल में उत्पन्न अथवा स्थिर रूप से खड़ी हुई । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - powerless to move, Wil. (Ṛgd.S.) - unable to move, S.V. (The Ety. of Yāska) - √थर्व 'to move'

~~'Those who are immovably firm'~~.

अथर्व्य 'those who are immovably firm'. ऋग्वेद में केवल एक बार प्रयुक्त ।

सहस्त्रऽमीळ्हे - 'सहस्त्र धन प्राप्ति के निमित्त' बहूनि धनानि निमित्तभूतानि यस्य स सहस्त्रमीळ्हः । यहाँ सहस्त्र का अर्थ है 'बहुत अधिक' । निघ० ॥3/1॥ - 'सहस्त्रीमिति बहुनामानि' S.V. (The Ety. of Yāska) - सहस्र is derived from √सह् 'to be powerful'. It is a wonderful etymology, entirely accepted by comparative philology, for the word has been traced to Indo - European - Segheslo - k̂mtóm - the wonderful hundred, Greek - Chilioi 'a thousand'. That the stem सहस् in the case of 'force' occurs in सहस्र is supported by Grimm, Brugmann and Meillet, who cite, Tocharian, Wälts 'thousand' Tocharian wäl - 'Prince' - (Pg. No. 4).

सहस्त्र शब्द के समकक्ष शब्द भारोपीय भाषाओं में भी उपलब्ध होते हैं जैसे - **Avestā - hazanra , Greek -** χίλιοι , χείλιοι , χέλλιοι (χέσλιοι) 'मीळ्ह' धनवाची शब्द है । निघ० ॥2/10॥ - 'मीळ्हमिति धननामानि' । इसके अतिरिक्त यह युद्ध का भी पर्याय है । निघ० ॥2/17॥- 'मीळ्हःमितिसंग्रामनाम' । युद्ध धन प्राप्ति के लिए किया जाता है, अथवा युद्ध में जीतने से विजित देश से लूटकर धन प्राप्त किया जाता है, चूँकि धन ही संग्राम का हेतु है इसलिए 'मीळ्ह' का एक अर्थ संग्राम भी हो गया है । 'सहस्त्रमीळ्हे' शब्द आजौ का विशेषण है । यहाँ 'मीळ्ह' धन के अर्थ में प्रयुक्त है । सा०, मुद्गल - बहु धनोपेते । स्कन्द० - बहुधनप्राप्त्यर्थमित्यर्थः । वेंकट० - सहस्त्र धननिमित्ते । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ - सहस्त्रों लोग मिलकर जहाँ लड़ते हैं । **Griff. (The hymns of Ṛgd.) - a thousand spoils, Wil. (Ṛgd.S.)- rich in a thousand spoils, Grass. (Ṛgd.) - Tausendfach, Geld. (D.R.) - tausend Kampfpreis.**

अश्व्यम् - 'अश्व के पुत्र को' 'अश्व' शब्द से अपत्यार्थ में 'दित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः' से 'ण्य' प्रत्यय करने पर द्वितीया एकवचन में 'अश्व्यम्' निष्पन्न हुआ । भास्कराचार्य ने 'अश्व' शब्द की निरुक्ति दो प्रकार से की है- ॥1॥ 'अश्नुतेऽध्वानाम्' अर्थात् अश्व रास्ते को व्याप्त कर लेता है इसलिए √अशूङ् व्याप्तौ से अथवा ॥2॥ 'महाशनोभवतीति वा' अर्थात् अश्व बहुत खाते हैं इसलिए √अश् भोजने से अश्व शब्द बन सकता है । ॥निरु० 2/7॥ । यहाँ पर 'अश्व' शब्द व्यक्ति विशेष का नाम है । सा०, मुद्गल - अश्वाख्यस्य पुत्रम् । अन्यत्र - अश्वसम्बन्धी, (1/74/7) - अश्वैरुत्पादितः । स्कन्द० - ऋ० सं० ॥1/32/12॥ - अश्वसमूहवन्तम् । वेंकट० - अश्वस्य पुत्रम् । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ - अश्व के पुत्र **Griff. (The hymns of Ṛgd.) - Asvin's son, Wil. (Ṛgd. S.) - The son of Ashva.**

'अश्व' के समकक्ष भारोपीय शब्द - Latin - equns, Greek - ἵππο - s, Old Slavonic - ēhu (horse).

प्रेणिम् - 'स्तुतियों के प्रेरक' 'प्रैणृ गतिप्रेरणश्लेषणेषु' से औणादि 'इ' प्रत्यय, पुल्लिंग द्वितीया, एकवचन । वशम् का विशेषण । सा0, मुद्गल - स्तुतेः प्रेरयितारम् । स्कन्द0 तर्पयितारं च स्तुतिभिः हविभिश्च देवानाम् । स्कन्दस्वामिन् ने √ प्रीञ् तर्पणे से 'प्रेणि' शब्द की उत्पत्ति को ग्रहण किया है । वेंकट0 - स्तोत्रैः तर्पयितारम् । सात्व0 (ऋ0 का सु0भा0) प्रेरणकर्त्ता Griff. (The hymns of Ṛgd.) - friendly. Wil. (Ṛgd.S.) - devout. Grass. (Ṛgd.)-Preisterin(priest) प्रेणिम् का सामान्य अर्थ 'प्रेरणकर्त्ता' है । परन्तु इस प्रसंग में इसका अर्थ 'स्तुतियों का प्रेरक' होगा ।

11. याभिः सुदानू औशिजाय वणिजे	याभिः । सुदानू इति सुदानू । औशिजाय । वणिजे ।
दीर्घश्रवसे मधु कोशो अक्षरत् ।	दीर्घऽश्रवसः । मधु । कोशः । अक्षरत् ।
कक्षीवन्तं स्तोतारं याभिरावतं	कक्षीवन्तम् । स्तोतारम् । याभिः । आवतम् ।
ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ।।	ताभिः । ऊँ इति । सु । ऊतिऽभिः । अश्विना । आ । गतम् ।।

अन्वय - सुदानू ! याभिः औशिजाय वणिजे दीर्घश्रवसः मधु कोशः अक्षरत् । याभिः स्तोतारं कक्षीवन्तम् आवतम् । ताभिः ऊतिभिः अश्विना ! सु आ गतम् ।

अनुवाद - हे शोभन दान से युक्त अश्विनौ ! जिन (रक्षाओं) के द्वारा उशिज् के पुत्र दीर्घश्रवा नामक वणिक् के लिए, मधुर, वृष्टिजल से परिपूर्ण मेघ को बरसाया । जिनके द्वारा स्तुति करने वाले कक्षीवान् की रक्षा की । उन्हीं रक्षाओं के साथ हे अश्विनौ! हमारे पास भली-भाँति आओ ।

सुदानू - 'हे शोभन दान से युक्त', शोभन दानौ य योःतौ सुदानू । पुल्लिंग, सम्बोधन, द्विवचन । अश्विनौ का विशेषण । सा0, मुद्गल - शोभन-दानावश्विनौ । अन्यत्र - ऋ0 सं0 (3/58/7, 4/41/8) - शोभन फलस्य दातारौ, (5/62/9) - शोभनदानौ । स्कन्द0 - शोभनदानौ । सात्व0 (ऋ0 का सु0भा0) अच्छे दान देने वाले । Griff. (The hymns of Rgd.) - Bounteous givers. Wil. (Rgd.S.) - beauteous doners. Mac.D. (V.R.) - bountiful , M.W. - bestowing abundantly.

औशिजाय - 'उशिक् के पुत्र के लिए' 'वश कान्तौ' धातु, 'इजीत्यनुवृत्तौ वशेः किच्च' (उ0सू0 2/71) से इजी प्रत्यय, 'किचादग्रहिजहि0' सूत्र के द्वारा संप्रसारण के बाद वाले प्रथम वर्ण को गुणाभाव, 'तस्यापत्यम्' (पा0 सू0 4/1/92) तथा 'प्राग्दीव्यतोऽण्' (पा0सू0 4/1/83) से आदिवृद्धि, प्रत्यय स्वर पर अन्तोदात्त, चतुर्थी एकवचन । 'दीर्घश्रवस्' का विशेषण । सा0 उशिक संज्ञा दीर्घतमसः पत्नी तस्याः पुत्रः । अन्यत्र - ऋ0 सं0 (1/14/1, 1/22/4, 6/4/5, 10/99/11) - उशिजः पुत्रः । स्कन्द0 - उशिजः पुत्रः । सात्व0 (ऋ0 का सु0 भा0) - उशिक् पुत्र । Wil. (Rgd.S.) - The son of Ushij. S.V. (The ety. of Yāska) Pg.11 - A proper name, son of Ushij'.

दीर्घश्रवसः - 'श्रु श्रवणे' धातु 'क्वसु' प्रत्यय । श्रवस् शब्द के चतुर्थी एकवचन में श्रवसे होना चाहिए था, पर वैदिक प्रयोग के कारण श्रवसः हुआ । निरुक्त में दो स्थानों पर 'श्रवस्' का अर्थ यश और एक स्थान में 'अन्न' ग्रहण किया गया है । दीर्घ और श्रवस् दोनों को मिलाने पर इसका अर्थ 'दूर तक फैले हुए यश वाला' हो सकता है । परन्तु यहाँ पर यह संज्ञा पद है । यहाँ ऋषि के नाम का वाचक है । M.W. - renowned for and wide or name of a man. Grass. (Ṛgd.) - Berühmten (renowned, celebrated) भारोपीय भाषाओं में दीर्घ के समकक्ष शब्द उपलब्ध होते हैं जैसे - Avestā - dərəya, Old Slavenic - dlugu. Greek - δολιχός

कोशः - 'मेघ को' 'कुष् निष्कर्षे' धातु से निष्पन्न । सा०, स्कन्द०, वेंकट, मुद्गल- मेघः । भण्डार - सात्व० ऋ० का सुभा०। निरु० 5/41 - "कोशः कुष्णातेर्विकुषितो भवति । अयमपीतरः कोष एतस्मादेव" । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - rain, Wil. (Ṛgd.S.), M.W. - clouds. S.V. (The ety. of Yāska Pg 76) - 'a bucket' is traced to √कुष् 'to scratch' so called because it is hollowed out by scratching. Geld. (D.R.) - Kufe (tub).
'कुष् निष्कर्षे' धातु से व्युत्पन्न कोश शब्द के तीन अर्थ हो सकते हैं - ।1। कोष तलवार रखने की म्यान को कहते हैं, जो चर्ममय होता है, ।2। धन सम्बन्धी कोष भी इसी धातु से बनता है । और ।3। कोष संचय को कहते हैं । बादल में जल संचित रहता है इसलिए उसे भी कोश कहते हैं । यहाँ 'कोश' शब्द 'मेघ' के अर्थ में ही प्रयुक्त है । Indo-European - Sqeu-k (to cover), Lithnanian - Kiaušė (skull).

कक्षीवन्तम् - 'कक्षीवान् को' 'कष्' धातु से व्युत्पन्न कक्षा शब्द 'आसन्दीवदष्ठीवच्चक्रीवत्कक्षीवत्' सूत्र से मतुप् प्रत्यय, उसका वत्व और सम्प्रसारण से द्वितीया एकवचन में 'कक्षीवन्तम्' शब्द बना । सा० - कक्ष्या रज्जुरश्वस्य तथा युक्तः कक्षीवान्, एतत्संज्ञमृषिम्। निरु० ॥2/1॥ - में भास्कराचार्य ने कक्षा शब्द की तीन व्युत्पत्तियाँ दी हैं -

॥1॥ √गाह् से क्स प्रत्यय करने पर आदि और अन्त ॥क् स्॥ वर्णों के विपर्यय से 'कक्षा' बनता है ।

॥2॥ प्राकथनार्थक 'ख्या' धातु की द्विरावृत्ति करने पर 'कख्य' बना, फिर उसे 'कक्ष्य' कहा जाने लगा । अथवा

॥3॥ 'कष्' धातु से 'कक्षा' शब्द बनता है, जिसका अर्थ है खुजलाना । पुरुष के बाहुमूल के अधोभाग को 'कक्षा' कहते हैं । बाहुमूल की समानता के आधार पर घोड़े के भी बाहुमूल स्थान को 'कक्षा' कहा जाने लगा ॥कक्ष्या रज्जूरश्वस्य॥ । तीसरी व्युत्पत्ति के आधार पर अश्व की रस्सी को कक्ष्या कहा जाने लगा क्योंकि कक्षा शब्द का अर्थ बगल या पार्श्ववर्ती भाग है । चूँकि अश्व की रस्सी उसके बगल में रहती है इसलिए उसे कक्ष्या कहा जाने लगा । Indo - European - qoksā (name of a certain part of the body), Latin - Coxa (hip). S.V. (The ety. of Yāska, Pg.68) - name of a Ṛṣi 'is traced to कक्ष्यावत् 'having a girdle' 'कक्ष्या' means 'a girdle' but the vocalic correspondence of ई : या in a noun is obscure

प्रस्तुत मंत्र में 'कक्षीवान्' शब्द ऋषि का बोधक है ।

स्तोतारम् - 'स्तुति करने वाले को' 'ष्टुञ् स्तवने' धातु से 'तृच्' प्रत्यय करने पर स्तोतृ शब्द निष्पन्न हुआ, उसके द्वितीया एकवचन में 'स्तोतारम्' बना । 'कक्षीवन्तम्' का विशेषण । सा०, मुद्गल, स्कन्द०, वेंकट - स्तोतारम् ।

सा०त्व० ‡अ० का सु०भा०‡ - स्तुति करने वाले को । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - singer of our praise, Wil. (Ṛgd.S.) - devout, Mac.D. (V.R.) - praiser, Grass. (Ṛgd.), Geld. (D.R.) - Sänger (singer).

12. याभी रसां क्षोदसोद्गः पिपिन्वथु- याभिः । रसाम् । क्षोदसा । उद्गः । पिपिन्वथुः ।
अनश्वं याभी रथमावतं जिषे । अनश्वम् । याभिः । रथम् । आवतम् । जिषे ।
याभिस्त्रिशोक उस्रिया उदाजत याभिः । त्रिऽशोकः । उस्रियाः । उत्ऽआजत ।
ताभिरु षु ऊतिभिरश्विना गतम् ।। ताभिः । ऊँ इति । सु । ऊतिऽभिः । अश्विना । आ । गतम् ।।

अन्वय - याभिः रसां क्षोदसा उद्गः पिपिन्वथुः । याभिः अनश्वं रथं जिषे आवतम् । याभिः त्रिशोकः उस्रियाः उत् आजत । ताभिः ऊतिभिः अश्विना! आ गतम् ।

अनुवाद - ‡ ~~अश्विनौ~~ ‡ जिन ‡रक्षाओं‡ के द्वारा रसा ‡नामक नदी‡ को, तटों को कुचलने वाले ‡अर्थात् लहरों के द्वारा तटों पर आघात करने वाले‡ जलराशि से परिपूर्ण किया । जिनके द्वारा जय के लिए, चलाये गये बिना अश्व के रथ की रक्षा की । जिन ‡रक्षाओं‡ के द्वारा त्रिशोक अपने गायों को प्राप्त कर सका । उन्हीं रक्षाओं के साथ हे अश्विनौ ! हमारे समीप भली-भाँति आओ ।

टिप्पणी -

रसाम् - 'रसा ‡नामक नदी‡ को' 'रसतेः शब्दकर्मणः' शब्दार्थक 'रस' धातु से रसा शब्द बनता है । स्त्रीलिंग, द्वितीया, एकवचन । सा०-नदीम् ।

अन्यत्र - ऋ0 सं0 ॥1/187/5॥ - में इसका अर्थ 'स्वादुवम्लादीनां ऋणां' प्राप्त होता है । स्कन्द0 - नामान्तरिक्षनदीम् । वेंकट - नद्या । Wil. (Rgd.S.)- river, M.W. - name of a river, Grass. (Rgd.) - strom (river, stream), Geld. (D.R.) - wassers (water).
रसा ऋग्वेद के तीन स्थलों में स्पष्ट रूप से वैदिक क्षेत्र में उत्तर पश्चिमी किनारे पर बहने वाली एक वास्तविक नदी का नाम है । अन्यत्र यह पृथ्वी के अन्त में बहने वाली एक पौराणिक नदी का नाम है जो पृथिवी और अन्तरिक्ष को अपने अन्दर परिवेष्टित करती है । इसका उक्त प्राचीन आशय ही उपयुक्त है और इसे एक वास्तविक नदी सम्भवतः मूल रूप से 'अराक्सेस' अथवा 'जक्सार्टेस' का नाम मानना चाहिए , क्योंकि 'वेन्दिदाद' ने 'रसा' के अवेस्तन रूप 'रङ्हा' का उल्लेख किया है । किन्तु यह शब्द मूलतः जलों के 'स्वाद' अथवा 'सार' का ही द्योतक प्रतीत होता है । अतः किसी नदी के लिए व्यवहृत किया जा सकता हैं ।

क्षोदसा - 'तटों को कुचलने वाले' 'क्षुदिर् संपेषणे' धातु, औणादिक 'असुन्' प्रत्यय, तृतीया, एकवचन । उद्गः का विशेषण । सा0 - कूलानि संपिंषता । सात्व0 ॥ऋ0 का सु0भा0॥ - तटों को कुचलने वाले । निघ0 ॥1/12॥ - क्षोदः इत्युदकनाम । निरु0 ॥10/2॥ - सिन्धुर्नक्षोदः पुनीचीरैनोन्नवन्त अर्थात् जल को 'क्षोदः' इसलिए कहते हैं,क्योंकि जल अपने तेज से कूलों को काटता है,उनको रौंधता है । Griff. (The hymns of Rgd.) - floods, Wil. (Rgd.S.) - river bed. Grass. (Rgd.) - schwellen (to cause to sweel) Geld. (D.R.) - flut (flow).

उद्नः - 'जलराशि से' 'उन्दी क्लेदने' धातु से निष्पन्न 'उदक' शब्द के तृतीया एकवचन में 'सुपां सुपो भवति' सूत्र से 'श्स्' आदेश, 'पद्नु0' से उदक शब्द का 'उदन् भाव', 'भ' संज्ञा और 'अल्लोपोऽन:' से अकारलोप होकर 'उद्नः' शब्द निष्पन्न हुआ । यास्काचार्य ने उदक शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की है - 'उनत्तीति सतः' ‖निरु0 2/7‖ अर्थात् 'उन्दी क्लेदने' धातु से उदक शब्द की सिद्धि होती है, क्योंकि उदक भिगोता है, गीला करता है । निघ0 ‖1/12‖ में जल के 100 नामों में उदक भी एक है । सा0, मुद्गल, स्कन्द0, वेंकट- उदकेन । सात्व0 ‖ऋ0 का सु0भा0‖ - जलसमूह । Griff. (The hymns of Ṛgd.), Wil. (Ṛgd.S.) - water. Grass. (Ṛgd.) - Wogenflut (wave flow), Geld. (D.R.) - wellt (wave circling).

पिपिन्वथुः - 'परिपूर्ण किया', 'पिवि सेचने' धातु से इदित्वात् नुम्', लिट लकार, मध्यम पुरुष, द्विवचन । सा0 - मुद्गल - पूरितवन्तौ । स्कन्द0 - पूरितवन्तौ स्थः । वेंकट - पूरितवन्ताविति । सात्व0 ‖ऋ0 का सु0भा0‖ - परिपूर्ण कर डाला । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - swell full, Wil. (Ṛgd.S.) - filled, Mac.D. (V.R.) - √ पॄ पूरणे ~~पू पूरणे~~' overflow . अवेस्ता में पिन्वथः का समकक्ष, 'pinaoiti' रूप मिलता है ।

उस्रियाः - 'गायों को', 'उस्रिया' शब्द, स्त्रीलिंग, प्रथमा, बहुवचन । 'वस् निवासे' धातु से 'स्फायितञ्चि' सूत्र से 'रक्' प्रत्यय करने पर 'उस्र' शब्द निष्पन्न हुआ, उस शब्द से 'स्वार्थे पृषोदरादित्वात्' से 'घ' प्रत्यय अथवा 'सृ गतौ' धातु से 'क' प्रत्यय, पूर्व पदान्त का छान्दस लोप, यहाँ पर भी स्वार्थिक 'घ' प्रत्यय और 'उत्' उपसर्ग लगाने से उस्रिया शब्द निष्पन्न होगा । सा0- अपहृता गाः । अन्यत्र - ‖ऋ0 सं0 ‖1/6/5, 1/93/12, 3/31/11‖ - गाः ,

॥7/81/2॥ - रश्मीन् , ॥1/3/8॥ - उस्रा इव स्वसराणि । निघ0 ॥2/11॥- में उस्त्रिया शब्द गो नामों में परिगणित है । परन्तु निघ0 ॥1/5॥ में उस्त्रिया को पंचदश रश्मिनामों में भी परिगणित किया गया है । निघण्टु में उस्त्रिया शब्द के दो अर्थ ग्रहण किये गये हैं । निरु0 ॥4/5/42॥ - में यास्काचार्य ने, गौ को उस्त्रिया क्यों कहा जाता है, इसकी व्याख्या की है - 'उस्त्रियेति गो नाम । उस्त्राविणोऽस्यां भोगा:' अर्थात् गौ से मनुष्यों के अनेक भोग सिद्ध होते हैं, इसलिए उसे उस्त्रिया कहते हैं । स्कन्द0 - गा: । वेंकट0 - गाम् । सात्व0 ॥ऋ0 का सु0भा0॥ - गौएँ । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - Cow, Wil. (Ṛgd.S.)-Cattle, M.W. - Cow. इस मन्त्र में 'उस्त्रिया' का 'गौ' अर्थ ही उचित है ।

13. याभिः सूर्यं परियाथः परावति मन्धातारं क्षैत्रपत्येष्वावतम् । याभिर्विप्रं प्र भरद्वाजमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ।।

याभिः ।सूर्यम्।परिऽयाथः ।पराऽवति । मन्धातारम्।क्षैत्रऽपत्येषु। आवतम् । याभिः । विप्रम्।प्र भरत्ऽवाजम्। आवतम्। ताभिः ।ऊँ इति । सु । ऊतिऽभिः । अश्विना । आ । गतम् ।।

अन्वय - याभिः परावति सूर्यं परियाथः मन्धातारं क्षैत्रपत्येषु आवतम् । याभिः विप्रं भरद्वाजं प्र आवतम् । ताभिः ऊतिभिः अश्विना! सु आ गतम् ।

अनुवाद - जिन ॥शक्तियों॥ के द्वारा, दूर स्थित सूर्य की परिक्रमा करते हो । जिनके द्वारा, क्षेत्रपति मन्धाता की भूमि सम्बन्धी कार्यों में रक्षा की ।

जिनके द्वारा विप्र भरद्वाज की प्रकृष्ट रूप से सहायता की । उन्हीं रक्षाओं के साथ हे अश्विनौ । हमारे समीप भलीभाँति आओ ।

सूर्यम् - 'सूर्य की' सुवति प्रेरयतीति सूर्यः, 'षू प्रेरणे' धातु, 'धात्वादेः षः सः' से सकार, 'राजसूयसूर्य0' ॥पा0सू0 3/1/114॥ से 'क्यप्', निपात से उठ् आगम, क्यप् के 'कित्' होने से गुणाभाव, पित् होने से अनुदात्तत्व । यास्क के अनुसार सूर्य शब्द 'गत्यर्थक सृ' धातु से 'प्रेरणार्थक सू' धातु से या सुष्ठु रूप से गमन करने के अर्थ में सु + ईर् से व्युत्पन्न है । वेद में 'सूर्य' द्युस्थानीय देवों में प्रमुख देवता है । मैक्डॉनल के मत में कई स्थलों पर इस बात का निर्णय करना असम्भव हो जाता है कि 'सूर्य' शब्द से केवल प्राकृतिक दृश्य अभिप्रेत है अथवा उसका मानवीय रूप । सूर्य भौतिक सूर्यमण्डल के प्रतिनिधि देवता हैं । इसलिए उनके प्रमुख कृत्य देवताओं और मनुष्यों के लिए प्रकाशित होना, अन्धकार को ध्वस्त करना आदि हैं । समस्त जगत् के लिए प्रकाश के आदिस्त्रोत सूर्य की रश्मियों की संख्या प्रायः सात मानी गई है । सूर्य को आदित्य भी कहा गया है । सा0, मुद्गल - तमोरूपेण स्वभानुनाऽऽवृतमादित्यं तस्मात् तमसो मोचयितुम् । अन्यत्र - ऋ0 सं0 ॥3/31/15॥ - कालस्य निर्वाहकम्। स्कन्द0 - आदित्यम् । **Griff. (The hymns of Rgd.), Wil. (Rgd.S.), Mac.D. (V.R.) - Sun.**

परिऽयाथः - 'परिक्रमा करते हो' 'परि' उपसर्ग पूर्वक, गत्यर्थक 'इण' धातु, लट् लकार, मध्यम पुरुष, द्विवचन । सा0, मुद्गल - युवां परितो गच्छथः । स्कन्द0 - परिप्राप्नुथः । वेंकट0 - परिगच्छथः । सात्व0 ॥ऋ0 का सु0भा0॥ - चारों ओर जाते हो । **Griff. (The hymns of Rgd.) - Compass round, Wil. (Rgd.S.) - encompassed, Grass. (Rgd.)-Umfahrt (ride or drive around), Geld.(D.R.) - Uberholet (to overtake, to surpass).**

'परि' उपसर्ग का अर्थ मैक्डॉनल महोदय ने 'round' ग्रहण किया है। 'परि' के समानार्थी शब्द भारोपीय भाषाओं में भी उपलब्ध होते हैं जैसे - Avestā - pairi, Greek - πέρι

क्षेत्रऽपत्येषु - क्षेत्राणां पतिरधिपतिरिति क्षेत्रपतिः। 'क्षेत्रपति' शब्द से कर्मणि 'घञ्' प्रत्यय। क्षेत्रपति एषु इति क्षैत्रपत्येषु। एषु का तात्पर्य कर्मसु से है अर्थात् क्षेत्रपति से सम्बन्धित उसके द्वारा करने योग्य कर्मों में। सा०, मुद्गल - क्षेत्राणाम् अधिपतिः तत्सम्बन्धिषु कर्मसु। वेंकट० - सप्तद्वीपविषयेषु। सात्व० (ऋ० का सु०भा०) - क्षेत्रपति के सम्बन्ध में करने योग्य कर्मों में। Griff. (The hymns of Ṛgd.)-in his tasks as lord of lands. Wil. (Ṛgd.S.)- sovereign functions. Grass. (The hymns of Ṛgd.) - Besitz (property, possession), Geld. (D.R.) - Landbesitz (land property).

विप्रम् - 'विप्र' शब्द पुल्लिंग, द्वितीया, एकवचन। 'भरद्वाजम्' का विशेषण। सा० - मेधाविनम्। अन्यत्र - ऋ० सं० (8/7/30) - मेधाविनं स्तोतारं माम्, (9/13/2) - मेधाविनः। (10/67/2) - प्रज्ञापकम्। निरु० (2/2) - में 'विप्रम्' का अर्थ 'ब्राह्मण' किया गया है। स्कन्द०, वेंकट० - मेधाविनम्। सात्व० (ऋ० का सु०भा०) - ज्ञानी। Griff. (The hymns of Ṛgd.), Wil. (Ṛgd. S.) - sage. M.W. - Wise.
'विप्र' का अर्थ कहीं ब्राह्मण तो कहीं मेधावी प्राप्त होता है। वस्तुतः दोनों अर्थों में साम्य है। वैदिक काल में ब्राह्मण ही अध्ययन अध्यापन का कार्य करते थे, इसलिए मेधावी भी इसी वर्ग के लोग हुआ करते थे। यहाँ विप्र का मेधावी अर्थ ही अधिक संगत है।

भरतऽवाजम् – यह एक ऋषि का नाम है । भरद्वाज शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है । पहला शब्द है 'भरत्' और दूसरा है 'वाज' । 'भृञ् भरणे' धातु से 'शतृ' प्रत्यय करने पर 'भरत्' शब्द निष्पन्न हुआ । यहाँ 'शतृ' प्रत्यय व्यत्यय से हुआ है, 'छन्दस्युभयथा' से आर्धधातुकत्व प्राप्त होने से 'तासार्वधातुक०' से अनुदात्त का अभाव और प्रत्यय पर उदात्त हुआ । 'भृ भरणे' धातु के समान धातुएँ अन्य देश की भाषाओं में भी उपलब्ध होती है जैसे – Indo-European-'bher' (to carry), Greek – 'phéro (I carry).

'वाज' शब्द अन्न का पर्याय है । निघ० (2/7) में अन्न के 28 नामों में 'वाजः' को भी परिगणित किया गया है । "वाजः इति अन्ननाम ।" दोनों को मिलाने पर अर्थ होगा – "अन्न से भरा है जो ।" सप्तम्यन्त बहुव्रीहि समास होने से पूर्वपद प्रकृतिस्वरत्व प्राप्त हुआ । भरद्वाज ऋग्वेद के छठवें मण्डल के प्रख्यात प्रणेता का नाम है । पंचविंश ब्राह्मण के अनुसार ये दिवोदास के पुरोहित थे । दिवोदास के गृह के साथ इनके सम्बन्ध का काठक संहिता की उस उक्ति से भी पता चलता है, जिसके अनुसार भरद्वाज ने प्रतर्दन को राज्य प्रदान किया था । बाद के संहिताओं में भरद्वाज का अन्य महान् ऋषियों की भाँति उल्लेख है । एक प्रणेता और द्रष्टा के रूप में इनका ब्राह्मणों और बाद की संहिताओं में अनेकशः उल्लेख मिलता है । अन्यत्र – ऋ० सं० (1/116/18) – अन्न से युक्त यजमान । निरु० (3/3) – भरणाद् भरद्वाजः । S.V. (The ety. of Yāska Pg.50) – 'name of a seer' is a compound, the first member of which has been traced to √भृ 'to carry'. यहाँ ऋषि नामवाची पद है ।

14. याभिर्महामतिथिग्वं कशोजुवं | याभिः । महाम् । अतिथिऽग्वम् । कशःऽजुवम् ।
दिवोदासं शम्बरहत्ये आवतम् । | दिवःऽदासम् । शम्बरऽहत्ये । आवतम् ।

याभिः पूर्भिद्ये त्रसदस्युमावतं   याभिः। पूःऽभिद्ये। त्रसदस्युम्। आवतम्।

ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥   ताभिः। ऊँ इति। सु। ऊतिऽभिः।

अश्विना। आ। गतम्॥

अन्वय - याभिः महाम् अतिथिग्वम् कशोजुवं दिवोदासं शम्बरहत्ये आवतम्। याभिः पूर्भिद्ये त्रसदस्युम् आवतम्। ताभिः ऊतिभिः अश्विना! सु आ गतम्।

अनुवाद - जिन (रक्षाओं) के द्वारा महान्, अतिथिसत्कार करने वाले, जल में छिपे हुए दिवोदास की, शम्बर की हत्या में रक्षा की। जिनके द्वारा संग्राम में त्रसदस्यु की रक्षा की। उन्हीं रक्षाओं के साथ हे अश्विनौ! हमारे समीप भली-भाँति आओ।

टिप्पणी -

अतिथिऽग्वम् - "अतिथीन् प्रति गच्छति इति अतिथिग्वम्" अर्थात् जो अतिथियों के समीप परिचारणार्थ जाता है उसे अतिथिग्व कहते हैं, 'दिवोदासम्' का विशेषण। पुल्लिंग, द्वितीया, एकवचन। सा० - अतिथीन्गन्तव्यम्। अन्यत्र - ऋ० सं० (1/53/10) - एतन्नामकं ऋषिम्, (6/18/13) - अतिथिनामभिगन्ता दिवोदासं च शम्बरहत्ये ररक्षिथेति, (10/48/8) - अतिथिगोः पुत्र दिवोदासमृषिम्। निरु० (4/1/5) - अतिथिरभ्यतितो गृहान्भवति, अभ्येति तिथिषु पर-कुलानीति वा, पर गृहाणीति वा। अर्थात् अतिथि इधर उधर घरों में पहुँचता है या पौर्णमासी आदि तिथियों में वह पर गृह पर या पर कुलों में जाता है। स्कन्द० - अतिथीन् प्रति परिचारकतया गच्छति इत्यतिथिग्वस्तम्। वेंकट०-अतिथीन् प्रति गन्तारं तान् परिचरन्तु। सात्वलेकर और ग्रिफित महोदय ने अतिथिग्व को नामवाचक पद माना है। Wil. (Rgd.S.) hospitable, M.W. - Name of Divodāsa and another mythical hero, Mac.D.

(Vedic Index page 17) -

'यह ऋग्वेद में एक राजा के लिए प्रयुक्त हुआ है, जिसका नाम दिवोदास है । बर्गेन इन दोनों व्यक्तियों का तादात्म्य अस्वीकार करते हैं'। यहाँ 'अतिथिग्व' शब्द राजा के अर्थ में प्रयुक्त नहीं है । यहाँ इसका अर्थ 'अतिथियों का सत्कार करने वाला' होगा ।

कशःऽजुवम् - 'जल में छिपे हुए' '√कश् गतिशासनयोः' से 'असुन्' प्रत्यय, कशांसि उदकानि जवतीति कशोजूः । 'गत्यर्थक जु' धातु को 'क्विब्वचि' ॥उ0सू0 2/215॥ से दीर्घत्व । 'दिवोदासम्' का विशेषण । द्वितीया एकवचन । कशा के दो अर्थ हैं - ॥1॥ जल और ॥2॥ वाक् । निघ0 ॥1/11॥ में 'कशा' वाक् नामों में आम्नात है । सा0 - असुरभीत्या उदकं प्रवेष्टुं गन्तारम् एवंभूतम्। स्कन्द0 - स्तुतिलक्षणया वाचा युवां प्रति गन्तारम् , युवयोरेव स्तोतारमित्यर्थः । वेंकट0 - ह्रदं प्रति गच्छन्तम्। सात्वलेकर तथा ग्रिफित महोदय ने 'कशोजुव' को नामवाचक पद माना है । Wil. (Rgd.S.) - hid himself in the water. M.W. - hastening to the water. यह शब्द ऋग्वेद में एक व्यक्ति-वाचक नाम के रूप में एक ही बार आया है । इस शब्द का आशय नितान्त अनिश्चित है ।

दिवःऽदासम् - 'दिवोदास को', 'द्योतनार्थक दिव्' धातु से दिवः शब्द निष्पन्न हुआ है तथा 'उपक्षयार्थक दस्' धातु से दास शब्द । 'दिवश्च दासे षष्ठ्या अलुग्वक्तव्यः' ॥का0 6/3/21/5॥ से अलुक् , 'दिवोदासादीनां छन्दस्युपसंख्यानम्' ॥पा0सू0 6/2/91/1॥ से पूर्व पद आद्युदात्त हुआ । निरुक्तकार यास्क ने 'दास' शब्द का निर्वचन 'दासो दस्यतेरुपदासयति कर्माणि' ॥2/5॥ किया है । S.V. (The ety. of Yāska, Pg.57) - 'दिव्यः' 'divine' adj. formed from 'दिव्' 'heaven' 'दास' 'a labourer' has been traced to

√दस् 'to finish' he is so called because 'he finishes the tasks assigned to him'. This meaning, however was 'to divine' as in the case of ——————— दस्यु, later, it presumably came to mean 'to injure' and still later 'to finish यह राजा का नाम है ।

शम्बरऽहत्ये - 'शम्बर की हत्या में', शम्बर शब्द की व्युत्पत्ति अनेक प्रकार से हो सकती है जैसे - ।1। शंब संबन्धने' धातु ।पा०धा०पा० 1557, चु० उ०। से 'रन्च्' प्रत्यय ।2। शम् + बन् ।उ० 4/94। शाम्यतीति शम्बरः, ।3। सम् + वृञ् आवरणे + अच् 'गृहवृहनिश्चगमश्च' ।पा० 3/3/58। से वर्ण व्यत्यय के द्वारा 'स्' का 'श्' हुआ । ।4। शम्ब +√रा + क प्रत्यय/शम्बर का अर्थ जल और बल दोनों है । इसके अतिरिक्त शम्बर एक असुर का नाम भी है , जिसका हनन इन्द्र ने अश्विनों की सहायता से किया था । निघ० ।1/12। में 'शम्बर' शब्द एकशत उदकनामों में तथा ।2/9। बल नामों में परिगणित है । ऋ० सं० ।1/112/14, 9/61/2, 1/51/6, 1/54/4, 4/26/6। में शम्बर इन्द्र के शत्रु के रूप में वर्णित है, ।7/18/27। में शम्बर अपने को देव रूप में दृष्टिगत कराता हुआ वर्णित है,।9/130/7। में 90 ।2/19/6। में 99 तथा ।2/14/6। में 100 दुर्गों के अधिपति के रूप में वर्णित है । मैकडॉनल के अनुसार वृत्र, बल, शुष्ण को छोड़कर शम्बर इन्द्र के बहुचर्चित असुर शत्रु है । यह पर्वत निवासी है तथा अनेक दुर्गों का अधिपति है । हिलेब्राण्ट के अनुसार शम्बर दिवोदास का शत्रु नरेश है,जो परवर्ती काल में असुर बन गया । कुछ विद्वान् पर्वत निवासी आर्यों का आदि शत्रु स्वीकृत करते हैं । यास्क ।निरु० 7/6। के अनुसार शम्बर पर्वतों ।मेघों। में रहने वाला जल हो सकता है । प्रो० राँथ के मतानुसार - 'In the passages which speak of Divodāsa, mention is made of his deliverence, by the

aid of the gods from the appressor, Sambara eg. R.V.I.112.14, IX. 61.2. It is true that Śambara is employed at a later period to designate an enemy in general, and in particular the enemy of Indra. Vṛtra, but it is not improbable that this may be the transference of the more ancient recollection of a dreaded enemy of the clouds. (Lit. and Hist. of the Veda (page 116).

'हन् हिंसागत्योः' धातु, 'हनस्त च' से हनन के भाव में 'क्यप् प्रत्यय', क्यप् के संयोग से तकार का अन्तादेश तथा कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरत्व प्राप्त हुआ, सप्तमी एकवचन में 'हत्ये' रूप निष्पन्न हुआ। सा०, मुद्गल, वेंकट० - शम्बर हनने। स्कन्द० - शम्बरनाम्नोऽसुरस्य वधे। सात्व० (ऋ० का सु०भा०) - शम्बर का वध करने के युद्ध में। Griff. (The hymns of Ṛgd.) - Shambara was slain, Wil. (Ṛgd.S.) - the death of Shambara, Grass. (Ṛgd.) - Sambara ihr halft, Geld. (D.R.) - im Sambara Kampf.

पूःऽभिद्ये - 'प्राचीन को तोड़ने में' अर्थात् 'संग्राम में' पुराणि नगराणि भिद्यन्तेऽस्मिन्निति पूर्भिद्यः। 'भिदिर् विदारणे' धातु, 'ण्यत्' प्रत्यय, सप्तमी एकवचन में 'भिद्ये' रूप निष्पन्न हुआ। सा०, मुद्गल - संग्रामस्तस्मिन्। स्कन्द० - पूर्नगरम् सा भिद्यते येन यस्मिन् वा संग्रामे। वेंकट० - पुरो भेदने। सात्व० (ऋ० का सु०भा०) - शत्रु नगरियों को तोड़ने के युद्ध में। Griff.(The hymns of Ṛgd.) - forts were shattered, Wil. (Ṛgd.S.) - War. [illegible].

Geld. (D.R.) - Kampf. 'पूर्भिद्ये' का शाब्दिक अर्थ है 'प्राचीन को तोड़ने में' किन्तु यहाँ लाक्षणिक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । यहाँ इसका अर्थ है 'संग्राम', जिसमें प्राचीन नगरों को ध्वस्त किया जाता है ।

त्रसदस्युम् - 'त्रसदस्यु को', त्रसद् दस्युम् इति त्रसदस्युम् । द् का समाक्षर लोप, सप्तम्यन्त बहुव्रीहि । 'क्षयार्थक दसु' धातु से 'यु' प्रत्यय करने पर 'दस्यु' शब्द बनता है । निरु0 (7/6) में 'दस्यु' शब्द का निर्वचन 'दस्युर्दस्यतेः क्षयार्थात्' किया गया है और 'क्षयार्थक दसु' धातु से उत्पन्न माना है । ऋ0 सं0 (7/19/6, 8/8/21, तथा 10/150/5) - में 'त्रसदस्यु' शब्द को ऋषि के नाम के रूप में प्रयुक्त किया गया है । इस मन्त्र में भी सभी भाष्यकारों ने ऋषिनामवाची पद माना है । केवल सात्वलेकर महोदय ने 'त्रसदस्युम्' का अर्थ 'दस्युओं को डराने वाला' ग्रहण किया है । ऋग्वेद से यह ज्ञात होता है कि त्रसदस्यु पुरुकुत्स के पुत्र का नाम था , जो एक ऋषि थे ।

15. याभिर्वम्रं विपिपानमुपस्तुतं	याभिः । वम्रम् । विऽपिपानम् । उपऽस्तुतम् ।
कलिं याभिर्वित्तजानिं दुवस्यथः ।	कलिम् । याभिः । वित्तऽजानिम् । दुवस्यथः ।
याभिर्व्यश्वमुत पृथिमावतं	याभिः । विऽअश्वम् । उत । पृथिम् । आवतम् ।
ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ।।	ताभिः । ऊँ इति । सु । ऊतिऽभिः । अश्विना । आ । गतम् ।।

अन्वय - याभिः विपिपानं वम्रम् उपस्तुतम् । याभिः वित्तजानिं कलिं दुवस्यथः । याभिः व्यश्वम् उत पृथिम् आवतम् । ताभिः ऊतिभिः अश्विना! सु आ गतम् ।

अनुवाद - जिन [रक्षाओं] के द्वारा, विशेष रूप से, सोम रस का पान करने वाले, समीपस्थ स्तोताओं के द्वारा स्तुत्य वम्र को सुरक्षित किया। जिनके द्वारा विवाहित कलि की रक्षा की। जिनके द्वारा घोड़े से बिछुड़े हुए पृथि की रक्षा की। उन्हीं रक्षाओं के साथ हे अश्विनौ! हमारे समीप भली-भाँति आओ।

टिप्पणी -

विऽपिपानम् - 'विशेष रूप से पान करने वाले', 'वि' उपसर्ग, 'पानार्थक पा' धातु से ताच्छील्ये 'चानश्' प्रत्यय, 'बहुलं छन्दसि' से शप् को 'श्लुः' तथा 'बहुलं छन्दसि' से ही अभ्यास को इत्व हुआ, द्वितीया, एकवचन, 'वम्रम्' का विशेषण। सा० - विशेषेण पार्थिवं रस पिबन्तम्। अन्यत्र - ऋ० सं० [4/16/3, 7/22/4] - विपीतवतो विपीवतो वा, [10/131/4] - विशेषेण पीतवन्तौ। स्कन्द० - विविधं पिपासन्तम् अत्यन्ततृषितमित्यर्थः। सात्व० [ऋ० का सु०भा०] - सोमरस का विशेष पान करने वाले। Griff. (The hymns of Ṛgd.) - the great drinker. Wil. (Ṛgd.S.) - when drinking Grass. (Ṛgd.) - den Trinker (drinking).

उपऽस्तुतम् - 'समीपस्थ स्तोताओं के द्वारा स्तुत्य को', 'उप' उपसर्ग, 'स्तुत्यार्थक स्तुञ्' धातु से 'कर्मणि निष्ठा' से 'निष्ठा' प्रत्यय, प्रवृद्धादि से उत्तर पद अन्तोदात्त [पा०सू० 6/2/147]। द्वितीया एकवचन, 'वम्र' का विशेषण। सा० - समीपस्थैः सम्यक् स्तुतमिति स्तूयमानम्। अन्यत्र - ऋ० सं० [1/36/17] - अन्यमपि स्तोतारं यजमानम् [8/5/25] - एतदाख्यं च, यहाँ उपस्तुत को नामवाची शब्द माना गया है। [10/60/1] - उपगतस्तुतिम्। स्कन्द० - उपस्तोतारम् सात्व० [ऋ० का सु०भा०] - समीपस्थों द्वारा प्रशंसित। ग्रिफिथ महोदय ने नामवाची पद माना है। Wil. (Ṛgd.S.) - praised by all around him,

M. W. - praised . यह शब्द सदैव एक प्राचीन ऋषि और बहुधा कण्व के सम्बन्ध में आया है , जिनकी अग्नि, अश्विनों तथा अन्य देवताओं ने या तो सहायता की थी या उस पर कृपा की थी । वृष्टिहव्य के पुत्र 'उपस्तुतों' का गायकों के रूप में उल्लेख है । यहाँ 'उपस्तुत' विशेषण के रूप में प्रयुक्त है, संज्ञावाची शब्द के रूप में नहीं ।

कलिम् - कलि शब्द, द्वितीया एकवचन । यह ऋषि का नाम है । कलि शब्द का ऋग्वेद में दो बार एकवचन में अश्विनों के एक आश्रित ऋषि के नाम के रूप में तथा एक बार बहुवचन में प्रयोग हुआ है । दूसरे स्थल पर जिन व्यक्तियों से तात्पर्य है, वे प्रथम से भिन्न प्रतीत होते हैं । अथर्ववेद ॥10/10/13॥ - में एक बार गन्धर्वों के साथ-साथ 'कलियों' का भी उल्लेख है, किन्तु यहाँ ऋषि के लिए प्रयुक्त हुआ है ।

वित्तऽजानिम् - 'पत्नी लाभ करने वाले को' अर्थात् 'विवाहित ॥कलि॥को, 'विद्लृ लाभे' धातु से 'क्त' प्रत्यय करने पर 'वित्त' शब्द बना, 'जायाया: निङ्' ॥पा0सू0 5/4/134॥ से समास के अन्त में निङादेश, 'लोपो व्योर्वलि' से वलि लोप, बहुव्रीहि में पूर्वपद प्रकृतिस्वरत्व प्राप्त हुआ । वित्ता लब्धा जाया येन स तथोक्त: । कलि का विशेषण । सा0 -लब्धभार्यम्। स्कन्द0 - लब्धभार्यक: । वेंकट - जायामलभत् । सात्व0 ॥ऋ0 का सुभा0॥ - विवाहित । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - gained his wife. Wil. (Ṛgd.S.) - taken a wife.

ऋग्वेद में केवल इसी मन्त्र में प्रयुक्त ।

दुवस्यथ: - 'रक्षा की', लट् लकार, मध्यम पुरुष, द्विवचन । सा0, मुद्गल -रक्षथ: । अन्यत्र - ऋ0सं0 ॥1/112/2॥ - रक्षथ:, ॥1/119/10॥ - दत्तवन्तौ,

निघ0 (3/5) - दुवस्यति इति परिचरणकर्मा । वेंकट0 - प्रीणनार्थः । स्कन्द0 - वृष्टिप्रदानेन पुनर्यौवनकरणेन च परिचरितवन्तौ स्थः । सात्व0 (ऋ0 का सुभा0)- सुरक्षा । Griff. (The hymns of Ṛgd.)-honoured, Wil. (Ṛgd. S.)preserved. इस शब्द को लेकर भाष्यकारों में अर्थ वैभिन्य है । परन्तु प्रसंगानुसार यहाँ रक्षा-मूलक अर्थ ही अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है ।

16. याभिर्नरा शयवे याभिरत्रये याभिः पुरा मनवे गातुमीषथुः । याभिः शारीराजतं स्यूमरश्मये ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ।।

याभिः। नरा। शयवे। याभिः। अत्रये। याभिः। पुरा। मनवे। गातुम्। ईषथुः। याभिः। शारीः। आजतम्। स्यूमऽरश्मये। ताभिः। ऊँ इति। ऊतिऽभिः। अश्विना। आ। गतम् ।।

अन्वय - नरा ! पुरा याभिः शयवे, याभिः अत्रये, याभिः मनवे गातुम् ईषथुः । याभिः स्यूमरश्मये शारीः आजतम् ताभिः ऊतिभिः अश्विना! सु आ गतम् ।

अनुवाद - हे नेताओं ! प्राचीन काल में जिन (रक्षाओं) के द्वारा शयु, अत्रि और मनु के लिए (दुःख से छुटकारा पाने वाले) मार्ग को बताने की इच्छा की थी । जिनके द्वारा स्यूमरश्मि के लिए बाण चलाया था । उन्हीं रक्षाओं के साथ हे अश्विनौ ! हमारे समीप भली भाँति आओ ।

टिप्पणी -

शयवे - 'शयु के लिए', 'शीङ् स्वप्ने' धातु, 'भृमृशीतृचरि' (उ0सू0 1/7) से 'उ' प्रत्यय, चतुर्थी, एकवचन । सभी भाष्यकारों ने इसका अर्थ 'शयुनामक ऋषि' किया है , क्योंकि शयु एक ऋषि का नाम है । ऋ0 सं0 (1/116/22, 1/117/20,

1/118/8, 6/62/7, 7/68/8 तथा 10/39/13‍‌ में भी 'शयु' ऋषिनामवाची शब्द के रूप में प्रयुक्त हुआ है । मोनियर विलियम्स ने 'शयु' का अर्थ एक ऐसा व्यक्ति लिया है, जिसकी अश्विनों ने रक्षा की थी । अश्विनों ने इसकी गाय को दुग्धा बनाया था ।

मनवे – 'मनु के लिए', मनु शब्द, चतुर्थी, एकवचन । ऋग्वेद में मनु शब्द अनेक अर्थों में प्रयुक्त हुआ है । कहीं इसका अर्थ मनुष्य, कहीं प्रजापति तथा कहीं राजा किया गया है । ऋ0 सं0 ॥2/19/4, 7/91/1 तथा 10/11/3॥ में यजमान के अर्थ में प्रयुक्त है, ॥4/26/4, 6/49/13 तथा 8/10/2॥ में प्रजापति के अर्थ में तथा ॥9/96/12॥ – मे राजा के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है । मैक्डॉनल ॥वै0इ0 पृ0 144॥ के अनुसार यह केवल प्रथम मनुष्य है और मानव जातिका पिता तथा यज्ञ और अन्य विषयों का मार्ग दर्शक है । इसलिए मनु को विवस्वन् और वैवस्वत्, सावरि और सावराणि भी कहा गया है । प्रस्तुत प्रसंग में 'मनु' शब्द राजा का बोधक है , क्योंकि कथा के अनुसार यह विदित होता है कि मनु नामक एक राजा थे । अनावृष्टि के प्रकोप से प्रजा के निमित्त अन्न उत्पन्न करने में असमर्थ होकर उन्होंने अश्विनीकुमारों का स्मरण किया था । अश्विनी कुमारों ने अन्न उत्पन्न करके मनु को दारिद्र्य और चिन्ता से मुक्त किया । सभी भाष्यकारों ने 'मनु' को यहाँ राजा के नाम के रूप में स्वीकारा है ।

गातुम् – 'मार्ग को', 'गम् धातु, 'तुमुन्' प्रत्यय । द्वितीया एकवचन । सा0 – दुःखात् निर्गमलक्षणं मार्गम् । अन्यत्र ऋ0सं0 ॥1/71/2, 1/72/9, 1/151/7, 9/69/7॥–मार्गम् , ॥5/15/16॥–गमनं देवयजनदेशं वा गातुरिति पृथिवीनाम , ॥8/45/30॥–भूमिम् । 'भूमिः गातुः' इति तन्नामसु पाठात् । ॥6/6/1॥–उपगन्तव्यं स्तोतव्यम्,॥9/14/2॥–शुभाशुभनिमित्तम्। स्कन्द0 – गमनम् । सात्त्व0 ॥ऋ0 का सु0भा0॥ – दुःख से छूट जाने का मार्ग । Wil. (Rgd.S.) – The way

(to escape from evil). Mac.D.(V.R.),M.W.- path, way,

यहाँ 'मार्ग' के अर्थ में प्रयुक्त । Geld. (D.R.) - weg (way).

इ॑षथुः - 'इच्छा की', 'इषु इच्छायाम्' धातु, 'लिटि अथुसि', 'असवर्णे' (पा० सू० 6/4/78) इति पर्युदासात्, अभ्यास को इयङ् आदेश का अभाव होने से सवर्णदीर्घ, लिट् लकार, मध्यम पुरुष, द्विवचन । सा०,मुद्गल - युवां वांछितवन्तौ, कृतवन्तावित्यर्थः । स्कन्द० - इच्छयाऽत्र । वेंकट० - गमनेच्छा चक्रतुः । सात्व० (ऋ० का सु०भा०) - इच्छा की थी । Wil. (Rgd.S.) - anxious, M.W. - to desire. 'इष्' धातु से व्युत्पन्न शब्द के समकक्ष शब्द अन्य भाषाओं में भी उपलब्ध होते हैं, जैसे - Old German - 'Ciscôm' (I ask), Mod. German - 'heische, Anglo Saxon - 'a' scian' (of, also), Greek - 'ζο-Τηs', 'Lμεpos' Lithnanian - 'jeskoti' Russian - 'iskate' (to seek).

शा॑रीः - 'बाणों' (को), 'शॄ हिंसायाम्' धातु से व्युत्पन्न 'शर' शब्द से 'अनुदात्तादेश्च' सूत्र के द्वारा 'अञ्' प्रत्यय तथा 'टिड्ढाणञ्' से 'ङीप्' प्रत्यय होने पर, स्त्रीलिंग, द्वितीया,बहुवचन में 'शारीः' रूप निष्पन्न हुआ । यह शब्द विभिन्न भाष्यकारों के द्वारा भिन्न-भिन्न अर्थों में ग्रहण किया गया है। सा०,मुद्गल - शरो नाम वेणुविशेषः तद्विकारभूता इषुः । अन्यत्र - यजुर्वेद संहिता (3/14/5) में अश्वमेध के बलिप्राणियों की तालिका में यह शब्द आता है । अतः इसे 'पुरुष वाच्' वाला कहा गया है । ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है कि यह एक प्रकार का पक्षी है । त्सिमर के अनुसार सम्भवतः यह बाद की शारिका रही होगी । स्कन्द०, वेंकट० - शरमयीरिषुः । सात्व० (ऋ० का सु०भा०) बाणों को । Griff. (The hymns of Rgd.) - shafts, Wil. (Rgd.S.) - arrows, M.W. - arrows.

स्यूमऽरश्मये - 'स्यूमरश्मि के लिए', स्यूतः संबद्धः रश्मिर्दीप्तिर्यस्य स तस्मै,
√सिवु तन्तु संताने' से औणादिक 'मन्प्रत्यय', 'च्छ्वोः शूठ्' से ऊठ्
'बहुब्रीहौ पूर्वपदम्0' से पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्व प्राप्त हुआ । यह एक ऋषि का नाम है । सभी भारतीय और पाश्चात्य भाष्यकारों ने इसे नाम के अर्थ में ही ग्रहण किया है । निघ0 ॥1/5॥ में रश्मि के पन्द्रह नाम आम्नात है । निरुक्तकार यास्क ने 'रश्मि' का निर्वचन इस प्रकार किया है - 'रश्मिर्यमनात् उदकस्य अश्वानां वा नियमनात्' ॥निरु0 2/5॥ । नियमन से रश्मि कहलाई । रश्मि अश्व और जल का नियमन करती है । अतः घोड़े की रास को रश्मि कहते हैं और जलों को सूर्य की किरणें सुखातीं हैं , इसलिए किरणें भी रश्मि कहलाती हैं । मैक्डॉनेल ने भी 'रश्मि' शब्द को 'ray' और 'card' दोनों अर्थों में ग्रहण किया है ।

17. याभिः पठर्वा जठरस्य मज्मनाग्निर्नादीदेच्चित इद्धो अज्मन्ना ।
याभिः शर्यातमवथो महाधने ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ।।

याभिः ।पठर्वा ।जठरस्य ।मज्मना । अग्निः ।न ।अदीदेत् । चितः ।इद्धः । अज्मन् ।आ ।याभिः ।शर्यातम् ।अवथः ।महाऽधने । ताभिः ।ऊँ इति ।ऊतिऽभिः ।अश्विना ।सु । आ ।गतम् ।।

अन्वय - याभिः जठरस्य मज्मना पठर्वा अज्मन् चितः इद्धः अग्निः न आ अदीदेत् । याभिः शर्यातं महाधने अवथः । ताभिः ऊँ इति ऊतिभिः अश्विना! सु आ गतम् ।

अनुवाद - जिन ॥रक्षाओं॥ के द्वारा अपने शरीर के बल से पठर्वा युद्ध में, समिधाओं के डालने से यज्ञगृह में प्रज्वलित अग्नि के समान प्रदीप्त हो उठा था । जिनके द्वारा शर्यात की संग्राम में रक्षा की । उन्हीं रक्षाओं के साथ हे अश्विनों!

हमारे समीप भली-भाँति आओ ।

टिप्पणी -

जठरस्य - 'शरीर के' 'जठर' शब्द षष्ठी एकवचन का रूप है। जठर शब्द का शाब्दिक अर्थ उदर होता है । प्रस्तुत मन्त्र में जठर का तात्पर्य केवल-मात्र उदर से नहीं बल्कि पूरे शरीर से है । सा० - जठरोपलक्षितस्य शरीरस्य । अन्यत्र - ऋ० सं० {6/67/7, 6/69/7, 10/92/8} - उदरम्, {9/70/10} - जठरभूतं द्रोणकलशं वा । निरु० {4/1/9} - 'जठरमुदरं भवति । जग्धमस्मिन्ध्रियते धीयते वा' अर्थात् इसमें खाया हुआ अन्न रखा जाता है, अथवा धारण किया जाता है, इसलिए जठर कहते हैं । स्कन्द० - जठरस्याग्नेः प्रवृद्धयेत्यर्थः । सात्व० {ऋ० का सु०भा०} - शरीर । M.W.-abdomen, Mac.D.(V.R.)-belly.

आ अदीदेत् - 'प्रदीप्त हो उठा था', आ उपसर्ग पूर्वक, 'दिप् दीप्तौ' धातु से लङ् लकार, प्रथम पुरुष एकवचन में आ अदीदेत् रूप निष्पन्न हुआ । 'दीदेतिश्छान्दसो दीप्तिकर्मा' । सा०, मुद्गल, स्कन्द० - अदीप्यत् । वेंकट० - प्रजज्वाल । सात्व० - {ऋ० का सु०भा०} प्रदीप्त हो उठा था । Griff. (The hymns of Ṛgd.)- shone in his course, Wil.(Ṛgd.S.) - shone, M.W. - to shine. ऋ०सं० {1/149/3} - दीपयति । Grass. (Ṛgd.)-strahlte (to shine), Geld. (D.R.) - leuchtete (luminary).

अज्मन् - 'युद्ध में', 'अज् गतिक्षेपणयोः' धातु से अधिकरण में औणादि 'मनिन्' प्रत्यय, 'वलादावार्धधातुके विकल्प इष्यते' {का० 2/4/56/2} इस वार्त्तिक से 'वीभाव' का अभाव तथा 'सुपां सुलुक्०' से सप्तमी का लोप होकर अज्मन् शब्द बना । सा० - संग्रामे । अन्यत्र - निघ० {2/17} में संग्राम के 46 नामों में अज्म भी आम्नात है । इसके अतिरिक्त अज्म का दूसरा अर्थ गृह भी है, 'अज्मेति गृहनाम'

॥निघ0 3/4॥ स्कन्द0 - यज्ञगृहे । वेंकट0 - गृहे । सात्व0 ॥ऋ0 का सु0भा0॥ - युद्ध में । Griff. (The hymns of Rgd.) - in his majesty, Wil. (Rgd.S.) - in battle.

शर्यातम् - 'शर्याति को,' पुल्लिंग द्वितीया एकवचन । निरुक्तकार यास्क ने शर्या शब्द के दो अर्थ ग्रहण किये हैं - शर्या अङ्गुलयो भवन्ति । सृजन्ति कर्माणि । शर्या इषव: शरमय्य: । शर: शृणाते । इत्यपि निगमो भवति । ॥निरु0 5/1/23॥ । यास्क के अनुसार शर्या शब्द की उत्पत्ति 'सर्जनात्मक सृज्' धातु से सर्जन करने के अर्थ में हुई है , क्योंकि अंगुलियाँ कार्मों को बनातीं हैं, काम करती रहती हैं । 'सर्जा' से क्रमशः 'शर्या' बन गया । अथवा बाण को शर्या कहते हैं, क्योंकि बाण 'शरमय्य:' अर्थात् सरकण्डों से बने होते हैं । इसी 'शर्या' शब्द से 'क्त' प्रत्यय करने पर 'शर्यात' शब्द बना । शर्याति एक पौराणिक राजा का नाम है । अश्विनीकुमारों ने संग्राम में उसकी रक्षा की थी । प्रस्तुत सन्दर्भ में उसी शर्याति नामक राजा का ही उल्लेख किया गया है ।

महाऽधने - 'संग्राम में', 'महत् धनम् अत्र संग्रामे' इस व्युत्पत्ति के अनुसार बहुव्रीहि समास करने पर अन्तोदात्त नहीं होना था, किन्तु यहाँ 'महच्च तद्धनं चेति' ॥पा0 सू0 6/1/123॥ से अन्तोदात्त हुआ । 'आन्महत:' से आत्व होने होने पर महा शब्द बना, 'धिवि प्रीणनार्थः' धातु से व्युत्पन्न धन शब्द के सप्तमी एकवचन में 'धने' रूप निष्पन्न हुआ । निरु0 ॥3/2॥ "धिनोतीति सत: धिनोतिस्तर्पणार्थ: ।" सा0 - संग्रामनामैतत्, महताधनेनोपेते संग्रामे । अन्यत्र - ऋ0 सं0 ॥1/7/5॥ - प्रभूतधननिमित्तं, महाधनशब्दोयद्यपि संग्रामनामसु पठितस्तथापि महत् धनम् अत्र संग्रामे इति बहुव्रीहित्वे सति अन्तोदात्तत्वासिद्धे: नात्र तत् गृहीतम् । महच्च तद्धनं चेति इत्यन्तोदात्त: । निघ0 ॥2/17॥ में संग्राम के 46 नामों में आम्नात है । स्कन्द0, वेंकट0 - संग्रामे । सात्व0 ॥ऋ0 का सु0भा0॥ - युद्ध

में, Griff. (The hymns of Rgd.) - mighty fray, Wil. (Rgd.S.)- in war, M.W. - Contest or battle. Mac. D. (वै०इ० पृ० 156) के अनुसार महाधन शब्द ऋग्वेद में या तो एक 'महान् युद्ध' का अथवा युद्ध के परिणामस्वरूप प्राप्त 'महान पुरस्कार' का द्योतक है । अनेक दशाओं में इस युद्ध से केवल रथ के दौड़े की प्रतिस्पर्धा मात्र का ही अर्थ हो सकता है ।

18. याभिरंगिरो मनसा निरण्यथो-
अग्रं गच्छथो विवरे गोअर्णसः ।
याभिर्मनुं शूरमिषा समावतं
ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ।।

याभिः।अंगिरः।मनसा।निऽरण्यथः।
अग्रम्।गच्छथः।विऽवरे।गोऽअर्णसः।
याभिः।मनुम्।शूरम्।इषा।सम्ऽआवतम्।
ताभिः।ऊँ इति।ऊतिऽभिः।अश्विना।सु।
आ । गतम् ।।

अन्वय - मनसा अंगिरः याभिः निरण्यथः, गोअर्णसः विवरे अग्रं गच्छथः । शूरं मनुं याभिः इषा समावतम् । ताभिः ऊतिभिः अश्विना!सु आ गतम् ।

अनुवाद - मनः पूर्वक किये गये अंगिरस् के स्तोत्रों से प्रसन्न होकर, जिन (रक्षाओं) के द्वारा गो धन को गुहाद्वार से उद्घाटित करने के लिए आगे गये । जिनके द्वारा, पराक्रमी मनु को अन्न से भली-भाँति सुरक्षित किया । उन रक्षाओं के साथ हे अश्विनौ ! हमारे समीप भलीभाँति आओ ।

टिप्पणी -

अंगिरः - 'गत्यर्थक अगि' या 'अन्चू' धातु से निष्पन्न, 'आमन्त्रितस्य च' (पा० सू० 8/1/19) के आधार पर सर्वानुदात्त । अङ्गिरस् 'अग्नि' को

भी कहते हैं । निरु0 ‖11/2/11‖ - 'अङ्गिरसः पुत्रास्ते अग्नेरधिजज्ञिर इत्यग्नि-जन्म' । ऋ0 सं0 ‖1/1/6‖ - अग्ने एतच्च, ‖1/31/17‖ - अङ्गनशील हविरा-दानाय तत्र तत्र गमनशील, ‖1/74/5‖ - अङ्गनादिगुणयुक्ताग्ने, ‖6/2/10‖ - अङ्गनादिगुणयुक्ता अङ्गाररूप वाग्ने । ऐ0ब्रा0 ‖3/34‖ - "ये अङ्गारा आसंस्ते ऽङ्गिरसोऽभवन्", सम्भवतः इसी अङ्गार के कारण अग्नि को 'अङ्गिरः' कहा गया है । परन्तु अग्नि अर्थ के अतिरिक्त अङ्गिरा नामक ऋषि के पुत्र को भी अङ्गिरस् कहा गया है । अङ्गिरा ऋषि अग्नि से उत्पन्न हुए थे । ऋ0सं0 ‖8/60/2‖ - में भी अंगिरः' शब्द 'अङ्गिरा' के पुत्र के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है । मैक्डॉनल ‖वै0इ0 पृ0 13‖ के अनुसार अङ्गिरसादि ऋग्वेद में अर्ध-पौराणिक व्यक्तियों के रूप में आते हैं । उन स्थलों पर भी जहाँ अङ्गिरस् जाति के पिता का अस्तित्व स्वीकार किया गया है , इसे वास्तविक ऐतिहासिक पात्र नहीं माना जा सकता । तथापि बाद में निश्चय ही अङ्गिरस् परिवारों का अस्तित्व था , जिनकी सांस्कारिक प्रथाओं ‖अयन, द्विरात्र‖ का उल्लेख मिलता है । यहाँ 'अङ्गिरः' शब्द 'अग्नि' के अर्थ में नहीं, अपितु 'अङ्गिरा' ऋषि' के पुत्र के लिए प्रयुक्त है ।

निऽरण्यथः - 'प्रसन्न होकर', 'नि' उपसर्ग, 'रमु क्रीडायाम्' धातु, लट् लकार, मध्यम पुरुष, द्विवचन । वर्णव्यत्यय से निरमयथः का निरण्यथः हो गया है । नितरां रमयथः इति निरण्यथः । सा0 - स्तोतॄन् नितरां रमयथः यद्वा मनसैव करणभूतेन रमयथः । स्कन्द0 - अत्यन्तं रमेथे । वेंकट0 - निरमेथे । सात्व0 ‖ऋ0 का सु0भा0‖ - संतुष्ट होकर । Griff. (The hymns of Rgd.)-triumphed, Wil. (Rgd.S.)-delight (in praise), M.W. - delight.

विऽवृरे - 'गुहाद्वार से', 'वि' उपसर्ग, 'गूहवृहनिश्चिगमश्च' धातु, भावे 'अप्' प्रत्यय, 'निमित्तात् कर्मसंयोगे' ‖पा0वा0 2/3/36‖ से सप्तमी,

'थाथादिना0' से उत्तर पद अन्तोदात्त हुआ। सा0, मुद्गल - विवरे गुहा-द्वारस्योद्घाटनेन प्रकाशने विषयभूते सति। स्कन्द0 - विवरं कर्तुमित्यर्थः। वेंकट0 प्रवेशे। सात्व0 ॥ऋ0 का सु0भा0॥ - गुहा के मुँह में। Griff. (The hymns of Ṛgd.)-liberate, Wil. (Ṛgd.S.)-to the cavern, to recover. ऋग्वेद में केवल इसी मन्त्र में प्रयुक्त।

शूरम् - 'पराक्रमी;' 'शू गतौ' धातु 'शुषिचिमीनां दीर्घश्च' ॥उ0सू0 2/183॥ से 'क्तन्' प्रत्यय, पुल्लिंग, द्वितीया, एकवचन। 'मनु' का विशेषण। सा0 - वीर्यवन्तम्। अन्यत्र - ऋ0 सं0 ॥1/29/4, 1/11/6॥ - शौर्य, ॥9/81/1॥ - विक्रान्तम् ॥10/42/2॥ - वीरम्। सात्व0 ॥ऋ0 का सु0भा0॥ - पराक्रमी। Griff. (The hymns of Ṛgd.) - hero, Wil. (Ṛgd.S.) - heroic, M.W. - heroic or brave, Geld. (D.R.)-brave or valiant.

गोऽर्णसः - 'गोधनों को', 'गम्' अथवा 'गत्यर्थक गा' धातु से 'गो' शब्द बना है। तथा 'ऋण् गतौ धातु से 'शतृ' प्रत्यय करने पर अथवा अर्ण् + असुक् प्रत्यय करने पर ॠ अर्णस् शब्द बना। द्वितीया बहुवचन में 'अर्णसः' रूप निष्पन्न हुआ। निरुक्तकार यास्क ने 'गो' शब्द का निर्वचन कई प्रकार से किया है जैसे "गौरिति पृथिव्या नामधेयम्। यद् दूरङ्गता भवति। यच्चास्यां भूतानि गच्छन्ति। गातेर्वौकारो नामकरणः। अथापि पशु नामेह भवत्येतस्मादेव। चर्म चरतेर्वा, उच्चृत्तं भवतीति वा। अथापि चर्म च श्लेष्मा च। ज्यापि गौरुच्यते। आदित्योऽपि गौरुच्यते। अथाप्यस्यैको रश्मिश्चन्द्रमसं प्रति दीप्यते सोऽपि गौरुच्यते। सर्वेऽपि रश्मयो गाव उच्यन्ते :- ॥निरु0 2/2॥ इस प्रकार यास्क ने गो शब्द के निम्नलिखित अर्थ ग्रहण किये हैं - ॥1॥ पृथिवी, ॥2॥ पशुविशेष, ॥3॥ सोमरस को निचोड़कर रखने के लिए चर्म निर्मित पात्र विशेष, ॥4॥ गौ का चमड़ा और सरेस, ॥5॥ धनुष की प्रत्यंचा, ॥6॥ सूर्य ॥7॥ सूर्य की एक किरण, जो

चन्द्रमा को प्रकाश देती है,उसे गो कहते हैं और ।8। समस्त सूर्य रश्मियों को भी गो कहा जाता है । प्रस्तुत प्रसंग में गो का तात्पर्य पशुविशेष से है । S.V. (The ety. of Yāska, Pg 87) - 'earth or cow' is traced to √गम् or to √गा 'to go'. But Indo-European - guōu (cattle), Greek - boūs, Lettish-gùovs (cow).

सा0, मुद्गल - गोरूपस्यारणीयस्य धनस्य । स्कन्द0 - गोशब्दोऽत्र गमेः क्रिया-शब्दः गमनार्हवचनः 'अर्णः' ।निघ0 1/12। इत्युदकनाम प्राभूत्यात् सस्यसम्पत्ति-करत्वाच्च गमनार्हमुदकं यस्य स गो अर्णा मेघस्तस्य । वेंकट0 - गोभिः Griff. (The hymns of Ṛgd.) - the flood of milk. Wil. (Ṛgd.s.)- cattle. Grass. (Ṛgd.) - Rinderreichen (cow wealth). Geld. (D.R.) - Rindermosse (cow wealth).

19. याभिः पत्नीर्विमदाय न्यूहथुरा
घ वा याभिररुणीरशिक्षतम् ।
याभिः सुदास ऊहथुः सुदेव्यं१
ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्।।

याभिः।पत्नीः।विऽमदाय।निऽऊहथुः।
आ।घ।वा।याभिः।अरुणिः।अशिक्षतम्।
याभिः।सुऽदासे।ऊहथुः।सुऽदेव्यम्।
ताभिः।ऊँ इति।सु।ऊतिऽभिः।अश्विना।
आ । गतम् ।।

अन्वय - याभिः विमदाय पत्नीः न्यूहथुः । घ वा याभिः अरुणीः आ अशिक्षतम्। याभिः सुदासे सुदेव्यम् ऊहथुः । ताभिः ऊतिभिः अश्विना! सु आ गतम् ।

अनुवाद - जिन ।रक्षाओं। के द्वारा विमद के लिए पत्नी प्राप्त करवाया, जिनके द्वारा अरुणवर्णा गायों को प्रदान किया । जिनके द्वारा सुदास को उत्तम

धन प्रदान किया । उन्हीं रक्षाओं के साथ हे अश्विनौ । हमारे समीप भली-भाँति आओ ।

टिप्पणी –

निऽऊहथुः – 'प्राप्त करवाया', 'नि' उपसर्ग, 'वह् प्रापणे' धातु, अथुसि, यजादि होने से सम्प्रसारण के द्वारा वह् का ऊह् हो गया, लिट् लकार, मध्यम पुरुष, द्विवचन । सा० – नितरां युवां प्रापितवन्तौ । अन्यत्र – ऋ० सं० ॥1/182/5॥ – निर्गमनं कुरुथः । स्कन्द० – रथेनोढवन्तौ स्थः । वेंकट० – प्रत्यूहथुः । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ – पहुँचा दिया । Griff. (The hymns of Rgd.) – brought, Wil. (Rgd.S.) – gave, M.W. – to appear. Grass. (Rgd.), Geld. (D.R.) – Heimführtet (to take home one's bride).

अरुणीः – 'अरुणवर्णा ॥गायों॥ को', अरुणी शब्द, स्त्रीलिंग, द्वितीया, बहुवचन । यह शब्द गायों के लिए प्रयुक्त हुआ है । साथ ही गायों की विशेषता भी 'अरुणी' शब्द से व्यक्त हो रही है । सा० – अरुणवर्णां आरोचमाना गाः । अन्यत्र – ऋ० सं० ॥1/121/3॥ – अरुणवर्णाः आरोचमाना वा उषसः । स्कन्द०, वेंकट० – अरुणवर्णा गाः । सात्वलेकर महोदय ने 'अरुणी' का अर्थ लालवर्णी की घोड़ी ग्रहण किया है । Griff. (The hymns of Rgd.) – ruddy, Wil. (Rgd.S.) – ruddy kive, M.W., Mac D. (V.R.) – ruddy, Geld. (D.R.) – Rötlichen (reddish).

सुऽदेव्यम् – 'उत्तम धन को', 'सु' उपसर्ग, 'दिव्' धातु 'दिवादित्वाद्यत्' ॥पा० सू० 4/3/54॥ से 'यत्' प्रत्यय, द्वितीया, एकवचन । सा० – प्रशस्तं धनम् । स्कन्द० – शोभनं देवयोग्यम् । अन्यत्र – ऋ० सं० ॥10/35/4॥ – शोभन-

देवाई । सात्व० ऋ० का सु०भा०ऋ - धन । Wil. (Rgd.S.) - excellent wealth. Griff. (The hymns of Rgd.) - host of kind gods.
यहाँ पर देवता के अर्थ में नहीं, अपितु धन के अर्थ में प्रयोग किया गया है ।

20. याभिः शंताती भवथो ददाशुषे । याभिः । शंताती इति शम्ऽताती । भवथः । ददाशुषे ।

भुज्युं याभिरवथो याभिरध्रिगुम् । भुज्युम् । याभिः । अवथः । याभिः । अध्रिऽगुम् ।

ओम्यावतीं सुभरामृतस्तुभं ओम्याऽवतीम् । सुऽभराम् । ऋतऽस्तुभम् ।

ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ।। ताभिः । ऊँ इति । ऊतिऽभिः । अश्विना । सु । आ । गतम् ।

अन्वय - याभिः ददाशुषे शंताती भवथः । याभिः भुज्युम् अध्रिगुम् अवथः । याभिः ओम्यावतीं, सुभराम्, ऋतस्तुभम् । ताभिः ऊतिभिः अश्विना! सु आ गतम् ।

अनुवाद - जिन ॥रक्षाओं॥ के द्वारा दान देने वाले के लिए सुखदायी बनते हो । जिनके द्वारा भुज्यु और अध्रिगु को रक्षित करते हो । जिनके द्वारा सुखदायक और पुष्टिकारक ॥अन्न॥ ऋतस्तुभ को ॥प्रदान करते हो॥ । उन्हीं रक्षाओं के साथ हे अश्विनौं । हमारे समीप भली-भाँति आओ ।

टिप्पणी -

शम्ऽताती - 'सुखदायी', 'शम् उपशमे' धातु, 'शिवशमरिष्टस्य करे' (पा०सू० 4/4/143) से 'तातिल्' प्रत्यय, 'लिति' से प्रत्यय से पूर्व उदात्त पुल्लिंग, प्रथमा, द्विवचन । सा०,मुद्गल - सुखस्य कर्त्तारौ । अन्यत्र - ऋ० सं० (10/137/4) - सुखस्य कर्त्तारौ । स्कन्द० - सुखकरौ । वेंकट० - शंकरौ । सात्व० (ऋ० का सु०भा०) - सुखदायक । Griff. (The hymns of Ṛgd.)- great bliss. Wil. (Ṛgd.S.) - bestowers of happiness. M.W.- beneficent or auspicious. Grass. (Ṛgd.) - to bless.

दुदाशुषे - 'देने वाले के लिए', 'दाशृ दाने' धातु, 'क्वसु' प्रत्यय, 'लिट: क्वसु:', 'वसो: सम्प्रसारणम्' से सम्प्रसारण, 'शासिवसिघसीनां च' से षत्व, चतुर्थी, एकवचन । यह शब्द एक प्रकार से यजमान की ओर संकेत कर रहा है । यजमान की विशेषता को बतला रहा है - जैसे हविष्य देने वाला यजमान । यजमान अर्थ में इसे विशेष्य पद भी माना जा सकता है । सा० - दत्तवते यजमानाय। अन्यत्र - ऋ०सं० (1/166/3, 2/8/2, 5/53/6) - दत्तवते । स्कन्द० - सर्वस्मै यजमानाय । वेंकट० - यजमानाय । सात्व० (ऋ० का सु०भा०) - दानी पुरुष के लिए । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - Who offers gifts. Wil. (Ṛgd.S.) - donor (of oblations).

√दा धातु के समकक्ष धातुएँ अन्य भाषाओं में भी उपलब्ध होते हैं जैसे - Greek - δίδωμι, Latin - dă - re.'ददाशुषे' का शाब्दिक अर्थ 'देने वाले के लिए' है । परन्तु यहाँ लक्षणार्थ से यजमान का बोधक है ।

अध्रिऽगुम् - 'अध्रिगु को', अधृतगमनमिति अध्रिगु । अध्रि + √गा, पुल्लिंग, द्वितीया, एकवचन । सा० - अध्रिगुर्देवानां शमिता । अन्यत्र - ऋ० सं० (4/12/2) - अधृतगमनमनिवारितगतिमेतत्संज्ञम्,(8/22/10) - अधृतगमनं राजानमवधः, (8/60/17) - अधृतगमनं सर्वदा गृहे वर्तमानम् । स्कन्द० - अध्रिगुशब्देन

ह्यत्र गवे अधृतत्वादिन्द्र उच्यते, गवे अधृतत्वादुपपन्नम् इन्द्रस्याध्रिगुत्वम् अधृतगमनत्वात् वा । वेंकट० – अधृतगमनम् इन्द्रम् । सात्वलेकर, ग्रिफित तथा विल्सन महोदय ने अध्रिगु को राजा का नाम माना है । वैदिक काल में अध्रिगु नामक राजा हुआ करते थे । अश्विनीकुमारों ने उनकी रक्षा की थी । यहाँ अध्रिगु उसी राजा के लिए प्रयुक्त हुआ, न कि यह शब्द इन्द्र का वाचक है । प्रसंगानुसार स्कन्दस्वामिन् और वेंकटमाधव का अर्थ यहाँ समीचीन नहीं है ।

ऋतऽस्तुभम् – 'ऋतस्तुभ को', पुल्लिंग, द्वितीया, एकवचन । ऋतं स्तुभति यः सः ऋतस्तुभः । 'ऋत' का अर्थ 'सत्य' है । निघ० [3/10] में 'ऋत' की गणना सत्य नामों में की गई है । 'स्तुभ' का अर्थ है 'स्तुति' निघ० [3/14]– 'स्तोभतिरर्चतिकर्मा ।' इस प्रकार ऋतस्तुभ का शाब्दिक अर्थ है – 'सत्य स्तुति ।' किन्तु यदि इसका विग्रह 'ऋतं स्तुभति यः स ऋतस्तुभः' किया जाय , तो यह शब्द व्यक्ति विशेष का बोध कराने लगता है । प्रस्तुत मन्त्र में यह ऋषि का बोधक है । सायण, विल्सन, ग्रिफित तथा सात्वलेकर आदि भाष्यकारों ने ऋतस्तुभ को ऋषि के नाम का वाचक माना है । केवल स्कन्दस्वामिन् और वेंकटमाधव ने ऋतस्तुभ के शाब्दिक अर्थ 'सत्य-स्तुति' को स्वीकार किया है । ऋ० सं० में यह शब्द केवल इसी मन्त्र में प्रयुक्त हुआ है ।

21. याभिः कृशानुमसने दुवस्यथो	याभिः । कृशानुम् । असने । दुवस्यथः ।
जवे याभिर्यूनो अर्वन्तमावतम् ।	जवे । याभिः । यूनः । अर्वन्तम् । आवतम् ।
मधु प्रियं भरथो यत्सरड्भ्य ,	मधु । प्रियम् । भरथः । यत् । सरट्ऽभ्यः ।
स्ताभिरु षु ऊतिभिरश्विना गतम् ।।	ताभिः । ॐ इति । ऊतिऽभिः । अश्विना । सु । आ । गतम् ।।

अन्वय - याभिः असने कृशानुं दुवस्यथः । याभिः यूनः अर्वन्तं जवे आवतम् ।
यस्य मधु प्रियं शरड्भ्यः भरथाः । ताभिः ऊतिभिः अश्विना! सु आ
गतम् ।

अनुवाद - जिन ॥रक्षाओं॥ के द्वारा युद्ध में कृशानु को रक्षित किया । जिनके
द्वारा युवक के घोड़े को वेगपूर्वक दौड़ने में बचाया । जिनके द्वारा
प्रिय मधु को मधुमक्खियों के लिए वहन करते हो । उन्हीं रक्षाओं के साथ हे
अश्विनों । हमारे समीप भलीभाँति आओ ।

टिप्पणी -

असने - 'युद्ध में', 'असु क्षेपणे' धातु, 'करणाधिकरणयोच्च' से अधिकरण में 'ल्युट्'
प्रत्यय, सप्तमी, एकवचन, 'इष्वोऽस्यन्तेऽस्मिन्नित्यसनः' । 'असन'
शब्द युद्ध का पर्याय है । सा०, मुद्गल - संग्रामे । स्कन्द० - असुरान् हन्तु-
मिषूणां प्रदानेन । वेंकट० - इषुक्षेपणकाले । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ - युद्ध में ।
Griff. (The hymns of Ṛgd.) - where the shafts were shot. Wil. (Ṛgd.S.) - in battle. Geld. (D.R.) - Schusse (shooting).

जवे - 'वेगपूर्वक दौड़ने में', 'गत्यर्थक जव्' धातु से 'घञ्' प्रत्यय करने पर सप्तमी
एकवचन में 'जवे' रूप निष्पन्न हुआ । सा०, मुद्गल - वेगे प्रवृत्तम्।
अन्यत्र - निघ० ॥2/14॥ में 'जव' गति नामों में आम्नात है । निरु० ॥5/2/
40॥ में भी 'जवः' का अर्थ 'वेग' ग्रहण किया गया है । स्कन्द० - वेगे महति।
सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ - वेगपूर्वक दौड़ने में । **Griff. (The hymns of Ṛgd.) - to swiftness in the race. Wil. (Ṛgd.S.) - in speed.**

M.W. - swift or speed. Mac. D. (V.R.) - swiftness.
ऋ0 सं0 में केवल एक बार प्रयुक्त ।

यू॑नः - 'युवक के', 'युवन्' शब्द, षष्ठी, एकवचन का रूप । सा0 - तरुणस्य ।
अन्यत्र - ऋ0सं0 [3/46/1, 6/51/4, 8/20/19] - तरुणस्य । निरु0 4/3/38 - 'युवा प्रयौति कर्माणि' यास्क के निर्वचनानुसार युवा इसलिए कहलाता है क्योंकि वह कार्यों को मिश्रित करता है - एक के बाद दूसरे कार्य को आरम्भ करता है । सतत कर्मठ बना रहता है । स्कन्द0, वेंकट0 - तरुणस्य । सात्व0 [ऋ0 का सु0भा0] - युवक । Griff. (The hymns of Rgd.) - Young man. Wil. (Rgd.S.) - young. Mac.D. (V.R.) - youth. M.W. - Youthful. Grass.(Rgd.), Geld. (D.R.) - Jüngling (Young).

अर्व॑न्तम् - 'घोड़े को', 'अर्वा' शब्द, द्वितीया, एकवचन का रूप । सा0-स्कन्द0, वेंकट0, मुद्गल-अश्वम् । अन्यत्र - ऋ0सं0 [1/73/9, 1/93/12, 1/162/8] - अश्वान् । निघ0 [1/14] में 'अर्वा' अश्वनामों में परिगणित है । निरु0 [10/3/5] में 'अर्वा' का अर्थ 'चलने वाली या प्रेरित करने वाली' ग्रहण किया गया है । सात्व0 [ऋ0 का सु0भा0] -घोड़े को । Griff. (The hymns of Rgd.), Wil. (Rgd.S.), Mac.D., M.W. - horse. Grass. (Rgd.)- Rennerbei (courser), Geld. (D.R.) - Rennpferd (race horse).

स॒रड्भ्य॑ः - 'मधुमक्खियों के लिए', 'गत्यर्थक सृ' धातु से 'अटिः', चतुर्थी, बहुवचन । सा0, मुद्गल - मधुमक्षिकाभ्यः । स्कन्द0 - सरडाख्या मधुकर्मः ताभ्यो मक्षिकाभ्यः । सात्व0 [ऋ0 का सु0भा0] - मधुमक्षिका । Griff. (The hymns of Rgd.), Wil. (Rgd.S.), M. W., Mac.D. - bees.

Grass. (Rgd.), Geld. (D.R.) - Bienen (bees).

22. याभिर्नरं गोषुयुधं नृषाह्ये क्षेत्रस्य साता तनयस्य जिन्वथः। याभी रथाँ अवथो याभिरर्वतस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥

याभिः । नरम् । गोषुऽयुधम् । नृऽसह्ये । क्षेत्रस्य । साता । तनयस्य । जिन्वथः । याभिः । रथान् । अवथः । याभिः ।अर्वतः। ताभिः ।ऊँ इति । ऊतिऽभिः । अश्विना । सु । आ । गतम् ॥

अन्वय - याभिः गोषुयुधं नरं नृसह्ये, क्षेत्रस्य, तनयस्य साता जिन्वथः । याभिः रथान् अवथः, याभिः अर्वतः । ताभिः ऊतिभिः अश्विना! सु आ गतम्।

अनुवाद - जिन (रक्षाओं) के द्वारा गौओं के लिए युद्ध करने वाले मनुष्य (यजमान) की युद्ध में, भूमि और सम्पत्ति के विभाजन के लिए सहायता करते हो । जिनके द्वारा (उसके) रथों और अश्वों की रक्षा करते हो । उन्हीं रक्षाओं के साथ हे अश्विनों ! हमारे समीप भली-भाँति आओ ।

टिप्पणी -

गोषुऽयुधम् - 'गौओं के लिए युद्ध करने वाले को' गो शब्द, सप्तमी, बहुवचन में गोषु रूप निष्पन्न हुआ । 'युध् संप्रहारे' धातु, गोषु युध्यते इति गोषुयुत्, 'तत्पुरुषे कृति बहुलम्' से अलुक्, द्वितीया, एकवचन में 'युधम्' रूप बना । 'गोषुयुधम्' 'नरम्' का विशेषण है । सा०, मुद्गल - गोविषयं युद्धं कुर्वन्तम्। स्कन्द० - गोष्वपह्रियमाणासु तद्रक्षार्थं यो युध्यते स गोषुयुत् तं गोषुयुधम् । वेंकट० -

गोनिमित्तं युद्धन्तम्। सात्व० ऋ० का सु०भा०। - गौओं के लिए लड़ने वाले को।
Griff. (The hymns of Rgd.) - fights for live. Wil. (Rgd.S.)- was for cattle. Geld. (D.R.) - Rinder Kämp-fenden (fight for cow).

नृऽसह्ये - 'युद्ध में', 'नृ' पूर्वक, 'सह मर्षणे' धातु ,'शकिसहोश्च' से 'यत्' प्रत्यय, 'अन्येषामपि दृश्यते' से सांहितिक दीर्घत्व, कृदुत्तरप्रकृतिस्वरत्व। नृभिः सोढव्ये संग्रामे। सप्तमी, एकवचन। सा० - संग्रामे। अन्यत्र - ऋ०सं० ।1/100/5। - नृभिः पुरुषैः सोढव्ये संग्रामे, ।8/36/7, 9/97/19। - युद्धे, ।10/38/1, 10/38/4। - नृणाम् अभिभावुके। स्कन्द०, मुद्गलसंग्रामे। वेंकट - युद्धे। सात्व ऋ० का सु०भा०। - युद्ध में। Griff. (The hymns of Rgd.) - in battle. Wil. (Rgd.S.) - in war. Geld. (D.R.) - männerschlacht (man battle).
'नृषह्ये' का शाब्दिक अर्थ है 'मनुष्यों के द्वारा अभिभूत' किन्तु यहाँ लक्षणार्थ में प्रयुक्त हुआ है। यहाँ इसका अर्थ है संग्राम। संग्राम में भी एक मनुष्य दूसरे को अभिभूत या पराजित करता है।

साता - 'विभाजन के लिए' 'वन षण सम्भक्तौ' धातु भावे 'क्तिन्' प्रत्यय, 'जनसनखनां सञ्झलोः' से आत्व, 'ऊतियूति०' से क्तिन् के उदात्तत्व को निपात, 'सुपां सुलुक्०' से चतुर्थी का डादेश, चतुर्थी, एकवचन। सा०, मुद्गल - संभजनार्थम्। अन्यत्र - ऋ० सं० ।9/66/18। - दाता। स्कन्द० - लाभे। वेंकट० - भजननिमित्तम्। सात्व० ऋ० का सु०भा०। - बँटवारा। Griff. (The hymns of Rgd.) - Strife. Wil. (Rgd.S.) - aquisition. M.W. - pleasure or delight. Grass. (Rgd.) - Erlangt (to obtain). Geld. (D.R.) - Gewinn (to gain).

तनयस्य - 'धन के', 'तनु विस्तारे' धातु से 'यत्' प्रत्यय, पुल्लिंग, षष्ठी, एकवचन । सा० - धनस्य । अन्यत्र - ऋ० सं० (1/100/11, 1/112/4, 6/19/7) - पुत्रस्य, (7/82/9) - पौत्रस्य । स्कन्द० - अपत्य । वेंकट० - तनयस्य । सात्व० (ऋ० का सु०भा०) - (खेत की) उपज । Griff. (The hymns of Rgd.) - Sons. Wil. (Rgd.S.) - wealth. Mac.D. (V.R.) - descendant. M.W. - grand child.

निघ० (2/2) - में 'तनय' शब्द अपत्य नामों में परिगणित है । निरु० (10/1/3) - तनयं तनोतेः अर्थात् 'तनय' (पौत्र) से वंशपरम्परा चलती है । सायण तथा विल्सन आदि भाष्यकारों ने 'तनय' का अर्थ 'धन' ग्रहण किया है, क्योंकि 'धन' का भी विस्तार किया जाता है इसलिए 'तनु विस्तारे' धातु से व्युत्पन्न तनय शब्द धन का वाचक भी है । Grass. (Rgd.) , Geld. (D.R.) - Kindern (child). तनय का शाब्दिक अर्थ पुत्र होने पर भी यहाँ धन के लिए प्रयुक्त है । विभाजन धन का होता है पुत्र पौत्रों का नहीं ।

23. याभिः कुत्समार्जुनेयं शतक्रतू — याभिः । कुत्सम् । आर्जुनेयम् । शतक्रतू इति शतऽक्रतू ।

प्र तुर्वीतिं प्र च दभीतिमावतम् । — प्र । तुर्वीतिम् । प्र । च । दभीतिम् । आवतम् ।

याभिर्ध्वसन्तिं पुरुषन्तिमावतं — याभिः । ध्वसन्तिम् । पुरुषन्तिम् । आवतम् ।

ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ — ताभिः । ऊँ इति । ऊतिऽभिः । अश्विना । सु । आ । गतम् ॥

अन्वय - शतक्रतू याभिः आर्जुनेयं कुत्सं प्र आवतम् । तुर्वीतिं दभीतिं प्र च आवतम् ।
याभिः ध्वसन्तिं पुरुषन्तिम् आवतम् । ताभिः ऊतिभिः अश्विना! सु आ
गतम् ।

अनुवाद - हे शतक्रतू । जिन ॥रक्षाओं॥ के द्वारा अर्जुन के पुत्र कुत्स की प्रकृष्ट रूप
से सहायता की । तुर्वीति और दभीति को रक्षित किया । जिनके
द्वारा ध्वसन्ति और पुरुषन्ति को रक्षित किया । उन्हीं रक्षाओं के साथ हे
अश्विनों । हमारे समीप भली-भाँति आओ ।

टिप्पणी -

आर्जुनेयम् - 'अर्जुन के पुत्र' अर्जुन शब्द से 'ढक्' प्रत्यय करने पर द्वितीया, एकवचन
में आर्जुनेयम् रूप निष्पन्न हुआ । सा० - अर्जुन इतीन्द्रस्य नाम ।
अन्यत्र - ऋ०सं० ॥4/26/1, 8/1/11, 7/19/2॥ - अर्जुन्याः पुत्रम् । स्कन्द० -
अर्जुनी नाम कुत्सस्य माता तस्या अपत्यम् । वेंकट० - अर्जुन्याः पुत्रम् । सात्व०
॥ऋ० का सु०भा०॥ - अर्जुनी का पुत्र । Griff. (The hymns of Rgd.) -
Son of Arjuni. Wil.(Rgd.S.)-son of Arjuna. M.W.-Name of Kutsa
अर्जुन इन्द्र का नाम है । इन्द्र के पुत्र कुत्स को 'आर्जुनेय' कहा गया है । यह
कुत्स का विशेषण है । कतिपय भाष्यकारों ने अर्जुनी नामक स्त्री का पुत्र माना
है । परन्तु यहाँ 'अर्जुन ॥इन्द्र॥ के पुत्र आर्जुनेय' अर्थ ही समीचीन है ।

शतऽक्रतू - सम्बोधन के रूप में प्रयुक्त । अर्थ है 'अनेक कर्मों को करने वाला' ।
शतं करोतीति शतक्रतू । 'क्रतु' शब्द के सम्बोधन द्विवचन का रूप है ।
निघ० ॥2/1॥ "क्रतुरिति कर्मनाम" । सा० - बहुविधकर्माणावश्विनौ । अन्यत्र-
ऋ०सं० ॥1/30/1॥ - शतसंख्याककर्मोपेतम्,॥8/1/11॥ - बहुविधकर्माणि । स्कन्द०-
बहुकर्माणौ, बहुप्रज्ञौ वा । वेंकट० - शतकर्माणौ । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ -

सैकड़ों कार्य करने वाले । Griff. (The hymns of Ṛgd.) – lords of hundred power. Wil. (Ṛgd.S.) who are worshipped in many rites. M.W. – containing a hundred sacrificial rites.

यहाँ 'क्रतु' का अर्थ 'यज्ञ' नहीं है, केवल 'कर्म' है । इसलिए 'शतक्रतु' का अर्थ 'अनेक कर्मों को करने वाला' अधिक संगत होगा, न कि 'अनेक यज्ञों को करने वाला' ।

तुर्वीतिम् – 'तुर्वीति को' 'तुर्वी हिंसायाम्' धातु से औणादिक इति प्रत्यय, पुल्लिंग, द्वितीया, एकवचन शत्रूस्तुर्वतीति तुर्वीतिः । व्यक्ति विशेष का नाम है । सम्भवतः यह तुर्वश जाति का ही एक व्यक्ति था । लुडविग ने ऐसा अनुमान किया है कि वह तुर्वशों और यदुओं का राजा था । किन्तु इस मत के पक्ष में पर्याप्त प्रमाण नहीं है ।

दभीतिम् – 'दभीति को' 'दम्भु दम्भे' से औणादिक कीति प्रत्यय, पुल्लिंग, द्वितीया, एकवचन । दभीति ऋग्वेद में अनेक बार एक नायक अथवा ऋषि के रूप में आया है । तुर्वीति के साथ दभीति भी अश्विनों के एक आश्रित के रूप में आता है । इन्द्र ने इसके लिए चुमुरि और धुनि को पराजित किया । उसने इन्द्र के लिए सोम दबाया और इन्द्र ने उसे पुरस्कृत किया । इसके लिए 30,000 दासों को निद्रित और दस्युओं को बिना रस्सी के ही बाँधा था ।

ध्वसन्तिम् – 'ध्वसन्ति को', 'ध्वंसु गतौ च' धातु से औणादिक 'झिच्' प्रत्यय, 'अनिदिताम्' से 'न्' लोप, 'झोऽन्तः', पुल्लिंग, द्वितीया, एकवचन । ध्वसन्ति का पुरुषन्ति के साथ-साथ अश्विनों द्वारा सहायता प्राप्त करने वाले के रूप में उल्लेख है । यह 'ध्वसु' नाम का ही अपेक्षाकृत बृहद् रूप है । जो

'पुरुषन्ति' के साथ-साथ ऋग्वेद और पंचविंश ब्राह्मण में मिलता है । ध्वस्र का पुरुषन्ति के साथ पंचविंश ब्राह्मण में तरन्त और पुरुमीढ़ को दान देने वाले के रूप में उल्लेख है । पंचविंश ब्राह्मण में यह नाम द्विवाचक 'ध्वस्त्रे पुरुषन्ति' के रूप में आता है । निदान सूत्र के द्वारा भी यही पाठ पुष्ट होता है । इनमें से प्रथम नाम अनिवार्यतः स्त्रीलिंग है, क्योंकि सायण ने अपने भाष्य में इस स्थल की अनियमित पुंलिंग के रूप में व्याख्या की है । ब्रेनफे का मत है कि ये दोनों ही स्त्रियों के नाम हो सकते हैं । बेवर का विचार है कि, यह दोनों असुर थे । किन्तु जैसा कि सीग दिखाते हैं - यह एक सर्वथा आवश्यक मान्यता है । इसमें कोई सन्देह नहीं कि 'ध्वस्र' और 'ध्वसन्ति' दोनों समान हैं ।

पुरुषन्तिम् - 'पुरुषन्ति को', पुरुष शब्द से 'क्तिमुचौ च संज्ञायाम्' से 'क्तिच्' प्रत्यय, 'न क्तिचि दीर्घश्च' से अनुनासिक लोप और उपधा दीर्घत्व का निषेध, द्वितीया, एकवचन । यास्क ने 'पुरुष' शब्द का निर्वचन इस प्रकार किया है - "पूः शरीरं पुरिशयः सन् पुरुष इत्युच्यते । पूरयतेर्वा पूर्णमनेन पुरुषेण जगदिति । निगमश्च भवति ।" ॥निरु० ।/4॥ । यहाँ पुरुषन्ति व्यक्ति विशेष का नाम है , जिसकी अश्विनी कुमारों ने रक्षा की थी ।

24. अप्नस्वतीमश्विना वाचमस्मे	अप्नस्वतीम्।अश्विना।वाचम्।अस्मे इति।
कृतं नो दस्रा वृषणा मनीषाम्।	कृतम्।नः।दस्रा।वृषणा।मनीषाम् ।
अद्यूत्येऽवसे नि ह्वये वां वृधे	अद्यूत्ये।अवसे।नि।ह्वये।वाम्। वृधे ।
च नो भवतं वाजसातौ ।।	च । नः। भवतम् । वाजऽसातौ ।।

अन्वय - अश्विना । वाचम् अप्नस्वतीं कृतम् । वृषणा, दस्त्रा । नः मनीषां कृतम्।
वाम् अद्यूत्ये अवसे नि ह्वये, वाजसातौ च नः वृधे भवतम् ।

अनुवाद - हे अश्विनों । वाणी को कर्मयुक्त करो । हे कामनासेचक शत्रुविनाश-
कारक अश्विनों । हमारी प्रज्ञा को समर्थ करो । तुम दोनों का रात्रि
के अन्तिम प्रहर में रक्षा के निमित्त आह्वान करता हूँ । अन्न के विभाजन में
अथवा संग्राम में हमारी वृद्धि के लिए प्रयत्न करो ।

टिप्पणी -

अप्नस्वतीम् - 'कर्मयुक्त', 'अप्न' धातु, "आपः कर्माख्यायां ह्रस्वो नुट् च वा" से
असुन् , नुडागम और "तदस्यास्ति" से मतुप् , "मादुपधायाः" से
मतुप् का वत्व, "तसौ मत्वर्थे" से भत्व के कारण पदत्व का अभाव और रुत्वादि-
भाव । सा० - विहितैः कर्मभिः संयुक्तान् । अन्यत्र - ऋ०सं० ।1/127/6। -
खननप्रोक्षणादिकर्मोपेतासु । निघ० ।2/1। - 'अप्नः इति कर्मनाम' । स्कन्द० -
यागकर्मणा तद्वतीम् । वेंकट० - कर्मवतीम् । सात्व० ।ऋ० का सु०भा०। - कर्मयुक्त।
Griff. (The hymns of Ṛgd.) - effectual. Wil. (Ṛgd.S.) - with
works. Grass.(Ṛgd.) - a miraculous.

दस्त्रा - सम्बोधन पद । 'शत्रु विनाशकारक' 'दसु उपक्षये' धातु, 'त्रप् प्रत्यय' करने
पर 'दस्त्र' शब्द बना । सम्बोधन, प्रथमा, एकवचन । सा० - शत्रूणां
उपक्षपयितारौ । अन्यत्र - ऋ० सं० ।1/3/3। शत्रूणामुपक्षपयितारौ यद्वा दैववैद्यत्वेन
रोगाणामुपक्षपयितारौ, ।7/68/1, 8/5/2। - शत्रूणामुपक्षपयितारौ । ।1/116/
10, 1/116/16, 1/117/5, 1/117/20, 1/117/21, 1/118/6, 1/119/7,

1/120/4, 4/43/4, 6/69/7॥ – दर्शनीयौ । निरु0 ॥7/5/108॥ – दर्शनीयौ। स्कन्द0 – दर्शनीयावुपक्षपयितारौ वा शत्रूणाम् । वेंकट0 – दर्शनीयौ । सात्त्व0 – शत्रु-विनाशकर्ता । Griff. (The hymns of Rgd.) – Wonder workers. Wil. (Rgd.S.) – ribduers of foes. M.W. – (1) accomplishing wonderful deeds, (2) giving marvelous aids (chiefly said of the Aśvins), (3) name of the one of the Aśvins.

सायणाचार्य का दूसरा अर्थ "रोगाणामुपक्षपयितारौ" भी समीचीन है ।, क्योंकि ऐसी मान्यता वैदिक काल से ही चली आ रही है कि अश्विनीकुमार देवताओं के वैद्य थे – "अश्विनौ वै देवानां भिषजौ" ॥ऐ0ब्रा0 1/18॥ । वैद्य होने के कारण रोगों का उपचार करना उनका प्रमुख कृत्य था । यहाँ दोनों अर्थ ही सङ्गत है । सम्बोधन पद होने से निघात हो गया है ।

मनीषाम् – "प्रज्ञा को", मनस् ईषाम् इति मनीषाम् । 'मन् ज्ञाने' धातु से 'असुन्' प्रत्यय करने पर मनस् शब्द बना और 'ईषु इच्छायाम्' धातु से 'टाप्' प्रत्यय करने पर 'ईषा' शब्द बना । दोनों को मिलाने पर स्त्रीलिंग द्वितीया एकवचन में 'मनीषाम्' रूप निष्पन्न हुआ । सा0 – वेदार्थज्ञानसमर्थां कुरुतम् । ऋग्वेद में 'मनीषा' के अनेक अर्थ ग्रहण किये गये हैं – ॥1॥ मन की इच्छा, ॥2॥ स्तुति, ॥3॥ बुद्धि अथवा प्रज्ञा । ऋ0 सं0 ॥1/110/6, 3/38/1, 7/22/4॥ – स्तुतिम्। ॥4/5/3॥ – मनीषाशब्दोज्ञानवाची सन् अत्र ज्ञातव्ये वर्तते । ॥6/47/3, 9/95/5॥ – बुद्धिम्। ॥10/20/10॥ प्रकृष्टां बुद्धिं कामयमाना: सन् । निरु0 ॥2/7॥ – मनोयोगपूर्वक स्तुति, ॥9/1॥ – प्रज्ञान । स्कन्द0 – प्रज्ञामपि चित्त-मप्यमस्माकं यागपरं कुरुतमित्यर्थः । वेंकट0 – प्रज्ञया । सात्त्व0 ॥ऋ0 का सु0भा0॥

इच्छा । Griff. (The hymns of Rgd.) - our hymn . Wil. (Rgd. S.) - our understanding. (for sacred study). M.W. - wisdom or intelligence, √मन् । Greek - μένος (mind, spirit). Latin - miner - va (the goddess gifted with understanding).

अवसे - 'रक्षा के निमित्त', 'अव रक्षणे' (पा०धा०पा० 600 भ्वा०पा०) धातु से 'तुमर्थे सेसेन्' (पा०सू० 3/4/9) से 'असेन्' प्रत्यय, चतुर्थी, एकवचन । सा०, मुद्गल, वेंकट० - रक्षणाय । अन्यत्र - ऋ० सं० (1/17/2, 1/22/6-10, 1/34/12, 1/35/1, 1/45/5, 1/47/10, 1/52/1-12, 1/89/5, 1/102/10) - रक्षणार्थम् । (1/48/14, 1/100/8) अन्नाय च, अवः इति अन्ननाम । निघ० (2/7) - में 'अवः' को अन्ननामों में परिगणित किया गया है । सा०त्व० (ऋ० का सु०भा०) - रक्षा के निमित्त । Griff. (The hymns of Rgd.) - succor Wil. (Rgd.S.) - for our preservation. M.W. - for protection. Mac. D. (V.R.) - help. Peterson - for help. Max Müllar (Vedic Hymns) - to shield. Geld. (D.R.) - Beistand (for help). Grass. (Rgd.)-Hülfe (for aid). S.V. (The ety. of Yāska) Pg 126 - 'food provision' has been traced to √अव 'to go' lit. 'cattle' fodder during a journey which renders the etymology very hazy. Possibly as a 'protective agent', being nourishment.

वाज॑ऽसातौ - "अन्न के विभाजन में अथवा संग्राम में" वाजानां सातिर्यस्मिन् ।

'वाज' शब्द पूर्वक, 'वन षण संभक्तौ' धातु से 'क्तिन्' प्रत्यय, 'जनसनखनांसञ्झलोः' से आत्व, 'ऊतियूति०' से क्तिन् के उदात्तत्व को निपात, 'बहुव्रीहौ पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम्' से पूर्वपद पर प्रकृतिस्वरत्व प्राप्त हुआ । सप्तमी, एकवचन । 'वाज' का अर्थ है 'अन्न' और 'साता' का अर्थ है 'विभाजन', दोनों को मिलाने पर अर्थ होगा 'अन्न के विभाजन में'। निघ० ॥2/7॥ - 'वाजेति अन्ननाम'। 'वाजसातौ' का एक अर्थ 'संग्राम' भी है । निघ० ॥2/17॥ में यह शब्द संग्राम नामों में आम्नात है । सा० - अन्नस्य संभजने । अन्यत्र - ॥ऋ० सं० ॥1/34/12, 1/110/9॥ - संग्रामे । ॥6/15/15॥ - संग्रामे अन्नस्य संभजने वा निमित्तभूते, ॥7/35/1॥ - युद्धे अन्नलाभनिमित्ते वा, ॥9/97/19॥ - अन्नलाभ-निमित्ते । स्कन्द० वेंकट० - संग्रामे । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ - अन्न का दान करते समय । Griff. (The hymns of Rgd.) - on the field of battle. Wil. (Rgd.S.) - provision of food. M.W. - battle.

25. द्युभि॑र॒क्तुभि॒: परि॑ पातम॒स्मान- द्यु॑ऽभिः । अ॒क्तु॑ऽभिः । परि॑ । पा॒त॒म् ।

रि॑ष्टेभिरश्विना॒ सौभ॑गेभिः । अस्मान् । अरि॑ष्टेभिः । अ॒श्वि॒ना॒ । सौभ॑गेभिः

तन्नो॑ मि॒त्रो वरु॑णो मामहन्ताम॒- तत् । नः॒ । मि॒त्रः । वरु॑णः । म॒म॒ह॒न्ता॒म् ।

दिति॒: सिन्धु॑: पृ॒थि॒वी अदि॑तिः । सिन्धु॑ः । पृ॒थि॒वी । उ॒त । द्यौः ।

उ॒तद्यौः ॥

अन्वय - अश्विना । द्युभिः अक्तुभिः अरिष्टेभिः सौभगेभिः अस्मान् परि पातम् । तत् मित्रः वरुणः, अदितिः, सिन्धुः, पृथिवी उत द्यौः नः ममहन्ताम् ।

वाजऽसातौ - "अन्न के विभाजन में अथवा संग्राम में" वाजानां सातिर्यस्मिन् ।

'वाज' शब्द पूर्वक, 'वन षण संभक्तौ' धातु से 'क्तिन्' प्रत्यय, 'जनसनखनांसञ्झलोः' से आत्व, 'ऊतियूति0' से क्तिन् के उदात्तत्व को निपात, 'बहुव्रीहौ पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम्' से पूर्वपद पर प्रकृतिस्वरत्व प्राप्त हुआ । सप्तमी, एकवचन । 'वाज' का अर्थ है 'अन्न' और 'साता' का अर्थ है 'विभाजन', दोनों को मिलाने पर अर्थ होगा 'अन्न के विभाजन में'। निघ0 [2/7] - 'वाजेति अन्ननाम'। 'वाजसातौ' का एक अर्थ 'संग्राम' भी है । निघ0 [2/17] में यह शब्द संग्राम नामों में आम्नात है । सा0 - अन्नस्य संभजने । अन्यत्र - [ऋ0 सं0 [1/34/12, 1/110/9] - संग्रामे । [6/15/15] - संग्रामे अन्नस्य संभजने वा निमित्तभूते, [7/35/1] - युद्धे अन्नलाभनिमित्ते वा, [9/97/19] - अन्नलाभ-निमित्ते । स्कन्द0 वेंकट0 - संग्रामे । सात्व0 [ऋ0 का सु0भा0] - अन्न का दान करते समय । Griff. (The hymns of Rgd.) - on the field of battle. Wil. (Rgd.S.) - provision of food. M.W. - battle.

25. द्युभिरक्तुभिः परि पातमस्मान- द्युऽभिः । अक्तुऽभिः । परि । पातम् ।

रिष्टेभिरश्विना सौभगेभिः । अस्मान् । अरिष्टेभिः । अश्विना । सौभगेभिः ।

तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ताम- तत् । नः । मित्रः । वरुणः । ममहन्ताम् ।

दितिः सिन्धुः पृथिवी अदितिः । सिन्धुः । पृथिवी । उत । द्यौः ।।

उतद्यौः ।।

अन्वय - अश्विना । द्युभिः अक्तुभिः अरिष्टेभिः सौभगेभिः अस्मान् परि पातम् । तत् मित्रः वरुणः, अदितिः, सिन्धुः, पृथिवी उत द्यौः नः ममहन्ताम् ।

अनुवाद - हे अश्विनौ । दिन और रात्रियाँ हिंसा रहित और शोभन धनों से
हमारी चारों ओर से रक्षा करें । मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु,
पृथिवी, और द्युलोक भी हमारे अनुकूल हों ।

टिप्पणी -

द्युऽभिः - 'दिन', 'दिव्' धातु को 'दिव उत्' सूत्र से उत्व हुआ, तृतीया, बहु-
वचन, 'दिवो झल्' ॥पा०सू० 6/1/183॥ तथा 'सावेकाच०' से विभक्ति
पर उदात्तत्व का निषेध । सा०, मुद्गल - दिवसैः । अन्यत्र - ऋ० सं० ॥1/34/
8॥ - अहोभिः, ॥10/3/3॥ - दीप्तैस्तेजोभिः सह । निघ० ॥1/9॥ - 'द्युः इति
अह्नः नामधेयम् । निरु० ॥1/2॥ - 'द्योतते इति सतः ' अर्थात् सदा चमकने अथवा
प्रकाशित होने के कारण दिन कहा जाता है । स्कन्द० - अहस्सु । वेंकट० -
अहः । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ - दिन । Griff. (The hymns of
Rgd.), Wil. (Rgd.S.) - day. Grass. (Rgd.) Geld. (D.R.) -
Tag (day). M.W., Mac.D. (V.R.)-day.

अरिष्टेभिः - 'हिंसा रहित', 'रिष् हिंसायाम्' से 'क्त' प्रत्यय 'बहुलं छन्दसि'
से भिस् को ऐस्, न रिष्टेभि इति अरिष्टेभिः, नञ्समास में
अव्ययपूर्वपदप्रकृतिस्वरत्व प्राप्त हुआ, तृतीया, बहुवचन । सा०, मुद्गल - अहिं-
सितैः । स्कन्द० - अहिंसितैः । वेंकट० - अनुपहिंसितैः । सात्व० - ॥ऋ० का
सु०भा०॥ - अक्षुण्ण । Griff. (The hymns of Rgd.), Wil. (Rgd.S.)-
undiminished. Mac.D. (V.R.) - uninjured. Geld. (D.R.) - Un-
versehrten (unhurt). Grass. (Rgd.) - Unverletzlichen.

सौभगेभिः - 'शोभन धनों से', 'सु' उपसर्ग, 'भग्' धातु, 'अन्' प्रत्यय, 'हृद्भगसिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य च' से उभय पदों में वृद्धि का निषेध, 'सर्वेविधयश्छन्दसि विकल्पयन्ते' के द्वारा विकल्प से पूर्ववत् ऐसभाव, 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' से आद्युदात्त । तृतीया, बहुवचन । शोभनो भगः श्रीर्यस्यासौ सुभगः तस्य भावः सौभगम् । सा०, मुद्गल - सुभगत्वैः सुभगत्वापादकैर्धनैः । स्कन्द० - शोभनानि धनानि । वेंकट० - कल्याणैः । सात्व० (ऋ० का सु०भा०) - अच्छे ऐश्वर्यों से । Griff. (The hymns of Ṛgd.), Wil. (Ṛgd.S.) - blessings. M.W. - wealth. Grass. (Ṛgd.) - Segnungen (blessing). Geld. (D.R.)-fortune.

ऋ० सं० में केवल एक बार प्रयुक्त ।

मित्रः - 'मिद् धातु' से 'त्रल्' प्रत्यय, पुल्लिंग, प्रथमा, एकवचन । मित्र सौरदेवता हैं , जो सूर्य के रक्षक रूप का प्रतिनिधित्व करते हैं । वरुण से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध मित्र का स्वरूप भी पर्याप्त स्पष्ट नहीं है । कीथ का विचार है कि मित्र को सूर्य के पथ का नियामक माना जाता था । मैक्डॉनल के अनुसार वे निःसन्देह सूर्यदेव,अथवा विशेषतः सूर्य से ~~ब~~ सम्बद्ध प्रकाश देव हैं । बर्गेन के मत में ऋग्वेद में 'मित्र' विशेष देवता का नाम तो है ही, साथ ही यह सामान्य मित्र के बोधार्थ भी प्रयुक्त हुआ है । उनका विचार है कि मित्र और वरुण दोनों ही दिन के देवता हैं । सूर्य से स्पष्टतः सम्बद्ध हैं । 'मिद्' धातु से व्युत्पन्न यह नाम मित्र की उदारता, दयालुता और मित्रता को प्रकट करता है । मोनियर विलियम्स ने प्रसंगानुसार दोनों अर्थों को ग्रहण किया है - (1) friend and (2) Name of an Āditya. F.S.(The V.ety.)-Name of god probably cognate of Mitram 'friend'. "मातेव पुत्रं प्रमना उपस्थे मित्र एव मित्रयात् पात्वहंसः" A.V. 2/28/1, P.P.I 1/12/1 Av. 1/12/4 and Sāyaṇa Av. 3/8/1 where he remarks —

अनुवाद - हे अश्विनौ ! दिन और रात्रियाँ हिंसा रहित और शोभन धनों से हमारी चारों ओर से रक्षा करें । मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी, और द्युलोक भी हमारे अनुकूल हों ।

टिप्पणी -

द्युऽभिः - 'दिन', 'दिव्' धातु को 'दिव उत्' सूत्र से उत्त्व हुआ, तृतीया, बहुवचन, 'दिवो झल्' ॥पा०सू० 6/1/183॥ तथा 'सावेकाच०' से विभक्ति पर उदात्तत्व का निषेध । सा०, मुद्गल - दिवसैः । अन्यत्र - ऋ० सं० ॥1/34/8॥ - अहोभिः, ॥10/3/3॥ - दीप्तैस्तेजोभिः सह । निघ० ॥1/9॥ - 'द्युः इति अह्नः नामधेयम् । निरु० ॥1/2॥ - 'द्योतते इति सतः' अर्थात् सदा चमकने अथवा प्रकाशित होने के कारण दिन कहा जाता है । स्कन्द० - अहस्सु । वेंकट० - अहः । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ - दिन । Griff. (The hymns of Rgd.), Wil. (Rgd.S.) - day. Grass. (Rgd.) Geld. (D.R.) - Tag (day). M.W., Mac.D. (V.R.)-day.

अरिष्टेभिः - 'हिंसा रहित', 'रिषु हिंसायाम्' से 'क्त' प्रत्यय 'बहुलं छन्दसि' से भिस् को ऐस् , न रिष्टेभि इति अरिष्टेभिः, नञ्समास में अव्ययपूर्वपदप्रकृतिस्वरत्व प्राप्त हुआ, तृतीया, बहुवचन । सा०, मुद्गल - अहिंसितैः । स्कन्द० - अहिंसितैः । वेंकट० - अनुपहिंसितैः । सात्व० - ॥ऋ० का सु०भा०॥ - अक्षुण्ण । Griff. (The hymns of Rgd.), Wil. (Rgd.S.)- undiminished. Mac.D. (V.R.) - uninjured. Geld. (D.R.) - Unversehrten (unhurt). Grass. (Rgd.) - Unverletzlichen.

सौभगेभिः - 'शोभन धनों से', 'सु' उपसर्ग, 'भग्' धातु, 'अच्' प्रत्यय, 'हृद्भगसिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य च' से उभय पदों में वृद्धि का निषेध, 'सर्वे-विधयश्छन्दसि विकल्पयन्ते' के द्वारा विकल्प से पूर्ववत् ऐसभाव, 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' से आद्युदात्त । तृतीया, बहुवचन । शोभनो भगः श्रीर्यस्यासौ सुभगः तस्य भावः सौभगम् । सा०, मुद्गल - सुभगत्वैः सुभगत्वापादकैर्धनैः । स्कन्द० - शोभनानि धनानि । वेंकट० - कल्याणैः । सात्व० (ऋ० का सु०भा०) - अच्छे ऐश्वर्यों से । Griff. (The hymns of Rgd.), Wil. (Rgd.S.) - blessings. M.W. - wealth. Grass. (Rgd.) - Segnungen (blessing). Geld. (D.R.)-fortune.

ऋ० सं० में केवल एक बार प्रयुक्त ।

मित्रः - 'मिद् धातु' से 'क्त्र्' प्रत्यय, पुल्लिंग, प्रथमा, एकवचन । मित्र सौर-देवता हैं , जो सूर्य के रक्षक रूप का प्रतिनिधित्व करते हैं । वरुण से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध मित्र का स्वरूप भी पर्याप्त स्पष्ट नहीं है । कीथ का विचार है कि मित्र को सूर्य के पथ का नियामक माना जाता था । मैक्डॉनल के अनुसार वे निःसन्देह सूर्यदेव,अथवा विशेषतः सूर्य से सम्बद्ध प्रकाश देव हैं । बर्गेन के मत में ऋग्वेद में 'मित्र' विशेष देवता का नाम तो है ही, साथ ही यह सामान्य मित्र के बोधार्थ भी प्रयुक्त हुआ है । उनका विचार है कि मित्र और वरुण दोनों ही दिन के देवता हैं । सूर्य से स्पष्टतः सम्बद्ध हैं । 'मिद्' धातु से व्युत्पन्न यह नाम मित्र की उदारता, दयालुता और मित्रता को प्रकट करता है । मोनियर विलियम्स ने प्रसंगानुसार दोनों अर्थों को ग्रहण किया है - (1) friend and (2) Name of an Āditya. F.S. (The V.ety.)-Name of god probably cognate of Mitram 'friend'. "मातेव पुत्रं प्रमना उपस्थे मित्र एव मित्रयात् पात्त्वहंसः" A.V. 2/28/1, P.P.I 1/12/1 Av. 1/12/4 and Sāyaṇa Av. 3/8/1 where he remarks —

मीतेर्करणात् मायते इति मित्र एतन्नामको देव: । मित्र: प्रमीतस्मायते इतिहि निरुक्तम् (Nir. 10/21 also Nir. 5/25 मित्रस्य निमाय ।2। कृत्स्नं जगत् मायत इति मित्र: जगत्त्रयत्राणा दक्षो ह्यसावुदेति । Thus also Nirukta seems to preserve a tradition that associates the word Mitra with the root √Mā 'to create' the tradition might justify why in Mahābhārata, Mitra in the compound, Mitra Varuna is identical with Māyā or Mātrā both from the same root √'mā' and Prakriti (see M. H. B.).The word may be cognated with mi-itra of Boghazkoi tablets (Meyer, G.A. 12, 802) and Persian Mithra (see Moultan 2,151, Schroder, A.R. 367, 383). S.V. (The ety. of Yāska Pg.81) - 'Name of a solar deity' is traced to √मिद् 'to love' But Indo Euro. - mi-(to bind). Greek - 'mítrē' (a bandage for the head) Avestā - Miθra' (friend).

वरुण: - 'वृञ् आवरणे' अथवा 'वर् वरणे' धातु से 'उनन्' प्रत्यय करने पर पुल्लिंग, प्रथमा, एकवचन में 'वरुण:' रूप निष्पन्न हुआ । इन्द्र के साथ वरुण भी ऋग्वेद के महत्तम देवों में से एक हैं । वरुण के व्यक्तित्व में मानवत्वारोपण का भौतिक की अपेक्षा नैतिक क्षेत्र में अधिक पूर्ण विकास हुआ है । इनके शारीरिक रूप की अपेक्षा कार्यों पर ही बल दिया गया है । ऋग्वेद में वरुण को अधिकांश स्थलों में जल का नियामक कहा गया है । ये मित्र के साथ घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध देव हैं । दोनों का सम्बन्ध सूर्य से स्थापित किया गया है । अन्ततोगत्वा प्रजापति की धारणा के विकास के कारण बाद में वैदिकोत्तर-कालीन पुराकथाशास्त्र में वरुण एक भारतीय नेपच्यून अथवा समुद्र के देवता मात्र रह गये । S.V. (The ety.

of Yāska) - 'name of a deity', is traced to √वृ 'to protect to cover'. Indo-Eur. - 'u̯er' - (to propect), Greek - 'ouɣano's' (heaven) (*ovoɣu-ano's).

ममहन्ताम् - 'हमारे अनुकूल हों', 'मंह् पूजायाम्', लोट् लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन । 'बहुलं छन्दसि' से 'शप्' का 'श्लुः', तुजादि होने से अभ्यास को दीर्घ । सा० - पूजयन्तु । अन्यत्र - ऋ० सं० ॥1/94/16॥ - पूजयन्तु, ॥1/113/20, 1/114/11, 1/115/16, 1/100/19॥ - पूजितं कुर्वन्तु । सात्व० ॥ऋ० का सुबोध भाष्य॥ - अनुमोदन करें । Griff. (The hymns of Rgd.)- grant. Wil. (Rgd.S.)-favourable इस शब्द का अर्थ तो 'पूजा करना' है किन्तु यहाँ इसका शाब्दिक अर्थ नहीं, अपितु भावार्थ प्रयुक्त हुआ है । यहाँ इसका अर्थ 'अनुकूल होना' ही संगत है ।

अदितिः - 'दो अवखण्डने' धातु से 'क्तिन्' प्रत्यय करने पर 'दिति' शब्द बनेगा, न दिति इति अदिति, नञ् तत्पुरुष समास करने पर 'अदितिः' शब्द स्त्रीलिंग, प्रथमा, एकवचन में निष्पन्न होगा । निरु० ॥4/4/49॥ - 'अदितिरदीना देवमाता' । ऐतिहासिकों के अनुसार - दीन न हुई देवों की माता । नैरुक्तों का विचार है कि द्यौः आदि जो अनेक पद हैं, वे ही अदिति शब्द से व्यवहृत होते हैं । 'अदितिद्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः, विश्वेदेवा अदितिः पंचजना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम्' ॥ऋ० 1/89/10॥ । मध्यमस्थानीय स्त्रीलिंग देवताओं में अदिति प्रमुख है । अदिति को प्रातःकाल की सन्धिवेला कहा गया है , जो ओस रूप रस के देने के सम्बन्ध से मध्यस्थाना देवता है । आदित्य की जन्मदात्री अदिति को माना गया है । अथर्ववेद ॥13/1/38॥ में 'अदिति' को पृथ्वी के साथ समीकृत किया गया है और यह समीकरण

तैत्तिरीय संहिता और शतपथ ब्राह्मण में प्रायः मिलता है । मैक्डानॅल[1] के अनुसार 'अदिति' की धारणा बहुत कुछ इसके नाम की व्युत्पत्ति से सम्बद्ध है । इन्होंने 'दा' धातु ॥बांधना॥ से अदिति की उत्पत्ति को स्वीकारा है । उनके अनुसार 'दा' ॥बांधना॥ धातु से व्युत्पन्न 'दि - ति' ॥बन्धन = यूनानी डे-सी-स δέ-σι-ς) से बना 'अदिति' शब्द मुख्यतः एक संज्ञा है, जिसका अर्थ 'खोलना' या 'बन्धन - हीनता' है । अतः एक देवी के रूप में अदिति का स्वभावतः स्तोताओं को एक 'बद्ध' चोर की भाँति बन्धन मुक्त करने के लिए ही आवाहन किया गया है । इस विचार का बालिस[2] और ओल्डेनबर्ग[3] भी समर्थन करते हैं । मैक्समूलर[4] के अनुसार अदिति, खुली आँखों को दिखाई पड़ने वाली पृथ्वी की सीमा से बाहर के असीम और अनन्त विस्तार, मेघों, तथा आकाश को व्यक्त करने के लिए आविष्कृत

---

1. मैक्डानॅल - ॥वैदिक माइथालॅाजी ॥पृष्ठ संख्या 230॥

2. बालिस - Cosmology of the Ṛgveda Pg. 45 and later.

3. Oldenburg - Die Religion des Veda Pg. 204-207
तु०-Sacred Books of the East. Pg. 46, 323.

4. Max Müllar - Vedic hymns, Sacred Books of the East 32, 241 तु० - Lecture on the science of language. (ed. 1891) Pg. 2, 619.

प्राचीनतम नाम है । रौथ[1] ने आदित्यों अथवा दिव्य प्रकाश को धारण करने वाले 'चिरन्तन' सिद्धान्त के रूप में इसकी व्याख्या की है । पिशल[2] का विश्वास है कि अदिति पृथ्वी का प्रतिनिधित्व करती है । हार्डी[3] का भी यही मत है । कॉलिनेट[4] अदिति को द्यौस् का ही स्त्री प्रतिरूप मानते हैं । S.V. (The ety. of Yāska) Pg. 31 - It is derived from √दो 'to bind', 'to restrain' with अ (neg.), Lit. 'unbound', 'unhumiliated.' Whether it was a popular etymology incorporated by Yāska in his work or his own derivation, and if so on what grounds is obseure.

यहाँ देवी का वाचक है ।

द्यौः - 'दिव्' धातु से व्युत्पन्न द्यौ शब्द में प्रातिपदिक स्वर के द्वारा अन्तोदात्त प्राप्त था पर 'गोतोणित्' ।पा०सू० 7/1/90। से विभक्ति को णित्व 'अचो ञ्णिति' ।पा०सू० ।7/2/115। से वृद्धि करने पर आन्तरतम्य से उदात्त हुआ ।

---

1. रौथ - निरुक्त प्रस्तावना - 150-1
   Zeitschrift der Deutschen Morgenländischen Gesellschaft. Pg. 6, 68 and later.

2. Pischel - Vedishe Studian Pg. 2, 86.

3. Hardy - Vedisch - brahmanische Periode. Pg. 94.

4. Kollinate - Transactions of the 9th Oriental Congress. Pg. 1, 396-410.

ऋग्वेद में बहुधा आकाश तत्व की उपाधि के रूप में कम से कम 500 बार प्रयुक्त हुआ है । लगभग 50 स्थानों में द्यौः का अर्थ दिन भी किया गया है । पाश्चात्य विद्वानों ने इसका अर्थ 'स्वर्ग' ग्रहण किया है । Greek - zeús या ZNV, Latin - diem. यहाँ 'द्यौः' द्युलोकवासी देवता के मूर्तीकृत स्वरूप का बोधक है ।

पृथिवी - 'प्रथ् विस्तारे' धातु से व्युत्पन्न 'पृथिवी' का अर्थ है भूमि । निघ0 ।1/1। के अनुसार पृथिवी भूमि का पर्याय है । परन्तु निघ0 ।1/3। में यह अन्तरिक्ष नामों में भी परिगणित है । निरुक्तकार यास्क ने 'पृथिवी' का निर्वचन 'प्रथनात् पृथिवीत्याहुः' ।निरु0 1/4। किया है । फैली हुई होने से प्रथम क्रिया के योग से पृथिवी कहते हैं । जहाँ सभी चराचर जीव निवास करते हैं उसे पृथिवी कहते हैं । पृथिवी के आरम्भ का वर्णन करते हुए तैत्तिरीय संहिता ।7/1/5। और तैत्तिरीय ब्राह्मण ।1/1/3[5]। इसके नाम को 'प्रथ्' ।फैलाना, विस्तृत करना। धातु से ही निष्कृष्ट मानते हैं, क्योंकि यह फैली हुई या विस्तृत है । पाश्चात्य विद्वानों ने 'पृथिवी' को 'earth' कहा है । ऋग्वेद में आकाश के साथ संयुक्त रूप से पृथिवी का अनेक बार उल्लेख किया गया है । S.V. (The ety. of Yāska, Pg. 80) के अनुसार 'पृथिवी' is traced to √प्रथ 'to spread', but Indo-Eur. Original from plt or plət (broad and flat). Greek-platús. Lithuanian-platu's (broad). प्रो0 फतह सिंह ने पाँच प्रकार से 'पृथिवी' शब्द की व्याख्या की है -

(1) The earth, from √प्रथ 'to spread' -यदप्रथयतत्पृथिव्यै पृथिवित्वम् प्रपथः पृथिव्योः (ता0ब्रा0 1/1/3/18-19, तै0सं0 7/1/5/1) where also the root √प्रथ is associated with 'पृथिवी'

~~The idea of 'Prithvi'~~

The idea of 'Prithvi' as something spread out naturally comes from its extensiveness which is so obvious to the human eye and so often alluded to in Vedic literature.

(2) The second of the three forms (Āpas, Pṛthivī, tej-as) of the primeval matter energized by the spirit.

'आपो वा अर्कस्त अदयांशर आसीत्तमहन्यत सा पृथिव्ये भवत्तस्माम श्राम्यत्तस्य श्रान्तस्य तप्तस्य तेजो रसो निवर्तताग्निः' ।बृह० उप० 1/2-3, अथर्व० सं० 11/5/26, तै० सं० 7/1/5/1, ता० ब्रा० 1/1/3/18, 19, शत० ब्रा० 6/1/1/15, 6/1/3/7 ।

(3) One of the nine elements (Ātman, Ākāśa, Vāyu, Waters, Planets, Food and Puruṣa)

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूत । आकाशाद्वायुः । वायोरग्निः । अग्नेरापः । अद्भ्यः पृथिवी । पृथिव्या औषधय : । औषधीभ्योऽन्नम् । अन्नात्पुरुषः । स एव पुरुषोऽन्नरसमयः । ।तै० उप० 2/1।

(4) First of the three worlds. 'इयं उवा एषां लोकानां प्रथमा सृज्यत' ।शत० ब्रा० 6/5/3/1, वाज० सं० 37/4, श्वेत० ब्रा० 1/5, जैमिनी० ब्रा० 1/1/3, ता० ब्रा० 2/2/4/2, गो० ब्रा० 1/4/1। ।

(5) Name of the primeval matter in this respect identified with Vāk or Virāj and said to be the cause of the basis of all and the body of Prajāpati. The description of Prithivi as given in Atharvaveda (12/1) may be justified. - (The Vedic Etymology).

I, 116, I-25

नासत्याभ्यां बर्हिरिव प्रवृञ्जे नासत्याभ्याम् । बर्हिःऽइव । प्र । वृञ्जे ।

स्तोमाँ इयर्म्यभ्रियेव वातः । स्तोमान् । इयर्मि । अभ्रिया इव । वातः ।

या अर्भगाय विमदाय जायाम् यौ अर्भगाय । विऽमदाय । जायाम् ।

सेनाजुवा न्यूहतू रथेन ।। सेनाऽजुवा । निऽऊहतुः । रथेन ।।

अन्वय - यौ अर्भगाय विमदाय जायां सेनाजुवा रथेन न्यूहथुः । नासत्याभ्यां स्तोमान् बर्हिरिव प्र वृञ्जे, वातः अभ्रिया इव इयर्मि ।

अनुवाद - जो युवा विमद के लिए पत्नी को ॥शत्रु॥ सेना के साथ चलने वाले रथ से ॥घर॥ ले आये । ॥उन॥ नासत्यों के लिए स्तोत्रों को बर्हि की भाँति सम्पादित करता हूँ तथा वायु के द्वारा प्रेरित, मेघ में स्थित जल की भाँति, प्रेरित करता हूँ ।

टिप्पणी -

नासत्याभ्याम् - 'नासत्यों के लिए', सत्सु भवौ सत्यौ, न सत्यौ असत्यौ, न असत्यौ नासत्यौ, 'नभ्राण्नपात्' से 'नञ्' प्रकृतिभाव हुआ तथा अव्ययपूर्वपदप्रकृतिस्वरत्व प्राप्त हुआ । नासत्य शब्द अश्विनौ की बहुप्रयुक्त उपाधि है । कुछ भाष्यकारों का विचार है कि अश्विनीकुमारों में एक की उपाधि नासत्य तथा दूसरे की दस्र है । और्णवाभ ने नासत्य का अर्थ - 'सदैव सत्य' ॥सत्यावेव नासत्यावित्यौर्णवाभः॥ ग्रहण किया है । आग्रायण ने इसका अर्थ 'सत्य का नेतृत्व करने वाले, सत्य के प्रचारक' ॥सत्यस्य प्रणेतारौ॥ किया है । ऐतिहासिकों के अनुसार नासत्य का अर्थ है - 'नासिकाओं में प्राण

शक्ति का विशेष प्रभाव वाला ।' यास्क ने भी नासत्य के इस अन्तिम निर्वचन को ही स्वीकारा है । 'नासिकाऽप्रभवौबभूवरिति वा' ‖निरु0 6/3/50-51‖ मोनियर विलियम्स ने नासिका शब्द की तीन व्युत्पत्तियाँ प्रस्तुत की हैं - Na + asatya या Nasa + tya या Na + Satya. ऋ0 सं0 ‖1/20/3, 5/77/4, 1/3/3, 1/116/4 तथा अन्यत्र‖ में अश्विनों के अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है । अथर्ववेद ‖20/140/1 तथा 5/143/4‖ में अश्विनीकुमारों को इसी उपाधि से सम्बोधित किया गया है । **S.V. (The ety. of Yāska Pg. 137) - Nasatya is 'name of Ashvins' is traced to (1) न + असत्य 'not false' or (2) सत्य + √नी , 'that who directs truth' or (3) नासिकाप्रभव 'born of the nose'. According to Wüst, the word is derived from √नस् 'to associate'.**

बर्हिः ऽइव - 'कुश की भाँति' 'बृह् वर्धने' धातु, 'इसि' प्रत्यय, 'बृहेर्नलोपश्च' ‖उ0सू0 2/266‖ से 'न्' लोप करने पर 'बर्हिस्' शब्द बना, उसके प्रथमा एकवचन का रूप है 'बर्हिः' । निरु0 ‖8/2/6‖ - 'बर्हिः परिबर्हणात्' अर्थात् परिबर्हण करने या बढ़ने के कारण 'बर्हिः' कहते हैं । निरुक्त में यास्काचार्य ने बर्हिः शब्द के दो अर्थ ग्रहण किये हैं - ‖1‖ कुश और ‖2‖ अग्नि । कुश काटी जाती है और यज्ञाग्नि में फैलती है, बढ़ती है । कुश यज्ञ का मुख्य अंग है, जो वेदी के चारों ओर बिछाई जाती है । बर्हिः का एक अर्थ अग्नि इसलिए है क्योंकि अग्नि से यज्ञ में डाला गया हव्य पदार्थ जलकर चारों ओर फैलता है , सब भूतों को, सब देवों को पहुँचता है । सा0, मुद्गल - दर्भम् । स्कन्द0, वेंकट0 - बर्हिः । सात्व0 ‖ऋ0 का सु0भा0‖ - कुशासन । **Griff. (The hymns of Rgd.) - grass, Wil. (Rgd.S.) - sacred grass, M.W. (S.E.D.) - sacrificial grass, Mac.D.(S.E.D.)- sacrificial grass, Velankar (Ṛksūktaśatī) like grass seat,**

Grass. (Ṛgd.) - Strew (litter or bed of straw). ऋ0 सं0 (1/13/5, 1/13/7, 4/9/1, 5/5/8) तथा अथर्व0 सं0 (18/1/45) में बर्हि का अर्थ कुश ही ग्रहण किया गया है किन्तु ऋ0 सं0 (5/62/5, 2/3/8) में बर्हि का अर्थ यज्ञ ग्रहण किया गया है । यज्ञ का तात्पर्य अग्नि से है । समगोत्रीय भाषाओं में बर्हिस् के समकक्ष शब्द मिलते हैं यथा - Avestā - 'barezis' (cushion, pillow), Old slâvenic - 'blazina' (cushion). अवेस्ता में बर्हिस् के 'ह्' का 'ज़्' हो गया है । यही परिवर्तन ओल्ड स्लेवोनिक भाषा में भी दृष्टिगोचर हो रहा है । अर्थ में भी थोड़ी भिन्नता आई है । संस्कृत में बर्हिस् का अर्थ कुश है, जो वेदी के चारों तरफ आसन के रूप में बिछाई जाती है । अवेस्ता तथा ओल्ड स्लेवोनिक भाषा में इसलिए बर्हि का आसन अर्थ ही ग्रहण कर लिया गया है ।

प्र वृञ्जे - 'प्रकृष्ट रूप से सम्पादित करता हूँ', 'प्र' उपसर्ग पूर्वक, 'वृजी वर्जने' (अदा0) धातु, आदादिक तथा इदित्व के कारण नुम्, 'लोपस्त आत्मनेपदेषु' से त्लोप, लट् लकार, उत्तम पुरुष, एकवचन, आत्मनेपद । सा0, मुद्गल - छिनत्ति संपादयतीति । अन्यत्र - ऋ0 सं0 (1/142/5) - विवर्जयन्ती, सम्पादयन्तीत्यर्थः, (10/61/17) - सम्यक्स्तौति । स्कन्द0 - वृञ्जतिरिह संस्कारार्थः, यथा कश्चिद्वेदिस्तरणार्थं बर्हिः संस्करोति तद्वत् संस्करोति स्तोमान्। वेंकट0 - प्र वृङ्क्ते । सात्व0 (ऋ0 का सु0भा0) - विस्तारित करता हूँ ।

Griff. (The hymns of Ṛgd.) - trim. Wil. (Ṛgd.S.) - strews the sacred grass. M.W. (S.E.D.) - gather (specially sacrificial grass). Grass (Ṛgd.) - schmück (to adorn). Vel. (R.S.) - I bring forth.

स्तोमान् - 'स्तोत्रों को', 'स्तुञ् स्तवने' धातु, 'अर्तिस्तुसु०' ॥उ० सू० 1/137॥ से मन्, नित् होने से आद्युदात्त, उत्तर पद के द्वारा संहिता पाठ में नकार का 'दीर्घादटि समानपदे' ॥पा०सू० 8/3/9॥ से रुत्व, 'आतोऽटि नित्यम्' ॥पा०सू० 8/3/3॥ से आकार का अनुनासिक 'भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि' ॥पा०सू० 8/3/17॥ से यत्व, उसका 'लोपः शाकल्यस्य' ॥पा०सू० 8/3/19॥ से लोप, उसके असिद्ध होने से स्वर सन्धि नहीं हुई, द्वितीया बहुवचन । सा० मुद्गल - स्तुतीः । अन्यत्र निघ० ॥3/16॥ में 'स्तुप्' को स्तोतृनामों में परिगणित किया गया है । निरु॰के अनेक स्थलों में स्तोम शब्द का अर्थ मन्त्र समूह किया गया है । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ - स्तोत्रों को । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - song, Wil. (Ṛgd.S.) - laudations, M.W. (S.E.D.) - praise or a typical form of chant, Vel. (R.S.)- hymns, Grass.(Ṛgd.) - lieder (song). S.V. (The ety of Yāska, Pg. 54) - 'a hymn', is traced to √स्तु Indo European- 'stu' (to praise aloud), Greek - 'steŭtai' (he boasts).

इयर्मि - 'प्रेरित करता हूँ', 'ऋ गतौ' धातु, 'अर्तिपिपर्त्योश्च' से अभ्यास का इत्व, अभ्यास के असवर्ण होने से इयङ् , लट् लकार, उत्तर पुरुष, एकवचन । सा०, मुद्गल - संपादयामि । अन्यत्र - ऋ० सं० ॥3/19/2, 10/4/1, ॥, 10/104/3 तथा 4/42/5॥ में प्रेरित करने के अर्थ में प्रयुक्त । स्कन्द० - वेंकट० - प्रेरयामि । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ - प्रेरित करता हूँ । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - send forth, Wil.(Ṛgd.S.)-I urge on, Grass.(Ṛgd.)-trieb(impulse), Vel.(R.S.)-I send forward.

अभ्रिया इव - 'मेघ में स्थित जल की भाँति', 'अभ्र' शब्द से 'समुद्राभ्राद्घः' ॥पा०सू० 4/4/118॥ से भवार्थ में घः, घ को इयादेश, 'शेषछन्दसि

बहुलम्' से शेलोप, स्त्री लिंग, द्वितीया, बहुवचन । सा0, मुद्गल - मेघेस्ववस्थितान्युदकानि । स्कन्द0, वेंकट0 - अभ्रसमूहान् । निघ0 ।1/10। में मेघ के तीस नामों में अभ्र भी आम्नात है । सात्व0 ।ऋ0 का सु0भा0। - मेघमण्डल में स्थित जलों को । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - rain clouds, Wil. (Ṛgd.S.) - clouds, Vel. (R.S.) - clouds (to the skies), Grass. (Ṛgd.) - wolken (clouds). अन्य भाषाओं में - Avestā - 'awra', Latin - 'imber'. यहाँ अभ्रिया का अर्थ मेघ नहीं अपितु मेघ में स्थित जलकण है । ~~Griff.xx(The~~

अर्भगाय - 'युवा' ।विमद के लिए।, 'अर्ति' से 'अर्तिगृभ्यां मन्' ।उ0 सू0 3/4/32। से 'मन्' प्रत्यय करने पर अर्भः बना, 'संज्ञायां कन्' ।पा0सू0 5/3/87। से 'कन्' प्रत्यय करने पर 'अर्भकः' शब्द बना, छान्दस प्रयोग के कारण ककार को गकार हुआ अथवा 'अर्भ' शब्द से परे 'कै गै शब्दे' धातु, 'गापोष्टक्' ।पा0 सू0 3/2/8। तथा 'आतो लोप इटि च' से आकार का लोप होने पर अर्भग शब्द निष्पन्न होगा । पुल्लिंग, चतुर्थी, एकवचन । सा0, मुद्गल - बालाय स्वयम्वरलब्धभार्याय । स्कन्द0 - अर्भकमित्यल्पनाम ।तु0या0 3/20। तस्य पर्यायोऽर्भशब्द √कै गै शब्दे, योऽल्पम् सूक्तद्वयमात्रमगायत् अल्पाया वा भार्याया गन्ता सोऽर्भगः । वेंकट0 - बालाय । सात्व0 ।ऋ0 का सु0भा0। - नवयुवक । Griff. (The hymns of Ṛgd.), Wil. (Ṛgd.S.), M.W. (S.E.D.) - youthful, Vel. (R.S.) - youthful, Grass. (Ṛgd.) - jüngling (young man or youth), अन्य भाषाओं में ~~अ~~ Latin - 'orbus', Greek - ὀρφανός.
दूसरी व्युत्पत्ति के अनुसार इस शब्द का अर्थ होगा - अर्भमल्पं गायति शब्दयतीत्यर्भगः अर्थात् अल्प गान या अल्प शब्द करने वाला अर्भग है । दोनों ही व्युत्पत्तियों से अर्भगाय शब्द विमदाय का विशेषण ही सिद्ध होता है । प्रथम

व्युत्पत्ति के अनुसार इसका अर्थ होगा 'युवा' और द्वितीय अर्थ के अनुसार 'अल्प शब्द करने वाला'। प्रस्तुत प्रसंग में प्रथम अर्थ ही अधिक समीचीन प्रतीत हो रहा है तथा अधिकांश भाष्यकारों ने प्रथम अर्थ को ही ग्रहण किया है। केवल स्कन्दस्वामिन् ने द्वितीय अर्थ को स्वीकारा है।

सेनाऽजुवा - 'सेना के साथ चलने वाले' 'सेना' शब्द से परे 'गत्यर्थक जु' धातु से 'अन्तर्भावितण्यर्थात्' से 'ण्य' प्रत्यय, 'क्विब्वचिप्रच्छि०' से क्विब्दीर्घ, तन्वादि होने के कारण उवङ् होने पर सेनाजुवा शब्द निष्पन्न हुआ। भाष्काचार्य ने निरु० (2/3) में सेना शब्द का निर्वचन इस प्रकार किया है - सेना सेश्वरा समानगतिर्वा अर्थात् ईश्वर के साथ जो वह सेना है अथवा जय नामक कार्य को लेकर समान गति से एक साथ चलती है इसलिए सेना कहलाती है। सा०, मुद्गल - शत्रुसेनायाः प्रेरकेण शत्रुभिः दुष्प्रापेण। स्कन्द०- सेनायाः सह गन्त्रा, स्वसेनापरिवृतेनेत्यर्थः। वेंकट० - सेनां प्रति गच्छता रथेन। सात्व० (ऋ० का सु०भा०) - सेना के साथ चलने वाले रथ पर से। Wil. (Rgd. S.) - outstripping the rival host, Griff. (The hymns of Rgd.) - rapidas an arrow, M. W. (S. E. D.) - swift as an arrow, Vel. (R. S.) - speed of an army (on the march), Grass. (Rgd.) - pfeilgeschwinden (swift.as speedy as an arrow). सिद्धेश्वर वर्मा महोदय ने सेना शब्द का निर्वचन इस प्रकार किया है - Sena is traced to स + इन + आ 'having a master' or स + इन + आ 'having a similar movement', (The ety of yāska Pg.84). ग्रिफित, ग्रासमन और मोनियर विलियम्स महोदय ने सेनाजुवा का अर्थ 'तीर के समान शीघ्रगामी' ग्रहण किया है, जो सर्वथा भिन्न है। यहाँ सेना से तात्पर्य शत्रु सेना से है। प्रसंगानुसार 'सेना के साथ चलने वाला' अर्थ ही उचित है। वैसे दोनों अर्थ ही रथेन का विशेषण सिद्ध हो रहे हैं। ऋग्वेद में केवल इसी मन्त्र में प्रयुक्त।

2. वीळुपत्मभिराशुहेमभिर्वा देवानां — वीळुपत्मऽभिः । आशुऽहेमभिः । वा । देवानाम् ।

वा जूतिभिः शाश्दाना । — वा । जूतिऽभिः । शाश्दाना ।

तद्रासभो नासत्या सहस्रमाजा — तत् । रासभः । नासत्या । सहस्रम् । आजा ।

यमस्य प्रधने जिगाय ।। — यमस्य । प्रऽधने । जिगाय ।।

अन्वय – नासत्या ! वीळुपत्मभिः आशुहेमभिः देवानां जूतिभिः शाश्दाना रासभः यमस्य प्रधने आजा यत् तत् सहस्रं जिगाय ।

अनुवाद – हे नासत्यों ! बल से उड़ने वाले, शीघ्रगामी, देवताओं की प्रेरणा से गति करने वाले [तुम्हारे रथ के वाहनरूप] रासभ ने, यम के लिए प्रिय, अनेक धनों की प्राप्ति कराने वाले, युद्ध में सहस्त्र संख्या वाले शत्रुओं को मारकर विजय प्राप्त की ।

टिप्पणी –

आशुहेमऽभिः – 'शीघ्र गमन करने वाला', 'अशूङ् व्याप्तौ' धातु से 'कृवापाजिमिस्वदिसाध्यशूभ्य उण्' [उ0सू0 1/1] से 'उण्' प्रत्यय करने पर 'आशु' शब्द निष्पन्न हुआ । निघ0 [2/15] में आशु शब्द क्षिप्रनामों में आम्नात है । 'आशु' शब्द पूर्वक, 'हि गतौ वृद्धौ च' धातु से 'अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते' से 'मनिन्' प्रत्यय, कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरत्व, तृतीया बहुवचन । आशुं शीघ्रं हिन्वन्ति गच्छन्तीति आशुहेमानः । रासभः का विशेषण। सा0, मुद्गल – शीघ्रगमनैः । स्कन्द0 – शीघ्रगामिभिः । सात्व0 [ऋ0 का

सु०भा०। - शीघ्र गति से जाने वाले । मैक्डा० - क्षिप्र गति वाला ।
Griff. (The hymns of Ṛgd.) - borne on rapid, ~~Wil.~~ ~~(Rgd.S.)~~ - ~~borne on rapid~~, Wil. (Ṛgd.S.) - borne by rapid (steeds), M.W. (S.E.D.) - urge to fast course, Grass.(Ṛgd.)-rasche renner(quick courser),Vel.(R.S.)-quick ऋ० सं० ।2/31/6, 2/35/1 तथा 7/47/2। - शीघ्रगति, ।2/1/5। - आशु प्रेरयति । अतः 'आशुहेमभिः' का 'शीघ्र गमन करने वाला' अर्थ उचित है ।

जूतिऽभिः - 'प्रेरणा से' 'गत्यर्थक अतियूत्तिजूति' धातु, 'करणे क्तिन्' प्रत्यय, तृतीया बहुवचन । सा०, मुद्गल - प्रेरणैश्च । अन्यत्र - ऋ० सं० 3/3/8 वेगैर्युक्तम् । स्कन्द० - गमनैः । वेङ्कट० - प्रोत्साहनैः । सात्व० ।ऋ० का सु०भा०। - गति से । Griff. (The hymns of Ṛgd.)- incitements, Wil. (Ṛgd.S.) - encouragements, M.W.(S.E.D.) - incite. Vel. (R.S.) - impelling forces. गत्यर्थक 'जूति' धातु का यहाँ प्रेरणा के अर्थ में प्रयोग हुआ है ।

शाशदाना - 'गति करने वाले', 'शद्लृ शातने' धातु, 'शानच्' प्रत्यय, यङन्त होने से लट्, 'छन्दस्युभयथा' सूत्र से आर्धधातुक को शत्वभाव, 'अतोलोपयलोपौ' और 'अभ्यस्तानामादिः' से आद्युदात्त, 'सुपां सुलुक०' से षष्ठी का पूर्वसवर्णदीर्घ । सा०, मुद्गल - प्रेर्यमाणयोः । अन्यत्र - ऋ० सं० ।1/33/13। - हिंसन् । ।1/123/10। - स्पष्टतां प्राप्नुवती ।~~स्पष्टतां प्राप्नुवती~~ । ।1/124/6। - शाशाधमाना । निरु० ।6/3/70। - 'शाशदानः शाशाधमानः' अर्थात् बार-बार शत्रुओं को काटता हुआ । यास्क ने भी इसकी व्युत्पत्ति 'शद्लृ शातने' धातु से मानी है ।

स्कन्द0, वेंकट0 - गच्छतोः । सात्व0 ॥ऋ0 का सु0भा0॥ - शीघ्र गति से जाने वाले । Griff. (The hymns of Rgd.)-proudly trusting, Wil. (Rgd. S.)-urged, M. W. (S. E. D.) - prevail, Grass. (Rgd.) - Eile (to make), Vel. (R. S.) - triumphed.

शाशदाना शब्द को हिंसा के अर्थ में भी ग्रहण किया जा सकता है, क्योंकि इसकी व्युत्पत्ति 'शद्लृ शातने' धातु से हुई है । ऋ0 सं0 ॥1/23/13॥ तथा अथर्व0 सं0 ॥8/4/24॥ में हिंसा के अर्थ में प्रयुक्त है । प्रस्तुत मंत्र में शाशदाना का अर्थ 'गमन करने वाला' अथवा 'हिंसा करने वाला' दोनों ही उचित होगा केवल ग्रिफित महोदय का अर्थ प्रसंगानुसार संगत नहीं प्रतीत हो रहा है ।
~~Griff. (The hymns of Rgd.~~

पृधने - 'प्रकृष्ट रूप से धन की प्राप्ति कराने वाले', 'प्र' उपसर्ग पूर्वक, 'धिवि प्रीणनार्थः' धातु से निष्पन्न धन शब्द के सप्तमी एकवचन का रूप है । आजा का विशेषण । सा0, मुद्‌गल - प्रकीर्णधनोपेते । स्कन्द0 - संग्रामे । वेंकट0 - बलस्य प्रख्यापने । Griff. (The hymns of Rgd.)-race, Wil. (Rgd. S.) - conflict, M. W. (S. E. D.) - battle, Grass. (Rgd.) - Kampf (conflict or struggle). Vel. (R. S.) -race. अधिकांश भाष्यकारों ने पृधने का अर्थ युद्ध ग्रहण किया है । किन्तु यहाँ पृधने का अर्थ युद्ध नहीं अपितु वह धन है, जो युद्ध में लूटा जाता है । यहाँ सायण द्वारा गृहीत अर्थ ही अधिक तर्कसंगत प्रतीत हो रहा है , क्योंकि युद्धों में लूटमार कर प्रभूत धन की प्राप्ति होती है ।

जिगाय - 'विजय प्राप्त की', 'जि जये' धातु से 'सन्लिटोर्जेः' सूत्र के द्वारा अभ्यास के बाद वाले कुत्व को गकार हो गया है, लिट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन । सा0, मुद्‌गल - जयेनालभत् । स्कन्द0 - जितवान् । सात्व0 ॥ऋ0 का सु0भा0॥ - जीत चुका । Griff. (The hymns of Rgd.)-

Won, Wil. (Rgd.S.) - overcome, M.W. (S.E.D.) - won or defeated, Grass. (Rgd.) - Erbeutet (capture), Vel.(R.S.)- won. ऋ0 सं0 ॥1/30/16, 3/34/4, 5/45/6, 10/69/11, 10/102/5 तथा 10/102/9॥ में विजय प्राप्ति के अर्थ में ही प्रयुक्त ।

3. तुग्रो ह भुज्युमश्विनोदमेघे　　तुग्रः । ह । भुज्युम् । अश्विना । उदऽमेघे।
रयिं न कश्चिन्ममृवाँ अवाहाः ।　　रयिम् । न । कः । चित् । ममृऽवान् । अव । अहाः ।
तमूहथुर्नौभिरात्मन्वतीभि　　तम् । ऊहथुः । नौभिः । आत्मन्ऽवतीभिः ।
रन्तरिक्षप्रुद्भिरपोदकाभिः ॥　　अन्तरिक्षप्रुत्ऽभिः । अपऽउदकाभिः ॥

अन्वय - तुग्रः भुज्युं ह उदमेघे अव अहाः, कः चित् ममृवान् रयिं न । अश्विना ! आत्मन् वतीभिः, अन्तरिक्षप्रुद्भिः, अपोदकाभिः नौभिः तम् ऊहथुः ।

अनुवाद - तुग्र ने ॥अपने पुत्र॥ भुज्यु को समुद्र में छोड़ दिया, ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार मरणासन्न अपनी धन संपदा को छोड़ देता है । हे अश्विनौ ! तुम्हारे अपने ही समान ओजपूर्ण, अन्तरिक्ष में जाने वाली तथा जल को दूर करने वाली नौकाओं के द्वारा उसका तट तक वहन करो अर्थात् तट पर पहुँचाओ ।

टिप्पणी -

उद्ऽमेघे - 'समुद्र में', 'मिह् सेचने' धातु, 'कर्मणि घञ्' प्रत्यय, 'न्यङ्क्वादीनां च' [पा०सू० 7/3/53] से कुत्व, 'उदकस्योदः संज्ञायाम्' [पा०सू० 6/3/57] से उत्तर पद पर अन्तोदात्त, सप्तमी एकवचन । उदकैर्मिह्यते - सिच्यते इति उद्मेघः । सा०, मुद्गल, स्कन्द०, वेंकट० - समुद्रः । सात्व० [ऋ० का सु०भा०] - समुद्र में । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - in the clouds of water, Wil. (Ṛgd.S.) - to sea, M.W. (S.E.D.) - a watery cloud, Vel. (R.S.) - water filled ocean, Grass. (Ṛgd.) - wasserfluten (flood of water). ऋग्वेद में केवल इसी मंत्र में प्रयुक्त । मोनियर विलियम्स महोदय ने 'जल से भरा मेघ' अर्थ ग्रहण किया है, जो प्रसंगानुसार संगत नहीं प्रतीत हो रहा है । 'उद्मेघे' का अर्थ 'समुद्र में' ही उचित है, यहाँ यह शब्द समुद्र का पर्याय बनकर प्रयुक्त हुआ है ।

रयिम् - 'धन संपदा को', 'दानार्थक रा' धातु से निष्पन्न रयि शब्द के द्वितीया एकवचन का रूप है । सा०, मुद्गल, स्कन्द०, वेंकट० - धन । अन्यत्र - ऋ० सं० [1/1/3, 1/117/23, 6/1/3, 7/1/5, 8/3/11, 9/4/7 तथा 10/15/7] में धन के अर्थ में प्रयुक्त । अथर्व० सं० [2/6/5, 3/5/2 तथा 4/21/2] में भी रयिम् का अर्थ धन ही है । सात्व० [ऋ० का सु० भा०] - धनसंपदा । Griff. (The hymns of Ṛgd.) , Wil. (Ṛgd.S.) - riches, M.W. (S.E.D.) , Vel. (R.S.) - wealth, Grass. (Ṛgd.) - gut (goods). निघ० [2/10] में 'रयि' धननामों में परिगणित है । निरु० [4/5/30-31] में यास्काचार्य ने दानार्थक 'रा' धातु से ही रयि शब्द की व्युत्पत्ति मानी है - 'रातेर्दानकर्मणः' । 'रयि' का अर्थ 'धन' ही उचित है ।

मुमूऽर्वान् - 'मरणासन्न', 'मृङ् प्राणत्यागे' धातु, 'लिटः क्वसु' सूत्र से क्रादि-नियम प्राप्त होने पर इट्, 'वस्वेकाजाद्घसाम्' से 'अ' भाव ।

सा०, मुद्गल - मृयमाण: सन् धनलोभी । स्कन्द०, वेंकट० - म्रियमाणः । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ - मरने वाला । Griff. (The hymns of Rgd.) - as a dead man. Wil. (Rgd.S.) - dying man. Vel. (R.S.) - as a dead man, Grass. (Rgd.) - todter (a dead). ॠग्वेद में केवल इसी मन्त्र में प्रयुक्त हुआ है ।

अहा: - 'छोड़ दिया', 'ओहाक् त्यागे' धातु, लुङ् लकार, उत्तम पुरुष, एकवचन । लुङ् के क्षिप् को 'च्लि तथा च्लि को सिच् आदेश, आगमानुशासन के अनित्य होने से 'सगिट' नहीं किया गया', 'बहुलं छन्दसि' से इड्भाव 'हल्ङ्याब्भ्य: ' से सिलोप और रुत्वविसर्ग अथवा 'मन्त्रे घस्' से च्लि का लोप और च्लि का लोप होने से 'इण्' का अभाव । इस प्रकार 'अहा: ' रूप निष्पन्न हुआ । सा०, मुद्गल - परित्यजन्ति, पर्यत्याक्षीत् । स्कन्द० - परित्यक्तवन्तः । वेंकट० - प्रहितवान् । सात्व० ॥ऋ० का सु० भा०॥ - छोड़ दिया । Griff. (The hymns of Rgd.) - leaves, Wil. (Rgd.S.) parts with his riches, Vel. (R.S.) - (helplessly) abondoned, Grass. (Rgd.) - heraus. 'अहा: ' का 'छोड़ देना' अर्थ ही प्रसंगानुसार उचित है ।

आत्मन्ऽवतीभि: - 'अपने समान', 'आत्मन्' शब्द के साथ 'मतुप्' प्रत्यय, 'मादुपधायाः' से वत्व, 'अनोनुट्' ॥पा०सू० 8/2/16॥ से नुट्, 'न्' का लोप, 'ह्रस्वनुड्भ्यां मतुप्' से मतुप् को उदात्त, तृतीया बहुवचन । सा०, मुद्गल - आत्मीयाभि: युवयो: स्वभूताभिरित्यर्थः । स्कन्द०- आत्मसंयुक्ताभि:, स्वयमेवेत्यर्थः । वेंकट० - युष्मदीयाभि: । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ - निजशक्तियों से युक्त । Griff. (The hymns of Rgd.)- animated, Wil. (Rgd.S.) - of your own, M.W. (S.E.D.) -

self passessed, Vel. (R.S.) - animated. ऋग्वेद में केवल इसी मन्त्र में प्रयुक्त ।

अन्तरिक्षप्रुत्ऽभिः - 'अन्तरिक्ष में जाने वाली' 'अन्तर्' शब्द पूर्वक 'क्षि निवासगत्योः' धातु से अन्तरिक्ष शब्द बना । तदनन्तर 'प्रुङ् गतौ' धातु से 'क्विप् च' सूत्र के द्वारा 'क्विप्' प्रत्यय करने पर तृतीया बहुवचन में 'प्रुद्भिः' रूप निष्पन्न हुआ । निघ0 ‡2/14‡ प्रवते इति गतिकर्मा यास्काचार्य ‡निरु0 2/3‡ ने अन्तरिक्ष शब्द का निर्वचन दो प्रकार से किया है - अन्तरा क्षान्तभवत्यन्तरेमे इति वा, शरीरेष्वन्तर - क्षयमिति वा । अर्थात् ‡1‡ यह द्युलोक और पृथिवी लोक के मध्य अवस्थित है और पृथिवी तक फैला है और ‡2‡ शरीरों के अन्दर यही एक अविनश्वर पदार्थ रहता है । S.V. (The ety. of Yāska Pg. 124) - 'space' is traced to अन्तरा + क्षान्त 'resting motionless near the earth or between heaven and earth' or to अन्तर् + अक्षय ‡शरीरेष्वन्तरक्षयमिति‡'lying imperishable among bodies'. These derivations do not explain the इ in the word. Possibly this इ is a relic of an old locative termination to अन्तर्, while क्ष् may be an irregular relic of क्षेति, 'dwells', Indo-European - kthei 'to settle'. सा0, मुद्गल - अतिस्वच्छत्वादन्तरिक्षे जलस्य उपरिष्टादेव गन्त्रीभिः । स्कन्द0 - अन्तरिक्षगामिनीभिः, उदकसंस्पृशन्तीभिरिव गच्छन्तीभिरित्यर्थः । वेंकट0 - अन्तरिक्षेण गच्छन्तीभिः । सात्व0 ‡ऋ0 का सु0भा0‡ - अन्तरिक्ष में से जाने वाली । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - traversing air, Wil. (Ṛgd.S.) - floating over the ocean, M.W. (S.E.D.) - floating over the atmosphere, Vel. (R.S.) - floated in air. सायण ने अन्तरिक्ष का अर्थ 'आकाशीय जल' ग्रहण किया

है। तब अन्तरिक्षप्रुद्भिः का अर्थ 'अन्तरिक्षीय जल में गमन करने वाली' हो जायगा। प्रसंगानुसार दोनों अर्थ ही उचित है। यह 'नौभिः' का विशेषण है। ऋग्वेद में केवल इसी मंत्र में प्रयुक्त हुआ है।

अप उदकाभिः - 'जल को दूर करने वाली', 'अप' उपसर्ग पूर्वक, 'उन्दीक्लेदने' धातु से व्युत्पन्न उदक शब्द को तृतीया बहुवचन का रूप है। नौभिः का विशेषण। सा०, मुद्गल - सुश्लिष्टत्वात् अपगतोदकाभिः अप्रविष्टोदकाभिरित्यर्थः। निरु० ।2/5। - 'उनत्तीति सतः' अर्थात् उदक सबको आर्द्र करता है, भिगोता है इसलिए √उन्दी क्लेदने से उदक शब्द की व्युत्पत्ति को यास्काचार्य ने भी स्वीकारा है। स्कन्द० - व्यपगतोदकाभिः। वेंकट० - सुश्लिष्टत्वात् अप्रविष्टोदकाभिः। सात्व० ।ऋ० का सु०भा०। - जल को दूर करके जल में भी जानेवाली। Griff. (The hymns of Ṛgd.) - unwetted by the billows, Wil. (Ṛgd.S.) - keeping out the waters, M.W. (S.E.D.) - waterless, Vel. (R.S.) - unaffected by waters, Grass. (Ṛgd.) - fern wasser (fur from water). अतः 'अपोदकाभिः' का अर्थ 'जल को दूर करने वाली' ही उचित है।

4. तिस्त्रः क्षपस्त्रिरहातिव्रजद्भि | तिस्त्रः। क्षपः। त्रिः। अहा। अतिव्रजत्ऽभिः।
नासत्या भुज्युमूहथुः पतङ्गैः। | नासत्या। भुज्युम्। ऊहथुः। पतङ्गैः।
समुद्रस्य धन्वन्नार्द्रस्य पारे | समुद्रस्य। धन्वन्। आर्द्रस्य। पारे।
त्रिभी रथैः शतपद्भिः षळश्वैः ॥ | त्रिऽभिः। रथैः। शतपत्ऽभिः। षट्ऽअश्वैः ॥

अन्वय - नासत्या ! आर्द्रस्य समुद्रस्य पारे धन्वन् , तिस्त्रः क्षपः त्रिः अहा अतिव्रजद्भिः, शतपद्भिः, षडश्वैः, पतङ्गैः त्रिभिः रथैः भुज्युम् अहथुः ।

अनुवाद - हे सत्यपालक अश्विनीकुमारों ! जलमय समुद्र के परे रेतीले मरुदेश पर, तीन रात्रियाँ और तीन दिनों तक, अत्यन्त वेग से जाने वाले, सौ पहियों वाले, छः अश्वों वाले, पक्षी के समान उड़ने वाले, तीन रथों के द्वारा भुज्यु का वहन किया ।

टिप्पणी -

क्षपः - 'रात्रियाँ', 'क्षपा' शब्द, स्त्रीलिंग प्रथमा बहुवचन । 'ङसि आतो धातोः' (पा०सू० 6/4/140) से आत के योग विभाग से आकार का लोप अथवा विभक्ति के अन्त में छान्दस लोप हुआ है । निघ० (1/7) में 'क्षपा' रात्रिनामों में आम्नात है । सभी भाष्यकारों ने 'क्षपः' को रात्रि का वाचक माना है । ऋ० सं० (1/44/8, 2/2/2, 6/52/15, 7/15/8, 8/41/3, तथा 10/77/2) में 'रात्रि' के अर्थ में प्रयुक्त । अन्य भाषाओं में - **Avestā** - xšap , **Greek** - ψέφας .

अहा - 'दिन', अहा शब्द दिन का पर्याय है । निघ० (1/9) में इसे अहर्नामों में परिगणित किया है । निरु० (2/6) में यास्काचार्य ने अहः का निर्वचन 'उपाहरन्त्यस्मिन् कर्माणि' किया है अर्थात् दिन में कार्यों को करते हैं इसलिए अहः कहा जाता है । ऋ० सं० (1/50/7, 1/130/1-9, 1/140/13, 7/30/3, 8/1/3, 8/43/30, 8/61/17, 10/12/4 तथा 10/32/8) में दिन के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । सा०, मु०, स्कन्द०, वेंकट - अहानि । सात्व

।ऋ0 का सु0भा0। - दिन । Griff. (The hymns of Ṛgd.), Wil. (Ṛgd.S.), Mac.D. (S.E.D.), Lan (A.S.R.), M.W. (S.E.D.), Vel. (R.S.) - day, Grass. (Ṛgd.) - Tage (day), S.V. (The ety. of Yāska Pg. 126) - 'day' is traced to उप + आ +√हृ , lit, 'the during which people do their actions'. This etymology is obseure. Indo-European can throw no light on this word.

अतिव्रजद्भिः - 'अत्यन्त वेग से जाने वाले', अतिपूर्वक, 'व्रज्' धातु, 'क्विप्' प्रत्यय, तृतीया, बहुवचन । 'रथ' का विशेषण । सा0, मु0- अतिक्रम्य गच्छभिरेतावन्तं कालमतिव्याप्यं वर्तमानैः । स्कन्द0 - सुष्ठु गच्छद्भिः वेंकट0 - अतिगच्छद्भिः । सात्व0।ऋ0 का सु0भा0। - बराबर वेग से जाने वाले । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - full swiftly travelled, Wil. (Ṛgd.S.) - rapid revolving, M.W. (S.E.D.) - to pass or wonder through, Mac.D. (S.E.D.) - travel fastly. Grass. (Ṛgd.) - besch wingten. ऋग्वेद में केवल इसी मंत्र में प्रयुक्त हुआ है ।

पतंगैः - 'पक्षी के समान उड़ने वाले', 'पत्लृ गतौ' धातु से निष्पन्न पतंग शब्द के तृतीया, बहुवचन का रूप है । सा0, मु0 - पतद्भिः । अन्यत्र - निघ0 ।1/14। - में अश्व नामों में परिगणित है । स्कन्द0, वेंकट0- अश्वैः । सात्व0 ।ऋ0 का सु0भा0। - पक्षी । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - winged thing. M.W. (S.E.D.) - any flying insects. Mac.D. (S.E.D.) - flying bird or winged insect, Vel.(R.S.) - continuously glided, Grass. (Ṛgd.) - glogen. प्रस्तुत प्रसंग में

पतंग का अर्थ अश्व नहीं अपितु पक्षी ही उचित होगा क्योंकि मंत्र में घोड़े के लिए अश्व शब्द का प्रयोग हुआ है । चूँकि अर्थ की पुनरावृत्ति नहीं हो सकती इसलिए यहाँ पतंग का अश्व अर्थ नहीं ग्रहण किया जा सकता ।

धन्वन् - 'रेतीले मरुदेश पर', 'गत्यर्थक धवि' धातु से 'इदित्वात् नुम्', 'कनिन्युवृषि0' से 'कनिन्' प्रत्यय, 'सुपां सुलुक्0' से सप्तमी का लुक्। सा0, मु0 - जलवर्जिते प्रदेशे । अन्यत्र - ऋ0 सं0 ॥1/38/7॥ मरुदेशे, रिवि रवि धवि गत्यर्थाः, इदित्वात नुम्, कनिन्युवृषि0 इत्यादिना कनिन्, नित्वादाद्युदात्तत्वम्, सुपां सुलुक्0 इति सप्तम्या लुक् । ॥6/34/4॥ - मरुदेशे । अथर्व0 सं0 ॥6/34/3, 7/22/1॥ - मरुप्रदेशे । स्कन्द0 - निरुदके प्रदेशे । सात्व0 - ॥ऋ0 का सु0भा0॥ - रेतीले मरुप्रदेश से । Griff. (The hymns of Rgd.) - strand of ocean, Wil. (Rgd.S.) - dry bed of the ocean, M.W. (S.E.D.) - a desert, Mac.D.(S.E.D.) - dry land or desert, Vel. (R.S.) - to dryland. Grass.(Rgd.) - strand (sea shere). यहाँ 'रेतीले मरुदेश' का तात्पर्य समुद्र के रेतीले तट से है रेगिस्तान से नहीं । इसलिए ग्रासमन और ग्रिफित महोदय द्वारा गृहीत अर्थ भी उचित है ।

शतपत्ऽभिः - 'सैकड़ों पैरों ॥चक्रों॥ वाले', शतं पादा येषां स शतपद्भिः, 'संख्यासुपूर्वस्य' से अन्त्यलोप समास, 'अयस्मयादित्व' से मत्व, 'पादः पत्' से पद्भाव, तृतीया, बहुवचन । रथ का विशेषण । सा0, मु0 - शतसंख्याकैश्चक्रलक्षणैः पादैरुपेतैः । स्कन्द0 - शतपादैः शतशब्दश्चात्र बहुनाम सामर्थ्याच्चात्राद्ये बहुत्वे वर्तते, पादशब्दोऽपि चक्रपादवचनः, त्रिचक्रपादैरित्यर्थः। वेंकट0 - शतगमनसाधनैः । सात्व0 ॥ऋ0 का सु0भा0॥ - सौ पहियों से युक्त ।

Griff. (The hymns of Ṛgd.) - hundred footed. Wil. (Ṛgd.S.) - hundred wheels, M.W. (S.E.D.) - having a hundred wheels. Mac. D. (S.E.D.) - hundred footed, Vel. (R.S.) - hundred feet, Grass. (Ṛgd.) - hundert füssen (one hundred feet). अन्य भाषाओं में शतम् शब्द के समान रूप - Avestā - Satəm, Lithuanian - Szimtas', Old Slavaric - Sŭto Indo - European - Kmtóm Latin - 'centum', Greek - Ekatov Granian - Cet Tocharian - Känt . कतिपय वर्णों के परिवर्तन के अतिरिक्त, लगभग सभी भाषाओं के शतम् शब्द में बहुत कुछ समानता दृष्टि-गोचर होती है । प्रस्तुत मंत्र में 'पद्भिः' का शाब्दिक अर्थ न ग्रहण करके लाक्षणिक अर्थ ग्रहण किया गया है । यहाँ 'पद्भिः' का अर्थ पैर नहीं वस्तुतः चक्र है । 'सैकड़ों चक्रों से युक्त रथ के द्वारा', इस अर्थ को स्पष्ट करने के लिए 'पद्भिः' का प्रयोग हुआ है,क्योंकि रथ का पैर एक प्रकार से चक्र ही होता है। ऋग्वेद के केवल इसी मंत्र में प्रयोग हुआ है ।

5. अनारंभणे तदवीरयेथाम- अनारम्भणे । तत् । अवीरयेथाम् ।
नास्थाने अग्रभणे समुद्रे । अनास्थाने । अग्रभणे । समुद्रे ।
यदश्विना ऊहथुर्भुज्युमस्तं यत् । अश्विनौ । ऊहथुः । भुज्युम् ।
शतारित्रां नावमातस्थिवांसम् ॥ अस्तम् । शतऽअरित्राम् । नावम् । आतस्थिऽवांसम् ॥

अन्वय - अश्विनौ । अनारम्भणे अनास्थाने अग्रभणे समुद्रे शतारित्रां नावम् आतस्थिवांसं भुज्युं यत् अस्तम् ऊहथुः, तत् अवीरयेथाम् ।

अनुवाद - हे अश्विनों ! आलम्बनरहित, भूमिरहित, हाथ से ग्रहण करने वाले वस्तुओं से रहित, समुद्र में, सौ बल्लियों से चलाये जाने वाले नाव में आरूढ़, भुज्यु को जो गृह पहुँचाया, वह पराक्रम से परिपूर्ण था ।

टिप्पणी -

<u>अनारम्भणे</u> - 'आलम्बनरहित', आरभ्यते इत्यारम्भणे न आरम्भणे इति अनारम्भणे । 'आङ्' उपसर्ग 'रम्भ' धातु, 'कृत्यल्युटो बहुलम्' से कर्मणि 'ल्युट्' प्रत्यय, नञ् तत्पुरुष समास, 'नञ्सुभ्याम्' से उत्तर पद के अन्त में उदात्त । समुद्र का विशेषण । सप्तमी, एकवचन । सा0, मु0 - आलम्बनरहिते । अन्यत्र - ऋ0सं0 (1/182/6, 7/104/3) - आलम्बनरहिते । स्कन्द0 - आरम्भणमालम्बनमुच्यते तत्र निरालम्बने । वेंकट0 - तृणकाष्ठाधारम्भणवर्जिते । सात्व0 (ऋ0 का सु0भा0) - आलम्बनशून्य । **Griff. (The hymns of Ṛgd.) - no support, Wil. (Ṛgd.S.) - nothing to give support, M.W. (S.E.D.) - giving no support. Vel. (R.S.) - devoid of any support, Grass. (Ṛgd.)** - keine stütze **(not any support).** अतः 'आलम्बनरहित' अर्थ ही उचित है ।

<u>अवीरयेथाम्</u> - 'पराक्रमपूर्ण था' 'वीर विक्रान्तौ' धातु, लुङ् लकार, मध्यम पुरुष, द्विवचन । सा0, मु0 - विक्रान्तं कृतवन्तौ युवाम् । स्कन्द0 - वीरकर्मकृतवन्तौच्यते । वेंकट0 - वीरकर्म कृतवन्तौ स्थः । सात्व0 (ऋ0 का सु0भा0) - वीरता से परिपूर्ण था । **Griff. (The hymns of Ṛgd.) - hero exploit, Wil. (Ṛgd.S.) - that exploit you achived, M.W. (S.E.D.), Mac.D. (S.E.D.) - heroic deed, Grass. (Ṛgd.) - helden werk (heroic deed), Vel. (R.S.) - performed a heroic deed.** ऋग्वेद के केवल इसी मंत्र में प्रयुक्त ।

अनास्थाने - 'भूमि रहित', आस्थीयते अस्मिन्निति आस्थानः, न आस्थानः इति अनास्थानः । 'आङ्' उपसर्ग पूर्वक, 'स्था' धातु, 'कृत्यल्युटो बहुलम्' से 'ल्युट्' प्रत्यय, नञ् तत्पुरुष समास, सप्तमी एकवचन । समुद्र का विशेषण । सा०, मु० - भूप्रदेशरहिते स्थातुमशक्ये जले इत्यर्थः । स्कन्द० - यस्मिन्नीषदपि स्थातुं न शक्यते सोऽनास्थानस्तत्र । वेंकट० - आस्थानवर्जिते । सात्व० (ऋ० का सु०भा०) - स्थान रहित । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - no station, Wil. (Ṛgd.S.) - nothing to rest upon, Lanman (A.S.R.) - without a place, Vel. (R.S.) - devoid of any seat or held, Grass. (Ṛgd.) - keine stand (not any stand). ऋग्वेद में केवल इसी मंत्र में प्रयुक्त ।

अगृभणे - '(हाथ से) ग्रहण करने वाले वस्तुओं से रहित', न ग्रहणः इति अग्रहणः । 'ग्रह' धातु, 'कृत्यल्युटो बहुलम्' से 'ल्युट्' प्रत्यय, 'हृग्रहोर्भः' से ग्रह के 'ह्' को 'भ्' होने से, सप्तमी एकवचन में अगृभणे रूप निष्पन्न हुआ । समुद्र का विशेषण । सा०, मु० - अग्रहणे हस्तेन ग्राह्यं शाखादिकमपि यत्र नास्ति तस्मिन् । स्कन्द० - गृहीतुमपि यस्मिन्न शक्यते सोऽगृभणः लताशाखादिरहितस्तत्र । वेंकट० - वृक्षशाखादिग्रहणवर्जिते । सात्व० (ऋ० का सु०भा०) - जहाँ किसी को पकड़ना असम्भव है ऐसे अथाह समुद्र में । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - no hold, Wil. (Ṛgd.S.) - nothing to cling, M.W. (S.E.D.) - having nothing which can be grasped. ऋग्वेद के केवल इसी मंत्र में प्रयुक्त ।

अस्तम् - 'गृह', 'अस्यते अस्मिन् सर्वमित्यस्तं,' 'अस् भुवि' धातु, 'असिहसि' से 'तन्' प्रत्यय, नपुंसकलिंग, द्वितीया, एकवचन । सा०, मु० - गृहम् । अन्यत्र - ऋ० सं० (1/66/5, 1/130/1, 6/49/12, 7/37/4-6, 9/97/8

तथा 10/14/8] - गृहम् । अथर्व0 सं0 - [10/8/16, 14/1/43 तथा 18/3/58] - गृहम् । निघ0 [3/4] - अस्तमिति गृहनाम । स्कन्द0 - क्षिप्तम् । वेंकट0 - स्वगृहम् । सात्व0 [ऋ0 का सु0भा0] - घर । **Griff. (The hymns of Rgd.) - dwelling, Wil. (Rgd.S.) - house, M.W. (S.E.D.), Mac.D. (S.E.D.), Lan. (A.S.R.) - home. Grass. (Rgd.) - heim wärts (home-wards), Vel. (R.S.) - home.**

स्कन्दस्वामिन् ने अस्तम् का अर्थ 'क्षिप्तम्' ग्रहण कर उसे नाव का विशेषण माना है । 'अस्तम् नावम्' अर्थात् 'क्षिप्त विपन्ननावं' अर्थ ग्रहण करके अस्तम् का नावम् के साथ सम्बन्ध स्थापित किया है । प्रसंगानुसार यह अर्थ उचित नहीं है । 'अस्तम्' का यहाँ 'गृह' अर्थ ही समीचीन है ।

शतऽअरित्राम् - 'सौ बल्लियों [से चलाये जाने] वाले', शतानि अरित्राणि यस्मिन् स तत् शतारित्राम् । 'शत' शब्द, 'ऋ गतौ' धातु, 'अर्तिलूधूसू' [पा0सू0 3/2/184] से 'करणे इत्र' प्रत्यय, नपुंसकलिंग, द्वितीया एकवचन, 'बहुव्रीहिपूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम्' से पूर्व पद पर उदात्त । नावम् का विशेषण । सा0, मु0 - बह्वरित्रां । अन्यत्र - अथर्व0 सं0 [17/1/25 तथा 17/1/26] में जलों को हटाने वाले काष्ठों के अर्थ में प्रयुक्त । स्कन्द0 - अर्यतेऽनेनत्यरित्रं नावो । वेंकट0 - शतदर्विकाम् । **Griff. (The hymns of Rgd.), Wil. (Rgd.S.) - hundred oared, Mac.D. (S.E.D.), Vel. (R.S.) - hundred oars, Grass. (Rgd.) - wit hundert rudern (with hundred rows).** ऋग्वेद के केवल इसी मन्त्र में प्रयुक्त ।

आतस्थिऽवांसम् - 'आरूढ', 'आङ्' उपसर्ग पूर्वक, 'स्थागतिनिवृत्तौ' धातु [पा0धा0पा0 928 भा0प0] लिट् और 'क्वसु' प्रत्यय,

द्वितीया,एकवचन । सा०, मु० - आस्थितवन्तं आरूढवन्तं कृत्वा । अन्यत्र - ऋ० सं० 2/12/8 तथा 5/47/2। - आतिष्ठन्तः । अथर्व० सं० ।4/8/7। - स्थितवन्तम् । स्कन्द० - आस्थितवन्तम्। सात्व० ।ऋ० का सु०भा०। - चढ़े हुए । Griff. (The hymns of Rgd.) - borne, Wil. (Rgd.S.)- sailing, M.W.(S.E.D.) - standing, Mac.D. (S.E.D.) - mounted, Pet. - standing, Greesbold - mounted, Vel. (R.S.) - climbed, Grass. (Rgd.) - gestellt (stand). अतः 'आरूढ' अर्थ ही उचित है ।

6. यमश्विना ददथुः श्वेतमश्वम्- यम् । अश्विना । ददथुः । श्वेतम् । अश्वम् ।

घाश्वाय शश्वदित्स्वस्ति । अघऽअश्वाय । शश्वत् । इत् । स्वस्ति ।

तद्वां दात्रं महि कीर्तेन्यं तत् । वाम् । दात्रम् । महि । कीर्तेन्यम् ।

भूत्पैद्वो वाजी सदमिद्धव्यो भूत् । पैद्वः । वाजी । सदम् । इत् ।

अर्यः ।। हव्यः । अर्यः ।।

अन्वय - अश्विना । यं श्वेतम् अश्वम् अघाश्वाय ददथुः, शश्वत् इत् स्वस्ति । वां तत् दात्रं महि कीर्तेन्यं भूत् । पैद्वः अर्यःवाजी सदमित् हव्यः ।

अनुवाद - हे अश्विनों । जिस श्वेत अश्व का अघाश्व के लिए दान किया, वह सदा कल्याणकारक है । तुम दोनों का वह दान बहुत प्रशंसनीय हुआ । पेद्व का शत्रु सेना को अस्त-व्यस्त करने वाला वह अश्व भी सदा समीप बुलाने योग्य है ।

टिप्पणी -

स्वस्ति - 'कल्याणकारक है', 'सु' उपसर्ग पूर्वक, 'अस् भुवि' धातु, 'क्तिन्' प्रत्यय, 'छन्दस्युभयथा' सूत्र से सार्वधातुक अस्ति के भूभाव का अभाव होने पर स्वस्ति रूप निष्पन्न हुआ। सा०, मु० - जयलक्ष्मीं, मंगलम्। अन्यत्र- ऋ० सं० ॥6/4/8, 8/16/11॥ - क्षेमेण, ॥9/97/36॥ - अविनाशम्, इसके अतिरिक्त ऋग्वेद के अनेक मंत्रों में 'अविनाशत्व' अथवा 'कल्याणमय' अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। अथर्व० सं० ॥4/14/5॥ - क्षेमम्, ॥6/40/2, 7/29/1 तथा 8/2/11॥ - अविनाशम्। निरु० ॥3/4॥ - स्वस्तीत्यविनाशि नाम, अस्तिर- भिपूजितः, सु अस्तीति स्वस्ति, अर्थात् स्वस्ति का अर्थ हुआ अच्छी सत्ता अथवा कल्याणयुक्त रहना। स्कन्द० - अविनाशम्। सात्व० ॥ऋ० का सु० भा०॥ - कल्याणकारक। Griff. (The hymns of Ṛgd.) - wealth, Wil. (Ṛgd.S.) - indestructible, M.W. (S.E.D.) - well being, Lan. (A.S.R.) - welfare, Mac.D. (S.E.D.) - well being, Vel. (R.S.) - well being, Grass. (Ṛgd.) - heile (welfare). अतः स्वस्ति का 'कल्याणकारक' अर्थ ही उचित है।

कीर्तेन्यम् - 'प्रशंसनीय', 'कृत संशब्दने' धातु, 'तवैकेन्केन्यत्वनः' से केन्प्रत्यय, 'ऋत् इद्धातोः' से इत्। सा०, मु० - प्रशंस्यम्। अन्यत्र - ऋ० सं० ॥1/103/4॥ - कीर्तनीयं स्तुत्यम्। स्कन्द० - कीर्तनार्हम्। वेंकट० - कीर्तनीयम्। सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ - वर्णन करने योग्य। Griff. (The hymns of Ṛgd.) - to be praised, Wil. (Ṛgd.S.) - to be celebrated, M.W. (S.E.D.) - deserving to be praised, Mac. D. (S.E.D.) - celebrated, Grass. (Ṛgd.) - rühmen (praised).

वाजी - 'अश्व', सा0, मु0 - वेजनवान् सोऽश्वः । अन्यत्र - ऋ0 सं0 ‖6/2/2‖ - वाजो गमनम्, ‖7/1/14, 8/32/18, 9/7/4‖ - बलवान्, ‖10/21/11‖ - अन्नवान् । अथर्व सं0 - ‖18/5/2‖ - वेजनवान्, ‖19/13/5‖ - अन्नवान् । निघ0 ‖1/14‖ - वाजीति अश्वनाम । स्कन्द0, वेंकट0 - बलवान् । सात्व0 ‖ऋ0 का सुOभाO‖ - घोड़ा । Griff. (The hymns of Ṛgd.), Wil. (Ṛgd.S.), M.W. (S.E.D.) - horse, Mac. D. (S.E.D.) - spirited, Lan. (A.S.R.) - strong or healthy, Vel. (R.S.) - horse, Grass. (Ṛgd.) - ress (horse). कतिपय भाष्यकारों ने 'वाजी' का अर्थ बलवान् ग्रहण किया है । ऋग्वेद संहिता तथा अथर्ववेद संहिता में भी वाजी यत्र तत्र बलवान् अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । इस मंत्र में यदि 'पैद्वः' का अर्थ 'अश्व' ग्रहण किया जाय तो 'वाजी' का अर्थ 'बलवान्' हो जायगा । इस दृष्टि से 'वाजी' 'पैद्वः' का विशेषण पद बन जाता है । 'पैद्वः' का अर्थ अश्व भी है। और निघ0 ‖1/14‖ में इसे अश्वनामों में परिगणित किया गया है । जिन भाष्यकारों ने वाजी का अर्थ बलवान् या वेगवान् ग्रहण किया है, उन्होंने 'पैद्वः' को अश्व के अर्थ में प्रयोग किया है, जैसे 'वाजी पैद्वः' अर्थात् बलवान् अश्व । इसके अतिरिक्त यदि 'पैद्वः' का अर्थ 'पेद्व नामक राजा' ग्रहण किया जाय तो 'वाजी' संज्ञावाचक पद बन जायेगा और उसका अर्थ होगा 'पेद्व का अश्व' । यद्यपि दोनों ही अर्थ उचित है तथापि यदि पुरा-कथा को आधार बनाया जाय तो 'पेद्व का अश्व' अर्थ ग्रहण करना ही उचित होगा, क्योंकि मंत्र के पूर्वार्द्ध में अघाश्व को दान में दिये जाने वाले श्वेत अश्व का उल्लेख किया गया है । अघाश्व 'पेद्व' नामक राजा का ही दूसरा नाम है । इसलिए उत्तरार्द्ध में 'पैद्वः' का अर्थ 'पेद्व नामक राजा' ही उचित होगा, 'अश्व' नहीं । इस दृष्टि से यहाँ 'वाजी' को 'अश्व' के अर्थ में ग्रहण करना अधिक समीचीन होगा ।

हव्य: – 'बुलाने योग्य है', 'ह्वेञ् आह्वाने' धातु, 'अचोयत्' सूत्र से 'यत्' प्रत्यय, 'बहुलं छन्दसि' से सम्प्रसारण, गुण तथा 'धातोस्तन्निमित्तस्यैव' से अव आदेश होने पर हव्य: रूप निष्पन्न हुआ। सा0, मु0 – अस्माभिरप्याह्वातव्य:। अन्यत्र – ऋ0 सं0 (1/100/1, 1/101/6, 2/23/13, 4/24/2, 5/17/4, 10/6/7 तथा अन्य ऋचाओं में) – आह्वातव्य:। स्कन्द0, वेंकट0 – आह्वातव्य:। सात्व0 (ऋ0 का सु0भा0) – बुलाने योग्य। Griff. (The hymns of Ṛgd.) – to be famed, Wil. (Ṛgd.S.) – to be invoked, Vel. (R.s.) – demand, Mac. D. (S.E.D.) – to be invoked, Lan. (A.S.R.) – invocandus, Grass. erwünschte (desirable). 'हव्य:' का अर्थ 'बुलाने योग्य' ही उचित है।

अर्य: – 'शत्रु (सेना) को' 'गत्यर्थक ऋ' धातु, 'अघ्न्यादयश्च' (उ0सू0 4/55/1) से औणादिक 'यत्' प्रत्यय। व्यत्यय से अन्तोदात्त। सा0, मु0 – शत्रूणां प्रेरयिता। अन्यत्र – ऋ0 सं0 (1/33/3) – स्वामीरूप इन्द्र:, (6/14/3, 9/23/3) – अरि:, (8/1/4, 10/20/4) – अभिगन्तार:, गन्तव्य:। अथर्व0 सं0 (20/18/5) – स्वामीरूप इन्द्र:। स्कन्द0 – ईश्वरश्च। वेंकट0 – धनस्य प्रदाता। सात्व0 (ऋ0 का सु0भा0) – शत्रु सेना पर (चढ़ाई करने वाला)। Griff. (The hymns of Ṛgd.) – brave, Wil. (Ṛgd.S.) – scatterer (of enemies), M.W. (S.E.D.) – excellent, Grass. (Ṛgd.) – treues (faithful or honest), Vel. (R.S.) – rich patrons. अर्य शब्द अनेकार्थक है। इसका अर्थ कहीं गमन करने वाला, कहीं शत्रु, कहीं स्वामी तो कहीं ईमानदार मिलता है। प्रस्तुत प्रसंग में सायणाचार्य द्वारा गृहीत अर्थ 'शत्रूणां प्रेरयिता' ही अधिक तर्कसंगत प्रतीत हो रहा है। इसलिए 'अर्य:' का 'शत्रु' अर्थ ही उचित है।

7. युवं नरा स्तुवते पज्रियाय युवम् । नरा । स्तुवते । पज्रियाय ।

कक्षीवते अरदतं पुरंधिम्। कक्षीवते । अरदतम् । पुरम्ऽधिम् ।

कारोतराच्छफादश्वस्य वृष्णः कारोतरात्।शफात्।अश्वस्य।वृष्णः।

शतं कुंभाँ असिंचतं सुरायाः।। शतम् । कुम्भान् । असिञ्चतम्।सुरायाः।।

अन्वय – नरा! युवं स्तुवते पज्रियाय कक्षीवते पुरंधिम् अरदतम् । वृष्णः अश्वस्य शफात् कारोतरात् सुरायाः शतं कुम्भान् असिञ्चतम् ।

अनुवाद – हे नेतृत्व करने वाले ।अश्विनीकुमारों। । तुम दोनों ने स्तुति करते हुए, पज्रि के कुल में उत्पन्न, कक्षीवान को प्रभूत बुद्धि प्रदान की । शक्तिशाली अश्व के खुरों के समान पात्र विशेष से, सुरा के सौ घड़ों को पूरित किया ।

टिप्पणी-

स्तुवते – 'स्तुति करते हुए', 'स्तुञ् स्तवने' धातु, शतृ प्रत्यय, अदादि होने से शप् का लोप, लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन, 'शतुरनुमः' से विभक्ति को उदात्त । सा0, मु0 – स्तुतिं कुर्वते । अन्यत्र – ऋ0 सं0 ।1/62/1, 1/116/23, 1/117/7, 2/22/3, 4/10/12, 5/42/7, 6/23/3।- स्तुतिं कुर्वते । स्कन्द0 – यजते । सात्व0 ।ऋ0 का सु0भा0। – स्तुति करने वाले । Griff. (The hymns of Rgd.) – song your praise. M.W. (S.E.D.) – praising. Mac.D.(S.E.D.) – cause to praise, Lan. (A.S.R.)-praising, Grass.(Rgd.)-preisenden (to praised).

अरदतम् - 'प्रदान की', 'रद् विलेखने' धातु, लङ् लकार, मध्यम पुरुष, द्विवचन । सा०, मु० - व्यलिखतम् । अन्यत्र - ऋ० सं० ॥10/75/2, 10/89/7, 6/30/3॥ - व्यलिखत् ॥7/79/4॥ - दत्तवत्यसि । स्कन्द० - दत्तवन्तौ स्थः । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ - प्रदान की ।

Griff. (The hymns of Rgd.), Wil. (Rgd. S.)-gave, Mac. D. (S. E. D.) - bestow on anyone. व्युत्पत्ति को देखते हुए 'अरदतम्' का अर्थ 'व्यलिखतम्' होना चाहिए । अर्थात् कक्षीवान के मस्तिष्क में बुद्धि लिख दी यह अर्थ होना चाहिए था । किन्तु यहाँ 'प्रदान करना' अर्थ ग्रहण किया गया है । यही अर्थ अधिकांश भाष्यकारों ने भी ग्रहण किया है ।

पुरम्ऽधिम् - 'प्रभूत बुद्धि', 'पुरु' पूर्वक, 'धी' शब्द से अथवा 'पुरा' शब्द से परे 'धा' धातु से 'कर्मण्य-धिकरणे च' से 'कि' प्रत्यय, 'तत्पुरुषे कृति बहुलम्' से बहुलवचन होने से अलुक् करने पर पुरन्धिम् शब्द, स्त्रीलिंग, द्वितीया, एकवचन में निष्पन्न हुआ । सा०, मुद्गल - प्रभूतां धियं बुद्धिम् । अन्यत्र - निरु० ॥6/3/51॥ - 'बहुधीः' । स्कन्द० - बह्वर्थविषयां प्रज्ञाम् । वेंकट० - बुद्धिम् । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ - बुद्धि ।

Griff. (The hymns of Rgd.) - wisdom, Wil. (Rgd. S.) - various knowledge, Mac. D. (S. E. D.) - high spirit, Lan. (A. S. R.) - courage or high spirit. पहले से ही सभी विषयों को धारण कर लेने अथवा जान लेने के कारण बुद्धि को पुरंधि कहा जाता है अथवा अतीव बुद्धि को पुरन्धि कहते हैं ।

कारोतरात् - 'पात्र विशेष से', कारोतर शब्द दो अर्थों में प्रयुक्त हुआ है । कुछ भाष्यकारों ने इसको एक पात्र विशेष माना है । जिसकी बनावट घोड़े के खुरों के समान होती थी और जो बीच से गहरा होता था ।

कुछ भाष्यकारों ने इसे छानने का उपकरण माना है , जिससे सुरा को छानकर साफ किया जाता था । प्रसंगानुसार यह स्पष्ट होता है कि यह सम्भवत: कोई पात्र विशेष था और उसी से छानने का काम भी होता था । अश्विनी-कुमारों ने इसी छानने योग्य पात्र के द्वारा सुरा के सौ घड़ों का पूर्ण किया था । सा0,मु0 - वैदलश्चर्मविष्टितो भाजनविशेष: । स्कन्द0 - कारोतर इति कूपनाम वर्तुलत्वादिना सादृश्येन कूपसदृशात । वेंकट0 - कूपसदृशात् । सात्व0 (ऋ0 का सु0भा0) - विशिष्ट बरतन । **Griff. (The hymns of Ṛgd.) - a strainer, Wil. (Ṛgd.S.) - a cask, M.W. (S.E.D.) - a filtering vessel or a cloth used to purify the liquer called Surā, Grass. (Ṛgd.) - gosset (drain,नली).** ऋ0सं0 में केवल इसी मन्त्र में प्रयुक्त हुआ है ।

सुरायाः - 'षुञ् अभिषवे' धातु से निष्पन्न सुरा शब्द के षष्ठी एकवचन का रूप है । यास्काचार्य ने इसका निर्वचन 'अभिषूयते अनेकैर्द्रव्यैरिति' (निरु0 1/3) किया है । अर्थात् अनेक पदार्थों को मिलाकर जो अभिषुत किया जाता है वह सुरा है । यह एक प्रकार का मादक पेय होता था जिसका सेवन देव और असुर दोनों करते थे । अन्य इण्डो- यूरोपियन तथा इण्डो-ईरानियन भाषाओं में भी सुरा से मिलते जुलते शब्द उपलब्ध होते हैं । जैसे * **Avestā - 'hurā', Hungarian - 'Sör' (beer), Votyak - 'sur', Vogul - 'sor', Ostyak - 'sor'.**

8\. हिमेनाग्निं घ्रंसमवारयेथां   हिमेन।अग्निम्।घ्रंसम्।अवारयेथाम् ।

पितुमतीमूर्जमस्मा अधत्तम्।   पितुऽमतीम् । ऊर्जम् । अस्मै । अधत्तम् ।

ऋबीसे अत्रिमश्विनावनीत   ऋबीसे । अत्रिम् । अश्विना । अवऽनीतम् ।

मुन्निन्यथुः सर्वगणं स्वस्ति   उत । निन्यथुः । सर्वऽगणम् । स्वस्ति ।।

अश्विना !

अन्वय - हिमेन घ्रंसम् अग्निम् अवारयेथाम् । अस्मै पितुमतीम् ऊर्जम् अधत्तम् । ऋबीसे अवनीतम् अत्रिं सर्वगणं स्वस्ति उत निन्यथुः ।

अनुवाद - हे अश्विनौ ! हिमवत् शीतल जल से धधकते हुए अग्नि को शान्त किया, उन लोगों के लिए अन्नयुक्त बल प्रदान किया । अन्धकार-युक्त कारागृह में औंधे मुँह पड़े हुए अत्रि को उनके सभी अनुयायियों के साथ कल्याणार्थं भली भाँति ऊपर उठाया ।

टिप्पणी -

घ्रंसम् - 'धधकते हुए', 'घृ क्षरणदीप्तयोः' धातु, 'मनिन्' प्रत्यय, द्वितीया, एकवचन । सा0, मु0 - दीप्यमानम् । अन्यत्र - ऋ0 सं0 (5/44/7, 7/69/4) - दीप्तम्। निघ0 (1/9) में घ्रंस की गणना अहनामों में की गई है। निरु0 (6/4/84) - 'घ्रंस इत्यहनाम, ग्रस्यन्तेऽस्मिन् रसाः' अर्थात् घ्रंस दिन का नाम है, इस दिन में रस सूर्य के द्वारा ग्रसित होते हैं - सूखते हैं । दिन सूर्य के प्रकाश के कारण दीप्तिमान होता है इसलिए 'घृ क्षरणदीप्तयोः' धातु से निष्पन्न घ्रंस शब्द को दिन का पर्याय भी माना जा सकता है । स्कन्द0 - अत्यन्त दीप्तम् । वेंकट0 - क्षरदीप्तिम् । सात्व0 (ऋ0 का सु0भा0) - धधकते हुए । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - fierce burning, Wil. (Ṛgd.S.) - blazing flames, M.W. (S.E.D.) - brightness, Pet. (The hymns from the Ṛgd.) - dazzling lusture, Vel. (R.S.) - the heat, Mac.D.(S.E.D.) - heat of the sun, Grass.(Rgd.) -

Feuer glut (glow of fire). प्रस्तुत प्रसंग में घ्रंस को दिन के अर्थ में ग्रहण नहीं किया जा सकता । यहाँ घ्रंस का तात्पर्य प्रज्जवलित अग्नि की दीप्ति है ।

पितुऽमतीम् - 'अन्नयुक्त', पितु शब्द से 'ह्रस्वनुड्भ्यां मतुप्' सूत्र के द्वारा 'मतुप्' प्रत्यय तथा 'ङीप्' करने पर स्त्रीलिंग, द्वितीया, एकवचन में पितुमतीम् रूप निष्पन्न हुआ । मतुप् को उदात्त । सा०, मु० - अन्नयुक्तम्। अन्यत्र - निघ० ॥2/7॥ पितुरिति अन्ननाम । स्कन्द० - अन्नसहितम् । वेंकट० - अन्नवन्तम् । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ - पुष्टिकारक । Griff. (The hymns of Rgd.) - food very rich in nourishment, Wil. (Rgd.S.) - food supported strength, M.W. (S.E.D.) - nourishing, Vel. (R.S.) - Nourishment consisting of food, Mac. D. (S.E.D.) - Nourishing, Grass. (Rgd.) - speirs(food), अन्य भाषाओं में Avestā - 'pitu', Lithuanian - 'pĕtūs'(midday, meat) etc. 'पितुमतीम्' शब्द ऊर्जम् का विशेषण है । ग्रिफित तथा विल्सन महोदय ने 'पितुमतीम् ऊर्जम्' दोनों को जोड़कर एक साथ अर्थ ग्रहण किया है ।

ऊर्जम् - 'बल', 'ऊर्ज बलप्राणनयोः' धातु, पुल्लिंग, द्वितीया, एकवचन । सा०, मु० - बलप्रदं रसात्मकं क्षीरादिकम् । अन्यत्र - ऋ० सं० ॥1/92/17॥ बलप्रदमन्नम्, ॥1/118/7॥ - रसवदन्नम् । ॥6/4/4, 7/49/4॥ - अन्नम् ॥8/8/16॥ - बलकरमन्नरसम् । अथर्व० सं० ॥4/25/4॥ अन्नरसजनिता पुष्टि । स्कन्द० - बलम् । वेंकट० - रसम् । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ - बलप्रद अन्न । M.W. (S.E.D.) - to strengthen, Mac.D. (S.E.D.) - vigour, Lan. (A.S.R.) - strenth or vigour, Vel. (R.S.)-

S.V. (The ety. of Yāska,Pg. 43) - food, is traced to √ऊर्ज 'to invigorate', अन्य भाषाओं में Greek - 'ὀργάω' Latin - 'urge - o', Gothic - 'vrik-u', Lithuanian - 'verz-in' ऊर्ज शब्द ऐसे बल के अर्थ में प्रयुक्त होता है, जो अन्न रस से उत्पन्न हो । ऋग्वेद के अनेक स्थलों में तथा प्रस्तुत मंत्र में कतिपय भाष्यकारों ने ऊर्ज का अर्थ केवल अन्न ग्रहण किया है, जबकि ऊर्ज का अर्थ यहाँ केवल 'बल' ही अधिक समीचीन है । 'अन्न' के अर्थ में तो 'पितुमती' शब्द का प्रयोग किया गया है ।

ऋबीसे - 'अन्धकारयुक्त कारागार में' ऋबीसम् शब्द, नपुंसकलिंग, सप्तमी, एकवचन । सा०, मु० - अपगतप्रकाशे पीडायन्त्रगृहे । अन्यत्र - ऋ० सं० ॥1/117/3॥ - शतद्वारे यन्त्रगृहे । निरु० ॥6/6/132॥ - 'ऋबीसमपगतभासमपहृतभासमन्तर्हितभासं गतभासं वा' अर्थात् प्रकाश रहित, जिससे प्रकाश का अपहरण कर लिया गया हो अथवा जिसमें प्रकाश तिरोहित हो उसे ऋबीस कहते हैं । स्कन्द० - अग्निकूपे । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ - अँधेरे कारागृह में। Griff. (The hymns of Ṛgd.) - the cavern (cave), Wil.(Ṛgd.) - from the dark cavern. Pet.(The hymns from the Ṛgd.) - a fire pit, Vel. (R.S.) - into the (burning) abyss. Mac.D. (S.E.D.) - Chasm ॥गह्वर॥. 'ऋबीसे' का अर्थ 'अन्धकारयुक्त कारागृह' ही उचित है ।

अवऽनीतम् - 'औंधे पड़े हुए' 'अव' उपसर्ग पूर्वक, 'नी' धातु, 'शतृ' प्रत्यय, नपुंसकलिंग, प्रथमा, एकवचन । सा०, मु० - अवाङ्मुखतया असुरैः प्रापितम् । अन्यत्र - ऋ० सं० ॥1/61/10, 2/13/7, 1/118/7॥ - अवस्तानीताय । स्कन्द० - अधोनीतम् । वेंकट० - प्रक्षिप्तम् । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ - औंधे मुँह पड़े हुए । Griff. (The hymns of Ṛgd.) -

downward, Wil. (Rgd.S.) had been thrown headlong. M.W. (S.E.D.) - pushed down into. Mac.D. (E.S.R.) - on the earth. 'गतिरनन्तरः' सूत्र से गति को प्रकृतिस्वरत्व प्राप्त हुआ । यहाँ 'अवनीतम्' का अर्थ 'औंधे पड़े हुए' ही उचित है ।

उत् निन्यथुः - 'भली भाँति ऊपर उठाया', 'उत्' तथा 'नि' उपसर्ग पूर्वक, 'वह् प्रापणे' धातु, 'अधुसि यजादित्वात्' से सम्प्रसारण, लिट् लकार, मध्यम पुरुष, द्विवचन । सा०, मु० - तस्माद्गृहाद्दुद्गमय्य युवां स्वगृहं प्रापितवन्तौ । अन्यत्र - ऋ० सं० ॥1/116/24॥ - उत्तीर्णं कृतवन्तौ, उन्नीतम् । स्कन्द० - ऊर्ध्वं नीतवन्तौ । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ - ऊपर उठाया । Griff. (The hymns of Rgd.) - ye brought, Wil. (Rgd.S.) extricated, Vel. (R.S.) - lifted. Grass. (Rgd.)- herausge (out of).

सर्वऽगणम् - 'सभी अनुयायियों के साथ', सर्व शब्द पूर्वक, 'गण संख्याने' धातु, नपुंसकलिंग, द्वितीया, एकवचन । यास्काचार्य ने गण का निर्वचन 'गणो गणनाद् गुणाच्च' ॥निरु० 6/6/132॥ किया है । अर्थात् गणन के कारण गण कहा जाता है । गण समूह को कहते हैं । सा०, मु० - सर्वेषामिन्द्रियाणां पुत्रादीनां वा गणेनोपेतम् । स्कन्द० - सर्वेणेन्द्रियगणोपेतम्, अविकलांगमित्यर्थः । वेंकट० - अविकलांगसर्वेन्द्रियगणम् । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ - उनके सभी अनुयायियों के साथ । Griff. (The hymns of Rgd.) - with all his people. M.W. (S.E.D.) - the whole company. Vel. (R.S.) - with all his followers. Grass. (Rgd.) - ganzer schar (with whole troop). सर्व गणम् का अर्थ

यहाँ अत्रि परिवार से सम्बद्ध है । असुरों ने अत्रि तथा उनके अनुयायियों को, जिनमें सम्भवतः उनके वंशज भी रहे होंगे, उन्हें अँधेरे कारागृह में रख दिया था । अश्विनीकुमारों ने वहाँ से अत्रि तथा उनके गणों को ऊपर उठाया । इसके अतिरिक्त सायण आदि कतिपय भाष्यकारों ने सर्वगणम् का अर्थ 'इन्द्रियगणम्' ग्रहण किया है । सायण के अनुसार अश्विनीकुमारों ने अत्रि को सभी इन्द्रियों और पुत्रादि गणों के साथ कारागृह से ऊपर उठाया। प्रसंगानुसार सर्वगणम् का अर्थ 'अत्रि परिवार' तथा 'इन्द्रियों सहित अविकलांग' दोनों ही समीचीन होगा । अनुयायियों का तात्पर्य यहाँ अत्रि परिवार से है ।

9. परावतं नासत्यानुदेथामु-   परा । अवतम् । नासत्या । अनुदेथाम् ।

च्चाबुध्नं चक्रथुर्जिह्मवारम्।   उच्चाऽबुध्नम् । चक्रथुः। जिह्मऽवारम् ।

क्षरन्नापो न पायनाय राये   क्षरन् । आपः। न । पायनाय । राये ।

सहस्राय तृष्यते गोतमस्य ।।   सहस्राय । तृष्यते । गोतमस्य ।।

अन्वय - नासत्या ।.अवतं परा अनुदेथाम्, उच्चाबुध्नं जिह्मवारं चक्रथुः ।
तृष्यते गोतमस्य पायनाय आपः राये सहस्राय न क्षरन् ।

अनुवाद - हे नासत्यों । ।तुम दोनों ने। कुएँ को उधर ।गोतम की ओर।प्रेरित किया । सतह को ऊँचा उठाया तथा द्वार को अधोमुख किया । तृषित गोतम के पान के लिए जल को सहस्त्र धनों की भाँति प्रवाहित किया ।

टिप्पणी -

अवतम् - 'कुएँ को', अवत शब्द, नपुंसकलिंग, द्वितीया,एकवचन । सा0,मु0, स्कन्द0, वेंकट0 - कूपम्। Griff., Wil., Vel., Mac.D.,M. W., Lan. and Grass.-well. निघ0 ।3/23। - अवतरिति कूपनाम । निरु0 ।5/4/75। - 'अवाऽतितः गत इत्यर्थः' अर्थात् कूप को अवत इसलिए कहते हैं क्योंकि यह नीचे की ओर गहरा गया हुआ होता है । अतः 'अवतम्' का कूप अर्थ ही उचित है ।

परा अनुदेथाम् - 'उधर प्रेरित किया', परा उपसर्ग पूर्वक, 'नुद् प्रेरणे' धातु, आत्मनेपद, लुङ् लकार,मध्यमपुरुष,द्विवचन । सा0,मु0- गोतमस्य ऋषेः समीपे प्रेरिताथाम् तदनन्तरं तं कूपम् । स्कन्द0 - गोतमं प्रति प्रेरितवन्तौ स्थः । सात्व0 ।ऋ0 का सु0भा0। - बहुत दूर तक ले गये । Griff. (The hymns of Rgd.) - Ye lifted up , Wil. (Rgd. S.) - raised up, Vel. (R.S.) - drove up (upturned). ऋग्वेद में केवल इसी मंत्र में प्रयुक्त ।

उच्चाऽबुध्नम् - 'सतह को ऊँचा उठाया', 'उच्चे बुध्नं यस्य स तथोक्तः', यास्क ने बुध्न शब्द का निर्वचन इस प्रकार किया है 'बुध्नमन्तरिक्षं, बद्धा अस्मिन् धृता आप इति वा । इदमपीतरद् बुध्नमेतस्मादेव बद्धा अस्मिन् धृताः प्राणा इति' ।निरु0 ।0/4/29। । बुध्न अन्तरिक्ष को कहते हैं क्योंकि इसमें जल बंधे रहते हैं या धरे रहते हैं । शरीर को भी बुध्न कहते हैं क्योंकि इस शरीर में प्राण बंधे हुए हैं, धरे हुए हैं । किन्तु सायण ने बुध्न का अर्थ कुएँ का मूल भाग अर्थात् कुएँ का सतह ग्रहण किया है । कुएँ के सतह में भी जल बंधे रहते हैं,सम्भवतः इसीलिए सायण ने बुध्न का अर्थ कुएँ का सतह ग्रहण किया है । सा0,मु0 - उपरिष्टात् मूलं यस्य स तथोक्तः।वेंकट0- स्थितमूलम् । Griff. (The hymns of Rgd.) - set the base on

high, Wil. (Rgd.S.) - raised up the well, and made the base, M.W. (S.E.D.) - ~~xxxxxx~~ having the bottom upwards, Mac.D. (S.E.D.) - set the bottom on high, Grass. (Rgd.)- Bodenaben (lifted up the bottom) ऋग्वेद के केवल इसी मंत्र में प्रयुक्त।

जिह्मऽवारम् - 'द्वार को अधोमुख [किया]', 'जिह्मं वारं यस्य स तथोक्तः' 'ओहाङ् गतौ' धातु से जिह्म शब्द बना, कुटिलतां गच्छति इति जिह्मं, वार का अर्थ है द्वार, द्वार के द् का लोप होकर वारं शेष है । वार शब्द आधुनिक वारी के समान है । वारी पात्र के मुख को कहते हैं । जिह्म वारम् का अर्थ हुआ वक्र द्वार । परन्तु यहाँ शाब्दिक अर्थ से थोड़ा भिन्न अर्थ ग्रहण किया गया है । यहाँ जिह्म का अर्थ वक्र न होकर अधोमुख है । अवतं का विशेषण है । सा०, मु० - अधस्ताद्वर्तमानतया, वक्रं द्वारम्। अन्यत्र - ऋ० सं० [8/40/5] - पिहितद्वारम् । यहाँ जिह्म का अर्थ पिहित ग्रहण किया गया है । स्कन्द - अधोमुखाच्च । वेंकट० - नीचीनद्वारम् । Griff. (The hymns of Rgd.) - to open downward, Wil.(Rgd. S.) - the curved mouth, Mac. D. (S.E.D.) - slanting(जिह्म) Vel. (R.S.) - mouth become ablique. प्रसंगानुसार 'जिह्मवारं' का अर्थ यहाँ 'अधोमुख द्वार वाला' ही उचित है ।

क्षरन् - 'प्रवाहित किया', 'क्षर् संचलने' धातु, 'बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेऽपि' से अडभाव, शबादि विकरण, पित् होने से अनुदात्तत्व, 'तिङ् ङसार्वधातुकस्वर' से धातुस्वर, लङ् लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन । सा०,मु०- प्रवाहरूपेण निरगमन । सात्व० [ऋ० का सु०भा०] - बहा दी । Griff. (The hymns of Rgd.) - flowed, Wil. (Rgd.S.) - issued, M.W.

•(S.E.D.) - flowing, Pet (The hymns from Ṛgd.) - letting flow, Mac.D. (S.E.D.) - flow. Vel. (R.S.) flowed, Lan. (A.S.R.) - flow. अतः 'प्रवाहित किया' अर्थ उचित है ।

राये - 'धनों की', 'दानार्थक रा' धातु, प्रथमा, बहुवचन के स्थान पर चतुर्थी एकवचन का प्रयोग । 'रातेर्ङैः' ॥उ०सू० 2/224॥ और 'उडिदम्' से विभक्ति को उदात्त । सा०, मु० - हवींषि दत्तवतः । अन्यत्र - ऋ० सं० ॥1/5/3, 6/1/2, 7/9/6, 8/4/15, 10/59/2, 9/10/1॥ - धनाय । अथर्व० सं० ॥18/2/37॥ - स्तोता । यहाँ 'राये' शब्द की उत्पत्ति 'रै शब्दे' धातु से मानी गई है । स्कन्द०, वेंकट० - धनानि । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ - धान्यरूप धन । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - abundance, Wil. (Ṛgd.S.) - the offerer, Lan. (A.S.R.) - wealth, Vel. (R.S.) - riches, Mac.D.(S.E.D.) wealth. सायणाचार्य ने 'राये' का अर्थ हवि प्रदान करने वाला यजमान ग्रहण किया है और विल्सन महोदय ने भी इसी अर्थ का अनुसरण किया है । धन का दान किया जाता है इसलिए दानार्थक 'रा धातु' से इस शब्द की उत्पत्ति हुई, ऐसा माना जा सकता है । यहाँ पर भी 'राये' को धन अर्थ में ग्रहण करना ही उचित होगा।

तृष्यते - 'तृषित ॥गोतम॥ के लिए', 'ञितृष्णा पिपासायाम्' धातु से श्यन्, लट् और 'शतृ' प्रत्यय, 'षष्ठ्यर्थे चतुर्थी वक्तव्या' ॥पा०सू० 2/3/62॥ से चतुर्थी विभक्ति हुआ । श्यन् के नित् होने से आद्युदात्त । गोतम का विशेषण । सा०, मु० - पिपासते । स्कन्द० - तृषा बाध्यमानस्य । वेंकट० - पिपासतः । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ - प्यासे । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - thirsted; Wil. (Ṛgd.S.), M.W.(S.E.D.)-

thirsty, Vel. (R.S.) - thirsty, Lan. (A.S.R.), Mac.D. (S.E.D.) - thirsty, Grass. (Rgd.) - durstige (thirsty), अन्य भाषाओं में, Latin - 'torret', 'tors-et' (growsdry, scarches), English - 'thirst', German - 'dorret' (grows-dry) also Latin - 'terra', 'ters-a' (the dry).

10. जुजुरुषो नासत्योत वव्रिं — जुजुरुषः । नासत्या । उत । वव्रिम् ।

प्रामुंचतं द्रापिमिव च्यवानात् । प्र । अमुञ्चतम् । द्रापिम्ऽइव । च्यवानात् ।

प्रातिरतं जहितस्यायुर्दस्रा — प्र । अतिरतम् । जहितस्य । आयुः । दस्रा ।

दित् पतिमकृणुतं कनीनाम् ।। आत् । इत् । पतिम् । अकृणुतम् । कनीनाम् ।।

अन्वय - नासत्या ! जुजुरुषः च्यवानात् द्रापिम् इव वव्रिं प्र अमुञ्चतम् । दस्रा ! जहितस्य आयुः प्र अतिरतम् आत् इत् कनीनां पतिम् अकृणुतम् ।

अनुवाद - हे असत्य से रहित अश्विदेवों ! जराजीर्ण च्यवन [के शरीर] से कवच की भाँति [स्थित] जराग्रस्त रूप को अथवा वृद्धावस्था की त्वचा को दूर कर दिया । हे दस्र ! [सभी के द्वारा] परित्यक्त की आयु को दीर्घ बनाया और कमनीय नारियों का पति भी बना दिया ।

टिप्पणी -

जुजुरुषः - 'जराजीर्ण', √जॄष् वयोहानौ' लिट् और 'क्वसु' प्रत्यय, 'बहुलं

छन्दसि' से उत्व, द्विभाव, पंचमी, एकवचन में 'वसोः सम्प्रसारणम्' से सम्प्रसारण तथा 'शासिवसिघसीनां च' से षत्व । सा०, मु०, वेंकट० - जीर्णात् । स्कन्द० - वृद्धिभूतात् । सात्व० ऋ० का सु०भा० - जराजीर्ण।
Griff. (The hymns of Ṛgd.) - old, Wil. (Ṛgd.S.) - aged, Pet. (The hymns from the Ṛgd.) - outer shell, Grass. (Ṛgd.) - alt (old), Vel. (R.S.) - worn (जीर्ण), **Lan. (A.S.R.) - old.** अतः 'जराजीर्ण' अर्थ ही समीचीन है ।

वव्रिम् - 'जराग्रस्त रूप को' अथवा 'त्वचा को', 'वृञ् आवरणे' धातु, 'आदृगमहनः' से 'कि' प्रत्यय, द्वितीया, एकवचन । सा०, मु०- कृत्स्नं शरीरमावृत्यावस्थितां जराम्। अन्यत्र - ऋ० सं० 1/46/9 - रूपं 5/74/5, 9/69/9, 10/5/5 - रूपम्। निघ० 3/7 में वव्रि को रूप नामों में संकलित किया गया है । स्कन्द० - रूपं जरालक्षणम्। सात्व० ऋ० का सु०भा० - बुढ़ापे की चमड़ी को । **Griff. (The hymns of Ṛgd.) - the skin, Wil. (Ṛgd.S.) - entire skin, M.W. (S.E.D.)- a cover or body, Grass. (Ṛgd.) - Leib (body), Vel. (R.S.) - skin, Mac.D. (S.E.D.) - body, Lan. (A.S.R.) - body, S.V. (The ety. of Yāska, Pg. 11, 51) - 'form' is traced to** √वृ **'to cover'.** अन्य भाषाओं में **Indo-European** - 'ṷr- ṷer- ṷerā, varrə', **(to cover, to protect), Greek**-(v)rinos **(leather), Anglo Saxon - 'wer' (protection).** सायणादि भारतीय भाष्यकारों ने 'जरायुक्त रूप' अर्थ ग्रहण किया है,जबकि पाश्चात्य विद्वानों ने वव्रि का अर्थ त्वचा' ग्रहण किया है , क्योंकि त्वचा शरीर को आवृत्त किये रहती है और वव्रि शब्द भी 'वृञ् आवरणे' धातु से निष्पन्न है। प्रसंगानुसार दोनों ही अर्थ समीचीन है ।

द्रापिम् इव - 'कवच की भाँति' 'द्राकुत्सायांगतौ' धातु 'अर्तिह्री0' ।पा0 सू0 7/3/36। से पुगागम, औणादिक 'इ' प्रत्यय तथा णिलोप करने पर द्रापिम् शब्द द्वितीया एकवचन में निष्पन्न हुआ । सा0, मु0 - द्रापिरिति कवचस्याख्या । स्कन्द0 - कवचमिव । सात्व ।ऋ0 का सु0भा0। - कवच के तुल्य । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - stripped as tweremail, Wil. (Ṛgd.S.) - asif it had been a coat of mail, M.W. (S.E.D.) - mantle (कवच), Vel. (R.S.)-like an armour, Grass. (Ṛgd.) - Gewand (garment), फिक् महोदय ने द्रापि शब्द की तुलना लिथुआनियन 'द्रापण' शब्द से की है , जिसके दो अर्थ हैं - ।1। घड़ी और ।2। कवच । यही दूसरा अर्थ सामान्यतया संस्कृत शब्द द्रापि का भी ग्रहण किया गया है । मैकडॉनल के अनुसार द्रापि शब्द ऋग्वेद में अनेक बार 'प्रावारक' अथवा 'उत्तरीय वस्त्र' के आशय में आता है। इस मंत्र को मिलाकर ऋग्वेद ।1/25/13, 4/43/2, 9/86/14, 9/100/9। में पाँच बार प्रयुक्त हुआ है । प्रसंगानुसार 'द्रापि' का 'कवच' अर्थ ही अधिक युक्तिसंगत प्रतीत हो रहा है ।

जहितस्य - 'परित्यक्त की', 'ओहाक् त्यागे' धातु, कर्मणि 'निष्ठा' प्रत्यय तथा 'छन्दस्युभयथा' के द्वारा सार्वधातुक होने से 'युक्', 'बहुलं छन्दसि' से 'श्लुः' और 'जहातेश्च' ।पा0सू0 6/4/116। से इत्व, षष्ठी, एकवचन । च्यवन का विशेषण । सा0, मु0 - पुत्रादिभिः परित्यक्तस्य ऋषेः । स्कन्द0 - त्यक्तस्यायुषः क्षण प्रायायुष इत्यर्थः । सात्व0 ।ऋ0 का सु0भा0। - परित्यक्त की । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - when all had left him helpless, Wil. (Ṛgd.S.) - without kindred, Vel. (R.S.) - farlern, Grass. (Ṛgd.) - verlossnen (to leave), Mac.D. (S.E.D.) - forlorn. अतः 'परित्यक्त' अर्थ ही उचित है ।

11. तद्वां नरा शंस्यं राध्यं — तत् । वाम् । नरा । शंस्यम् । राध्यम् ।
चाभिष्टिमन्नासत्या वरूथम्। च । अभिष्टि मत् । नासत्या । वरूथम् ।
यद्विद्वांसा निधिमिवाप- — यत् । विद्वांसा । निधिम्ऽइव । अपऽ -
गूळ्हं — गूळ्हम् ।
मुद्दर्शतादूपथुर्वन्दनाय ।। — उत्। दर्शतात् । ऊपथुः। वन्दनाय ।।

अन्वय - नरा नासत्या । वां तत् अभिष्टिमत् वरूथं शंस्यं राध्यं च । विद्वांसा। निधिम् इव अपगूळ्हं वन्दनाय दर्शतात् उत् ऊपथुः ।

अनुवाद - हे नेतृत्व करने वाले सत्यनिष्ठ [अश्विनों] । तुम दोनों की वह वाञ्छनीय रक्षा, प्रशंसनीय और आराधनीय थी । तुम दोनों ने जानकर निधि के समान छिपाये गये वन्दन को देखने योग्य [कुएँ] से ऊपर उठाया ।

टिप्पणी -

शंस्यम् - 'प्रशंसनीय', 'शंस् स्तुतौ' धातु, ण्यन्त होने से 'अचो यत्' सूत्र के द्वारा 'यत्' प्रत्यय तथा 'णेरनिटि' [पा0 सू0 6/4/5] से णिलोप, तित्स्वरितत्व प्राप्त होने से 'यतोऽनावः' से आद्युदात्त हुआ है । सा0,मु0- अस्माभिः प्रशंसनीयम्। अन्यत्र - ऋ0 सं0 [1/10/5, 1/117/6] - प्रशंसनीयम् 6/26/3 - स्तुत्यं सुखम्,[7/19/8] - शंसनीय सुखम्,[8/18/21] - स्तुत्यम्। वेंकट0 - स्तोतव्यम्। स्कन्द0 - स्तुत्यम् । सात्व0 [ऋ0 का सु0 भा0] -

प्रशंसनीय । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - worthy of praise, Wil. (Ṛgd.S.) - to be celebrated, Vel. (R.S.) - praised, Mac. D. (S.E.D.) - praised. अतः प्रशंसनीय अर्थ ही तर्कसंगत होगा ।

राध्यम् - 'आराधनीय', 'राध साध संसिद्धौ' धातु, 'यत्' प्रत्यय, नपुंसकलिङ्ग, प्रथमा, एकवचन । सा०, मु० - आराधनीयं च । अन्यत्र- ऋ० सं० ॥8/92/28॥ - स्तुतिभिराधानीयम् । निघ० ॥2/10॥ - राधरिति धननाम । निरु० ॥4/1/4॥ - 'राध इति धननाम, राध्नुवन्ति अनेन' अर्थात् धन से मनुष्य अपने अनेक कार्य सिद्ध करता है इसलिए उसकी उत्पत्ति 'राध संसिद्धौ' धातु से मानी गई है । स्कन्द० - आराधनीयं च । वेंकट०- राधनीयम्। सात्व० ॥ऋ० का सु० भा०॥ - आराधनीय । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - worth the winning, Wil. (Ṛgd.S.) - to be adored, M.W. (S.E.D.) - to be warshipped, Pet. (The hymns from the Ṛgd.) - worthy to acquisition, Vel. (R. S.) - admired, Mac. D. (S.E.D.) - to be worshipped. 'आराधनीय' अर्थ ही उचित है ।

अभिष्टिऽमत् - 'वान्छनीय', 'अभि' उपसर्ग पूर्वक, 'इषु इच्छायाम्' धातु, 'इत्यस्माद्भावे' से 'क्तिन्' प्रत्यय और 'मतुप्' प्रत्यय करने से अथवा 'अभि' उपसर्ग पूर्वक 'इष् गतौ' धातु से 'क्तिन्' और 'मतुप्' प्रत्यय करने से अभिष्टिमत् रूप निष्पन्न हुआ । सा०, मु० - अभ्येषणयुक्तमाभिमुख्येन प्राप्तव्यं तथा । अन्यत्र - ॥1/9/1॥ - शत्रूणा मभिभविता भव, ॥10/100/12॥ - अभ्येषणीयः, ॥10/104/10॥ शत्रूणामभिगन्ता । स्कन्द० - अभिष्टि-

रिच्छा प्रार्थना तद्वच्च प्रार्थनीयं चेत्यर्थः । वेंकट० - अभ्येषणवत् । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ - वाच्छनीय । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - your favouring, Wil. (Ṛgd.S.) - to be desired by us, M. W. (S.E.D.) rendering assistance, Vel. (R.S.) - helpful, Grass. (Ṛgd.) - strebens (to aspire), Mac.D. (S.E.D.) - wished for, सायण ने 'अभिष्टिमत्' का अर्थ 'अभ्येषण के अनन्तर सम्मुख प्राप्त वस्तु' किया है और 'इष् गतौ' धातु से इसकी उत्पत्ति को स्वीकारा है । जबकि यहाँ 'वान्छनीय' अर्थ अधिक तर्कसंगत प्रतीत हो रहा है , क्योंकि कुएँ में गिरे हुए वंदन ऋषि को निकालने का कार्य सभी के लिए वान्छनीय था । इसलिए अधिकांश भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों ने इसी अर्थ को स्वीकारा है ।

वरूथम् - 'रक्षा', 'वृञ्आवरणे' धातु, 'जुवृभ्यामूथन्' ॥उ०सू० 2/16॥ से 'ऊथन्' प्रत्यय, नपुंसकलिंग, प्रथमा, एकवचन, नित् होने से आद्युदात्त । सा०, मु० - वरणीयं, कामयितव्यम्। अन्यत्र - ऋ० सं० ॥1/23/21॥ - रोग-निवारकम्॥7/30/4, 8/18/20॥ - गृहम् । स्कन्द० - वरणीयं सम्भजनीयं चेत्यर्थः। वेंकट० - वरणीयं च यत् । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ - स्वीकार करने योग्य कार्य । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - succor, Wil. (Ṛgd.S.) - glorious, M.W. (S.E.D.) - protection, Grass. (Ṛgd.) - schutz (protection), Vel. (R.S.) - protection. Lan. (A.S.R.) , Mac. D. (S.E.D.) - protection. 'वरूथम्' शब्द के अर्थ को लेकर भाष्यकारों में मतवैभिन्य है । अधिकांश पाश्चात्य विद्वानों ने 'रक्षा' अर्थ ग्रहण किया है । ऋग्वेद में 'गृह' अर्थ ग्रहण किया गया है । ✓ वृञ् आवरणे से व्युत्पत्ति को मानकर इसका 'गृह' अर्थ ग्रहण कर लिया गया

है , क्योंकि गृह ऊपर से आवृत्त होता है तथा शीतातपादि से रक्षा करता है । भारतीय विद्वानों ने 'वरणीय' अर्थ ग्रहण किया है । किन्तु प्रसंगानुसार 'वरूथम्' का 'रक्षा' अर्थ ही उचित प्रतीत हो रहा है । 'वरणीय' अर्थ प्रसंगानुकूल नहीं प्रतीत हो रहा है । वंदन को कुएँ से निकालकर रक्षा की गई, जो सभी के लिए वाञ्छनीय थी, यह अर्थ अधिक समीचीन है ।

विद्वांसा - 'विद् ज्ञाने' धातु से 'असुक्' प्रत्यय करने से निष्पन्न विद्वस् शब्द के प्रथमा बहुवचन का रूप है, 'सुपां सुलुक्' से विभक्ति का आकार । सा०, मु० - जानन्तौ युवाम्। अन्यत्र - ऋ० सं० ॥1/120/2, 1/120/3॥ - सर्वज्ञौ ॥1/164/4॥ - जगत्कारणविषयज्ञानवन्तमन्यं गुर्वादिकम् । स्कन्द० - विद्वांसौ । वेंकट० - जानन्तौ । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ - ज्ञानी । Griff. (The hymns of Rgd.) - what time ye knowing well. Wil. (Rgd.S.) - when becoming aware (of the circumstances), Vel. (R.S.) - knowing well, Mac.D.(S. E.D.) - knowing, Lan. (A.S.R.) - learned, Grass. (Rgd.) - kundig (aquainted, भलीभाँति जानकर). अधिकांश विद्वानों के द्वारा गृहीत अर्थ को देखकर यह विदित होता है कि उन्होंने 'विद्वांसा' शब्द को सम्बोधन पद के 'रूप' में प्रयुक्त नहीं किया । उन्होंने इसका अर्थ 'जानकर' ग्रहण किया है , जबकि सात्वलेकर तथा लैनमन महोदय ने इसका अर्थ 'ज्ञानी' ग्रहण कर, इसे सम्बोधन पद माना है । विद्वांसा यहाँ सम्बोधन पद नहीं हो सकता । यदि यह सम्बोधन होता तो निघात हो जाता, पर ऐसा नहीं हुआ है ।

अपऽगूळ्हम् - 'छिपाये गये', 'अप' उपसर्गपूर्वक, 'गुहू संवरणे' धातु, 'निष्ठा' सूत्र से कर्मणि 'क्त' प्रत्यय, 'यस्य विभाषा' से इट् का प्रतिषेध

'होढ:' ।पा० सू० 8/2/31। से ढत्व, 'झषस्तथोर्धोऽधः' ।पा० सू० 8/2/40। से धकार, ष्टुत्वढलोपदीर्घ, 'गतिरनन्तर:' से गति को प्रकृतिस्वरत्व । 'ह्' के स्थान पर 'ळ्' हो जाने के विषय में पीटर्सन महोदय का कथन है - 'The breathing ह् is a secondary sound being originally represented by घ् । This घ् sometimes represents the old palatal झ् which is replaced by cerebral sound before त् । This 'guh' was originally 'gugh' also represented by 'gujh'. with the past participal suffix 'क्त' the 'zh' became cerebral 'ḍh' the replacement being indicated, by lengthening of the preceding syllable. (The hymns from Ṛgveda). सा०, मु० - अरण्ये निर्जने देशे कूपमध्यै: असुरै: निगूढम्। अन्यत्र- ऋ० सं० ।1/23/14। - अत्यन्तगूळ्म् , ।4/5/3, 10/32/6। - अन्तर्हितम्, ।10/88/2। - आच्छादितम्। स्कन्द० - आच्छादितम्। वेंकट० - तिरोहितम् । सात्व० ।ऋ० का सु०भा०। - छिपाये हुए । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - hidden, Wil. (Ṛgd.S.) - concealed, M.W. (S.E.D.) - hidden or concealed, Vel. (R.S.) - secret, Lan. (A.S.R.) - hidden, Mac. D. (S.E.D.) - concealed, Grass. (Ṛgd.) - verbargne (to conceal), अत: 'अपगूळ्हम्' का 'छिपाना' अर्थ ही उचित है ।

दर्शतात् - 'देखने योग्य', 'भृमृदृशि०' धातु से 'अतच्' प्रत्यय, पञ्चमी, एकवचन । कूप का विशेषण है । सा०, मु० - अध्वगै: पिपासुभिर्दृष्टव्यात् कूपात् । स्कन्द० - अत्यन्तागाधत्वात् दर्शनीयकूपात् । वेंकट० - अगाधात् कूपात् । सात्व० ।ऋ० का सु०भा०। - देखने योग्य । Griff. (The

of Ṛgd.) - from the pit, Wil. (Ṛgd.S.) - from the (well) that was visible (to travellers), M.W. (S.E.D.) - visible, Vel. (R.S.) - from the lovely ditch, Grass. (Ṛgd.) - gurbe (pit). वस्तुतः दर्शतात् शब्द कूप की विशेषता को बतला रहा है। सायण ने इसका अर्थ किया है कि, "तृषित व्यक्तियों के लिए देखने योग्य कूप से" और स्कन्दस्वामी तथा वेंकटमाधव ने इसका अर्थ, "अत्यन्त गभीर होने के कारण दर्शनीय कूप से" किया है। ग्रिफित तथा ग्रासमन महोदय ने दर्शतात् का अर्थ सीधा 'कूप' ही ग्रहण कर लिया है, जबकि दर्शतात् संज्ञा नहीं अपितु कूप का विशेषण पद बनकर प्रयुक्त हुआ है। दर्शनीयता को जो हेतु सायण तथा स्कन्दस्वामिन् महोदय के द्वारा बताये गये हैं, वे दोनों ही तर्कसंगत हैं। ऋग्वेद के केवल इसी मंत्र में इस शब्द का प्रयोग हुआ है।

उत् ऊपथुः - 'ऊपर उठाया', 'उत्' उपसर्ग पूर्वक, 'डुवप् बीजसंताने' धातु, 'उत्' प्रत्यय, लिट् लकार, मध्यम पुरुष, द्विवचन, अजादि होने से सम्प्रसारण। सा०, मु० - उदहार्ष्टम्। स्कन्द० - उत्खातवन्तौ स्थः, उत्तारितवन्तावित्यर्थः। सात्व० (ऋ० का सु०भा०) - ऊपर उठाया। Griff. (The hymns of Ṛgd.) - delivered, Wil. (Ṛgd.S.) - extricated, Vel. (R.S.) - tookout, Grass. (Ṛgd.) - hervorhabt (to rise), ऋग्वेद के केवल इसी मंत्र में प्रयुक्त।

12. तद्वां नरा सनये दंस उग्रमाविष्कृणोमि तन्यतुर्न वृष्टिम्।

तत्। वाम्। नरा। सनये। दंसः। उग्रम्। आविः। कृणोमि। तन्यतुः। न। वृष्टिम्।

of Rgd.) - from the pit, Wil. (Rgd.S.) - from the (well) that was visible (to travellers). M.W. (S.E.D.) - visible, Vel. (R.S.) - from the lovely ditch, Grass. (Rgd.) - gurbe (pit). वस्तुतः दर्शतात् शब्द कूप की विशेषता को बतला रहा है । सायण ने इसका अर्थ किया है कि, "तृषित व्यक्तियों के लिए देखने योग्य कूप से" और स्कन्दस्वामी तथा वेंकटमाधव ने इसका अर्थ, "अत्यन्त गभीर होने के कारण दर्शनीय कूप से" किया है । ग्रिफित तथा ग्रासमन महोदय ने दर्शतात् का अर्थ सीधा 'कूप' ही ग्रहण कर लिया है , जबकि दर्शतात् संज्ञा नहीं अपितु कूप का विशेषण पद बनकर प्रयुक्त हुआ है । दर्शनीयता के जो हेतु सायण तथा स्कन्दस्वामिन् महोदय के द्वारा बताये गये हैं, वे दोनों ही तर्कसंगत हैं । ऋग्वेद के केवल इसी मंत्र में इस शब्द का प्रयोग हुआ है ।

उत् ऊपथुः - 'ऊपर उठाया', 'उत्' उपसर्ग पूर्वक, 'डुवप् बीजसंताने' धातु, 'अतुः' प्रत्यय, लिट् लकार, मध्यम पुरुष, द्विवचन, अजादि होने से सम्प्रसारण । सा०, मु० - उदहार्ष्टम् । स्कन्द० - उत्खातवन्तौ स्थः, उत्तारितवन्तावित्यर्थः । सात्व० (ऋ० का सु०भा०) - ऊपर उठाया । Griff. (The hymns of Rgd.) - delivered, Wil. (Rgd.S.) - extricated, Vel. (R.S.) - tookout, Grass. (Rgd.) - hervorhabt (to rise), ऋग्वेद के केवल इसी मंत्र में प्रयुक्त ।

12\. तद्वां नरा सनये दंस उग्रमाविष्कृणोमितन्यतुर्न वृष्टिम्।

तत् । वाम् । नरा । सनये । दंसः । उग्रम् । आविः । कृणोमि । तन्यतुः । न । वृष्टिम् ।

दध्यङ् ह यन्मध्वाथर्वणो	दध्यङ् । ह । यत् । मधु । आथर्वणः ।
वामश्वस्य शीर्ष्णा प्र यदी-मुवाच ।।	वाम् । अश्वस्य । शीर्ष्णा । प्र । यत् । ईम् । उवाच ।।

अन्वय - नरा । वां तत् उग्रं दंसः सनये आविष्कृणोमि तन्यतुः न वृष्टिम् ।
यत् आथर्वणः दध्यङ् अश्वस्य शीर्ष्णा वाम् ईम् मधु यत् ह प्र उवाच् यत् ।

अनुवाद - हे नेताओं । तुम दोनों के उस भीषण कार्य का धनलाभार्थ आविष्कार करता हूँ, जैसे मेघ गर्जन वृष्टि का ‖आविष्कार करता है‖ । जब अथर्वा के कुल में उत्पन्न दध्यङ् ने अश्व के सिर से ही तुम दोनों को मधुविद्या का उपदेश दिया ।

टिप्पणी -

सनये - 'धनलाभार्थं', 'षणु दाने' धातु, 'खनिकष्यिकस्यञ्जसिवसिध्वनिस्तनिसनिग्रन्थिचरिभ्यश्च' ‖उ0सू0 4/379‖ से 'इ' प्रत्यय, चतुर्थी, एकवचन । सा0, मु0 - धनलाभार्थम् । अन्यत्र - ऋ0 सं0 ‖1/116/2‖ - धनलाभाय, ‖6/26/8‖ - संभजनाय च, ‖9/92/1‖ - धनलाभाय देवानां संभजनाय वा, ‖10/30/11‖ - लब्ध्यै । स्कन्द0 - अभिप्रेतलाभाय । वेंकट0 - लाभाय । सात्व0 ‖ऋ0 का सु0भा0‖ - जनसेवा के लिए । **Griff. (The hymns of Rgd.) - for gain, Wil. (Rgd.S.) - sake of aquiring wealth, Vel.(R.S.) - for the sake of a reward, Grass. (Rgd.) - zum segen (benediction or bliss,** आशीर्वाद के लिए **). Mac.D.(S.E.D.) - for gain.** अतः 'धन लाभ के लिए' अर्थ ही उचित है ।

दंसः - 'कार्य का', 'दस्यते अनेनेति दंसना', 'उपक्षयार्थक दसि' धातु से निष्पन्न । सा०, मु० - पुरा कृतं कर्मः । अन्यत्र - निघ० ।2/1। - दंसः इति कर्मणाम् । निरु० ।4/4/56। - "दंसयः कर्माणि, दंसयन्ति एनानि' अर्थात् कर्मों को लोग समाप्त करते हैं इसलिए उसकी उत्पत्ति उपक्षयार्थक 'दसि धातु' से हुई है । ऋ० सं० ।1/26/6, 1/69/4, 6/17/7। - कर्मणा । स्कन्द०, वेंकट० - कर्म । सात्व० ।ऋ० का सु०भा०।-कार्य को। Griff. (The hymns of Ṛgd.), Wil. (Ṛgd.S.) - deed, Mac.D. (S.E.D.) - wondrous deed, Vel. (R.S.) - miracle, S.V. (The ety. of Yāska Pg. 56) - 'action', is traced to √दंस 'to finish', Grass. (Ṛgd.) - mächtge (power or strength), अन्य भाषाओं में - Indo european - 'dens' (high mental energy), Avestā - 'danhah' (a wonderful deed), ग्रासमन महोदय ने 'उग्रः दंसः' दोनों को जोड़कर एक साथ अर्थ ग्रहण किया है । प्रसंगानुसार 'दंसः' का 'कार्य' अर्थ ही उचित है ।

उग्रम् - 'भीषण', 'वज्' अथवा 'उच्' धातु, 'रन्' प्रत्यय, च् का ग् में परिवर्तन वज् का सम्प्रसारण से 'उ' । 'दंसः' का विशेषण । सा०, मु० - उद्गूर्णमन्यैर्दुःशकम्। अन्यत्र - ऋ० सं० ।1/84/9। - उद्गूर्णम् , ।1/102/10। - अधिकबलम्, ।1/118/19। - वीर्यवन्तम् , ।6/17/13। - ओजस्विनम् , ।7/33/2। - उद्गूर्णम् , ।8/1/2।। - ।9/61/10। - उद्गूर्णेनाधिकेन, ।10/28/7। - शूरमसह्यम् । स्कन्द० - अप्रसह्यम् । वेंकट० - उद्गूर्णम् । सात्व० ।ऋ० का सु०भा०। - भीषण । Griff. (The hymns of Ṛgd.)- mighty, Wil. (Ṛgd.S.) - inimitable, Vel. (R.S.) - awe inspiring, M.W. (S.E.D.) - strong, Mac.D. (S.E.D.), Lan.

(A.S.R.) - mighty, ग्रासमन महोदय ने उग्र को दंस के साथ जोड़कर macht'ge(powerful or strengthy) अर्थ ग्रहण किया है। ऋग्वेद में गृहीत विभिन्न अर्थों को देखते हुए यह प्रतीत होता है कि उग्र शब्द का अर्थ ऐसी शक्ति अथवा पराक्रम है जो उसह्य अथवा भीषण हो। यहाँ इसका प्रयोग 'भीषण' कर्म के सन्दर्भ में किया गया है।

आविःऽकृणोमि - 'आविष्कार करता हूँ', 'आविः' शब्द पूर्वक, 'डुकृञ् करणे' धातु, लट् लकार, उत्तर पुरुष, एकवचन। आविःप्रकाश को कहते हैं क्योंकि यह सबका प्रकाशन या आवेदन करता है। 'आविः आवेदनात्' ‖निरु0 8/2/11‖। अतः किसी तथ्य को प्रकाश में लाने या प्रकट करने को आविष्कार करना कहते हैं। सा0, मु0 - प्रकटीकरोमि। अन्यत्र-ऋ0 सं0 ‖1/31/3‖ - प्रकटो भव, ‖1/86/9‖ - प्रकाशयत, ‖1/123/6‖ - प्रकटीकुर्वन्ति। ‖1/123/10-11‖ - प्रकटीकरोषि। स्कन्द0 - प्रकाशीकरोमि। Griff. (The hymns of Ṛgd.) - I publish, Wil. (Ṛgd.) - I proclaim, Vel. (R.S.) - proclaims, Mac.D. (S.E.D.) - manifested, Grass. (Ṛgd.) - künde laut (soundly known).

कृणोमि के समान रूप अन्य भाषाओं में भी उपलब्ध होते हैं। जैसे - Avestā - 'kərənaoiti', Old Persian - 'akunavam'.

तन्यतुः - 'मेघ गर्जन', 'तनु विस्तारे' धातु, 'ऋतन्यञ्जि' ‖उ0सू0 4/442‖ से 'यतुच्' प्रत्यय अथवा 'स्तन् शब्दे' धातु से बाहुलकात् 'यतुच्' प्रत्यय करने तदनन्तर छान्दस लोप होने पर तन्यतुः रूप निष्पन्न हुआ। सा0, मु0- मेघस्थः शब्दः। स्कन्द0 - स्तनयित्नुशब्द। वेंकट0 - स्तनयित्नु। सात्व0- ‖ऋ0 का सु0भा0‖ गरजने वाला मेघ। Griff. (The hymns of Ṛgd.) -

thunder. Wil. (Ṛgd.S.) - thunder (announces), Vel. (R.S.) - thunder, Grass. (Ṛgd.) - donnerton. Mac.D. (S.E.D.) - thunder. Lan. (A.S.R.) - thunder.

दध्यङ् - 'ध्यै चिन्तायाम्' और 'अञ्च्' धातु से मिलकर अथवा दधि शब्द पूर्वक 'अञ्च्' धातु से दध्यञ्च शब्द निष्पन्न हुआ है। जिसका ऋग्वेद में 'दध्यङ्' रूप भी मिलता है। निरुक्तकार यास्क ने दध्यङ् का निर्वचन 'दध्यङ् प्रत्यक्तोध्यानमिति वा। प्रत्यक्तस्मिन् ध्यानमिति वा' (निरु० 12/3/2) किया है। अर्थात् ध्यान में लगे हुए को दध्यङ् कहते हैं अथवा इसमें ध्यान लगा हुआ है इसलिए दध्यङ् है। S.V. (The ety. of Yaska Pg. 102) - name of a mythical being, called the son of Atharvan', is traced to √ध्यै + अञ्च्, lit. 'one directed towards attention' or whom attention directs' as he 'attentively performs his duties', This etymology is abscure, but possibly it embodies some beliefs about this being. According to St. Petersberg Sanskrit Worterbuch, it was दध्यङ् who informed the Aśvins where soma could be found. This tradition is further mentioned by Shatpath Brahman, in IV, 5.18 etc. Petersburg Sanskrit Worterbuch derives it as दधि + √अच् or अञ्च्. मैक्डानेल के अनुसार दध्यङ् एक सर्वथा पौराणिक ऋषि है। ऋग्वेद में यह स्पष्ट रूप से एक प्रकार की दिव्य पुरुष ही है। किन्तु बाद की संहिताओं (तैoसं० 5/1/4/4, 6/6/3 काठक संहिता 19/4) और ब्राह्मणों (शतपथ ब्रा० 4/1/5/18, 6/4/2/3, 14/1/1/18, 14/1/1/20, 14/1/1/25, 4/13 बृह-

दारण्यक उपनिषद 2/5/22, 4/5/28 इत्यादि) में इसे एक गुरु के रूप में परिवर्तित कर दिया गया है । यह अथर्वा के पुत्र थे ।

शीर्ष्णा - 'सिर से', 'शीर्षश्छन्दसि' (पा० सू० 6/1/60) से शिरस् के पर्याय शीर्ष्ण को अन्तोदात्त हुआ किन्तु 'अल्लोपे सति उदात्तनिवृत्तिस्वरेण' से विभक्ति को उदात्त हुआ, नपुंसकलिंग, तृतीया, एकवचन। सा०, मु०, स्कन्द, वेंकट० - शिरसा । सात्व० (ऋ० का सु०भा०) सिर से। **Griff. (The hymns of Rgd.), Wil. (Rgd.S.), M.W. (S.E.D.), Vel.(R.S.), Lan.(A.S.R.) and Mac.D. (S.E.D.) - head.**

13. अजोहवीन्नासत्या करा वां	अजोहवीत् । नासत्या । करा । वाम् ।
महे यामन्पुरुभुजा पुरंधिः ।	महे । यामन् । पुरुऽभुजा । पुरम्ऽधिः ।
श्रुतं तच्छासुरिव वध्रिमत्या	श्रुतम् । तत् । शासुःऽइव । वध्रिऽमत्याः ।
हिरण्यहस्तमश्विनावदत्तम् ॥	हिरण्यऽहस्तम् । अश्विना । अदत्तम् ॥

अन्वय - पुरुभुजा करा नासत्या ! महे यामन् पुरंधिः वध्रिमत्याः वाम् अजोहवीत् । अश्विनौ ! तत् शासुरिव श्रुतं हिरण्यहस्तम् अदत्तम् ।

अनुवाद - अनेकों का पालन करने वाले, अभिमतफलों को प्राप्त कराने वाले तथा असत्य से रहित (अश्विनौ) ! महान् स्तोत्र के द्वारा, प्रभूत बुद्धि सम्पन्न वध्रिमती ने तुम दोनों का आह्वान किया । हे अश्विनौ !

॥तुम दोनों ने॥ शासक की भाँति उसके आह्वान को सुनकर हिरण्यहस्त ॥नामक पुत्र॥ प्रदान किया ।

टिप्पणी -

मुहे यामन् - 'महान स्तोत्र के द्वारा', 'मंह पूजायाम्' धातु 'क्विप् च' सूत्र से 'क्विप्' प्रत्यय अथवा 'महत्' शब्द के अत् का छान्दस लोप, नपुंसकलिंग, सप्तमी, एकवचन । यामन् का विशेषण । 'या प्रापणे' धातु, 'आतोमनिन्क्वनिब्वनिपश्च' तथा 'कृत्यल्युटो बहुलम्' से भाव अर्थ में 'मनिन्' प्रत्यय, 'सुपां सुलुक्0' से सप्तमी का लोप होने पर यामनि के स्थान पर 'यामन्' रूप निष्पन्न हुआ । सा0, मु0 - महनीये पूजनीये स्तोत्रम्। अन्यत्र-ऋ0 सं0 ॥1/33/2, 4/24/2, 6/15/5॥ - संग्रामे । ॥1/112/1, 7/58/2॥ - गमने । ॥3/2/14, 5/44/4, 10/3/4॥ - यज्ञे । स्कन्द0 - महति योद्धारो यस्मिन् स यामा सङ्ग्राम इहाभिप्रेतस्तत्र । वेंकट0 - महति यज्ञे । सात्व0 ॥ऋ0 का सु0भा0॥ - बड़ी भारी यात्रा करते समय । **Griff. (The hymns of Rgd.) - in the great rise, Wil. (Rgd.S.) - with a sacred hymn, Pischel- successful coming of the sacrifice, Max müllar and oldenberg - way or march, Paranjhpe - an appeal of Gods or an appeal made at or through the sacrifice, M.W. (S.E.D.) - approaching the Gods invocation or sacrifice or prayer, Roth and Grass. - going forth to the Gods with prayer and offerings i.e. the sacrifice. Mac.D. (S.E.D.) - invocation.** यामन् शब्द के विषय में भाष्यकारों में पर्याप्त मतवैभिन्य है । ऋग्वेद के कतिपय मंत्रों में तथा स्कन्दस्वामिन् ने इसका अर्थ 'युद्ध' ग्रहण किया है । कतिपय भाष्यकारों ने 'यज्ञ' अथवा 'यज्ञगमन' अर्थ किया है । किन्तु प्रसंगानुसार 'महान स्तुति' अर्थ ही उचित प्रतीत हो रहा है ।

पुरुऽभुजा - 'अनेकों का पालन करने वाले', पुरा प्रभूत भुजा हस्तौ यस्य स पुरुभुजा । पुरु शब्द पूर्वक, 'भुज् सेवने' धातु से टाप् प्रत्यय । सम्बोधन पद होने से सर्वानुदात्त हुआ । सा०, मु० - बहूनां पालकौ प्रभूत-हस्तौ । स्कन्द० - बहूनां हविषामभ्यवहर्तारौ पालयितारौ वा आर्तानाम्। वेंकट० - बहूनां हविषां भोक्तारौ । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ - बहुतों को भोजन देने वालों । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - Lords of many treasures, Wil. (Ṛgd.S.) - the protectors of many, M.W. (S.E.D.) - Enjoying much, Vel. (R.S.) - feeders of many, Grass. (Ṛgd.) - Güterreiche (bole of goods or goods or riches. Pet. (The hymns from Ṛgd.) - enjoyers of many powers. 'पुरुभुजा' का शाब्दिक अर्थ 'अनेक बाहों वाला' है किन्तु यहाँ इसका 'पालन' करने के अर्थ में प्रयोग हुआ है ।

पुरम्ऽधिः - 'प्रभूत बुद्धि सम्पन्ना' पुरु पूर्वक, धी शब्द अथवा पुरम् पूर्वक 'धा' धातु से 'ङीप्' प्रत्यय, स्त्रीलिंग, प्रथमा, एकवचन । सा०, मु० - बहुधीः । अन्यत्र - निरु० ॥6/3/5॥ - पुरन्धिर्बहुधी । स्कन्द० - बहुप्रज्ञा । वेंकट० - स्त्री । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ - बहुत बुद्धिशाली नारी । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - wiledome, Wil. (Ṛgd.S.) - intelligent, M.W. (S.E.D.) - bountiful, munificent, Grass. (Rgd.) - fr[illegible] (woman), Mac.D.(S.E.D.)- spirited, Lan. (A.S.R.) - high spirited, S.V. (The ety. of Yāska Pg. 36, 48) - 'one who has great wisdom or action, or 'a doer of many deeds', is traced to पुरु + धी , lit. 'having many deeds. वेंकटमाधव, सात्वलेकर तथा ग्रासमन महोदय ने

पुरंधी का अर्थ 'नारी' ग्रहण किया है तथा वेलणकर महोदय ने इसे नाम विशेष माना है । किन्तु इस मन्त्र में इसका अर्थ 'प्रभूत बुद्धि सम्पन्ना' ही समीचीन है । इस मंत्र में यह वध्रिमती के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है न कि संज्ञा पद के रूप में (जैसे कि ऋ० 1।116।7 में)।

हिरण्यऽहस्तम् - 'हिरण्यहस्त ॥नामक पुत्र॥ को' हिरण्यमयौ हस्तौ यस्मिन् स तम् । 'इच्छार्थक हर्य्' धातु से 'यत्' प्रत्यय करने पर हिरण्य शब्द बनेगा । यास्क ने हिरण्य शब्द का निर्वचन इस प्रकार किया है - 'ह्रियतआयम्यमानमिति वा, ह्रियते जनाज्जनमिति वा, हित रमणं भवतीति वा, हृदय रमणं भवतीति वा, हर्यतेर्वा स्यात् प्रेप्साकर्मणः' ॥निरु० 2/3॥ अर्थात् लम्बा किया जाता हुआ, खींचा जाता है अथवा एक से दूसरे पास जाता रहता है अथवा यह औषध रूप में हितकारक है, धारण करने से रमणीय होता है, अथवा हृदय को अच्छा लगता है, प्रत्येक को इसकी इच्छा रहती है इसलिए इच्छार्थक हर्य् धातु से हिरण्य बनता है । F.S. (The vedic Ety.) - Gold, supposed to be liked by Gods, from Hiramaniyam, Hitramaniyam (Un. S.S. 4/49) from √Hary 'to desire'. S.V. (The ety. of Yāska, Pg. 22, 94, 100)- 'gold' is traced to √हृ as 'it is carried home by people after it has been fashinned into ernaments' or 'it is carried from person to person' or to √हर्य् 'to long for', or to हित +√रम् Lit. 'useful and pleasant' or to हृदय + √रम् 'pleasant to the heart'. हिरण्य के समान शब्द अन्य भाषाओं में भी उपलब्ध होते हैं जैसे - Avestā - 'Zaranya', Hungarian- 'arany' (gold), Vogul - 'Suren', 'soren', Mordovian - 'Sirn'é', Zyryan and Votyak - 'Zarni', Latin - 'aurum'.

'हन् हिंसागत्योः' धातु से 'क्त' प्रत्यय करने पर पुल्लिंग द्वितीया एकवचन में 'हस्तम्' रूप निष्पन्न हुआ । यास्क के अनुसार - 'हस्तो हन्तेः प्राशुर्हनने' [निरु० 1/3] अर्थात् हस्त शब्द 'हन्' धातु से इसलिए व्युत्पन्न है क्योंकि यह हाथ मारने में शीघ्रता दिखाता है, अन्य अंगों की अपेक्षा हाथ जल्दी चलता है । हिरण्य और हस्त इन दोनों पदों को मिलाकर बहुव्रीहि समास करने पर 'हिरण्यहस्त' शब्द बना । सा०, मु० - सुवर्णमयपाणिं हितरमणीयपाणिं वा एतत्संज्ञं पुत्रम् । स्कन्द० - हिरण्यमयौ बाहुः तम् । वेंकट० - हिरण्यहस्तं नाम पुत्रम् । सात्व० [ऋ० का सु०भा०] - हिरण्यहस्त नामक पुत्र को । **Griff. (The hymns of Ṛgd.) - a son Hiranyahasta, Wil. (Ṛgd.S.) - Hiranyahasta, her son, M.W. (S.E.D.)- golden handed, Vel. (R.S.) - her son called Hiranyahasta, Grass. (Ṛgd.) - Sohn ihr den Hiranjhasta' (son Hiranya-hasta).** यहाँ 'हिरण्यहस्तम्' का शाब्दिक अर्थ 'स्वर्णिम बाहु' प्रयुक्त नहीं होगा । यहाँ यह शब्द वध्रिमती के पुत्र के नाम के रूप में व्यवहृत हुआ है ।

शासुःऽइव - 'शासक की भाँति' 'शासु अनुशिष्टौ' धातु, 'तृन्तृचौ शंसिशासि-शासिक्षदादिभ्यः संज्ञायां चानिटौ' [उ० सू० 2/250] से 'तृन्' प्रत्यय, इडागम का अभाव, छान्दस प्रयोग के कारण षष्ठी एकवचन में तकार का लोप तथा प्रत्यय के 'नित्' होने से आद्युदात्त, षष्ठी, एकवचन । सा०, मु० - यथा शासुः आचार्यस्य वचनं शिष्योऽवहितः सन् ऐकाग्र्येण शृणोति तद्वत् श्रुत्वा । अन्यत्र - ऋ० सं० [1/60/2] - शासितुः, [1/73/1] - शासनमिव । स्कन्द० - शासितुरिव पितुराचार्यस्य वा महताऽऽदरेणेत्यर्थः कल्याह्वानम् । वेंकट० - आदरेण यथा शासितुः आचार्यस्य शासनम् । सात्व० [ऋ० का सु०भा०] - शासक के कथन की तरह । **Griff. (The hymns of**

Rgd.) - as twere and order. Wil. (Rgd.S.) - like (the instruction of) a teacher. M.W. (S.E.D.) - as a commander or a ruler. Vel. (R.S.) - as to a command (from a superior).
अतः 'शासक की भाँति' अर्थ ही उचित होगा ।

14. आस्नो वृकस्य वर्तिकामभीके — आस्नः । वृकस्य । वर्तिकाम् । अभीके ।
युवं नरा नासत्यामुमुक्तम् — युवम् । नरा । नासत्या । अमुमुक्तम् ।
उतो कविं पुरुभुजा युवं — उतो इति । कविम् । पुरुऽभुजा । युवम् ।
ह कृपमाणमकृणुतं विचक्षे ।। — ह । कृपमाणम् । अकृणुतम् । विऽचक्षे ।।

अन्वय - नरा नासत्या ! युवम् अभीके वृकस्य आस्नः वर्तिकाम् अमुमुक्तम् ।
पुरुभुजा ! उतो इति युवं ह कृपमाणं कविं विचक्षे अकृणुतम् ।

अनुवाद - हे नेतृत्व करने वाले, असत्य से रहित अश्विनों ! तुम दोनों ने संग्राम में पक्षी को वृक के मुख से मुक्त किया । अनेकों का पालन करने वाले ! तुम दोनों ने स्तुति करते हुए कवि को विशेष रूप से देखने के लिए समर्थ किया ।

टिप्पणी -

आस्नः - 'मुख से' 'आङ्' उपसर्ग पूर्वक, 'स्यन्दू प्रस्रवणे' धातु अथवा 'आङ्' उपसर्ग पूर्वक, 'असु क्षेपणे' धातु 'पद्नू0' इत्यादि सूत्र से आस्य को

'आसन्' आदेश, 'अल्लोपोऽनः' से अकारलोप होने पर उदात्तनिवृत्ति स्वर के द्वारा 'उड़िदम्' सूत्र से विभक्ति पर उदात्त। नपुंसकलिंग, पञ्चमी, एकवचन। सा0, मु0, स्कन्द0, वेंकट0 - आस्यात्। अन्यत्र - ऋ0 सं0 (1/117/16, 8/67/14, 5/73/6, 2/39/6) - आस्यात्। निरु0 (1/3)- 'आस्यमस्यतेः, आस्यन्दत एतदन्नमिति वा'। सात्व0 (ऋ0 का सु0भा0)- मुँह से। Griff. (The hymns of Rgd.) - jaws, Wil. (Rgd.S.) - from the mouth, Vel. (R.S.) - from the jaws, M.W. (S.E.D.), Mac.D. (S.E.D.) - jaws. Grass. (Rgd.) - jaw (rachen). आस्य शब्द की उत्पत्ति 'स्यन्दू प्रस्रवणे' धातु से भी मानी जा सकती है क्योंकि यह मुख शुष्क अन्न को भी अपनी लार से आर्द्र कर देता है। इसके अतिरिक्त 'क्षेपणार्थक असु' धातु भी असंगत नहीं होगी क्योंकि मुख में अन्न फेंका जाता है अर्थात् डाला जाता है। इसलिए दोनों ही धातुओं से आस्य शब्द की उत्पत्ति को स्वीकारा जा सकता है।

वृकस्य - 'वृक के', 'वि' उपसर्ग पूर्वक, 'कृन्ती छेदने' धातु से निष्पन्न 'वृक' शब्द के षष्ठी एकवचन का रूप है। सा0, मु0 - विकर्तनस्य शुनः। अन्यत्र - निरुक्तकार यास्क ने तीन प्रकार से वृक शब्द का निर्वचन किया है। (1) 'वृकश्चन्द्रमा भवति विवृतज्योतिष्को वा विकृतज्योतिष्को वा, विक्रान्तज्योतिष्को वा (निरु0 5/4/65)' अर्थात् चन्द्रमा वृक कहलाता है। चन्द्रमा अन्य नक्षत्रों की अपेक्षा अधिक चमकीला होता है, अथवा यह चन्द्रमा विकृत ज्योति वाला होता है क्योंकि सूर्य से शीतल होता है, अथवा अन्य तारों की अपेक्षा अधिक ज्योति वाला होता है। (2) 'आदित्योऽपि वृक उच्यते। यदावृङ्क्ते' (निरु0 5/4/65), अर्थात् सूर्य जगत् को प्रकाश से घेर लेता है या अन्धकार को मिटाता है। इसलिए वृञ् आवरणे धातु से भी वृक की उत्पत्ति हो सकती है। (3) 'श्वाऽपि वृक उच्यते। विकर्तनात्' (निरु0 5/4/65), कुत्ते को भी वृक कहते हैं क्योंकि यह अपरिचितों को काटता है। यहाँ तृतीय अर्थ को ग्रहण किया गया है। स्कन्द0, वेंकट0 - वृकस्य।

सात्व0ऋ0 का सु0भा0। - भेड़िये के । Griff. (The hymns of Rgd.)- Wolf's, Wil.(Rgd.S.) - of the dog, Vel (R.S.) , Mac.D. (S.E.D.) , Lan. (A.S.R.), M.W. (S.E.D.) - wolf, Grass. (Rgd.) - wolfer, S.V.(Ety. of Yāska Pg. 8) - (i) as 'the moon' it is derived from वि +√वृ . lit. 'that which has open or expanded light' वि +√कृ . lit. 'that which has transformed light' and वि +√क्रम्, lit. 'that which has surpassing light'. (ii) as 'the sun' it is derived from √वृज् , lit. 'that which removes darkness', (iii) 'a dog' it is derived from वि +√कृन्त् , lit. 'that which bites'. This mechanical tendency does not seem to have appreciated the fact that the literal meaning of a word could be changed or extended according to various contexts. अन्य भाषाओं में Avestā - 'vəhrka', Mordovian - 'vəргas' (wolf), Zyryan - 'Vörkas', Lithuanian - 'Vilk', Slavonic - 'Vlŭk', Gothic - 'wolf', Greek - 'λύκο', Latin - 'lupus' English - 'wolf'. यहाँ एक जंगली भेड़िये के अर्थ में प्रयुक्त ।

अभीके - 'संग्राम में', अभि उपसर्ग पूर्वक, 'अन्च् गतौ' धातु अथवा 'इण् गतौ' धातु से औणादिक 'क' प्रत्यय । पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्व नपुंसकलिंग, सप्तमी, एकवचन । सा0, मु0 - अभिगते वृकवर्तिकयोः संग्रामे । अन्यत्र - ऋ0 सं0 ।1/71/8। - अभ्यक्तेऽभिगतेऽभिप्राप्ते, ।1/118/5। - गृह समीपे, ।1/119/8। - समीपे । निघ0 ।2/17। में अभीके संग्रामनामों में परिगणित है । स्कन्द0 - संग्रामनामैतत् वृकस्य सहास्याः संग्रामे । वेंकट0 - संग्रामे ।

Griff. (The hymns of Rgd.) - ye stood together, Wil. (Rgd. S.) - that had seized her, M. W. (S. E. D.) - collisien or meeting together, Vel. (R. S.) - running to her side, Mac. D. (S. E. D.) - mmeting, यहाँ कतिपय भाष्यकारों ने अभीके का अर्थ 'संग्राम' ग्रहण किया है तथा कुछ भाष्यकारों ने 'समीप'। प्रसंगानुसार 'संग्राम' अर्थ ही यहाँ उचित प्रतीत हो रहा है , क्योंकि देवशास्त्रीय पुरा-कथा के आधार पर यह प्रतीत होता है कि वृक और वर्तिका में परस्पर संघर्ष हुआ था। इस संघर्ष में वर्तिका को वृक ने अपने मुँह से पकड़ लिया था, जिसकी रक्षा अश्विनी कुमारों ने की थी। यहाँ 'संग्राम' का तात्पर्य भीषण युद्ध से नहीं, अपितु 'संघर्ष' से है।

कृपमाणम् - 'स्तुति करते हुए', 'कृपिः स्तुतिकर्मा' धातु से 'शानच्' प्रत्यय, विकरण स्वर प्राप्त होने पर 'वृषादीनां च' सूत्र से 'आद्युदात्त, पुल्लिंग, द्वितीया, एकवचन, 'कविम्' का विशेषण। सा0, मु0 - स्तुवन्तम्। अन्यत्र - ऋ0 सं0 ‡1/119/8‡ - स्तुवन्तम्। निघ0 ‡3/14‡ में कृप शब्द अर्चना कर्मों में परिगणित है "कृपण्यतीति चतुश्चत्वारिंशदर्चतिकर्माणः" तथा निघ0 ‡3/16‡ में स्तोतृ नामों में गृहीत है, "कृपण्युरिति त्रयोदश स्तोतृ-नामानि।" स्कन्द0, वेंकट0 - स्तुवन्तम्। सात्व0 ‡ऋ0 का सु0भा0‡ - कृपा पूर्वक प्रार्थना करते हुए। Griff. (The hymns of Rgd.) - mourned his trouble, Wil. (Rgd. S.) - praises, M. W. (S. E. D.)- to implore, Mac. D. (S. E. D.) - to lament, Vel. (R. S.) - wailing, Grass. (Rgd.) - klagte (complaining). प्रसंगानुसार 'स्तुति करते हुए' अर्थ ही उचित है।

कविम् - 'कवि को', 'कवि' शब्द, द्वितीया एकवचन। सा0, मु0-एतत्संज्ञ-

मन्धमृषिम्। अन्यत्र - ऋ0 सं0 ।1/12/7। - मेधाविनम्, ।1/114/4, 6/1/8। - क्रान्तदर्शिनम् । ।1/128/8। - सर्वज्ञम्, ।8/44/26, 9/63/20। - क्रान्तकर्माणिम्, ।7/6/2। - प्राज्ञम्, ।10/88/14। - क्रान्तप्रज्ञम्। वेंकट0 - उशनसः पितरम् अन्यं वा एतन्नामानम्। स्कन्द0 - मेधाविनं कण्वम् । सात्व0 ।ऋ0 का सु0भा0। - कवि को । Griff. (The hymns of Rgd.)-poet, Wil. (Rgd.S.) - sage, M.W. (S.E.D.) - sage, Vel. (R.S.)- Kavi, Grass. (Rgd.) - Sänger (singer). Lan. (A.S.R.), Mac. D. (S.E.D.) - sage. कवि का क्रान्तदर्शी, मेधावी, प्रज्ञावान तथा सर्वज्ञादि अर्थों में प्रयोग हुआ है । किन्तु इस मंत्र में 'कवि' एक ऋषि का नाम है ।

15. चरित्रं हि वेरिवाच्छेदि — चरित्रम् । हि । वेःऽइव । अच्छेदि ।

पर्णमाजा खेलस्य परितक्म्यायाम्। — पर्णम्।आजा।खेलस्य।परिऽतक्म्यायाम् ।

सद्यो जंघामायसीं विश्पलायै — सद्यः। जङ्घाम्।आयसीम्। विश्पलायै ।

धने हिते सर्तवे प्रत्यधत्तम्।। — धने । हिते । सर्तवे । प्रति । अधत्तम्।।

अन्वय - आजा खेलस्य चरित्रं वेः पर्णम् इव अच्छेदि हि परितक्म्यायां, हिते धने सर्तवे विश्पलायै सद्यः आयसीं जङ्घां प्रत्यधत्तम् ।

अनुवाद - संग्राम में खेल ।की सम्बन्धिनी। का पैर पक्षी के पंख की भाँति टूट गया । तब रात्रि में ही ।शत्रुओं के द्वारा। निहित धन के समीप जाने के लिए विश्पला के लिए तुरन्त लोहे की जंघा लगा दी ।

टिप्पणी -

चरित्रम् - 'पैर', 'चर्' धातु, 'अर्तिलूधूसूखनसहचर इत्रः' से 'करणे इत्र' प्रत्यय, नपुंसकलिंग, प्रथमा, एकवचन । सा0, मु0 - चरणम्। स्कन्द0 - जङ्घा । वेंकट0 - जघनप्रदेशे । सात्व0 (ऋ0 का सु0भा0) - पैर । Griff. (The hymns of Rgd.) - leg, Wil. (Rgd.S.) - foot, Vel. (R.S.) - leg, Grass. (Rgd.) - fuss (foot), Mac.D. (S.E.D.) - leg. पैर चलने का कार्य करते हैं इसलिए इसकी व्युत्पत्ति चर् धातु से हुई है ।

वेःऽइव - 'पक्षी की भाँति', 'वी गतिप्रजनकान्त्यशनखादनेषु' धातु, 'अन्तर्भावितण्यर्थात् छान्दसे लङ्', सिप्, अदादि होने से शप् का लोप, 'बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेऽपि' से अडभाव । सा0, मु0 - पक्षिणः । अन्यत्र - ऋ0 सं0 (1/63/2) - आगमयसि, योजयसीत्यर्थः, (1/77/2) - वेति गच्छति । स्कन्द0 - पक्षिण इव । वेंकट0 - पक्षिणः । सात्व0 (ऋ0 का सु0भा0) - पक्षी । Griff. (The hymns of Rgd.) - wild bird, Wil. (Rgd.S.) - bird, M.W. (S.E.D.) - a bird, Vel. (R.S.) - bird, Grass. (Rgd.) - vogel. पक्षी आकाश में गति करता रहता है इसलिए गत्यर्थक वी धातु से वेः शब्द की उत्पत्ति हुई है ।

परिऽतक्म्यायाम् - 'रात्रि में', परितः तक्मन् यस्या सा परितक्म्या, स्त्रीलिंग, सप्तमी, एकवचन । सा0, मु0 - रात्रिः एनामुभयतः सूर्यो गच्छतीति तस्यार्थः । अन्यत्र - निरु0 (11/17) - परित एनां तक्म अर्थात् रात्रि, परितक्म्या रात्रि को कहते हैं क्योंकि इसके चारों ओर गर्मी होती है । 'तक्म' उष्ण को कहते हैं क्योंकि यह सब ओर गया हुआ होता है । स्कन्द0 - सेनायां वर्तमानायां तत्र युवामेव । सात्व0 (ऋ0 का सु0भा0)-

रात्री के समय में । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - in the time of night. Wil. (Ṛgd.S.) - by night. M.W. (S.E.D.) - night. Pet. (The hymns from Ṛgd.) - running about. Vel. (R.S.) - in the very hour of need. Mac.D. (S.E.D.) - unsafe. S.V. (The ety. of yāska, Pg. 28) - 'night' is rendered as परितः + तकमन् , lit. 'that on both sides of which there is heat'. Grass. (Rgd.) - in harten (in hardness). पीटर्सन, ग्रासमन, वेलणकर तथा मैक्डॉनल आदि भाष्यकारों ने भिन्न अर्थ में परितक्म्या को ग्रहण किया है । प्रसंगानुसार उनका अर्थ संगत नहीं प्रतीत होता । यहाँ 'रात्रि' अर्थ ही समीचीन है ।

जङ्घाम् - 'जंघा', जंह अथवा हन् हिंसागत्योः धातु, टाप् प्रत्यय, स्त्रीलिंग, द्वितीया, एकवचन । सा0, मु0 - जङ्घोपलक्षितं पादम्। अन्यत्र- ऋ0 सं0 ॥1/118/8॥ - जङ्घोपलक्षितं पादम्। स्कन्द0 - गमनसाधनं जङ्घा लक्षणम् । वेंकट0 - जघनप्रदेश । सात्व0 ॥ऋ0 का सु0भा0॥ - जंघा को । Griff. (The hymns of Rgd.) - a leg. Wil. (Ṛgd.S.) - the foot of. M.W. (S.E.D.) -. from the ankle to the knee. Vel. (R.S.) - leg. Lan. (A.S.R.) - lower half of the leg. from knee to ankle or shin. Mac.D. (S.E.D.) - leg. हन् धातु का गति अर्थ में प्रयोग होता है और जंघा सदैव गति करता है -हिलता डुलता रहता है । इसलिए जंघा शब्द की व्युत्पत्ति 'हन् हिंसागत्योः' धातु से मानी गई है ।

आयसीम् - 'लोहे की' 'अयः' शब्द से विकारार्थ में 'प्राणिरजतादिभ्योऽञ्' ॥पा0सू0 4/3/154॥ तथा 'टिड्ढाणञ्' से 'ङीप्' प्रत्यय करने

पर आयसी शब्द बना, उसके द्वितीया एकवचन का रूप है आयसीम् । सा0, मु0 - अयोमयीम्। अन्यत्र - ऋ0 सं0 ।1/58/8। - व्याप्तैः, ।8/29/3, 10/101/8। - अयोमय । ।7/15/14, 7/95/1। - अयसा निर्मिता । ।8/100/8, 7/3/7। - हिरण्यमयीम्। स्कन्द0 - लोहमयीम् । सात्व0 ।ऋ0 का सु0भा0। - लोहे की । Wil. (Ṛgd.S.), Griff. (The hymns of Ṛgd.), M.W. (S.E.D.) - of iron, Vel. (R.S.) - an iron, Grass. (Ṛgd.) - chern (bronze), Mac.D.(S.E.D.), Lan. (A.S.R.) - iron. अन्य भाषाओं में - Old Latin - 'ais', Latin- 'acs'. (metal, bronze). Anglo Saxon - 'ār' (bronze), Īsern, īren, English - 'Ore', 'iron'.

हिते - 'निहित', 'धारणार्थक धा' धातु, 'क्त' प्रत्यय, निष्ठा में 'दधातेर्हिः' सूत्र से 'धा' को 'हिः' आदेश, नपुंसकलिंग चतुर्थी एकवचन । प्रत्यय पर उदात्त । सा0, मु0 - शत्रुषु निहिते । अन्यत्र - ऋ0 सं0 ।1/40/2। - प्रक्षिप्ते, ।1/132/5। - अभिमते सति । स्कन्द0 - हिताय । वेंकट0 - हितम् । Wil. (Ṛgd.S.) - hidden, Vel. (R.S.) - staked, Grass. (Ṛgd.) - hinzueilen (to make the spot), Mac.D. (S.E.D.) - to put or contained, Lan. (A.S.R.) - placed.

सर्तवे - 'जाने के लिए', 'सृ गतौ' धातु, 'तुमर्थे सेसेन्' से 'तवेन्' प्रत्यय करने अथवा 'सृ सृपणे' से 'तवेन्' प्रत्यय करने पर सर्तवे रूप बनता है । प्रत्यय के नित् होने से आद्युदात्त । चतुर्थी एकवचन । सा0, मु0 - सर्तुं गन्तुम्। अन्यत्र - ऋ0 सं0 ।1/32/12। - प्रवाहरूपेण गन्तुं, 'तुमर्थे सेसेन्0' इति तवेन्प्रत्ययः, नित्वादाद्युदात्तत्वम् , ।1/55/6। - सरणाय, ।1/57/6। - गमनाय, ।1/130/5। - आभिमुख्येन प्राप्तुम् । स्कन्द0 - गन्तुम् ।

वेंकट० - सरणाय । सात्व० ॠ० का सु०भा०॥ - चढ़ाई करने के लिए ।
Griff. (The hymns of Rgd.) - might move, Wil. (Rgd.S.) - might walk, M.W. (S.E.D.) - to move or to glide, Vel. (R.S.) - to run, अतः 'जाने के लिए' अर्थ उचित है ।

16. शतं मेषान्वृक्ये चक्षदानमृज्राश्वं | शतम् । मेषान् । वृक्ये । चक्षदानम् ।
तं पिताधं चकार । | ऋज्रऽअश्वम् । तम् । पिता । अन्धम् । चकार ।

तस्मा अक्षी नासत्या विचक्ष | तस्मै।अक्षी इति।नासत्या।विऽचक्षे ।
आधत्तं दस्रा भिषजावनर्वन् ।। | आ।अधत्तम्।दस्रा।भिषजौ।अनर्वन् ।।

अन्वय - शतं मेषान् वृक्ये चक्षदानं तम् ऋज्राश्वं पिता अन्धं चकार । नासत्या, दस्रा, भिषजौ! तस्मै अनर्वन विचक्षे अक्षी इति आ अधत्तम् ।

अनुवाद - सौ भेड़ों को वृकी को खाने के लिए देने वाले उस ऋज्राश्व को पिता ने अन्धा बना दिया । हे असत्य से रहित, शत्रु विनाशक, दर्शनीय, वैद्य । उस चलने में असमर्थ को भलीभाँति देखने के लिए आँखें दी ।

टिप्पणी -

चक्षदानम् - 'खाने के लिए', 'क्षदति अत्तिकर्मा' धातु, लिट् 'कानच्' प्रत्यय। चतुर्थी के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग । सा०, मु०- शकलीकृत्यं दत्तवन्तम् । अन्यत्र - ॠ० सं० ॥1/117/18॥ - शकलीकुर्वन् प्रादात्।

स्कन्द० - आहारार्थम् , क्षदिरत्र विशसनार्थः । वेंकट० - विशसन्तम् । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ - खाने के लिए । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - slew. Wil. (Ṛgd.S.) - cut up in pieces. Vel.(R.S.) - slaughtered. पाश्चात्य भाष्यकारों ने 'चक्षदानम्' का अर्थ 'हत्या' ग्रहण किया है । प्रसंगानुसार यह अर्थ भी अनुचित नहीं है । किन्तु 'चक्षदानम्' शब्द की उत्पत्ति 'क्षदति' धातु से हुई है जिसका अर्थ भोजन करना है इसलिए इसका शाब्दिक अर्थ 'खाने के लिए' ग्रहण करना ही अधिक समीचीन होगा ।

अनर्वन् - 'चलने में असमर्थ को', 'ॠ गतौ' धातु, 'अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते' से भाव अर्थ में 'वनिप्' प्रत्यय, 'नञ्सुभ्याम्' से उत्तरपदान्तोदात्त, 'सुपां सुलुक्०' से द्विवचन का लोप, छान्दस प्रयोग के कारण नलोप का अभाव, अर्वं गमनं विषयं प्रति एनयोः, नास्तीति इति अनर्वन् । सा०, मु० - अनर्वाणी दृष्टव्यं प्रति पितृशापात् गमन रहिते । अन्यत्र - ॥1/164/2॥ - अशिथिलम् ॥1/185/3॥ - अनरणम् , अक्षीणमित्यर्थः । स्कन्द० - अनन्याश्रिते स्वायत्ते, पित्रा शापेनापनेतुमशक्ये इत्यर्थः । वेंकट० - अप्रत्यूते शीघ्रगमने । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ - प्रतिबंध रहित । Griff. (The hymns of Ṛgd.)- uninjured. Wil. (Ṛgd.S.) - unable to find their way. Vel. (R.S.) - in an unchallengeable manner. Grass. (Ṛgd.) - not to be overpowered. Geld. (D.R.) - matchless. Pet. (The hymns from the Ṛgd.) - unrivalled. Mac.D. (S.E.D.) - irresistible or boundless. S.V. (The ety. of Yāska Pg.10) अन् +√ॠ lit. 'not going towards another' भाष्यकारों में इस शब्द को लेकर पर्याप्त मतवैभिन्न्य है । कुछ लोगों ने प्रतिबंध रहित, कुछ लोगों ने क्षतिरहित तथा कुछ लोगों ने 'गमन रहित' अथवा 'चलने में असमर्थ' अर्थ ग्रहण किया है । प्रसंगानुसार चलने में असमर्थ अर्थ ही उचित प्रतीत हो रहा है ।

17. आ वां रथं दुहिता सूर्यस्य	आ। वाम्। रथम्। दुहिता। सूर्यस्य।
काष्मेवातिष्ठदर्वता जयंती।	काष्मऽइव। अतिष्ठत्। अर्वता। जयन्ती।
विश्वे देवा अन्वमन्यत हृद्भिः	विश्वे। देवा। अनु। अमन्यन्त। हृत्ऽभिः।
समु श्रिया नासत्या सचेथे।।	सम्। ऊं इति। श्रिया। नासत्या। सचेथे इति।।

अन्वय - नासत्या ! सूर्यस्य दुहिता, अर्वता काष्मं जयन्ती इव, वां रथम् आ अतिष्ठत्। विश्वे देवाः हृद्भिः अन्वमन्यन्त। श्रिया सं सचेथे।

अनुवाद - हे असत्य से रहित अश्विनों ! सूर्य की पुत्री, घोड़े के दौड़ से अपने लक्ष्य को जीतती हुई सी, तुम दोनों के रथ पर आकर बैठ गई। सभी देवों ने हृदय से उसे अनुमोदित किया। (हे नासत्य) तुम दोनों शोभा से युक्त हो गये।

टिप्पणी -

जयन्ती - 'जीतती हुई', 'जि जये' धातु, 'शतृ' प्रत्यय तथा स्त्रीलिंग में ङीप् प्रत्यय करने से प्रथमा, एकवचन में जयन्ती रूप निष्पन्न हुआ। सा०, मु० - जीयमाना व्यत्ययेन कर्मणि शतृ प्रत्यय। अन्यत्र - ऋ० सं० (1/123/2) - पराभवं कुर्वती (10/159/5) - जयं प्राप्नुवती, (8/16/5)-जयेन। स्कन्द० - जिता सती, व्यत्ययेनायं भूतकाले कर्मणि च शतृप्रत्ययः। वेंकट० - जीयमाना। सात्व० (ऋ० का सु०भा०) - जीतती हुई सी। Griff. (The

hymns of Ṛgd.) - first reaching. Wil. (Ṛgd.S.) - won, Vel. (R.S.) - wins, Pet. (The hymns from the Ṛgd.) - victorious, Mac.D. (S.E.D.) - victorious. अतः जयन्ती शब्द का 'जीतती हुई' अर्थ ही उचित है ।

हृत्ऽभिः - 'हृदय से' हृदय शब्द का 'पद्दन्0' आदि सूत्र से हृद्भाव हुआ, पुल्लिंग, तृतीया, बहुवचन । सा0, मु0, स्कन्द0, वेंकट0 - हृदयैः । सात्व0 (ऋ0 का सु0भा0) - अन्तःकरण से । Griff. (The hymns of Ṛgd.); Wil. (Ṛgd.S.), Vel. (R.S.), Mac.D. (S.E.D.), Lan. (A.S.R.), M.W. (S.E.D.) - heart, Grass. (Ṛgd.) - herzen (heart).

सम् सचेथे इति - 'युक्त हो गये', 'षच् समवाये' धातु, स्वरितेत्त्वादात्मनेपदम्, लट् लकार, मध्यम पुरुष, द्विवचन । सा0, मु0 - संगच्छेथे । अन्यत्र - ऋ0 सं0 (1/152/1, 1/180/1, 1/183/2) - संगच्छेथे। स्कन्द0 - सम्यक् सेव्येथे । वेंकट0 - संयुक्तौ भवथ । सात्व0 (ऋ0 का सु0 भा0) - युक्त बने । Griff. (The hymns of Ṛgd.)-close linked, Wil. (Ṛgd.S.)-associated, Vel. (R.S.)-united, Mac.D. (S.E.D.) - united. Grass. (Ṛgd.)- gepaart.

18. यदयातं दिवोदासाय वर्ति-	यत् । अयातम् । दिवःऽदासाय । वर्तिः ।
र्भरद्वाजायाश्विना हयन्ता ।	भरत्ऽवाजाय । अश्विना । हयन्ता ।
रेवदुवाह सचनो रथो वां	रेवत् । उवाह । सचनः । रथः । वाम् ।
वृषभश्च शिंशुमारश्च युक्ता ।।	वृषभः । च । शिंशुमारः । च । युक्ता ।

अन्वय - हयन्ता अश्विना । यत् भरद्वाजाय दिवोदासाय वर्तिः अयातम् ।
सचनः रेवत् रथः वाम् उवाह, वृषभः च शिंशुमारः च युक्ता ।

अनुवाद - हे आह्वनीय अश्विनों । जब अन्न से परिपूर्ण दिवोदास के लिए [उसके] घर गये । [तब] सेवनीय, धन से परिपूर्ण रथ तुम दोनों को वहाँ ले गया, जो शक्तिशाली था और शिंशुमार [नामक जलचर] से युक्त था ।

टिप्पणी -

<u>हयन्ता</u> - 'आह्वनीय', 'ह्वेञ् आह्वाने' धातु, व्यत्यय से 'शतृ' प्रत्यय, 'बहुलं छन्दसि' से सम्प्रसारण, तथा छान्दस् अयादेश । सा0,मु0- स्तुतिभिराहूयमानौ । स्कन्द0 - गतिकर्माणम् । वेंकट0 - आहूयमानौ । सात्व0 [ऋ0 का सु0भा0] - बुलाने योग्य । Griff. (The hymns of Rgd.) - hastening, Wil. (Rgd.S.) - being invited, Vel. (R.S.) - urging on, Pet. (The hymns from Rgd.) - in haste Grass. (Rgd.) - gracious, ग्रिफिथ तथा पीटर्सन महोदय ने 'ह्यन्ता' शब्द की उत्पत्ति 'हि गतौ' धातु से मानी है इसलिए उन्होंने इसका अर्थ hastening [शीघ्र गमन करना] किया है । प्रसंगानुसार 'आह्वनीय' अर्थ ही अधिक तर्कसंगत प्रतीत हो रहा है ।

<u>रेवत्</u> - 'धन से परिपूर्ण', 'रयि' शब्द से 'मतुप्' प्रत्यय, 'रयिर्मतौ बहुलम्' से सम्प्रसारण, 'छन्दसीरः' से मतुप् को वत्व, 'रयिशब्दाच्च' [का0 6/1/176/1] से मतुप् को उदात्त । सा0,मु0 - धनयुक्त अन्नम्। अन्यत्र - [1/79/5, 2/2/6, 3/7/10, 4/5/4, 5/23/4, 6/48/7, 10/35/4] - धनयुक्तं । स्कन्द0, वेंकट0 - धनसंयुक्तम् । सात्व0 [ऋ0 का सु0

भा0॥ - धन से भरा हुआ । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - riches, Wil. (Ṛgd.S.) -(food and) treasure, Vel. (R.S.) - gloriously, Grass. (Ṛgd.) - Schätze, Mac.D. (S.E.D.) -wealthy or abundant, M.W. (S.E.D.) - treasure.

सचनः - 'सेवनीय', 'षच् सेवने' धातु, 'अनुदात्तेतश्च हलादेः' से 'युच्' प्रत्यय । सा0, मु0 - सेवनः । वेंकट0, स्कन्द0 - सेव्यः । सात्व0 ॥ऋ0 का सु0भा0॥ - सेवनीय । Griff. (The hymns of Ṛgd.)- splendid, Wil. (Ṛgd.S.) - helping, Vel. (R.S.) - faithful, Pet. (The hymns from Ṛgd.) - ever present, Grass. (Ṛgd.) - inclined to, Geld. (D.R.) - having the same wish, M.W. (S.E.D.) - ready to help, Mac.D. (S.E.D.) - bedevoted to. उत्पत्ति और प्रसंग को देखते हुए 'सेवनीय' अर्थ ही उचित प्रतीत हो रहा है ।

वृषभः - 'शक्तिशाली', 'वृषु सेचने' धातु से 'अभच्' प्रत्यय अथवा 'उद्यमार्थक बृह' धातु से 'अभच्' प्रत्यय करने से 'ह' का 'ष' में परिवर्तन होने पर 'वृषभ' शब्द बनेगा । पुल्लिंग, प्रथमा, एकवचन । सा0, मु0 - अनड्वान् । अन्यत्र - निरु0 ॥9/3/17॥ 'वृषभः प्रजा वर्षतीति वाति बृहति रेत इति वा तद् वृषकर्मा वर्षणाद् वृषभः' अर्थात् वृषभ प्रजा को बरसाता है । वीर्याभिषेक से प्रजोत्पत्ति करता है या बहुत वीर्यवर्षण के लिए अपने को उद्यत करता है । इसलिए वृषभ में बृह धातु उद्यमार्थक है । ॥तद् वृषकर्मा॥ इसलिए यह वर्षा करने करने वाला है और ॥वर्षणाद्॥ वर्षण से ही वृषभ कहलाता है । स्कन्द0 - बलीवर्दः । सात्व0 ॥ऋ0 का सु0भा0॥ - बलवान् । Griff. (The hymns of Ṛgd.), Wil. (Ṛgd.S.), Vel. (R.S.), Mac.D. (S.E.D.),

~~Wel. (R.S.)~~ , ~~Mac. D. (S.E.D.)~~, Lan. (A.S.R.), M.W.(S.E.D.) - bull. Grass. (Rgd.) - Stier (bull). S.V. (The ety. of Yāska, Pg. 52) - 'one who showers water', is traced to √वृष् , अन्य भाषाओं में - Latin - 'verres', 'vers-es' (boar), Avesta - 'vərəsna', 'ərsecn', Greek - 'ἄρσην', stem 'Ϝαρσεν' (male), English - 'Bull' उपर्युक्त विवेचन से वृषण शब्द के दो अर्थ प्रतीत हो रहे हैं - ।1। प्रथम उसका पुरुषवाची पुरुषत्व ।पशु स्वरूप। और द्वितीय सेचक या कामपरक स्वरूप जिसके नाते वृषभ शब्द का प्रयोग वैदिक वाङ्मय में व्यापक रूप में सार्थक सिद्ध होता है । सेचक अर्थ में भी यह शक्ति का प्रतीक समझा जा सकता है । प्रस्तुत मंत्र में भारतीय भाष्यकारों ने वृषभ का अर्थ 'शक्तिशाली' ग्रहण किया है । इस दृष्टि से यह 'शब्द' रथ का विशेषण हो जाता है तथा पाश्चात्य भाष्यकारों ने Bull ।बैल। अर्थ ग्रहण किया है , जिससे यह अर्थ स्पष्ट होता है कि रथ में बैल और शिंशुमार जुते हुये थे । पाश्चात्य भाष्यकारों के मतानुसार यह पशु विशेष का बोध कराने वाला संज्ञावाची शब्द बन जाता है । प्रसंगानुसार प्रथम अर्थ ही अधिक समीचीन प्रतीत हो रहा है पर 'बैल' अर्थ भी त्रुटिपूर्ण नहीं कहा जा सकता ।

19\. रयिं सुक्षत्रं स्वपत्यमायुः सुवीर्यं नासत्या वहंता । आ जह्नावीं समनसोप वाजैस्त्रिरह्नो भागं दधतीमयातम्।।

रयिम् । सुऽक्षत्रम् । सुऽअपत्यम् । आयुः । सुऽवीर्यम् । नासत्या । वहन्ता । आ । जह्नावीम् । सऽमनसा । उप । वाजैः । त्रिः । अह्नः । भागम् । दधतीम् । अयातम्।।

अन्वय - नासत्या । सुक्षत्रं रयिं स्वपत्यं सुवीर्यम् आयुः वहन्ता, वाजैः, अह्नः

त्रिः भागं दधतीं, जह्नावीं समनसा उप आ अयातम् ।

अनुवाद - हे असत्य से रहित अश्विनों ! शोभन बल, धन, शोभन पुत्र, शोभन वीरता से युक्त आयु का वहन करते हुए, हविष्य रूप अन्न के साथ, दिन के तीनों भागों में यजन करके हविभाग देने वाली, जह्नु की प्रजा के समीप एक विचार से गये थे ।

टिप्पणी -

सुऽअपत्यम् - 'शोभन पुत्र' 'सु' उपसर्ग पूर्वक, 'पत्' धातु से 'ल्यप्' प्रत्यय, न अनेन पतति इति अपत्यं, नञ् तत्पुरुष समास । पुल्लिंग द्वितीया एकवचन । सा०,मु० - शोभनैः पुत्रादिभिर्युतम्। स्कन्द० - शोभनैश्चापत्यैः सहितम् । सात्व० ॥म० का सु०भा०॥ - अच्छी सन्तान । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - with offsprings, Wil. (Ṛgd.S.) - with prosperity, Vel. (R.S.) - with offspring, M.W. (S.E.D.), Offspring, Grass. (Ṛgd.) - spross reiches (with wealth of scion (सन्तान), S.V. (The ety. of Yāska, Pg. 101) - 'an offspring' is traced to अ +√पत् 'one by which one cannot fall, referring to the vedic view of a son saving his father from a fall into hell.

जह्नावीम् - 'जह्नु की प्रजा', 'जह्नु' शब्द से 'तस्येदम्' इस अर्थ में 'अण्' प्रत्यय, 'टिड्ढाणञ्' से ङीप् , छान्दस् प्रयोग के कारण प्रथम और द्वितीय अक्षरों में स्वर व्यत्यय । स्त्रीलिंग, द्वितीया, एकवचन । सा०,मु० - जह्नोर्महर्षेः सम्बन्धिनी प्रजाम् । स्कन्द० - जह्नोः प्रजां तां, जह्नुशब्दस्याय

'मनोरौ वा' ॥पा० 4/1/38॥ इत्यौकार: स्त्रीप्रत्ययश्च छान्दसत्वात् जह्नो-भार्या जह्नावी अथवा जह्नोरपत्यं जाह्नवी तस्य वा प्रजा जाह्नवी सती जह्नावीत्युच्यते । प्रथमद्वितीययोरक्षरयो: स्वरव्यत्ययश्छान्दसत्वात् । वेंकट० जह्नो: अपत्यभूतां प्रजाम्। Griff. (The hymns of Rgd.) - Jahnu's Children, Wil. (Rgd.S.) - family of Jahnu, Vel. (R.S.)- Jahnāvi, Grass. (Rgd.) - Dschahnavi, M.W. (S.E.D.) - Jahnu's family, Mac.D. (S.E.D.) - descendant of Jahnu. वेलणकर तथा ग्रासमन महोदय ने 'जह्नावी' का अर्थ 'जह्नु की प्रजा' न मानकर करके स्त्री विशेष का नाम माना है । देवशास्त्रीय पुराकथा में जह्नु की पुत्री को जाह्नवी कहा गया है, जिसका दूसरा नाम गंगा भी है । सम्भवत: इन दो भाष्यकारों का संकेत जह्नु की पुत्री की ओर है । यहाँ 'जह्नु की प्रजा' अर्थ अधिक समीचीन है ।

20. परिविष्टं जाहुषं विश्वत:सीं परि॒ऽविष्टम् । जाहुषम् । विश्वत: । सीम् ।
सुगेभिर्नक्तमूहथू रजोभि: । सुऽगेभि: । नक्तम् । ऊहथु: । रज:ऽभि: ।
विभिंदुना नासत्या रथेन विऽभिन्दुना । नासत्या । रथेन ।
वि पर्वताँ अजरयू अयातम्।। वि । पर्वतान्।अजरयू इति । अयातम् ।।

अन्वय - अजरयू नासत्या । विश्वत: परिविष्टं जाहुषं, नक्तं विभिन्दुना रथेन, सुगेभि: रजोभि:, पर्वतान् वि अयातम् ऊहथु: ।

अनुवाद - हे जरारहित अश्विनों । चारों ओर से शत्रुओं के द्वारा घिरे हुए जाहुष

को, रात्रि में, विशेष रूप से शत्रुओं का भेदन करने वाले रथ के द्वारा, सुगम मार्गों से, पर्वतों को भी भलीभाँति पार कर, सुरक्षित स्थान पर ले गये ।

टिप्पणी -

परिऽविष्टम् - 'शत्रुओं के द्वारा घिरे हुए', 'परि' उपसर्ग पूर्वक, 'विश प्रवेशने' धातु, 'कर्मणि निष्ठा' से 'क्त' प्रत्यय, 'गतिरनन्तरः' के द्वारा गति से प्रकृतिस्वरत्व । द्वितीया एकवचन । जाहुषं का विशेषण । सा0, मु0 - शत्रुभिः परिवृतम् । स्कन्द0 - स्वतः पुत्रतो दारतश्च, सपुत्रदारं वृद्धमित्यर्थः, परिशब्दोऽत्र विश्वतः इत्येतेन पौनरुक्त्यप्रसङ्गात् धात्वर्थानुवादी, विषित्या व्याप्तमित्यर्थः, व्याप्तं जरया जाहुषं नामर्षिम् । वेंकट0 - असुरैः, पर्वतैः परिवृतम् । सात्व0 ।ऋ0 का सु0भा0। - शत्रु द्वारा घेरे हुए । Griff. (The hymns of Rgd.) - compassed round on every quarter, Wil. (Rgd.S.) - surrounded on every side by (enemies), Vel. (R.S.) - wholly surrounded, Grass. (Rgd.) - umschlossen, स्कन्दस्वामिन् महोदय ने सर्वथा भिन्न-भिन्न अर्थ में 'परिविष्ट' शब्द को ग्रहण किया है । उन्होंने विष् धातु को व्याप्ति अर्थ में ग्रहण कर, परिविष्ट का अर्थ वृद्धावस्था से व्याप्त किया है । प्रसंगानुसार यह अर्थ सङ्गत नहीं प्रतीत हो रहा है । यहाँ इसका अर्थ 'शत्रुओं से घिरा हुआ' ही उचित है ।

सुऽगेभिः - 'सुगम मार्गों से', 'सु' उपसर्ग पूर्वक 'गम्' धातु, 'सुदुरोरधिकरणे' से गम् धातु से 'ड' प्रत्यय, तृतीया, बहुवचन । सा0, मु0 - सुष्ठु गन्तुं शक्यैः । स्कन्द0 - सुगमनैरश्वैः । वेंकट0 - सुगमैः । सात्व0 ।ऋ0 का सु0भा0। - सुगम रीति से गमन करने योग्य । Griff. (The hymns of Rgd.) - easypath ways, Wil. (Rgd.S.) - through practicable roads, Vel. (R.S.) - through regions which

were easy, Mac.D. (S.E.D.) - through good path, Lan.(A. S.R.) - approach easily.

वि॒ऽभि॑न्दुना - 'विशेष रूप से शत्रुओं का भेदन करने वाले', 'वि' उपसर्ग, 'भिदिर् विदारणे' धातु, 'उ' प्रत्यय, गति से प्रकृतिस्वरत्व, तृतीया एकवचन, रथेन का विशेषण। सा०, मु० - विशेषेण सर्वस्य भेदकेनात्मीयेन। स्कन्द० - पर्वतभेदनसमर्थेन। वेंकट० - पर्वतानां विभेत्रा। सात्व० ऋ० का सु०भा०॥ - विशेष रीति से शत्रु का भेदन करने वाले। Griff. (The hymns of Rgd.) - cleaves the foe, Wil. (Rgd.S.) - foe overwhelming, Vel. (R.S.) - which breaks through (the obstacles), Pet. (The hymns from the Rgd.) - which cuts a way before it, ऋग्वेद के केवल इसी मंत्र में प्रयुक्त। स्कन्दस्वामिन् तथा वेंकटमाधव ने 'पर्वतों का भेदन करने वाला' अर्थ ग्रहण किया है। यह अर्थ भी अनुचित नहीं कहा जा सकता, क्योंकि अश्विनी कुमारों ने जाहुष को लेकर पर्वत पार किया था, जिसका वर्णन इसी मंत्र में है। पर्वतों को भेदन करके उसे पार करने की कल्पना प्रसंगानुसार अनुचित नहीं है। दोनों ही अर्थों में विभिन्दुना शब्द रथेन का विशेषण ही रहेगा।

अ॒ज॒रयू॒ऽइति॑ - 'जरारहित', न जरा इति अजरा तामात्मन इच्छतः, नञ् तत्पुरुष, 'जूष् वयोहानौ' धातु, 'सुपः आत्मनः क्यच्' से 'क्यच्' प्रत्यय तथा 'न च्छन्दस्यपुत्रस्य' से इत्वदीर्घत्व का निषेध, 'क्याच्छान्दसि' से 'उ' प्रत्यय। सम्बोधन का द्विवचन। सम्बोधन पद होने से निघात। सा०, मु० - नित्यतरुणौ युवाम्। अन्यत्र - ऋ० सं० ॥1/58/4॥ जरारहितौ। स्कन्द० - अजरावन्तौ जरारहितावित्यर्थः। वेंकट० - जरारहितौ। सात्व०

॥ऋ0 का सु0भा0॥ - जराहीन । Griff. (The hymns of Rgd.) - never decaying. Wil. (Rgd.S.) - undecaying. Vel. (R.S.) - unaging. Grass. (Rgd.) - nicht alternde (never old). Mac.D. (S.E.D.) - not againg or ever young. Lan. (A.S.R.) - ageless or not aging. अतः 'जरारहित' अर्थ ही उचित है ।

21. एकस्या वस्तोरावतं रणाय　　एकस्याः । वस्तोः । आवतम् । रणाय ।
वशमश्विना सनये सहस्त्रा ।　　वशम् । अश्विना । सनये । सहस्रा ।
निरहतं दुच्छुना इन्द्रवंता　　निः । अहतम् । दुच्छुनाः । इन्द्रऽवन्ता ।
पृथुश्रवसो वृषणावरातीः ।।　　पृथुऽश्रवसः । वृषणौ । अरातीः ।।

अन्वय - अश्विना ! सहस्त्रा सनये रणाय वशम् एकस्याः वस्तोः आवतम् ।
वृषणा ! पृथुश्रवसः दुच्छुनाः अरातीः इन्द्रवन्ता निरहतम् ।

अनुवाद - हे अश्विनों ! सहस्त्र धन लाभ करने के लिए वश को युद्ध के लिए, एक ही दिन में सुरक्षित बनाया और पृथुश्रवा को दुःख देने वाले शत्रुओं का, इन्द्र की सहायता से पूर्ण रूपेण नाश किया ।

टिप्पणी -

सनये - 'धन लाभ के लिए', 'षणु दाने' धातु से 'यत्' प्रत्यय, चतुर्थी एकवचन।
सा0, मु0 - धनलाभाय । अन्यत्र - ऋ0 सं0 ॥1/30/16॥ - संभजनार्थम् ॥1/31/8॥ - दानार्थम् ॥6/26/8॥ - संभजनाय च श्रेष्ठोऽस्त्विति संबन्धः, ॥9/92/1॥ - धनलाभाय देवानां संभजनाय वा, ॥10/30/11॥ - लब्ध्यै ।

स्कन्द० - लाभाय । वेंकट० - धनलाभाय । सात्व० ऋ० का सु०भा० - धन का लाभ करने के लिए । Griff. (The hymns of Rgd.) - to gather spoils, Wil. (Rgd.S.) - acceptable gifts, Vel. (R.S.) - gain, Grass. (Rgd.) - beute (booty), Mac.D. (S.E.D.) - obtains a gift or gain. यद्यपि 'षणु' धातु 'दान' अर्थ में प्रयुक्त होती है किन्तु यहाँ इस धातु से निष्पन्न शब्द का 'लाभ' अर्थ में प्रयोग किया गया है । सभी भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों ने 'लाभ' अर्थ में ही 'सनये' शब्द को ग्रहण किया है इसलिए यहाँ यही अर्थ समीचीन है । ~~Griff. (The~~

दुच्छुनाः - 'दुःख देने वाली', 'दुर्' उपसर्ग पूर्वक, 'शुनम्' शब्द से 'टाप्' प्रत्यय, स्त्रीलिंग, प्रथमा, बहुवचन, अरातीः का विशेषण, 'परादिश्छन्दसि बहुलम्' से उत्तर पद पर उदात्त । दुष्टं सुखं यासां तास्तथोक्ताः। सा०, मु० - दुष्टसुखान् दुःखस्य कर्तॄन् । अन्यत्र - 5/45/5, 6/12/6 - दुःखकारिणीः शत्रुसेनाः । 6/47/30 - अस्मद्दुःखहेतुभूतं शुनं सुखं यासां तादृशीः शत्रुसेनाः । स्कन्द० - दुर्भिक्षा । वेंकट० - उपद्रवकारिणः । सात्व० ऋ० का सु०भा० - दुःख देने वाले । Griff. (The hymns of Rgd.) - misfortunes, Wil. (Rgd.S.) - malignant, Pet. (The hymns from the Rgd.) - ill luck, Grass. (Rgd.) - unheil (evil), Mac. D. (S.E.D.) - demon, Lan. (A.S.R.) - misfortune or ill luck. ग्रिफिथ, पीटर्सन तथा लैनमन आदि भाष्यकारों ने इस शब्द को भाववाचक संज्ञा के रूप में ग्रहण कर, इसका अर्थ 'दुर्भाग्य' ग्रहण किया है । उनके अनुसार इस पंक्ति का अर्थ होगा 'पृथुश्रवस के दुर्भाग्यस्वरूप शत्रुओं का.।' किन्तु प्रसंगानुसार इस शब्द का अर्थ 'दुःख देने वाली शत्रुओं का' ही उचित होगा । यह शब्द दुर् उपसर्ग तथा शुनम् शब्द से मिलकर बना है । शुनम् शब्द सुख का पर्याय है और निघ० 3/6 के सुखनामों में आम्नात है । अतः

दोनों को मिलाने पर अर्थ हुआ दुष्ट सुख देने वाला अर्थात् सुख को दूषित करने वाला । जिसका सीधा अर्थ यही निकला 'दुःख देने वाला' और यही अर्थ यहाँ पर तर्कसंगत भी होगा ।

पृथुऽश्रवसः - 'पृथुश्रवा नामक राजा को', 'प्रथ विस्तारे' धातु से औणादिक 'कु' प्रत्यय, तथा सम्प्रसारण से पृथु शब्द बना, 'श्रव' शब्द से 'असुन्' प्रत्यय, प्रत्यय के नित् होने से 'नित्त्वादाद्युदात्तत्वम्' सूत्र के द्वारा आद्युदात्त, षष्ठी, एकवचन । पृथुश्रवा का अर्थ हुआ जिसकी प्रख्याति दूर दूर तक फैली हुई हो । इसके अतिरिक्त पृथुश्रवा एक राजा का नाम भी है । सायण ने 'पृथुश्रवसः' को दोनों अर्थों में ग्रहण किया है । यदि इसका अर्थ 'विस्तीर्णयशसः' किया जाय तो यह 'अरातीः' का विशेषण बन जायेगा । अन्यथा यह नामवाची संज्ञा पद रहेगा । सभी भारतीय और पाश्चात्य भाष्यकारों ने इसे राजा के नाम के रूप में संज्ञावाची पद माना है । प्रस्तुत मंत्र में इसे राजा का नाम मानना ही उचित होगा । सायण का दूसरा अर्थ प्रसंग के अनुकूल नहीं है ।

22. शरस्य चिदार्चत्कस्यावतादा शरस्य । चित् । आर्चत्ऽकस्य । अवतात् ।

नीचादुच्चा चक्रथुः पातवे वाः । आ । नीचात् । उच्चा । चक्रथुः । पातवे ।

वारिति वाः ।

शयवे चिन्नासत्या शचीभि शयवे । चित् । नासत्या । शचीभिः ।

जसुरये स्तर्यं पिप्यथुर्गाम् ।। जसुरये । स्तर्यम् । पिप्यथुः । गाम् ।।

अन्वय – नासत्या । आर्चतकस्य शरस्य पातवे नीचात् अवतात् चित् वा: उच्चा आ चक्रथुः । शचीभिः जसुरये शयवे स्तर्यं गां चित् पिप्यथुः ।

अनुवाद – हे सत्य पालक अश्विनों ! ऋचत्क के पुत्र शर के पीने के लिए गहरे कुएं के जल को ऊपर किया । अपने कर्मों के द्वारा थके हुए शयु के लिए वन्ध्या गाय को दुधारू बनाया ।

टिप्पणी –

पातवे – 'पीने के लिए' 'पा पाने' धातु, 'तुमर्थे सेसेन्' से 'तवेन्' प्रत्यय, 'नित्त्वादाद्युदात्तः' से प्रत्यय के नित् होने पर आद्युदात्त । चतुर्थी एकवचन । सा0,मु0 – पानार्थम् । स्कन्द0 – पानार्थम् । वेंकट0 – पानाय। सात्व0 (ऋ0 का सु0भा0) – पीने के लिए । Griff. (The hymns of the Rgd.) – should drink it. Wil. (Rgd.S.) – for the drinking, Vel. (R.S.) – to drink, Grass. (Rgd.) – trinken (to drink), Mac.D. (S.E.D.) – course to drink. अतः 'पीने के लिए' अर्थ ही उचित है ।

जसुरये – 'थके हुए', 'जसु हिंसायाम्' धातु, 'जसिसहोरुरिन्' (उ0सू0 2/2/31) से 'उरिन्' प्रत्यय, चतुर्थी एकवचन, शयवे का विशेषण । सा0,मु0– श्रान्ताय । अन्यत्र – निरु0 (4/5/5) – 'जसुरिः इति' एतदनवगतम् । जरूतम् – इत्यवगमः । स्कन्द0 – ताडिताय, जसिताडने ताडयित्रे शत्रूणाम् । वेंकट0 – उपक्षीणाय, क्षुधिताय । सात्व0 (ऋ0 का सु0भा0) – थके मांदे । Griff. (The hymns of Rgd.) – weary, Wil. (Rgd.S.) – weary, Vel. (R.S.) – famishing, Grass. (Rgd.) – ersclöpften (exhausted), Mac.D.(S.E.D.) – exhausted. S.V.(The ety. of

Yāska Pg. 56) 'exhausted', is traced to √जस् 'to be tired'. अतः 'जसुरये' शब्द का 'थका हुआ' अर्थ ही उचित है । चूँकि इस शब्द की उत्पत्ति 'हिंसार्थक जसु' धातु से हुई है इसलिए 'स्कन्द स्वामिन् महोदय ने इसका अर्थ 'ताडिताय' ग्रहण कर लिया है, जो प्रसंगानुसार तर्कसंगत प्रतीत नहीं हो रहा है । वेंकटमाधव ने 'जसुरये' को 'गां' का विशेषण मानकर 'उपक्षीणाय' तथा 'क्षुधिताय' अर्थ ग्रहण किया है । वस्तुतः यह 'गां' का नहीं अपितु 'शयवे' का विशेषण है ।

पिप्यथुः - 'दुधारू बनाया', 'प्यायी वृद्धौ' धातु, लिट्, व्यत्यय से परस्मैपद, 'लिङ्यङोश्च' (पा०सू० 6/1/29) से पीभाव । सा०, मु० - पयसा युवामापूरितवन्तौ । स्कन्द० - आप्यायितवन्तौ । वेंकट० - आप्यायितवन्ताविति । सात्व० (ऋ० का सु०भा०) - दुधारू बनाया । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - yield milk, Wil. (Ṛgd.S.) - filled, Vel. (R.S.)- filled. Grass. (Ṛgd.) - schwellen (to swell). क्रियापद होने से निघात हो गया है ।

23. अवस्यते स्तुवते कृष्णियाय　　अवस्यते । स्तुवते । कृष्णियाय ।
ऋजूयते नासत्या शचीभिः ।　　ऋजुऽयते । नासत्या । शचीभिः ।
पशुं न नष्टमिव दर्शनाय　　पशुम् । न । नष्टम्ऽइव । दर्शनाय ।
विष्णाप्वं ददथुर्विश्वकाय ।।　　विष्णाप्वम् । ददथुः । विश्वकाय ।।

अन्वय - नासत्या ! अवस्यते, स्तुवते कृष्णियाय, ऋजुयते विश्वकाय, शचीभिः,

विष्णाप्वं नष्टं पशुम् इव दर्शनाय ददथुः ।

अनुवाद - हे सत्यपालक अश्विनों ! रक्षा की कामना करने वाले, और स्तुति करने वाले, कृष्ण के पुत्र, सरल मार्ग पर चलने वाले, विश्वक को, अपने कर्मों के द्वारा, विष्णाप्व (नामक विशिष्ट पुत्र) को खोये हुए पशु की भाँति, देखने के लिए दिया ।

टिप्पणी -

अवस्यते - 'रक्षा की कामना करने वाले', 'अव रक्षणे' धातु से निष्पन्न अवः शब्द से 'सुपः आत्मनः क्यच्' से 'क्यच्' प्रत्यय, 'शतुरनुमः' से विभक्ति पर उदात्त, चतुर्थी, एकवचन, विश्वकाय का विशेषण । सा0, मु0- अवनं रक्षणमात्मानम् इच्छते । स्कन्द0 - अवः पालनम् तत् कामयमानाय । वेंकट0 रक्षणम् इच्छते । सात्व0 (ऋ0 का सु0भा0) - अपनी रक्षा की चाह करने वाले । Griff. (The hymns of Rgd.) - who sought your aid, Wil. (Rgd. S.) - soliciting your protection, Vel. (R.S.) - who sought your favour. Grass. (Rgd.) - hülfsbegier'gen (thirsting for help), Mac.D. (S.E.D.) - seeking protection.

ऋजूयते - 'सरल मार्ग पर चलने वाले', 'ऋजु' धातु से 'क्यच्' और 'शतृ' प्रत्यय करने पर चतुर्थी एकवचन में ऋजुयते रूप निष्पन्न हुआ, विश्वकाय का विशेषण । सा0, मु0 - आर्जवमिच्छते । स्कन्द0 - ऋतु न्याय्यम् तदिच्छते, साधुवृत्तायेत्यर्थः । वेंकट0 - आर्जवम् इच्छते । सात्व0 (ऋ0 का सु0भा0) - सरल मार्ग पर से चलने वाले । Griff. (The hymns of Rgd.) - righteous man, Wil. (Rgd.S.) - a lover of rectitude, Vel. (R.S.)- the straight forward, Grass. (Rgd.) - just, Lan. (A.S.R.)- right or straight forward, Mac.D. (S.E.D.)-straight forwardness

'सरल मार्ग पर चलने वाले' का अर्थ वस्तुतः यहाँ छलकपट रहित सीधे सादे मनुष्य से है । लगभग सभी भाष्यकारों ने इस शब्द का अर्थ 'सीधा सादा' या 'कपट रहित' ग्रहण किया है और यह सभी अर्थ प्रसंगानुसार सही है ।

24. दश रात्रीरशिवेना	दश । रात्रीः । अशिवेन ।
नव द्यूनवनद्धं श्नथितम्- प्स्व १ न्तः ।	नव । द्यून् । अवऽनद्धम् । श्नथितम् । अप्ऽसु । अन्तरिति ।
विप्रुतं रेभमुदनि प्रवृक्त-मुन्निन्यथुः	विऽप्रुतम् । रेभम् । उदनि । प्रऽवृक्तम् । उत् । निन्यथुः ।
सोममिव स्रुवेण ।।	सोमम्ऽइव । स्रुवेण ।।

अन्वय - अप्सु अन्तः, दश रात्रीः, नवद्यून्, अशिवेन अवनद्धं, श्नथितम्, उदनि विप्रुतं, प्रवृक्तं रेभं, स्रुवेण सोमम् इव उत् निन्यथुः ।

अनुवाद - जल के भीतर, दश रात्री तथा नौ दिनों तक, अमंगलकारी शत्रुओं के द्वारा बँधे हुए, [शत्रुओं से] पीड़ित, जल से भीगे हुए, व्यथित रेभ को, जैसे स्रुव से सोमरस को उठाते हैं, वैसे ऊपर उठा लिया ।

टिप्पणी -

अवऽनद्धम् - 'बँधे हुए' 'अव' उपसर्ग पूर्वक, 'नह् बन्धने' धातु, 'कर्मणि निष्ठा' से 'क्त' प्रत्यय, 'नहो धः' [पा० सू० 8/2/34], 'झषस्तथोर्धोऽधः'

से निष्ठा के तकार का धत्व, गतिरनन्तरः से गति को प्रकृतिस्वरत्व । रेभं का विशेषण, द्वितीया एकवचन । सा०, मु० - बद्धम् । स्कन्द० - बद्धम् ,/नह् बन्धने । वेंकट० - निगूढम् विप्लुतचित्तम्। सात्व० ऋ० का सु०भा० - जकड़े हुए । Griff. (The hymns of Rgd.) - cruel bonds, Wil. (Rgd. S.) - bound with tight bonds, Vel. (R.S.) - bound, Mac.D. (S.E.D.) - bound with cards, Lan. (A.S.R.) - bind. ऋग्वेद के केवल इसी मंत्र में प्रयुक्त ।

श्नथितम् - 'पीड़ित', 'श्नथ हिंसार्थः' धातु 'कर्मणि निष्ठा' से 'क्त' प्रत्यय, द्वितीया एकवचन, रेभं का विशेषण । सा०, मु० - शत्रुभिर्हिंसितम्। स्कन्द० - ताडितम् । सात्व० ऋ० का सु०भा० - पीड़ित हुए । Griff. (The hymns of Rgd.) - wounded, Wil. (Rgd.S.) - wounded, Vel. (R.S.) - battered in deep water, Grass. (Rgd.)-verwundet (wunded), Mac.D. (S.E.D.) - strike down. ऋग्वेद के केवल इसी मंत्र में प्रयुक्त ।

विऽपुतम् - 'भीगे हुए', 'वि' उपसर्ग पूर्वक, 'प्रुङ् गतौ' धातु, 'क्त' प्रत्यय, द्वितीया एकवचन । सा०, मु० - विप्लुतं व्याक्षिप्तसर्वाङ्गम्। प्रुङ् गतौ, अवनद्धवत् प्रत्ययस्वरौ, कपिलकादित्वात् लत्वविकल्पः । अन्यत्र - ऋ० सं० 1/117/4 - विश्लिष्टावयवम्। स्कन्द० - विगतं रहितमित्यर्थः । सात्व० ऋ० का सु०भा० - भीगे हुए । Griff. (The hymns of Rgd.)- immersed, Wil. (Rgd.S.) - immersed. Vel. (R.S.) - drowned, Grass. (Rgd.) - versenkt (sinked or submerged), Mac.D. (S.E.D.) - cost away. यह शब्द 'उदनि' के साथ प्रयुक्त हुआ है । 'उदनि विपुतं'

यह दोनों शब्द मिलकर रेभ की विशेषता को द्योतित कर रहे हैं। यहाँ इसका अर्थ 'भीगा हुआ' ही उचित है और सभी भाष्यकारों ने इसी अर्थ को स्वीकारा है।

सोमम् - 'सोमरस को', 'षुञ् अभिषवे' धातु से 'मन्' प्रत्यय करने पर उत्पन्न सोम शब्द, एक अलौकिक मादक पेय का द्योतक है। यास्काचार्य ने इसका निर्वचन इस प्रकार किया है 'औषधिः सोमः सुनोतेर्यदेनमभिषुण्वन्ति' (निरु० 11/1/2) अर्थात् सोम औषधि है, यह सोम शब्द 'षुञ् अभिषवे' धातु से बनता है। इस सोम को निचोड़ कर रस निकालते हैं अतः यह सोम हुआ। **S-V. (The ety. of Yāska, Pg. 54) - 'name of a herb', is traced to √सु 'to press'.** सोम अग्नि की भाँति ही कर्मकाण्ड से सम्बद्ध प्रमुख देवता है। मैक्डॉनल के अनुसार प्रयोगाधिक्य की दृष्टि से इसका ऋग्वेद के देवों में तृतीय स्थान है। पर्वतों या पर्वत विशेष पर उत्पन्न होने वाली सोम लता और उससे निकाला गया मादक स्राव ही सोमगाथाओं का आधार है। सोमलता औषधियों की मूर्धन्य मानी गई है। यह स्वास्थ्य तथा दीर्घ-जीवन प्रदान करती है और मृत्यु का निवारण करती है। रस निकालने के लिए सोम के अंशुओं को पत्थर से कूटा या पीसा जाता था। नवम मण्डल पूर्णतया सोम की स्तुतियों से भरा पड़ा है। स्तुतियों में सोम देवता का मानवीय विग्रह अधिक विकसित नहीं हो पाया है। सोमलता और उसकी विशेषताओं के चित्रण से वे स्पष्टतः एक लता और रसविशेष के दैवीकृत रूप ही प्रतीत होते हैं। मैक्डॉनल[1] के विचार में ऋग्वैदिक कवि के लिए सोम देव प्रधानतः पार्थिव लता

---

1. मैक्डॉनल - वैदिक माइथौलोजी

और रस के ही मानवीकरण थे। कीथ का मत है कि 'सोम' देवरूप में स्पष्टतः लता का ही दैवीकरण है। अथर्ववेद के अनेक स्थलों पर सोम का अर्थ 'चन्द्रमा' ग्रहण किया गया है। यास्काचार्य ने भी सोम का एक अर्थ 'चन्द्रमा' ग्रहण किया है - 'सोमो रूपविशेषैरोषधिश्चन्द्रमा वा' निरू० ‖11/1/2‖। बहुत से विद्वान् इस विचार से सहमत हैं कि ऋक्संहिता के नवीनतम ‖प्रथम या दशम मण्डल‖ अंश के कतिपय मन्त्रों में सोम का तादात्म्य चन्द्रमा के साथ निश्चित है। इनमें हिलेब्राण्ट[1] का नाम प्रमुख है, जिनके अनुसार सोम का चन्द्रत्व सर्वत्र प्रकट है। सोमदेव तत्त्वतः चन्द्रमा है तथा सम्पूर्ण नवम मण्डल में चन्द्रस्तुति ही है। कीथ और मैक्डॉनल ने उनके इस मत पर अनेक आपत्तियाँ उठाई हैं और इसका खण्डन किया है। बहुसंख्यक विद्वानों की दृष्टि में सोम देव ऋग्वेद में पेयद्रव का मानवीकरण मात्र हैं और चन्द्रमा के साथ उनका तादात्म्य गौण गाथात्मक तादात्म्य है। अन्य भाषाओं में सोम के समान शब्द **Avestā - 'hauma' (Soma), Indo European - 'seum' (juice).**

25. प्र वां दंसांस्यश्विनाववोचमस्य	प्र। वाम्। दंसांसि। अश्विनौ। अवोचम्।
पतिः स्यां सुगवः सुवीरः।	अस्य। पतिः। स्याम्। सुऽगवः। सुऽवीरः।
उत पश्यन्नश्नुवन्दीर्घमायु	उत। पश्यन्। अश्नुवन्। दीर्घम्। आयुः।
रस्तमिवेज्जरिमाणं जगम्याम्।	अस्तम्ऽइव। इत्। जरिमाणम्। जगम्याम्॥

---

1. हिलेब्राण्ट - वेदिशे माइथोलोजी

अन्वय - अश्विनौ ! वां दंसांसि प्र अवोचम् । सुगवः सुवीरः अस्य पतिःस्याम् ।
दीर्घम् आयुः अश्नुवन् उत् पश्यन्, अस्तम् इव इत् जरिमाणं जगम्याम् ।

अनुवाद - हे अश्विनौ ! तुम दोनों के कार्यों के बारे में प्रकृष्ट रूप से वर्णन कर चुका हूँ । शोभन गायों और शोभन पुत्रों से युक्त होकर, इस ॥राष्ट्र॥ का पति बनूँ । दीर्घायु का उपभोग करते हुए, दृष्टि आदि सभी इन्द्रियों से युक्त होकर, अपने ही घर में प्रवेश करने के समान मैं वृद्धावस्था को प्राप्त होऊँ ।

टिप्पणी -

अश्नुवन् - 'उपभोग करते हुए', 'अशूङ् व्याप्तौ' धातु, व्यत्यय से 'शतृ' प्रत्यय। सा०, मु० - प्राप्नुवन्नहम् । स्कन्द० - प्राप्नुवंश्च । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ - उपभोग लेता हुआ । Griff. (The hymns of Rgd.) - enjoying, Wil. (Rgd.S.) - enjoying, Vel. (R.S.)-enjoying, Mac.D.(S.E.D.) - to obtain. ऋग्वेद के केवल इसी मंत्र में प्रयुक्त हुआ है ।

जरिमाणम् - 'वृद्धावस्था को', 'जृष् वयोहानौ' धातु से औणादिक 'इमनिच्' प्रत्यय, द्वितीया एकवचन । सा०, मु० - जराम्। अन्यत्र - ऋ० सं० ॥10/27/2॥ - जराम्। स्कन्द० - जरात्वम् जरामित्यर्थः । वेंकट० - जराम् । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ - बुढ़ापे को । Griff. (The hymns of Rgd.), Wil. (Rgd.S.), Vel. (R.S.) - old age. Grass. (Rgd.) - alter eingehn (old age). Mac.D.(S.E.D.), Lan. (A.S.R.) - old age. अतः 'जरिमाणं' का अर्थ 'वृद्धावस्था' उचित ही है ।

जगम्याम् - 'प्राप्त होऊँ', 'गम्' धातु प्रार्थना के अर्थ में लिङ्, 'बहुलं छन्दसि' से विकरण का श्लु, उत्तम पुरुष, एकवचन । सा०, मु० - कण्टकराहित्येन प्राप्नुयाम् । स्कन्द० - गच्छेयम् । वेंकट० - गच्छेयमिति । सात्व० {ऋ० का सु०भा०} - प्राप्त होऊँ । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - I enter, Wil. (Ṛgd.S.) - I enter, Vel. (R.S.) - I reach. Grass. (Ṛgd.) - gelangend (to arrive at). ऋग्वेद के केवल इसी मंत्र में प्रयुक्त हुआ है ।

——————::0::——————

1-117-1-25

1. मध्वः सोमस्याश्विना मदाय — मध्वः। सोमस्य। अश्विना। मदाय।

प्रत्नो होता विवासते वाम्। — प्रत्नः। होता। आ। विवासते। वाम्।

बर्हिष्मती रातिर्विश्रिता गीरिषा — बर्हिष्मती। रातिः। विऽश्रिता। गीः।

यातं नासत्योप वाजैः ॥ — इषा। यातम्। नासत्या। उप। वाजैः॥

अन्वय - अश्विना! मध्वः सोमस्य मदाय प्रत्नः होता वाम् आ विवासते। अपि च रातिः बर्हिष्मती गीः विश्रिता। नासत्या इषा! वाजैः उप यातम्।

अनुवाद - हे अश्विनौ! मधुर सोम के द्वारा हर्षित करने के लिए प्राचीन हवन करने वाला (यजमान) तुम दोनों की सेवा कराना चाहता है। तुम दोनों को दिया जाने वाला दान कुशासन पर बिछा दिया गया है, स्तुति भी विशिष्ट सेवा के लिए प्रस्तुत है। हे असत्य से रहित! अन्न तथा बल के साथ हमारे समीप आओ।

टिप्पणी -

मदाय - 'हर्षित करने के लिए', 'मदी हर्षे' धातु, 'मदोऽनुपसर्गे' (पा0सू0 3/3/67) से 'अप्' प्रत्यय, पित् होने से आद्युदात्त, चतुर्थी, एकवचन। सा0 - मदार्थम्। अन्यत्र - (ऋ0सं0 (1/16/8) - तत्पानजन्यहर्षाय, (6/40/1, 7/24/3, 10/44/1) - मदार्थम्, (8/1/26) - हर्षाय हर्षजनाय। अथर्व0 सं0 (2/5/1) - मदोत्पत्तये, भवतु इति शेषः, मदोऽनुपसर्गे इति भावे अन् प्रत्ययः, (20/8/2) - तस्य पिबेति सोमपानमात्रम् अभिहितम्। स्कन्द0 - मदार्थम्। वेंकट0-मादयितुम्। सात्व0 (ऋ0 का सु0भा0) - हर्ष का उपभोग देने के लिए। Griff. (The hymns of Rgd.)

gladden. Wil. (Rgd.S.) - pleasant. Lanman (A Sanskrit Reader)- excitement. Mac.D. (V.R.) - intoxication. M.W. - intoxication. Grass. (Rgd.), Geld. (D.R.) - Rausche (intoxication).

प्रत्नः - 'प्राचीन' पुल्लिंग, प्रथमा, एकवचन । होता का विशेषण । सा०, मुद्गल- चिरंतनः । अन्यत्र - अथर्व० सं० [6/110/1] - प्रत्न इति पुराणनाम । निघ० [3/27] - प्रत्नरिति पुराणनाम । स्कन्द०, वेंकट० - पुराणः । सात्व० [ऋ० का सु०भा०] - पुराने समय से । Griff. (The hymns of Rgd.), Wil. (Rgd.S.), Mac.D. (V.R.) - ancient or old. Grass. (Rgd.), Geld. (D.R.) - alte (ancient). M.W. - ancient.

होता - 'हवन करने वाला [यजमान]', 'हु-हवने' अथवा 'ह्वेञ्-आह्वाने' धातु से 'तृन्' प्रत्यय [पा०सू० 3/2/135] करने पर 'होतृ' शब्द बना । प्रथमा, एकवचन में 'होता' रूप निष्पन्न हुआ, 'नित्' [पा०सू० 6/1/193] होने से आद्युदात्त। सा० - होमनिष्पादको यजमानः । अन्यत्र - ऋ०सं० [1/1/1]- ऋत्त्विजम्,[1/1/5]- होमनिष्पादक, [1/36/5, 6/1/1, 7/1/16, 8/11/10] - देवानामाह्वाता । स्कन्द० - नामर्त्त्विक् अथवा कक्षीवान्नामर्षिः । वेंकट० - आह्वाता । Griff. (The hymns of Rgd.) - priest. Wil. (Rgd.S.) - worshipper. M.W. - pries Grass. (Rgd.) - Priester (priest). Geld. (D.R.) - hotr.

सात्व० [ऋ० का सु०भा०] - दान देने वाला पुरुष । यजमान का बोध कराने के कारण संज्ञा शब्द माना जा सकता है ।

आ विवासते - "सेवा करना चाहता है ।" आङ् उपसर्ग पूर्वक - 'विवासति परि-
चरणकर्मा' धातु से आत्मनेपद, लट् लकार, मध्यम पुरुष, एकवचन में
आ विवासते रूप निष्पन्न हुआ । क्रियापद होने से निघात । सा० - विवासतिः
परिचरणकर्मा, आङ् मर्यादाम् , यथाशास्त्रं परिचरति अपि च । अन्यत्र - ऋ० सं०
[1/58/1, 8/19/24, 6/15/6] - परिचरति निघ० [3/5] - विवासतीति दश
परिचरणकर्माणि: । स्कन्द०, वेंकट० - परिचरति । सात्व० - [ऋ० का सु०भा०]
पूर्ण सेवा करना चाहता हूँ । **Griff. (The hymns of Ṛgd.) - invites.
Wil. (Ṛgd.) - adores. Geld. (Ṛgd.) - bittet (invites), Grass.
(D.R.) - lockt.**

बर्हिष्मती - "कुशासन पर बिछा दिया गया है", 'बृह वर्धने' धातु से 'इसि' प्रत्यय
करने पर बर्हिस् शब्द बना, पुनः 'बर्हिस्' से 'मतुप्' प्रत्यय करने पर
स्त्रीलिंग, प्रथमा एकवचन में 'बर्हिष्मती' रूप निष्पन्न होगा । सा० - आस्तीर्णेन
बर्हिषा युक्तम् , युष्मदर्थं बर्हिषि आसादितमित्यर्थः । अन्यत्र - ऋ० सं० [1/51/8]
- बर्हिषा यज्ञेन युक्ताय यजमानाय [1/53/6] यज्ञवते यजमानाय । अथर्व० सं० [20/
21/6] - यागवते यजमानाय । निरु० [8/2/6] में यास्क ने बर्हिस् शब्द का निर्वचन
"बर्हिः परिबर्हनात्" किया है । परिबर्हण करने अर्थात् बढ़ने के कारण कुशा को बर्हि
कहा गया है । इसके अतिरिक्त अग्नि को भी बर्हि कहा गया है, क्योंकि अग्नि
में डाला जाने वाला हव्य पदार्थ चारों तरफ फैलता है । यहाँ बर्हि का अर्थ 'कुशा'
है । स्कन्द० - वेद्याम् आस्तीर्णेन बर्हिषा तद्वती । वेंकट० - स्तीर्णेन बर्हिषा तद्वती।
सात्व० [ऋ० का सु०भा०] - कुशासन पर रख दिया है । **Griff. (The hymns of
Ṛgd.) - on the grass. Wil. (Ṛgd.S.) - poured upon the sacred
grass. Mac.D. (V.R.) - accompanied or provided with sacrificial
grass. M.W. - accompanied with sacrificial grass. Grass. (Ṛgd.)**

aufgestellt. Geld. (D.R.) - Barhis. अन्य भाषाओं में - Avestā - Barezis, (cushion, pillow). Old Slavanic - Blazina (cushion).

रातिः - 'दान', 'रा दाने' से 'कर्मणि क्तिन्' प्रत्यय अथवा 'कर्त्तरि क्तिच्' प्रत्यय, 'मन्त्रे वृषेष०' सूत्र से प्रत्यय पर उदात्त अथवा 'चितः' सूत्र से अन्तोदात्त हुआ, स्त्रीलिंग प्रथमा, एकवचन। सा० - दातव्यं हविः। अन्यत्र - ऋ० सं० ॥1/34/1॥ - दानं विभुरिति शेषः, इत्यस्मिन् भावे क्तिन्। ॥6/45/32॥- दानम्, ॥7/25/3॥ - धनम्, ॥8/13/4॥ - ऋत्विग्भिर्दीयमाना। ॥10/66/10॥- दाता। अथर्व० सं० ॥1/26/2॥ - √रा दाने, क्तिचक्तौ च संज्ञायाम् इति कर्तरि क्तिच्, चितः इत्यन्तोदात्तम्। ॥3/8/2॥ - ॥7/18/4॥ - दाता सर्वप्रियताम्, कर्त्तरिक्तिच् यद्वा 'मन्त्रे वृषेष' इति क्तिनुदात्तः। स्कन्द० - दानं सवनीयेपुरोडाशादे। वेंकट० - दानम्। सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ - तुम्हें देने का दान। निघ० ॥3/20॥ - 'रातिरिति सप्तदश मान्चाकर्माणः'। Griff. (The hymns of Ṛgd.) - gift. Wil. (Ṛgd.S.) - Offer-ings. Lan. (S.R.) - pleasure. M.W. - willing to give. Mac. D. (V.R.) - gift. Grass. (Rgd.)- gab'ist (gift). Geld. - darbringung (offerings).

वि॑ऽश्रिता - 'विशिष्ट सेवा के लिए प्रस्तुत', 'वि' उपसर्ग, 'श्रिय सेवायाम्' धातु, 'कर्मणि निष्ठा' सूत्र से 'क्त' प्रत्यय, 'गतिरनन्तरः' सूत्र से गति को उदात्त, स्त्रीलिंग, प्रथमा, एकवचन। सा० - ऋत्विक्षु समवेता वैः। स्कन्द० - विविधमाश्रिता। वेंकट० - विस्तीर्णा सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ - तुम्हारे पास पहुँची है। Griff. - (The hymns of Ṛgd.) - appertioned. Wil. (Ṛgd.S.) - Ready for repetition. Geld. (D.R.) - verteilt (distribute).

ऋ० सं० ।1/55/2। - में 'सर्वत्र व्याप्ता' अर्थ ग्रहण किया गया है । यहाँ पर 'विशिष्ट सेवा' अर्थ ही उचित है ।

इषा - 'अन्न' 'इषु इच्छायाम्' धातु से 'टाप्' प्रत्यय करने पर स्त्रीलिंग, तृतीया, बहुवचन में 'इषाभिः' के स्थान पर, छान्दस प्रयोग के कारण 'इषा' शब्द का प्रयोग हुआ है । सा० - दातव्येनान्नेन । अन्यत्र - ऋ० सं० ।1/30/17, 1/54/8, 1/88/1, 6/20/6, 7/64/3, 8/5/34। - अन्नेन, ।1/112/18। - पृथिव्यामुत्पन्नेन यवादिधान्य, ।10/82/2। - उदकेन * अथर्व सं० ।7/85/1, 20/21/4। - अन्नेन ।19/55/1। - इष्यमाणेन अन्नेन । निघ० ।2/7।- 'इषमित्यष्टाविंशतिरन्ननामानि' । स्कन्द०, वेंकट० सात्व० ।ऋ० का सु०भा०। - अन्नम् । **Griff. (The hymns of Rgd.), Wil. (Rgd.S.), Lan. (A.S.R.) Mac.D. (V.R.) - food. M.W. - refreshment. Grass. (Rgd.) - speise (food particles), Geld. (D.R.) - Lobsal.**

2. यो वामश्विना मनसो जवीयान्रथः स्वश्वो विश आजिगाति । येन गच्छथः सुकृतो दुरोणं तेन नरा वर्तिरस्मभ्यं यातम् ।।

यः । वाम् । अश्विना । मनसः । जवीयान् । रथः । सुऽअश्वः । विशः । आऽजिगाति । येन । गच्छथः । सुऽकृतः । दुरोणम् । तेन । नरा । वर्तिः । अस्मभ्यम् । यातम् ।।

अन्वय - अश्विना ! यः मनसः जवीयान् स्वश्वः रथः वां विशः आजिगाति । येन सुकृतः दुरोणं गच्छथः । नरा ! तेन अस्मभ्यं वर्तिः यातम् ।

अनुवाद - हे अश्विनों ! जो मन से वेगवान्, सुन्दर अश्वों से युक्त रथ तुम दोनों को प्रजाजनों के समीप ले जाता है । जिसके द्वारा शोभन कर्म से युक्त (यजमान) के घर जाते हो । हे नेतृत्व करने वालों ! उसके द्वारा हमारे घर आओ ।

टिप्पणी -

जवीयान् - 'वेगवान्', 'गत्यर्थक जु' धातु, 'तदस्यास्ति' से 'मतुप्' प्रत्यय, मतुप् का लोप, आतिशय्य को द्योतित करने के लिए ईयसुन्, 'विमन्तोर्लुक् टेः' से टि का लोप । सा० - जवोऽस्यास्तीति जववान् । अन्यत्र - ऋ० सं० (1/118/1) - अतिशयेन वेगवान्, (1/181/3) - मनोवेगवानित्यर्थः, (10/112/2) - अतिशयने गन्ता । स्कन्द०, वेंकट० - वेगवत्तरो । सात्व० (ऋ० का सु० भा०) - वेगवान् । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - swifter. Wil. (Ṛgd.S.) - rapid. Grass. (Ṛgd.) - schneller (swifter). Geld. (D.R.) - schneller (swifter).

दुरोणम् - 'घर', 'दुर्' उपसर्ग, 'अव् रक्षणे' धातु से 'न' प्रत्यय, नपुंसकलिंग, द्वितीया, एकवचन । सा० - देवयजनलक्षणं गृहम् । अन्यत्र - ऋ० सं० (1/183/1) - गृहनामैतत्, यागगृहम् । अथर्व सं० (7/18/3) - दुरोण इति गृहनाम , दुरवने गृहे, (20/33/3) - सत्रस्य बहुकर्तृकत्वेपि केनचिद् यजमानेन अवश्यंभावाद् मनुषो दुरोण इत्युक्तम् । निघ० (3/4) - दुरोणे इति गृहनाम । निरु० - (4/1/5) - दुरोण इति गृहनाम , दुरवा भवन्ति दुस्तर्पाः । यास्क ने 'तर्पणार्थक' धातु से दुरोण को व्युत्पन्न माना है । दुर्गाचार्य - यज्ञगृह । स्कन्द०, वेंकट० - गृहम् । सात्व० (ऋ० का सु०भा०) - घर । Griff. (The hymns of Ṛgd.), Wil. (Ṛgd.S.) - develling. Mac.D. (V.R.)-

house. M.W. - distant. Grass. (Ṛgd.), Geld. (D.R.)- Haus (house). S.V. (The ety. of Yāska) generally rendered as 'a house', has not been analysed in Padapātha of Ṛgveda, but PP of Tattirīya Saṃhitā (1/2/14/3) and of Sāmaveda (11/654) analyse it as दुःऽओन. The stem ओन, however has not been shown to have occurred any where in Sanskrit. Yaska setting up the word as दुरव interprets it as 'difficult to satisfy' < दुस् + अव् (Rajavade V.K. : Yaska's Nirukta : Text and Exegetical Notes, Poona, 1940, Pg. 245)., remarks about this etymology : 'दुरवाः' occurs as the sense of दुरवः, but this may be an interpolation, for Yāska could not fall into a confusion by giving such a meaning. Sāyaṇa commenting on 'दुरोण' in (R.V. III. 25/5). derives it from दुर् (indeclinable) + अव् + the suffix न in the passive sense, signifying 'difficult to be protected'. Grassmann, H. (Wörterbuch zum Rigveda, Leipzig. 1973). etc. derive it from दुर = दुर् 'door'.

वर्तिः - 'घर' 'वृञ् आवरणे' धातु, 'हृपिषिरुहिवृति0' ।उ0सू0 4-558। से 'इ' प्रत्यय, 'सुपां सुलुक्0' से द्वितीया एकवचन को 'सु' आदेश । सा0 - वर्तनाधिकरणं गृहम्। अन्यत्र - ऋ0 सं0 ।1/34/4। - वर्ततिऽत्रेति वर्तिर्गृहम् ।1/116/18, 1/119/4, 6/49/5, 7/40/5, 8/9/11। - गृहम्, ।10/39/13। - मार्गम्। स्कन्द0 - वर्तन्या मार्गेण । वेंकट0 - गमनमार्गम् । रात्त्व0 ।ऋ0 का सु0भा0। - घर । Griff. (The hymns of Ṛgd.), Wil. (Ṛgd.S.) - abode.

Lan. (A.S.R.) - √वृञ् आवरणे, enclose or √वृतु वर्तने, turn or move. Mac.D. (V.R.) - √वृतु वर्तने, roll. M.W. - rolled or rapped round. Grass. (Rgd.) - stätte (abode). Geld. (D.R.) - umfahrt (round trip). 'वर्तिः' शब्द के सम्बन्ध में भाष्यकारों में पर्याप्त अर्थवैभिन्य है। किसी ने मार्ग तो किसी ने 'गृह' अर्थ ग्रहण किया है। यहाँ पर 'वर्तिः' का 'घर' अर्थ अधिक समीचीन होगा।

3. ऋषिं नरावंहसः पाञ्चजन्यमृ- ऋषिम्। नरौ। अंहसः। पाञ्चऽजन्यम्।
बीसादत्रिं मुञ्चथो गणेन। ऋबीसात्। अत्रिम्। मुञ्चथः। गणेन।
मिनन्ता दस्योरशिवस्य माया मिनन्ता। दस्योः। अशिवस्य। मायाः।
अनुपूर्वं वृषणा चोदयन्ता॥ अनुऽपूर्वम्। वृषणा। चोदयन्ता॥

अन्वय - वृषणा नरौ ! पाञ्चजन्यम् ऋषिम् अत्रिम् अंहसः ऋबीसात् गणेन मुञ्चथः। दस्योः मिनन्ता अशिवस्य मायाः अनुपूर्वं चोदयन्ता।

अनुवाद - हे कामना सेचक, नेतृत्व कर्ता ! पञ्च जन (समुदाय) के हितकर्ता ऋषि अत्रि को पापमय कारागृह से, अनुयायियों के साथ मुक्त किया। हिंसित करने वाले दस्यु की अहित सम्पादन करने वाली मायाओं को एक के बाद एक समाप्त करते हो।

टिप्पणी -

अंहसः[1] - 'पापमय', 'हन्' धातु की उपधा 'अन्' को अलग कर पूरे शब्द को पलट देने से 'अन् ह्' बना, अंह् से 'असुक्' प्रत्यय करने पर अंहस् शब्द निष्पन्न हुआ। पंचमी, एकवचन का रूप है। 'नब्विषयस्य0' सूत्र से आद्युदात्त। यह अबीसात् का विशेषण है। सा0 - पापरूपात्। अन्यत्र - ऋ0 सं0 ॥1/18/5॥- पापात् पाहीति शेषः, ॥1/36/14, 1/115/6, 6/16/30, 8/18/6, 10/24/3॥ - पापात् ॥9/56/4॥ - दुरितात्। स्कन्द0 - पापात्, दाहकत्वात्, विनाशकत्वात् इत्यर्थः। वेंकट0 - उपद्रवाद् यथा युक्तो भवति एवम्। सात्व0 ॥ऋ0 का सु0भा0॥ - कष्टदायक। Griff. (The hymn of Rgd.) - Strait. Wil. (Rgd.S.) - wicked. Mac. D. (V.R.) - Sin. M.W. - Sin. Grass. (Rgd.) - anger. Geld. (D.R.) - draugsal. S.V. (The ety. of Yāska) - unavailability of parallel prototype in old Indo-Aryan itself led to curious devices for etymology, eg. for अंहस् 'anxiety', 'pressure' respectively. The Indo-Eur. prototype 'anĝh'. (to tighten) was unknown in Yāska's time, so a metathesis of the vowel अ of √हन् and of the nasal consonant was supposed to have occurred : √हन् became अ + न + ह् Such a violant metathesis made the etymology very unnatural. But, generally, such devices were only then resorted to when a parallel form in the language was unavailable अन्य भाषाओं में 'अंहस्' के समकक्ष शब्द Avestā - 'azahu' (distress), Greek - "ἄχνυμαι", "axos", "ayos."

पाञ्चजन्यम्[1] - 'पञ्च जन ॥समुदाय॥ को' 'पन्च', + जनी प्रादुर्भावे' धातु 'बहिर्देवपञ्चजनेभ्यश्चेति वक्तव्यम्' ॥का0 4/3/58/1॥ से 'ञ्यः'

प्रत्यय, पुल्लिंग, द्वितीया,एकवचन । सा०, मुद्गल - "पाञ्चजन्यम् निषादपञ्चमाश्चत्वारो वर्णाः पञ्चजनाः" अर्थात् सायण ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद इन पाँचों को पाञ्च जन्य माना है । स्कन्द० - पञ्चभ्योऽपि जनेभ्यः गन्धर्वाः पितरो देवाः असुराः रक्षांसीत्येतेभ्यः निषादपञ्चमेभ्यो वा चतुर्भ्यो वर्णेभ्यो हितम् । वेंकट० - पञ्चजनहितम् । सात्व० ।ऋ० का सु०भा०। - पंचविध मानव समाज के हितकर्ता । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - five tribes. Wil. (Ṛgd.S.) five classes of men. Mac.D. - relating to the five races. M.W. - relating to the 5 races of men. Grass. (Ṛgd.), Geld. (D.R.) - fü ng stäme (five tribes).

औपमन्यव के अनुसार चार वर्ण और निषाद ही पञ्चजनों में परिगणित है । नैरुक्तों ने भी इसी का समर्थन किया है । Roth (Roth's note on Sanskrit literature) - The Aryans as the middle point and the people of the north, the east , the west and the south by whom they are surrounded. Max.Mullar (India what can it teach us ? Pg. 95. note) - Aryans as the people of the five notions. Muir- The phrase five races is a designation of all the nation not, merely of the Aryan tribes. It is an ancient enumeration, of the origin of which we find no express explanation in the Vedic texts. We may compare the fact that the cosmical spaces or points of the compass are frequently enumerated as five especially in the following text of the A.V. (III/24/2) "इमाः याः पञ्च प्रदिशो मानवीः पञ्च कृष्टयः", These five regions, the five tribes sprung from Manu, among which(regions)

we should have here to reckon as the fifth, the one lying in the middle that is to regard the Aryans as the central round about them the nations of the four regions of the world. According to the vedic usage, five cannot be considered as designation as indefinite number.

मुञ्चथः - 'मुक्त किया', 'मुंच्' धातु, लट् लकार, मध्यम पुरुष, द्विवचन । क्रियापद होने से निघात । छान्दस प्रयोग के कारण लङ् लकार के स्थान पर लट् लकार का प्रयोग हुआ है । सा०, मुद्गल - अमोचयतम् । स्कन्द० - मोचितवन्तौ स्थः । वेंकट० - अमुञ्चतम् । सात्व० (ऋ० का सु० भा०) - छुड़ाया। Griff. (The hymns of Rgd.) - freed. Wil. (Rgd.S.) - liberated. Geld. (D.R.) - befrei (liberate). अन्य भाषाओं में- Lithuanian - mukti mukti (to get loose).

भिनन्ता - 'हिंसित करने वाले', 'हिंसार्थक मीञ्' धातु से क्रैयादिक लट् और शतृ, 'मीनातेर्निगमे' से दीर्घ ईकार को ह्रस्व । सा०, मुद्गल - शत्रून् हिंसन्तौ । स्कन्द० - हिंसायाम् । वेंकट० - हिंसन्तौ । सात्व० (ऋ० का सु० भा०) - शत्रु का विनाश करने वाले । Griff. (The hymns of Rgd.) - repelling. Wil. (Rgd.S.) - destroying. Mac.D. - destroy. M.W. - diminish or destroy. Grass. (Rgd.) - tilgend (destroy). Geld. (D.R.) - vereitelt (defeated).

ऋ० में केवल इसी मंत्र में प्रयुक्त हुआ है ।

दस्योः - 'दस्यु की', 'दस् उपक्षये' धातु से 'यु' प्रत्यय, पुल्लिंग, षष्ठी, एक-
वचन । सा० - उपक्षयितुः। अन्यत्र - ऋ० सं० (1/104/5, 8/98/
6, 9/88/4) - उपक्षयितुः असुरस्य । अथर्व सं० 20/34/10 - वृत्रादेः ।
निरु० (7/6) - दस्युर्दस्यतेः, क्षयार्थात् । स्कन्द० - असुरसमूहस्य । वेंकट -
उपक्षयितुः, असुरवर्गस्य । सात्व० (ऋ० का सु०भा०) - अहितकारी शत्रु की ।
Mac.D. - Class of demon hostile to the gods and freequently represented as being overcome by Indra and Agni, fiend or foe of the gods. Lan. (A.S.R.) - foe of the gods and men.

M.W. - enemy of the gods. Grass. (Rgd.) - Dämons (demons).

ग्रिफिथ, विल्सन तथा गेल्डनर महोदय ने 'दस्यु' को व्यक्ति विशेष के नाम के अर्थ में ग्रहण किया है । मैक्डानेल के अनुसार दस्यु कुछ सन्दिग्ध व्युत्पत्ति वाला शब्द है । ऋग्वेद के अनेक स्थलों पर स्पष्टतः अतिमानवीय शत्रुओं के लिए व्यवहृत हुआ है । दूसरी ओर अनेक स्थल ऐसे भी हैं, जहाँ मानव शत्रुओं, सम्भवतः आदि-वासियों को भी इसी नाम से व्यक्त किया गया है । उन स्थलों पर तो निश्चित रूप से यही आशय है कि 'दस्यु' आर्यों का विरोधी है और जिसे आर्यगण देवों की सहायता से पराजित करते हैं । दस्यु शब्द ईरानी 'दन्हु', 'दन्यु' के समान हैं, जो एक प्रान्त का द्योतक है । 'त्सिमर के अनुसार दस्यु का मूल अर्थ 'शत्रु' था , जिससे ईरानियों ने 'आक्रामक देश', 'विजित देश', 'प्रदेश' आदि आशय विकसित कर लिए, जबकि भारतीयों ने 'शत्रु' अर्थ सुरक्षित रखते हुए इसमें दानव शत्रुओं का आशय भी सम्मिलित कर लिया । रौथ[1] का विचार है कि मानव शत्रु

---

1. Roth - St. Petersberg Dictionary.

का अर्थ देवों और दानवों के कलह का ही स्थानान्तरण है । लासेन[1] ने 'दन्यु': 'दस्यु' के अन्तर को 'दश्व' : 'देव' के साथ सम्बद्ध करने तथा इनमें उस धार्मिक अन्तर का ही परिणाम देखने का प्रयास किया है । जिसने हॉग के सिद्धान्त के अनुसार ईरानियों और भारतीयों को पृथक् कर दिया था । इस शब्द का मूल अर्थ, आक्रमण के परिणामस्वरूप 'आक्रान्त देश' हो सकता है और इसी आधार पर 'शत्रुओं का देश' और इसके बाद ऐसी 'आक्रामक जाति' अर्थ हो गया है जिन्हें मानव शत्रुओं के रूप में अधिक सामान्यतया एक सजातीय नाम 'दास' या 'दस्यु' द्वारा सम्बोधित किया गया है ।

अशिवस्य - 'अहित करने वाले का', न शिव: इति अशिव: तस्य अशिवस्य, नञ् तत्पुरुष समास, पुल्लिंग, षष्ठी, एकवचन । सा०, मुद्गल - दु:खकारिण: असुरस्य सम्बन्धिनी: तस्मिन् अत्रौ प्रयुक्ता । स्कन्द० - इन्होंने 'अशिवस्य माया' का एक साथ अर्थ किया है - शठप्रज्ञा: ' । वेंकट० - असुरवर्गस्य । सात्व० ‖ऋ० का सु०भा०‖ - अहितकारी शत्रु की । Griff. (The hymns of Rgd.), Wil. (Rgd.S.) - Malignant, Mac.D. - evil. Lan.(A. S.R.) - unkind. Geld. (D.R.) - feints , eligen , (hostile) . अथर्व सं० ‖7/44/1‖ - अस्तुतिरूपा निन्दार्था । M.W. - unauspicious.

माया: - 'छल चातुरीजन्य कर्मों को', √मा|मापने से उणादि 'यत्' प्रत्यय तथा स्त्रीलिंग 'टाप्' प्रत्यय करने पर द्वितीया, द्विवचन में 'माया:' रूप

---

1. Lassen - Indische Alterthumskude Pg-633.

निष्पन्न हुआ । सा०, मुद्गल, वेंकट०, - मायाः । सात्व० - कुटिल चालबाजीयों को । ऋ० सं० ॥1/32/4॥ - मायोपेतानाम्असुराणां संबन्धिनीः, ॥8/41/8॥ - असुराणां मायाः, ॥10/53/9॥ कर्मणामैतत् कर्माणि पात्रनिर्माणविषयाणि । अथर्व० सं० ॥4/23/5॥ - व्यामोहकशक्तीः । Griff. (The hymns of Rgd.) - guiles. Wil. (Rgd.S.) - devices. Lan. (A.S.R.) - skilled in all magic. Grass. (Rgd.) - zauber (magic). Geld. (D.R.) - Hobt (property or goods). यहाँ असुरों के द्वारा सम्पादित 'छल चातुरीजन्य कर्मों' के अर्थ में प्रयुक्त है ।

चोदयन्ता - 'समाप्त करते हो', 'नुद चुद प्रेरणे' धातु, 'शतृ' प्रत्यय, प्रथमा, द्विवचन, में 'चोदयन्तौ' के स्थान पर 'चोदयन्ता' का प्रयोग किया गया है । सा० - प्रेरयन्तौ, निवारयन्तौ । अन्यत्र - ऋ० सं० ॥7/79/5, 8/24/13, 10/120/5॥ - प्रेरयति । स्कन्द० - उपदेशिना प्रेरयन्तौ । वेंकट० - तैः कृताः प्रेरयन्ताविति । सात्व० ॥ऋ० का सुभा०॥ - हटाते जाते हो ।
Lan. (A.S.R.) - driven. Mac. D. - discharged. M.W. - to impel. Grass. (Rgd.) - tilgend (destroy). Geld. Vereitelt (defeated).

4\. अश्वं न गूळ्हमश्विना | अश्वम् । न । गूळ्हम् । अश्विना ।
दुरेवैर्ऋषिं नरा वृषणा रेभमप्सु । | दुःऽएवैः । ऋषिम् । नरा । वृषणा । रेभम् । अप्ऽसु ।

सं तं रिणीथो विप्रुतं दंसोभिर्न   सम् । तम् । रिणीथः । विऽप्रुतम् । दंसःऽभिः ।

वां जूर्यन्ति पूर्व्या कृतानि ।।   न । वाम् । जूर्यन्ति । पूर्व्या । कृतानि ।।

अन्वय - नरा वृषणा अश्विना । दुरेवै अप्सु गूळ्हं विप्रुतं ऋषिं रेभं दंसोभिः अश्वं न संरिणीथः । वां तं पूर्व्या कृतानि न जूर्यन्ति ।

अनुवाद - हे नेतृत्व करने वाले, कामना सेचक अश्विनौ । पापकर्मा असुरों के द्वारा जल में छिपाये गये शिथिल शरीर वाले ऋषि रेभ को अपने चिकित्सा कर्मों के द्वारा अश्व के समान सुदृढ़ बना दिया । तुम दोनों का वह कृत्य कभी जीर्ण नहीं होता(अर्थात् भुलाया नहीं जा सकता) ।

टिप्पणी -

दुःऽएवै - 'पापकर्मा ॥असुरों॥ के द्वारा', 'दुर्' उपसर्ग, 'इण्' गतौ धातु, 'इण् शीङ्भ्याम् वन्' ॥उ०सू० 1/150॥ से भाव अर्थ में 'वन्' प्रत्यय, नित् होने से आद्युदात्त, तृतीया, बहुवचन । सा०, मुद्गल - दुष्प्रापैरसुरैः । स्कन्द०- पापकामैरसुरैः । वेंकट० - पापगमनैः असुरैः । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ - दुष्ट कार्यकर्त्ताओं के द्वारा । Griff. (The hymns of Rgd.) - vileman. Wil. (Rgd.S.) - by unassailable (enemies). Lan. (A.S.R.) - go to a distance. Grass. (Rgd.) - Böse (harmful). Geld.(D. R.) - Bösewichten (villain).

सम्ऽरिणीथः - 'सुदृढ़ बना दिया', 'सम्' उपसर्ग, 'री गतिरेषणयोः' धातु, क्रैयादिक, 'प्वादीनां ह्रस्वः' से ह्रस्व होने पर, लट् लकार,

मध्यमपुरुष, द्विवचन में 'संरिणीथः' रूप निष्पन्न हुआ। सा० – समधत्तं सर्वैरवयवैस्पेतमकुरुतमित्यर्थः। अन्यत्र – निघ० (2/14) – रिणातिर्गतिकर्मा। स्कन्द० – सम्यक् गतौ स्थः। वेंकट० – सहगतवन्तौ। सात्व० (ऋ० का सु० भा०) – सुदृढ़ शरीर वाला बना दिया। ऋ० सं० (1/117/19) – संगतावयवं कुरुथः। Griff. (The hymns of Rgd.) – ye rescued. Wil. (Rgd. S.) – restored. Mac. D. (D.R.) – vanished. Grass. (Rgd.)– bergen (save).

विऽप्रुतम् – 'शिथिल शरीर वाले', 'वि' उपसर्ग, 'प्रुङ् गतौ' धातु, 'क्त' प्रत्यय, पुल्लिंग, द्वितीया, एकवचन। ऋषि का विशेषण। सा०, मुद्गल– विश्लिष्टावयवम्। अन्यत्र – ऋ० सं० (1/116/24) – विश्लिष्टावयवं, √प्रुङ् गतौ। अवनद्धवत् प्रत्यय स्वरौ। कपिलकादित्वात् लत्वविकल्पः। स्कन्द० – विगतम्। वेंकट० – सहगतवन्तौ। सात्व० (ऋ० का सु०भा०) – विशेष शिथिल सा, दुर्बल बन चुका था। Griff. (The hymns of Rgd.), Wil. (Rgds. S.) – wounded, Grass. (Rgd.) –(tired) ermatten.

न जूर्यन्ति – 'जीर्ण नहीं होते हैं' 'जुष् वयोहानौ' धातु, 'दैवादिकत्वात्' से 'श्यन्' प्रत्यय, 'बहुलं छन्दसि' से उत्व तथा 'हलि च' से दीर्घ, लट् लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन। सा०, मुद्गल – न हि जीर्णानि भवन्ति। स्कन्द० – जीर्यन्ते। वेंकट० – जीर्यन्ति। सात्व (ऋ० का सु०भा०) – कभी जीर्ण नहीं होते हैं। Griff. (The hymns of Rgd.) – old time edure for ever. Wil. (Rgd.S.) – do not fade (from recollection). Mac.D.(V.R.) – not decayed. Lan. (A.S.R.) – not old. M.W.– not old. Grass. (Rgd.) – nie alten (never old). Geld(D.R.) –nicht veralten (not become obsolete).

5\. सुषुप्वांसं न निर्ऋतेरुपस्थे   सुषुप्वांसम् । न । निःऽऋते । उपऽस्थे ।

सूर्यं न दस्त्रा तमसि क्षियन्तम् ।   सूर्यम् । न । दस्त्रा । तमसि । क्षियन्तम् ।

शुभेरुक्मं न दर्शतं   शुभे । रुक्मम् । न । दर्शतम् ।

निखातमुदूपथुरश्विना वन्दनाय॥   निऽखातम् । उत् । ऊपथुः । अश्विना ।
वन्दनाय ।।

अन्वय - दस्त्रा अश्विना । निर्ऋति उपस्थे सुषुप्वांसं न, तमसि क्षियन्तं सूर्यं न ।
निखातं शुभे दर्शतं रुक्मं न वन्दनाय उत् ऊपथुः ।

अनुवाद - हे शत्रुविनाशक अथवा दर्शनीय अश्विनौ । भूमि की गोद में सोये हुए {पुरुष} की भाँति, अन्धकार में निवास करते हुए सूर्य की भाँति, भूमि पर पड़े हुए शोभा के लिए दर्शनीय स्वर्ण अलंकारों की भाँति वन्दन को {कुएँ से} ऊपर उठाया ।

सुषुप्वांसम् न - 'सोये हुए की भाँति' 'ञिष्वप्' शये' धातु,लिट्, 'क्वसु' प्रत्यय तथा 'वचिस्वपि' से सम्प्रसारण होने से द्वितीया, एकवचन में 'सुषुप्वांसम्' रूप निष्पन्न हुआ । सा0, मुद्गल - सुप्तवन्तं पुरुषमिव । स्कन्द0- सुप्तमिव । वेंकट0 - सुप्तम्। सात्व0 {सा0 का सुभा0} - सोये हुए के समान ।
Griff. (The hymns of Ṛgd.) - slumbered, Wil. (Ṛgd.S.) - like one sleeping. Grass. (Ṛgd.) - schlummert (slumbered).

निःऽऋतौ – 'भूमि में', 'नि' उपसर्ग, 'गत्यर्थक ऋ' धातु, 'कर्मणि निष्ठा' से 'क्त' प्रत्यय, स्त्रीलिंग, सप्तमी एकवचन । सा० – पृथिव्याः । अन्यत्र – ऋ० सं० [7/58/1] – भूमेः [1/119/7] – निःशेषेण प्राप्तम्, √ऋ गतौ, कर्मणि निष्ठा, गतिरनन्तरः इति गतेः प्रकृतिस्वरत्त्वम्। [10/18/10]– मृत्युदेवतायाः । निघ० [1/1] – में भी निऋति को पृथ्वी का पर्याय माना गया है । निरु० [2/2] – 'निर्ऋतिनिरमणादृच्छतेः कृच्छ्रापत्तिरितरा' अर्थात् निविष्टानि रमन्ते अस्मिन् भूतानि इति निर्ऋतिः । दूसरी व्युत्पत्ति 'ऋच्छ धातु' से मानी गई है । दूसरी व्युत्पत्ति के अनुसार निर्ऋति दुःख का वाचक हो जाता है । स्कन्द० – पृथिव्याः एकदेशभूते । वेंकट० – भूम्याः । सात्व० [ऋ० का सु०भा०] – भूमि पर । Griff. (The hymns of Ṛgd.) – destruction's. Wil. (Ṛgd.S.) – earth. Lan. (A.S.R.) – destruction. Mac. D. – dissolution , M.W. – destruction , Grass. (Ṛgd.) – grabes (darkness of the grave). S.V. (The ety. of Yāska) – 'the earth' is traced to √रम् , so that the word literally means 'that in which creatures take delight'. But र् of √रम् could have no correspondence to 'ऋ' in old Indo Aryan. F.S. (The V. Ety.) –'Pṛthivi' specially as a symbol of mabile state of vāk or śakti [वैदिक दर्शन] derived from NI + R. "इयं वै निर्ऋतिरियं वैतं निर्णयिति यो निर्ऋच्छति" [श०ब्रा० 7/2/1/11, ता०ब्रा० 1/6/1/1] । यहाँ पर 'निर्ऋति' का 'भूमि' अर्थ ही उपयुक्त है ।

उपऽस्थे – 'गोद में', 'उप' उपसर्ग पूर्वक, 'स्था' धातु से 'घञर्थे कविधानम्' सूत्र से अधिकरण में 'क' प्रत्यय, 'मस्दवृधादित्वात्' से पूर्व पद पर

अन्तोदात्त, नपुंसकलिंग, सप्तमी, एकवचन । सा० - उत्सगे । अन्यत्र - ऋ०सं० ॥1/31/9, 1/35/5॥ - समीपस्थाने वर्तमान: सन् , ॥1/144/2॥ - उत्सगे । ॥9/26/1॥ - उत्सगे, ॥10/5/1॥ - उपस्थाने समीपे वर्तमानम् । स्कन्द० - स्थाने । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - bosom. Wil. (Ṛgd.S.)- lap. Mac. D., Lan. (A.S.R.) - lap. M.W. - a part which is under lap. Grass. (Ṛgd.) - schooss.

क्षियन्तम् - 'निवास करते हुए', 'क्षि निवासगत्यो:' धातु ॥पा०धा०पा० 1408 तु०पा०॥ 'शतृ' प्रत्यय, द्वितीया, एकवचन । सा० - निवसन्तम्। अन्यत्र - ऋ० सं० ॥2/11/5, 10/68/8॥ - निवसन्तम् ॥3/30/8॥ - क्षयमाणं, क्षि निवासगत्यो: तुदादित्वाच्छ:, प्रत्यय स्वर: । ॥3/39/5॥ - निवसन्तं, क्षि निवासगत्यो:, इत्यस्य शतरि रूपम् , ॥4/17/13॥ - धनरहितत्वेन क्षीयमाणम् । स्कन्द० - निवसन्तम्। वेंकट० - वसन्तम्। सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥- छिपे पड़े हुए । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - dwelling. Wil. (Ṛgd.S.) - disappearing. Mac. D. - dwell. Lan. (A.S.R.)- destroy. M.W. - to be diminished. Peterson (Hymns from the Ṛgveda) - diding ॥रहते हुए॥ Grass. (Ṛgd.). Geld.(D.R.)-ruhte.

शुभे - 'शोभा के लिए', 'शुभ दीप्तौ' धातु से भाव अर्थ में 'क्विप्' प्रत्यय, 'सावेकाच०' से चतुर्थी विभक्ति पर उदात्त हुआ । सा० - शोभार्थं निमित्तम्। स्कन्द० - शोभायै च । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ - शोभा के लिए । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - for triumph. Wil.(Ṛgd.S.) - designed for embellishment. Mac.D. - beautify. Lan.(A.S.R.) - auspicious. M.W. - decoration. Grass. (Ṛgd.), Geld.

(D.R.) - schönes (fair). ऋ0 सं0 ॥1/64/4॥ - शोभार्थम्, ✓ शुभ दीप्तौ, संपदादिलक्षणो भावे क्विप्, 'सावेकाच0' इति चतुर्थ्या उदात्तत्वम् । ॥1/119/3॥ - शोभनाय धनाय तदर्थम् ।

रुक्मम् न - 'स्वर्ण अलंकार की भांति', 'रुच् दीप्तौ' धातु 'मक्' प्रत्यय, नपुंसक-लिंग, प्रथमा, एकवचन । सा0, मुद्गल - रोचमानं सुवर्णमयाभरणमिव। स्कन्द0 - रुक्मो नामाभरणविशेषः । वेंकट0 - आभरणम् अलंकरणार्थम् । सात्व0 ॥ऋ0 का सुभा0॥ - सुवर्ण भूषण के समान । Griff. (The hymns of Rgd.) - like fair geld. Wil. (Rgd.S.) - splendid arnament. Lan. (A.S.R.) - Ornament of gold. Mac.D., M.W.- an ornament of gold. Grass. (Rgd.) - glanze gold (brightness of gold). Geld. (D.R.) - goldsch (gold). F.S. (The V. ety.) - रुक्मः - (1) luminow (2) the Sun. (3) the truth. 'असौ वा आदित्य एष रुक्म एष हीमाः सर्वाः प्रजा प्रतिरोचते रोचो ह वैतं रुक्म इत्याचक्षते परोऽक्षम् (S.B. 7/4/1/10, T.B. 3/9/20/2, S.B. 6/7/1/2, 3/5/1/20, 6/7/1/1-2, 6/7/1/9, 7/4/2/5, V.S. 13/16). 'रुक्म' का अर्थ 'स्वर्ण' और 'स्वर्णालंकार' दोनों ग्रहण किया जाता है । निघ0 ॥1/2॥ में 'रुक्म' को स्वर्ण-नामों में परिगणित किया गया है । 'रुच् दीप्तौ' धातु से उत्पन्न होने के कारण 'रुक्म' का अर्थ स्वर्ण है क्योंकि स्वर्ण भी दीप्तिमान् होता है । परन्तु यहाँ इसका अर्थ 'स्वर्णालंकार' ही तर्कसङ्गत है ।

6. तद् वां नरा शंस्यं — तत् । वाम् । नरा । शंस्यम् ।

पज्रियेण कक्षीवता नासत्या परिज्मन् । — पज्रियेण । कक्षीवता । नासत्या । परिऽज्मन् ।

शफादश्वस्य वाजिनो जनाय   शफात् । अश्वस्य । वाजिनः । जनाय ।

शतं कुम्भान् असिञ्चतं मधूनाम् ।। शतम् । कुम्भान् । असिञ्चतम् । मधूनाम् ।।

अन्वय - नरा नासत्या । तत् वां परिज्मन् पज्रियेण कक्षीवता शंस्यम् । यत्
वाजिनः अश्वस्य शफात् जनाय मधूनां शतं कुम्भान् असिञ्चतम् ।

अनुवाद - हे नेतृत्व कारक, असत्य से रहित अश्विनों । तुम दोनों के चतुर्दिक
विख्यात (वीरतापूर्ण) कार्य की पज्र कुलोत्पन्न कक्षावान के द्वारा प्रशंसा
करनी चाहिए । जिसने बलवान् अश्व के खुर जैसे पात्र से प्रजाओं के लिए मधु के
सैकड़ों घड़ों को पूरित किया ।

टिप्पणी -

पज्रियेण - 'पज्रिय के द्वारा', 'पज्र' शब्द से 'दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्यः'
सूत्र से अपत्यार्थ में 'ण्यः' प्रत्यय करने पर, तृतीया,एकवचन में पज्रियेण
रूप निष्पन्न होगा । पज्रिय ऋग्वेद में कक्षीवान का पैतृक नाम है । पज्रिय का
अर्थ है पज्र का वंशज । पज्र उस परिवार का नाम है जिसमें कक्षीवान उत्पन्न हुए।
उसका ऋग्वेद में अनेक बार उल्लेख आता है । पिशेल[1] के अनुसार इस परिवार के
लिए प्रयुक्त 'पृक्ष याम' उपाधि का अर्थ ऐसा उत्कृष्ट यज्ञीय कृत्य सम्पन्न करने
वाला है, जिसने इन लोगों को श्रुतरथ की उदारता से लाभान्वित किया था ।

---

1. Pischel - Vedische Studian, Pg. 1, 97, 98.

रौथ[1] का कहना है कि पज्रों को 'सामन्' भी कहा गया है । शाट्यायन में 'पज्रों' को 'अङ्गिरस्' कहा गया है । लुडविग[2] इस शब्द को पज्र नामक यज्ञकर्ता की पत्नी का नाम मानते हैं । रौथ 'पज्रा' शब्द को सोम पौधे की एक उपाधि (शक्तिशाली) के रूप में ग्रहण करते हैं । इस प्रकार इसका आशय अनिश्चित है ।

वाजिनः - "बलवान्", 'वाज' शब्द से 'इनि' प्रत्यय, षष्ठी, एकवचन । अश्व का विशेषण । सा० - वेगवतः । अन्यत्र - ऋ०सं० (1/11/2) - वाजोऽन्नमेषामस्तीति वाजिनः । (7/1/14) - अन्नवान् बलवान् वा (8/32/18) - बलवान् (9/7/4) - बलवानन्नवान् (10/31/11) - हविर्लक्षणान्नवान् । निघ० (1/14) - में 'वाजी' अश्वनामों में परिगणित है तथा निघ० (2/7) में 'वाज' अन्न के पर्यायों में आम्नात है । स्कन्द० - वेगवंतो बलवंतो वा । वेंकट०- बलवतः । सात्व० (ऋ० का सु०भा०) - बलिष्ठ । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - strong. Wil. (Ṛgd.S.) - fleet. Mac.D. - swift. Lan. (A.S.R.) - strong or lively inferred from Ugra, Ojas, Vajra, Vāja. Grass. (Ṛgd.) - schnellen (swift). M.W. - spirited. Geld. (D.R.) - preisgewinnenden (prize winner). अन्य भाषाओं में Greek – vy-cn's(strong, healthy). As - 'Wac-OL' (awake). Latin-Vig-ēre (belively or strong)Vig-il-(awake). 'वाज' का अर्थ अन्न रस से उत्पन्न बल भी ग्रहण किया गया है । इसी आधार पर भाष्यकारों ने बलवान अर्थ ग्रहण किया है ।

---

1. Roth - St. Petersberg Dictionary.

2. Ludwig - Translation of the Rigveda, Pg. 3.110.

असिञ्चतम् - 'पूरित किया', 'सिञ्च' धातु के लङ् लकार, मध्यम पुरुष, द्वि-
वचन का रूप है । सा० - अपूरयतम् । अन्यत्र - ऋ० सं० ॥1/
116/7॥ - अक्षारयतम् यद्वा सिञ्चति पूरणार्थः । ॥1/85/11॥ - आहावेऽ-
वानयन् । स्कन्द० - क्षारितवन्तौ स्थः । वेंकट० - आपूरयतम् । सात्व० -
॥ऋ० का सु०भा०॥ - भरे थे । Griff. (The hymns of Rgd.) - showered.
Wil. (Rgd.S.) - filled. Lan. (A.S.R.) - poured. Grass.
(Rgd.) - ergosset. Geld. (D.R.) - getränke. अन्य भाषाओं में -
Greek - iK-Ma's (moisture). As - Seōn, Sih-an (filter, flow),
German - seihen (strain).

3. युवं नरा स्तुवते कृष्णियाय
विष्णाप्वं ददथुर्विश्वकाय ।
घोषायै चित् पितृषदे दुरोणे
पतिं जूर्यन्त्या अश्विनावदत्तम् ॥

युवम् । नरा । स्तुवते । कृष्णियाय ।
विष्णाप्वम् । ददथुः । विश्वकाय ।
घोषायै । चित् । पितृऽसदे । दुरोणे ।
पतिम् । जूर्यन्त्यै । अश्विनौ । अदत्तम् ॥

अन्वय - नरा । युवं स्तुवते कृष्णियाय विश्वकाय विष्णाप्वं ददथुः । अश्विनौ ।
पितृसदे दुरोणे जूर्यन्त्यै घोषायै चित् पतिम् अदत्तम् ।

अनुवाद - हे नेतृत्व कारक । तुम दोनों ने स्तुति करते हुए कृष्ण के पुत्र विश्वक
को विष्णाप्व ॥नामक पुत्र॥ दिया । हे अश्विनों । पिता के घर में
वृद्धा हो रही घोषा के लिए पति प्रदान किया ।

टिप्पणी -

स्तुवते - 'स्तुति करते हुए', 'स्तुञ्स्तवने' धातु, 'मतुप्' प्रत्यय, 'शतुरनुम०' सूत्र से विभक्ति पर उदात्त । चतुर्थी, एकवचन । सा० - स्तोत्रं कुर्वते । अन्यत्र - ऋ० सं० (1/62/1, 1/116/7, 1/116/23, 5/42/7, 6/23/3) - स्तोत्रं कुर्वते । सात्व० (ऋ० का सु०भा०) - स्तुति करने वाले । **Griff. (The hymns of Rgd.) - who praised you. Wil. (Rgd.S.) - he praised you. Lan. (A.S.R.) - praised. Grass. (The hymns of Rgd.) - sänger (singer). Geld. (D.R.) - labpreisenden (praise).**

पितुऽसदे दुरोणे - 'पिता के घर में', 'पितृ' शब्द, 'षद्लृ विशरणादिषु' धातु, 'क्विप् च' सूत्र से 'क्विप्' प्रत्यय, सप्तमी, एकवचन । 'दुरोणं' घर का पर्याय है । सप्तमी एकवचन में 'दुरोणे' रूप निष्पन्न हुआ । निघ० (3/4) में 'दुरोणं' गृहनामों में आम्नात है । निरु० (4/1/5) - दुरवा भवन्ति दुस्तर्पाः । सा०, मुद्गल - स्वकीययजनकगृहे । स्कन्द० - पिता यत्र तिष्ठति तत् पितृषदम् तस्मिन् गृहे । वेंकट० - पितृगृहे । सात्व० (ऋ० का सु०भा०) - पिता के घर पर ही । **Griff. (The hymns of Rgd.), Wil. (Rgd.S.) - in her father's dwelling. Grass. (Rgd.) - vaters Hauss (father's house).**

8. युवं श्यावाय रुशतीमदत्तं	युवम् । श्यावाय । रुशतीम् । अदत्तम् ।
महः क्षोणस्याश्विना कण्वाय ।	महः । क्षोणस्य । अश्विना । कण्वाय ।
प्रवाच्यं तद् वृषणा कृतं वां	प्रऽवाच्यम् । तत् । वृषणा । कृतम् । वाम्
यन्नार्षदाय श्रवो अध्यधत्तम् ।।	यत् । नार्सदाय । श्रवः । अधिऽअधत्तम् ।।

अन्वय - वृषणा अश्विना । युवं श्यावाय रुशतीम् अदत्तम् । क्षोणस्य कण्वाय
महः ॥अदत्तम्॥ नार्षदाय श्रवः अधि अधत्तम् । तद् वां कृतं प्रवाच्यम् ।

अनुवाद - हे बलिष्ठ अश्विनों ! तुम दोनों ने श्याव के लिए दीप्त त्वचा वाली
नारी दी । ॥नेत्र के बिना॥ चलने में असमर्थ कण्व को नेत्रों की ज्योति
प्रदान की । नृषद् के पुत्र को श्रवण शक्ति का दान किया । तुम दोनों का वह
कृत्य विशेष रूप से वर्णन करने योग्य है ।

टिप्पणी -

रुशतीम्'-दीप्त त्वचा वाली नारी', 'रुच् दीप्तौ' धातु से व्युत्पन्न 'रुशती'
शब्द के द्वितीया, एकवचन का रूप है । सा० - दीप्तत्वचं स्त्रियम् ।
अन्यत्र - ऋ० सं० ॥1/113/2, 10/75/7॥ - दीप्यमाना, ॥10/3/1॥ - श्वेत
वर्णां दीप्तिम्, ॥10/85/30॥ - रुशादिति वर्णनाम, दीप्त्या । स्कन्द०,
वेंकट० - दीप्तां त्वचम्। सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ - तेजस्विनी सुन्दरी
नारी । ग्रिफित महोदय ने 'रुशती' को स्त्री विशेष का नाम माना है ।
Wil. (Rgd.S.) - lovely. Mac.D., M.W. - bright. Lan (A.S.
R.) - beautiful. Grass. (Rgd.) lichte (luminous). S.V.
(The ety. of Yāska) - 'colour', is traced to √रुच् 'to
shive'. 'रुच्' धातु के समकक्ष धातु से उत्पन्न शब्द अन्य भाषाओं में -
Greek - ~~alupe~~ 'ἀ'φλ' - λύκ-η (twilight) λευκ-ος (bright), Latin -
lūx, lumen for lŭc - s, luc - men (light), luna - luc-na
(moon), As - lēoh-t. Eng - light.

महः - '॥नेत्रों की॥ ज्योति', 'मह पूजायाम्' धातु से औणादिक 'असि' प्रत्यय

अथवा महत् शब्द के षष्ठी एकवचन का रूप है । छान्दस प्रयोग के कारण अत् का लोप, 'बृहन्महतोरुपसंख्यानम्' सूत्र से विभक्ति को उदात्त । सा०, मुद्गल - तेज: तैजसं चक्षुरिन्द्रियम् । अन्यत्र - ॠ० सं० ﴾1/3/12﴿ - महतः, महदिति तकारस्य व्यत्ययेन सकारः, तस्य रुत्वोत्वगुणाः, प्रातिपदिकस्वरेणा-न्तोदात्तः, एङः पदान्तादति इति पूर्वरूपे प्राप्ते प्रकृत्यान्तः पादमव्यपरे इति प्रकृतिभावः । ﴾1/120/7﴿ - महतो महस्य, महतः छान्दसः अत्शब्दलोपः । ﴾6/1/2, 7/1/24, 8/16/3, 10/8/5﴿ - महतः । स्कन्द० - महच्च । सात्व० ﴾ऋ० का सु०भा०﴿ - नेत्र ज्योति का । Griff. (The hymns of Rgd.) - life. Wil. (Rgd.S.) - sight. Lan. (A.S.R.) - glory Mac.D. - light. F.S. (The V. ety.) - Great, exalted, wealth, the sun, cattle, from the root √Mah 'to respect, esteem, worship. (S.B. 11/8/1/3, T. up. 1/5. T.B. 3/8/18/5. G.B. 1/5/15. S.B. 1/9/1/11, 12/3/4/7-8). Grass. (Rgd.) - grosser (great). यहाँ पर 'ज्योति' अर्थ ही समीचीन होगा । जबकि इसका शाब्दिक अर्थ 'पूजनीय' अथवा 'महान्' है ।

क्षोणस्य - 'चलने में असमर्थ', 'क्षिनिवासगत्योः' धातु से 'कृत्यल्युटो बहुलम्' सूत्र से कर्तरि ल्युट, पृषोदरादित्वात् क्षोणभाव । चतुर्थी के स्थान पर षष्ठी । सा०, मुद्गल - दृष्टिराहित्येन गन्तुमशक्तः सन् एकस्मिन्नेव स्थाने निवसति तस्मै । अन्यत्र - यास्क ﴾निरु० 6/2/28﴿ ने 'क्षोण' शब्द का निर्वचन 'क्षोणस्य क्षयणस्य' किया है । यास्क ने 'क्षोण' का अर्थ 'निवास' ग्रहण किया है । अथवा 'टुक्षु शब्दे' धातु से औणादिक 'न' प्रत्यय करने पर षष्ठी एकवचन में 'क्षोणस्य' बना है । प्रसंगानुसार प्रथम व्युत्पत्ति ही उचित प्रतीत होती है । स्कन्द० - शब्दयित्रे, आह्वाने स्तोत्रे वेत्यर्थः, 'टुक्षु शब्दे' इत्यस्येदं रूपम्, चतुर्थ्यर्थे षष्ठी । वेंकट० - शब्दकरणात्क्षोणा क्षोणः, क्षौति शब्दकर्मा ।

सात्व0 ॥ऋ0 का सु0भा0॥ - दृष्टि विहीन । Wil. (Ṛgd.S.) - unable to see his way. S.V. (The ety. of Yāska) - 'an abode' is rendered as 'क्षयण', प्रसंगानुसार 'दृक्षु शब्दे' धातु से नहीं अपितु 'क्षि निवासगत्योः' धातु से उत्पन्न मानना अधिक समीचीन होगा ।

प्रऽवाच्यम् - 'विशेष रूप से वर्णन करने योग्य', 'प्र' उपसर्ग 'वच्' धातु, 'ल्यप्' प्रत्यय, नपुंसकलिंग, प्रथमा, एकवचन । सा0, मुद्गल - प्रकर्षेण वचनीयम् , शंसनीयम् । स्कन्द0 - प्रकर्षेण वक्तव्यम् । वेंकट0 - प्रकर्षेण वाच्यम् । सात्व0 ॥ऋ0 का सु0भा0॥ - अत्यन्त वर्णन करने योग्य । Wil. (Ṛgd.S.)- to be glorified. Grass. (Ṛgd.), Geld. (D.R.) - ruhm verlichen (glory).

नार्षदाय - 'नृषद के पुत्र के लिए', 'नृषद्' शब्द से 'ऋष्यन्धक0' सूत्र से 'अण्' प्रत्यय, पुल्लिंग, चतुर्थी, एकवचन । नार्षद ऋग्वेद तथा अथर्ववेद ॥ऋ0 वे0 10/31/11, अथर्ववेद 4/19/2॥ के एक स्थल पर कण्व का पैतृक नाम है । ऋग्वेद के एक मन्त्र में अश्विनों के एक आश्रित के रूप में इसका उल्लेख है । किन्तु ऋग्वेद ॥10/61/13॥ के तृतीय स्थल में यह नाम कुछ अनिश्चित रूप में असुर के लिए व्यवहृत हुआ है ।

श्रवः - 'श्रवण शक्ति', 'श्रु श्रवणे' धातु से 'असुन्' प्रत्यय, नित् होने से आद्युदात्त । सा0 - श्रवणेन्द्रियम् ,अन्यत्र - ऋ0 सं0 ॥1/9/7॥ - धनम् , ॥1/9/8॥ - महतीं कीर्तिम् , श्रूयते इति श्रवः, असुनो नित्वात् , ॥6/1/4॥ - सर्वत्र श्रूयमाणम् ॥7/5/8॥ - यशः, ॥8/9/17॥ - श्रवणीयम् ,॥9/1/4॥ - अन्नम् । स्कन्द0 - श्रोत्रम् । सात्व0 ॥ऋ0 का सु0भा0॥ - श्रवण शक्ति का । Griff.

(The hymns of Rgd.) - glory. Wil. (Rgd.S.) - hearing. Lan. (A.S.R.) - sound. Mac.D. - hearing. M.W. - listening. Grass. (Rgd.) - preisen (praise). Geld. (D.R.) - laut (sound).

9. पुरु वर्पांस्यश्विना दधाना पुरु । वर्पांसि । अश्विना । दधाना ।

नि पेदव ऊहथुराशुमश्वम् । नि । पेदवे । ऊहथुः । आशुम् । अश्वम् ।

सहस्रसां वाजिनमप्रतीतमहिहनं सहस्रऽसाम् । वाजिनम् । अप्रतिऽइतम् । अहिऽहनम् ।

श्रवस्य १ तरुत्रम् ।। श्रवस्यम् । तरुत्रम् ।।

अन्वय - अश्विना । पुरु वर्पांसि दधाना । पेदवे आशुं, सहस्रसाम्, अप्रतीतम्, अहिहनं, श्रवस्यं, तरुत्रं वाजिनम् अश्वं न्यूहथुः ।

अनुवाद - हे अश्विनो । (तुम दोनों) अनेक रूपों को धारण करते हो । (तुम दोनों ने) पेदु को शीघ्रगामी, सहस्र धन प्रदाता, (शत्रुओं का) सामना करने वाला, शत्रु विनाशक, यशस्वी, तारक और बलिष्ट अश्व को दिया था ।

टिप्पणी -

पुरुऽवर्पांसि - 'अनेक रूपों को', 'वृञ् वरणे' धातु, "वृ शीङ्भ्यांरूपस्वाङ्गयोः

पुकच" ‡उ०सू० 4/640‡ से 'असुन्' प्रत्यय, पुणागम, नपुंसकलिंग, द्वितीया, बहु-
वचन । सा०, मुद्गल - बहूनि रूपाणि, आत्मीयैः कर्मभिः कृतानि रूपाणि, ।
अन्यत्र - निघ० ‡2/7‡ में 'वर्प' शब्द रूप नामों में आम्नात है । ऋ० सं० ‡6/
44/14‡ - बहूनि निर्मितानि रूपाणि ——————— । स्कन्द० -
बहूनि रूपाणि । वेंकट० - कर्मरूपाणि । सात्व० ‡ऋ० का सु०भा०‡ - अनेक रूप ।
Griff. (The hymns of Rgd.) - many forms. Wil. (Rgd.S.) -
meny forms. Mac. D., M.W. - many forms. Grass. (Rgd.) -
viele frommen scaffend (many useful work). Geld. (D.R.) -
viede gestalten (many form).

दधाना - 'धारण करते हो', 'डुधाञ् धारणपोषणयोः' धातु, 'लट्', 'शानच्'
प्रत्यय, क्रियापद होने पर भी निघात नहीं हुआ 'अभ्यस्तानामादिः'
‡पा०सू० 6/1/189‡ से आद्युदात्त । सा०, मुद्गल - धारयन्तौ युवाम् ।
अन्यत्र - ऋ० सं० ‡1/123/4‡ - धारयन्ती यद्वा अधि दधाना, अधिकं धारयन्ती
‡6/69/2‡ - दधानौ युवाम् ‡7/69/2‡ - धारयन्तौ येन विशो गच्छथः । स्क-
न्द० - धारयन्तौ । वेंकट० - दधानौ । सात्व० ‡ऋ० का सु०भा०‡ - धारण
करते हो । Griff. (The hymns of Rgd.) - wearing. Wil. (Rgd.S.)
- assume. Geld. (D.R.) - annehmet (to accept).

आशुम् - 'शीघ्रगामी', 'अशूङ् व्याप्तौ' धातु, 'कृवापाजिमिस्वदिसाध्यशूभ्य
उण्' ‡उ०सू० 1/1‡ से 'उण्' प्रत्यय, प्रत्यय पर उदात्त अथवा 'आङ्'
उपसर्ग पूर्वक 'शु' धातु से 'उण्' प्रत्यय करने पर द्वितीया एकवचन में आशुम् शब्द
निष्पन्न हुआ । सा० - शीघ्रगामिनम् । अन्यत्र - ऋ० सं० ‡1/4/7‡ - सवन
त्रयव्याप्तम् ‡1/91/20, 1/135/5, 7/71/5, 10/107/10‡ - शीघ्रगामिनम् ।

(8/99/7, 9/62/18) - वेगवन्तम् । निघ0 (2/15) में 'आशु' क्षिप्रनामों में संकलित है । स्कन्द0 - शीघ्रम् । वेंकट0 - शीघ्रगन्तारम् । सात्व0 - (ऋ0 का सुभा0) - शीघ्रगामी । Griff. (The hymns of Rgd.) - fleet foot. Wil. (Rgd.S.) - swift. Grass. (Rgd.) - resche (quick). Geld. (D.R.) - schnelle (swift). Lan. (A.S.R.), Mac. D.- swift. M.W. - quick or fast. अन्य भाषाओं में - Greek-w'ku' - s (swift), Latin - ōc-ior (swifter).

सहस्त्रसाम् - 'सहस्त्रधन प्रदाता', सहस्त्र शब्द पूर्वक 'षणु दाने' धातु, 'जनसन-खन0' से विट् 'विड्वनोरनुनासिकस्यात्' से आत्त्व, नपुंसकलिंग, द्वितीया, एकवचन । 'अश्वम्' का विशेषण । सा0 - सहस्त्रसां सहस्त्रसंख्याकस्य धनस्य सनितारं दातारम्। स्कन्द0 - संग्रामसहस्त्राणां तन्निमित्तभूतधनसहस्त्राणां वा सम्भक्तारम् । वेंकट0 - सहस्त्रस्य धनस्य सम्भक्तारम् । सात्व0 (ऋ0 का सुभा0) - हजारों धनों के दाता । ऋ0 सं0 (1/10/11) - सहस्त्रसंख्याकलाभोपेतम्(1/118/9) - सहस्त्रसंख्याकस्य धनस्य, (5/34/9) - सम्भक्तारं दातारम्। Griff. (The hymns of Rgd.) - winner of a thousand spoils. Wil. (Rgd.S.) - bringer of a thousand (treasures). Grass. (Rgd.) - tausand sehätz (thousand treasure). Geld.(D.R.) - tausende gewinnt (thousand profit).

अप्रतिऽइतम् - '(शत्रुओं का) सामना करने वाला', न प्रति इतम् इति अप्रतीतम्, नञ् तत्पुरुष समास । 'प्रति' उपसर्ग पूर्वक, 'गत्यर्थक इण्' धातु से 'क्त' प्रत्यय, द्वितीया, एकवचन । 'अश्वम्' का विशेषण । सा0 - शत्रुभिरप्रतिगतम् । अन्यत्र - ऋ0 सं0 (1/33/2) - अप्रतिगतम् बलिभिरस्कृतमित्यर्थः शत्रुभिर्न

प्रतिगतम् , अव्ययपूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम् । स्कन्द० - अप्रतिगतपूर्वं शत्रुभिः । वेंकट० - शत्रुभिः अप्रतिगतम्। सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ - अजेय । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - resistless. Wil. (Ṛgd.S.) - irresistible. M.W. - unknown. Grass. (Ṛgd.) - siegende (to be victorious). Geld. (D.R.) - unwinder stehlich (irresistible). Mac.D. (S.E.D.)- irresistible, Lan. (A S.R.)-invincible.

अहिऽहनम् - 'शत्रु विनाशक', अहि शब्द की व्युत्पत्ति तीन प्रकार से की जा सकती है - ॥1॥ 'आङ्' उपसर्ग पूर्वक 'हन् हिंसागत्योः' ॥पा० धा० पा० 1012 अ०पा०॥ से 'आङि श्रिहनिभ्यां ह्रस्वश्चेति' से 'इ०' प्रत्यय, आङ् को ह्रस्व, हन् + इ = हि, नञ् + हि = अहि । ॥2॥ 'इण् गतौ' धातु ॥पा० धा० पा० 1045 अ०पा०॥ से 'इन्' प्रत्यय अथवा ॥3॥ अहि शब्द से 'इन्' प्रत्यय ॥उणा० 4/114॥ करने पर अहि बना । अह् + इन = अह्नोति व्याप्नोति आकाशं दिगन्तराणि वा । अहि शब्द अनेकार्थक है । निघ०॥2/10॥ में 'अहि' मेघनामों में तथा ॥2/12॥ में उदकनामों में परिगणित है । यास्क ॥निरु० 2/5॥ ने 'अहि' का निर्वचन "अहिरयनादेत्यन्तरिक्षे, अयमपीतरोऽहिरेतस्मादेव निर्ह्रसितोपसर्ग अहन्तीति" किया है । 'अहिः अयनात्' अर्थात् गमन करने से अहि नाम पड़ा । बादल आकाश में गति करता है इसलिए इसे 'अहि' कहा जाता है । अहि का दूसरा अर्थ सर्प भी है क्योंकि साँप भी चलता है अथवा 'आङ्' उपसर्ग पूर्वक 'हन्' धातु से अहि बना है क्योंकि साँप मार डालता है । अहि का एक अर्थ शत्रु भी है क्योंकि शत्रु भी मारा जाता है या मारता है । मैक्डॉनल ॥वै० इण्डे० पृ० 58॥ के अनुसार 'अहि' शब्द का प्रयोग बहुधा ऋग्वेद में और उसके बाद 'सर्प' के अर्थ में हुआ है । अनेक बार इसके द्वारा केंचुल छोड़ने का भी उल्लेख है । सर्प की विचित्र चाल के कारण इसे दंतयुक्त रस्सी ॥दत्वती रज्जुः॥ कहते हैं । इसके दंश को विषयुक्त होने और शीतकाल में निश्चेष्ठता के

कारण इसे धरती की विवर में पड़ा रहने वाला भी कहा गया है । प्रस्तुत मन्त्र में जिस अश्व की प्रशंसा की गई है , मैक्डॉनल के अनुसार वह एक काल्पनिक अश्व था, जिसे अश्विनों ने सर्पों से रक्षा के लिए पेद्व को दिया था । इसलिए सर्प विनाशक के रूप में आह्वान भी किया गया है ।

जिस प्रकार ऋग्वेद में 'अहि' को अनेक अर्थों में ग्रहण किया गया है, उसी प्रकार अवेस्ता में भी लगभग वही रूप प्राप्त होता है । अवेस्ता ॥यस्न 16/8, यश्त् 18/1, वेन्दीदाद् 18/19,20॥ में अहि को दुष्टता की चरमसीमा के रूप में दर्शित किया गया है । ॥मेनुक् - इ - रबल 8/29,30॥ 'प्रओष द्वारा प्रज्वलित पवित्र अग्नि को बुझाने का प्रयत्न करने पर भी विफलीभूत हो जाता है । ॥यस्न 9/8, यश्त् 17/34॥ 'अङ्रामन्यु ने अहुरमज्दा द्वारा निर्मित सृष्टि के विनाश हेतु इसे अमर करके मृत्यु एवं सर्वनाश का प्रतिनिधि बनाया । ॥बुन्दहिश्न् यश्त् 30, 29॥ कॅरॅसास्प ने इसका संहार कर दिया ।'

ऋग्वेद में अहि, वृत्र तथा दानु तीनों समान है ऐसा प्रतीत होता है । इस बात की पुष्टि शतपथ ब्राह्मण ॥4/4/53॥ के इस स्थल से होती है -

'स यद् वर्तमानं समभवत् तस्माद् वृत्रोऽथ यद् अपात् समभवत् तस्माद् अहिस्तद् दनुश्च, दनायूश्च मातेव च पितेव च परि जगृहतुः तस्माद् दानवः इत्याहुः।

ताड्य ब्राह्मण ॥13/4/1॥ में अहि को मेघों का प्रतीक माना है । वहाँ वर्णित है कि 'जब इन्द्र ने वृत्र का हनन किया तब भीषण गर्जना हुई । गर्जन एवं विद्युत् का यह वर्णन वृत्र के संदर्भ में इस बात का स्पष्ट संकेत करता है कि वृत्र मेघों की लाक्षणिक अभिव्यक्ति है ।

अतः यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि अहि 'सर्प' अर्थ में ही प्रयुक्त है । किन्तु अवान्तर कालीन साहित्य में इसका प्रयोग सर्प के अर्थ में होने लगा था, यह तो निश्चित है , जैसा कि अथर्ववेद तथा ब्राह्मणों में इसका प्रयोग प्राप्त होता है । अवेस्ता में 'अभि' सर्परूपी राक्षस का प्रतिनिधित्व करता है ﴾यस्न 9/7, 8, 11﴿ । इण्डो - यूरोपियन भाषा में भी यह 'सर्प रूप' में स्वीकार किया गया है ।

S.V. (The ety. of Yāska P.118) अहि' 'a serpent' is traced to √इ + आ + √हन् । विश्व की अनेक प्राचीनतम संस्कृतियों में अहि 'भौमिक जल' का प्रतीक समझा गया है ﴾हेनरिख ज़िमर, दि आर्ट आफ इण्डियन एशिया, मिथ्स् एण्ड सिम्बल्स इन इण्डियन आर्ट एण्ड सिविलिजेशन﴿ । अन्य भाषाओं में भी 'अहि' के 'समकक्ष' शब्द उपलब्ध होते हैं । जैसे- Greek - ~~Ex-s.~~ εχις Latin - anquis (serpent), ~~eyxelus.~~ 'εγχελυς' anguilla 'eel.'

'हनम्' शब्द की उत्पत्ति 'हन् हिंसागत्योः' से हुई है । द्वितीया, एकवचन का रूप है । सा०, मुद्गल - शत्रूणां शत्रून्वा हन्तारम्। अन्यत्र - ऋ० सं० ﴾1/118/9﴿ - शत्रूणां हन्तारम् ﴾2/13/5, 1/32/2-7, 2/12/3, 3/33/7, 10/133/2﴿ - मेघम् ﴾1/51/4, 5/32/2, 6/20/2, 10/67/12﴿ - अहिम् , ﴾1/80/13, 7/38/7﴿ - आगत्य हन्तारम् । ﴾1/103/7﴿ - अन्तरिक्षे वर्तमानम् मेघम् । ﴾1/187/6, 4/22/5, 4/38/1, 5/29/2, 3, 8, 5/30/6, 5/31/7, 6/17/9, 10﴿ - वृत्रम् । ﴾4/19/9﴿ - सर्पम् ﴾10/96/4﴿ - अहन्तन्यमपामा अम्बुदस्य मेघस्य । स्कन्द० - शत्रोहन्तारम् अहिनाम्नो वा असुरस्य,√हि गतौ, अगन्ता अनष्टा अहिः । वेंकट० - शत्रूणां हन्तारम् । सात्व० ﴾ऋ० का सु०भा०﴿ - शत्रु के वधकर्ता । **Griff. (The hymns of Rgd.) - serpant slayer. Wil. (Rgd.S.) - The destroyer of foes. Mac.D. -**

serpant or vritra killer. Lan. (A.S.R.) - the slaying of the dragon. M.W.-killing serpents or vritra. Grass. (Rgd.) - schlangen tödlet (serpant killer). Geld. (D.R.) - schlangen-tot ende (snake killer). प्रसंगानुसार 'अहि हनम्' का अर्थ 'शत्रु विनाशक' होगा, 'सर्प नाशक' नहीं ।

श्रवस्यम् - 'यशस्वी', 'श्रव' शब्द से 'भवे छन्दसि' से 'यत्' प्रत्यय, द्वितीया एकवचन । अश्वम् का विशेषण । सा०, - श्रवणीयं स्तोत्रम् तत्र भवम् । अन्यत्र - ऋ० सं० ॥1/61/5॥ - अन्नेच्छया अन्नलाभायेत्यर्थः, श्रवशब्दात्, 'सुप आत्मनः क्यच् क्यजन्तात् धातोः भावे 'अ प्रत्ययात्' ॥पा०सू० 3/3/102॥ इति अकारप्रत्ययः । ततः टाप् । सुपां सुलुक् इति तृतीयाया डादेशः, उदात्तनिवृत्तिस्वरेण तस्योदात्तत्वम् । ॥6/27/6॥ - श्रवोऽन्नं यशोवा ॥7/18/11॥ - यशस इच्छया अन्नेच्छया वा परुष्णयाः पार्श्वस्थयोः, ॥8/15/3॥ - श्रवस्यानि श्रवणीयान्यन्नानि यद्वा श्रवणार्हाणि यशांसि । स्कन्द० - श्रवः कीर्तिः, तद्यर्थे यत् प्रत्ययः । कीर्तिमन्तम् । वेंकट० - कीर्तिहेतुम् । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥- यशस्वी । Griff. (The hymns of Rgd.) - glorious. Wil. (Rgd.S.)- The object of praise. Mac.D. - glorious. Lan. (A.S.R.) - glory or fame. M.W. - to be swift. Grass. (Rgd.) - (renowned or celebrated) berühmte. Geld. (D.R.) - rühmlich(honourable).

तरुत्रम् - 'तारक', 'तॄ प्लवनतरणयोः' धातु से 'अशित्रादिभ्य इत्रोत्रौ ॥उ०सू० 4-612॥ से 'उत्र' प्रत्यय, व्यत्यय से आद्युदात्त तथा 'ग्रसितस्कभित०' आदि सूत्र से निपात तुन्नन्तात् तरुतृ शब्द से गुण के अभाव में यण् । नित् स्वर

होने से आद्युदात्त । सा0, मुद्‌गल - तरितारम् । स्कन्द0 - तरति प्लवनार्थः, प्लवनं च गमनं प्लवतेर्गत्यर्थत्वात् गन्तारं शत्रून् प्रति । वेंकट0 - तारकम् । सात्व0 ऋ0 का सु0भा0 - संरक्षक । Griff. (The hymns of Rgd.) - triumphant. Wil. (Rgd.S.) - the bearer (over dangers).

10. एतानि वां श्रवस्या सुदानू — एतानि । वाम् । श्रवस्या । सुदानू इति सुऽदानू ।

ब्रह्माङ्गूषं सदनं रोदस्योः । — ब्रह्म । आङ्गूषम् । सदनम् । रोदस्योः ।

यद् वां पज्रासो अश्विना हवन्ते — यत् । वाम् । पज्रासः । अश्विना । हवन्ते ।

यातमिषा च विदुषे च वाजम्।। — यातम् । इषा । च । विदुषे । च । वाजम् ।।

अन्वय - सुदानू ! वाम् एतानि श्रवस्या । ब्रह्म आङ्गूषं रोदस्योः सदनम् । अश्विना ! यत् पज्रासः वां हवन्ते, विदुषे इषा च वाजं च यातम् ।

अनुवाद - शोभन दान वाले ! तुम दोनों के ये [कर्म] श्रवणीय हैं । मन्त्रात्मक स्तोत्र [तुम्हारे लिए है] द्युलोक और पृथ्वीलोक में तुम्हारा निवास है । हे अश्विनों ! जब पज्रगण तुम दोनों का आह्वान करते हैं, तब अन्न और बल ज्ञानवान स्तोता के लिए ले आते हो ।

टिप्पणी -

सुदानू - 'शोभन दान वाले', 'सु' उपसर्ग पूर्वक, 'दानार्थक दा' धातु से उणादि 'नु' प्रत्यय, पुल्लिंग, सम्बोधन, द्विवचन । सा० - शोभनदानौ । अन्यत्र ऋ० सं० ।1/112/11। - शोभनदानावश्विनौ । ।3/58/7, 4/41/8। - शोभन फलस्य दातारौ, ।5/62/9। - शोभनदानौ । स्कन्द० - शोभनदातारौ । वेंकट० - शोभनदानावश्विनौ । सात्व० ।ऋ० का सु०भा०। - अच्छे दान वाले । Grass. (Rgd.) - gabenreiche.

ब्रह्म - 'मन्त्रात्मक', 'बृहि वृहि वृद्धौ' धातु से 'बृहेरमनलोपश्च' ।उ०सू० 4-585। अनुवृत्ति से 'मनिन्' प्रत्यय, न् का लोप तथा अमागम, 'मिदचोऽन्त्यात्परः' ।पा०सू० 1/1/47। से ऋकार से पर यणादेश तथा मनिन् के नित् होने से आद्युदात्त हुआ । सा० - मन्त्ररूपम्। अन्यत्र - ऋ० सं० ।1/37/4। - हविर्लक्षणमन्नमुद्दिश्य मनिनो नित्वादाद्युदात्तत्वम्, ।1/117/25। - मन्त्रात्मकं स्तोत्रम् ।6/16/36। - अन्नम् , ।7/22/3। - ब्रह्माणि ।8/1/3। - स्तोत्रमेव । स्कन्द० - स्तुतिलक्षणम्। वेंकट० - बृहच्च । सात्व० ।ऋ० का सु०भा०। स्तोत्र । Griff. (The hymns of Rgd.) - prayers. Wil. (Rgd.S.) - prayer. Mac.D. - priest. Lan. (A.S.R.) - holy. M.W. - a priest. Grass. (Rgd.) - preis (praise) . Geld. (D.R.) - feierliche (solemn). F.S. (The V. ety.) - 'Brahma' derived from √Brh as Brham 'to expand' extend of प्राणादेवेमं लोकं प्रावृहत् कौषी० ब्रा० 6/10, छान्दो० उप० 4/17 । तदेतद् ब्रह्म यशश्रिया परिवृद्रम् , जैमि० उप० ब्रा० 4/24/11 ब्रह्म हं तुंमन् यशसा श्रिया परिवृद्धो भवति य एवं वेद । Some times the word 'Brahma' as the name of Vāk is derived from Bhr with Vi, which even though not so much a philological fact, goes to support the same thing. European scholars have connected the word 'Brahma' or its root √बृह with Irish Bricht 'magic' (Oldenburg L.V. 46 n.I.) and Brager 'poetry' and

Braggi, 'the god of poetry' (Hille brant, Art 'Brahman' in ERE Griswold 'Brahman) the original meaning of Brahma, according to them, would be 'a magical formula or a spell'. In R.V. also the word may be at some places. taken to mean a 'prayer or a magical formula' (1/82/6, 2/7/17, 2/24/3, 5/40/6, 6/65/5 etc.). There is ample proof in vedic literature to show that prayer was considered to 'increase''expand' 'extend', 'magnify' or 'Strengthen' the worshipper as well as the deities worshipped. (R.V. 4/17/1. K.S. 7/10 etc.). प्रसंगानुसार ब्रह्म का 'मन्त्र' अर्थ ही अधिक तर्कसंगत है ।

आङ्गूषम् - 'स्तोत्र', आङ् उपसर्ग पूर्वक, 'घुषि' धातु से 'घञ्' प्रत्यय, 'घु' 'गू' आदेश तथा आङ् के ङकार का लोप न होने से 'आङ्गूष' बना। नपुंसकलिंग, प्रथमा, एकवचन । सा० - आघोषणीयम् । अन्यत्र - ऋ० सं० ॥1/61/2-3॥ - स्तोत्रमाघोषम्.1/61/1, 6/34/5, 7/24/3॥ - स्तोत्रम् । निरु० ॥5/2/44॥ - आङ्गूषः स्तोम आघोषः । स्कन्द० - स्तोत्रं व शास्त्रलक्षणम्। वेंकट ० - स्तोत्रम्। सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ - घोषणीयम्। Griff. (The hymns of Ṛgd.) - praise. Wil. (Ṛgd.S.) - resounding. Mac. D. - song of praise. M.W. - praising aloud. Geld. (Rgd.) - lobgesang (song of praise). S.V. (The ety of Yāska) - 'a kind of 'Stoma' has been rendered as 'आ-घोष' probably from √घुष् गृ which is defective phonologically. The word seems to be of technical nature and the ground for the etymology is obscure.

रोदस्योः - 'द्युलोक और पृथ्वीलोक में', 'रुधृ रोधने' धातु, 'क्वसु' और स्त्री-लिंग में 'ङीप्' प्रत्यय, ध का द में परिवर्तन होने पर रोदसी शब्द बना । स्त्रीलिंग, सप्तमी, एकवचन में 'रोदस्योः' रूप निष्पन्न हुआ । सा० - द्यावापृथिव्यात्मना वर्तमानयोः युवयोः । उक्तं च यास्केन - तत्काश्विनौ द्यावापृथिव्यावित्येके ॥निरु० 12/1॥ इति तथा च तैत्तिरीयकम् 'इमे अश्विना संवत्सरोऽग्निर्वैश्वानरः ॥तै०सं० 5/6/4/1॥ । अन्यत्र - ॥ऋ० सं० ॥1/33/5, 6/2/11, 7/6/2, 7/6/6, 8/72/13, 9/90/1, 10/1/2॥ - द्यावापृथिव्योः । निरु० ॥6/1/3॥ - विरोधनात् रोधसी, यस्मादेते विविधानि भूतानि रुन्धः इति । स्कन्द०, वेंकट० - द्यावापृथिव्योः उभयोरपि । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ - द्युलोक और पृथ्वीलोक में । Wil. (Rgd.S.), Mac.D., M.W. - heaven and earth. Lan. (A.S.R.) - the two worlds, heaven and earth. Grass. (Rgd.) - Erd' und Himmel (earth and heaven). Geld. (D.R.) - beiden welton (earthy pleasure. S. V. (The ety. of Yāska) - 'heaven and earth' is traced to 'वि + रुधृ', 'which enclose many kinds of creatures'. F.S. (The V. ety.) - (1) Dyāvā-Prithivi as heaven and earth. (2) Dyāvā - Prithivi as differentiated Spirit and Matter derived from Rud 'to sound' to cry to weepout. Originally 'Rodasī' like 'Krandasī' might have devoted the noisy or weeping Heaven and Earth is a country abounding in storms and rains. Later, when Heaven and Earth became the symbols of creation and then the differentiated Spirit and Matter as apposed Solilam (undifferentiated Stage of Spirit & Matter) they could easily be called so 'रोदसी' ।

11. सुनोर्मानेनोश्विना गृणाना वाजं   सूनोः। मानेन । अश्विना । गृणाना । वाजम् ।

विप्राय भुरणा रदन्ता ।   विप्राय । भुरणा । रदन्ता ।

अगस्त्ये ब्रह्मणा वावृधाना   अगस्त्ये । ब्रह्मणा । ववृधाना ।

सं विश्पलां नासत्यारिणीतम्।।   सम् । विश्पलाम् । नासत्या । अरिणी-तम् ।।

अन्वय - भुरणा अश्विना । सूनोः मानेन गृणाना, विप्राय वाजं रदन्ता । नासत्या । अगस्त्ये ब्रह्मणा ववृधाना विश्पलां सम् अरिणीतम् ।

अनुवाद - हे पालक अश्विनी कुमारों । पुत्र प्राप्ति हेतु, मान से स्तुति किये जाने पर, ब्राह्मण को अन्न-प्रदान किया । हे सत्यपालक अश्विनों । अगस्त्य के मंत्रों से वर्धित होकर विश्पला को भली भाँति चलने योग्य बना दिया ।

टिप्पणी -

गृणाना - 'स्तुति किये जाने पर', 'गृ शब्दे' धातु, व्यत्यय से कर्मणि 'शतृ' प्रत्यय, 'प्वादीनां'० सूत्र से ह्रस्व । सा० - स्तूयमानौ । अन्यत्र - ऋ० सं० 13/62/18, 5/41/19, 6/63/2, 7/75/5, 8/101/8। - स्तूयमानौ । स्कन्द०, वेंकट० - स्तूयमानौ । सात्व० ऋ० का सुभा०। - स्तुति होने पर । Griff. (The hymns of Rgd.) - hymned. Wil. (Rgd.) - praises.

Mac. D. - singer, Lan. (A.S.R.) - praise. M.W. - to mention with praise, Geld. (D.R.) - Redegewaltigen (powerful speech). अन्य भाषाओं में - Greek - 'γηρυς' (speech', Voice). Doric - 'γαρυεν' (speak). Latin - 'garrio' (talk). English - call. Old. Prussian - 'girtwei' (to praise). Lithuanian - 'giriu''girti'.

भुरणा - 'पालक' 'भुरण धारणपोषणयोः' धातु, 'कण्ड्वादि पचाद्यच्' से 'अच्' प्रत्यय, अत् का लोप, 'सुपां सुलुक्0' से विभक्ति को आकार, 'आमन्त्रितस्य च' से निघात । सा0, मुद्गल - भर्त्तारौ पोषकौ । स्कन्द0 - गन्तारौ शत्रून् यज्ञान् वा प्रति 'भुरण्यति' ।निघ0 2/14। इति गतिकर्मा । वेंकट0 - भरणशीलौ । सात्व0 ।ऋ0 का सु0भा0। - सबके पोषणकर्त्ता । Griff. (The hymns of Rgd.) - Ye swift ones. Wil. (Rgd.S.) - nourishers (of men). Mac.D. - active, Lan. (A.S.R.) - moving quickly or active. Grass. (Rgd.) - schnelle (swift). Geld. brachtet. भुरणा का 'पालक' अर्थ ही संगत है ।

अगस्त्ये - अगस्त्य पौराणिक व्यक्तित्व वाले एक ऋषि का नाम है । सायण के अनुसार यह खेल के पुरोहित थे, सीग भी सायण का ही समर्थन करते हैं किन्तु पिशल के अनुसार खेल विवस्वत नामक एक देवता है । गेल्डनर ने ऋ0 ।7/33/10-13। के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि वशिष्ठ के भाई के रूप में अगस्त्य मित्र और वरुण के अद्भुत पुत्र हो सकते हैं । अथर्ववेद ।2/32/3, 4/37/1। में यह अभिचार से सम्बन्धित प्रतीत होते हैं और इनका नाम ऋषियों अथर्व0 ।18/3/15। की तालिका में सम्मिलित भी है । मैत्रायणी संहिता

(4/2/9) में इन्हें कानों पर एक विचित्र चिह्नवाली (विष्टप कार्यः) गायों से सम्बन्धित बताया गया है ।

वावृधाना – 'वर्धित होकर', 'वृधु वर्धने' धातु, लिट्, 'कानच्' प्रत्यय तथा संहिता में छान्दस् अभ्यास का दीर्घत्व, 'सुपां सुलुक्०' से आकार प्राप्त होने पर 'वावृधाना' रूप निष्पन्न हुआ । सा०, मुद्गल० – प्रवर्धितौ इति । अन्यत्र (ऋ०सं० (1/93/6) वर्धमानौ युवाम्। स्कन्द० – अत्यर्थं वर्धमानौ । वेंकट० – वर्धमानौ । सात्व० (ऋ० का सु०भा०) – वृद्धिगत होकर । Griff. (The hymns of Ṛgd.) – glorified. Wil. (Ṛgd.S.) – exalted by. Grass. (Ṛgd.) – verherrlichet (to glorify). Geld. (D.R.) – erbaut machtet (to build up mighty).

अरिणीतम् – 'चलने योग्य बना दिया', 'री गतिरेषणयोः' धातु लङ् लकार, मध्यम पुरुष, द्विवचन । सा०, मुद्गल – पुनः आयस्या जङ्घया समयोजयतम् । स्कन्द० – अगच्छतम् । वेंकट० – गतवन्ताविति । (ऋ०सं० (1/61/7) – निरगमयत उत्पादितवन्त । निघ० (2/14) – रिणाति इति गतिकर्मा । Griff. (The hymns of Ṛgd.) – established. Wil. (Ṛgd.S.) – restored. Lan. (A.S.R.) – able to run. सात्व० (ऋ० का सु०भा०) – चंगा बना दिया । अन्य भाषाओं में – Latin -rī-vus (stream). English-run. German-rinnen.

12. कुह यान्ता सुष्टुतिं काव्यस्य दिवो नपाता वृषणा शयुत्रा ।   कुह । यान्ता । सुऽस्तुतिम् । काव्यस्य । दिवः । नपाता । वृषणा । शयुऽत्रा ।

हिरण्यस्येव कुलशं निखातम् हिरण्यस्य ऽ इव । कुलशम् । निऽखातम् ।

मुदूपथुर्दशमे अश्विनाहन् ।। उत् । ऊपथुः । दशमे । अश्विना । अहन् ।।

अन्वय – दिवः नपाता वृषणा अश्विना । सुष्टुतिं काव्यस्य शयुत्रा कुह यान्ता । दशमे अहन् हिरण्यस्य कलशम् इव निखातम् उत् ऊपथुः ।

अनुवाद – हे द्युलोक के पुत्र, कामना सेचक अश्विनों । शोभन स्तुति को सुनकर काव्य के निवासस्थान में कहाँ जाते हो । दसवें दिन, सोने के कलश के समान भूमि में गाड़े गये ॥रेभ॥ को ऊपर उठाया ।

टिप्पणी –

दिवः नपाता – 'द्युलोक के पुत्र', दिवः नपाता शब्द के दो अर्थ हो सकते हैं – ॥1॥ 'दिवः न पाता' अर्थात् द्युलोक को न गिराने वाला और ॥2॥ दिवः नपाता अर्थात् द्युलोक का पुत्र । न पातयतीति नपात । नञ् पूर्वक 'पत्' धातु से 'घञ्' प्रत्यय, 'नभ्राण्नपात्0' से नञ् प्रकृतिभाव, 'सुपां सुलुक0' से विभक्ति को आकार, 'आमन्त्रितस्य च' से इस पद समुदाय में आद्युदात्त हुआ और पादादि में होने से आष्टमिक निघात का अभाव । सा0,मुद्गल – द्योतमानस्य सूर्यस्य पुत्रौ । स्कन्द0 – दिवः पौत्रौ । वेंकट0 – आदित्यपुत्रौ । सात्व0 ॥ऋ0 का सु0भा0॥ – द्यु को न गिरने देने वाला । निरु0 ॥8/2/3॥ – 'नपादित्यननन्तरायाः' प्रजाया नामधेयं निर्णततमा भवति, अर्थात् पिता का अनन्तर सन्तान पुत्र हुआ और अननन्तर पौत्र । पौत्र को नपात् इसलिए कहते हैं क्योंकि पिता से नत पुत्र और पुत्र से नततम पौत्र होता है । अर्थात् तीसरी पीढ़ी । ऐतिहासिकों के अनुसार – दिवः पुत्रो बृहद्भानुश्चक्षुरात्मा विभावसुः । सविता

स अचीको कोऽभानुरागवहो रविः । पुरा विवस्वतः सर्वे तेषां ज्येष्ठः तथापरः। एवं दिवः पुत्रो विवस्वान तस्य पुत्रावश्विनौ । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - ye sons of heaven. Wil. (Rgd.S.), Mac.D., - sons of heaven. Lan. (A.S.R.) - son of lament. M.W. - son of heaven, Grass. (Ṛgd.) - Himmelsöhne (sons of heaven). Geld.(D.R.) - Himmel senkel (son of heaven). अन्य भाषाओं में 'VeIIodES' (youngones). Latin -'Vepōtem' (grandson). AS. - 'nefa' (son's son or brother's son). यहाँ 'द्युलोक का पुत्र' यही अर्थ संगत है ।

शयुऽत्रा - 'निवास स्थान में' अथवा 'शयु के रक्षक', शयुत्रा शब्द की व्युत्पत्ति दो प्रकार से की जा सकती है - ॥1॥ शीङ्. शयने धातु से 'अभित्रादिभ्य इत्रोत्रौ' सूत्र से उत्र प्रत्यय, इस व्युत्पत्ति के अनुसार आद्युदात्त होगा । ॥2॥ शयुं त्रायते इति शयुत्रौ, शयु शब्द, 'त्रैङ् पालने' धातु, 'आदेचः' सूत्र से आत्व करने पर शयुत्रा बना । दूसरी व्युत्पत्ति के अनुसार शयुत्रा अश्विनीकुमारों का विशेषण बन जाता है । सा० - शयने निवासस्थाने वर्तमानस्य यद्वा अश्विनोविशेषणम् शयुनाम्नस्त्रायकौ युवाम् । अन्यत्र - स्कन्द० - शयने । वेंकट० - असुरनिलये । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - home of Kāvya. Wil. (Ṛgd.S.) - dwelling of Kāvya. S.V. (The ety. of Yāska) - 'शयुत्रा' has been rendered as 'शयने' but Rajavade, V.K.(Yaska's Nirukta Text and Exegetical notes pg. 492) quoting a parallel passage, tries to show that it means the 'saviour of the life of the infant, 'शयु'- This etymology is interesting and worthy of consideration, but its acceptance is rendered difficult by the fact that the word is accented. It could have the

suggested interpretation only if it had been in the vocative case and then unaccented, being in that case an attribute of the Asvins. Grass. (Rgd.) - den Saju schutzend (protector of Shayu). 'शयुत्रा' शब्द का अर्थ कतिपय भाष्यकारों ने 'शयु का रक्षक' ग्रहण किया है। यह अर्थ ग्रहण करने से 'शयुत्रा' अश्विनौ का विशेषण पद बन जाता है। तब 'वृषणा' और 'दिवोनपाता' आदि विशेषण और सम्बोधन पद की भाँति 'शयुत्रा' का भी निघात होना चाहिये क्योंकि विशेषण होने से वह सम्बोधन पद भी होगा। परन्तु यहाँ पदपाठ में अन्तोदात्त हुआ है। स्वरांकन के आधार पर शयुत्रा का अर्थ 'शयु का रक्षक' नहीं अपितु 'शयु का निवास स्थान होगा'।

निऽखातम् - 'भूमि में गाड़े गये', नि उपसर्ग, 'खनु अवदारणे' धातु, कर्मणि 'क्त' प्रत्यय, 'यस्य विभाषा', 'इट् प्रतिषेधः', 'जनसनखनां स झलोः' से आत्व, 'गतिरनन्तरः' से 'गति' संज्ञा का प्रकृतिस्वरत्व। द्वितीया, एकवचन। सा० - निवसन्तम्। अन्यत्र - ॠ० सं० ॥8/66/4॥ - निवसन्तम्। स्कन्द० - सन्तम्। सात्व० ॥ॠ० का सु०भा०॥ - गड़े हुए। Griff. (The hymns of Rgd.), Wil. (Rgd.S.) - burried. Grass. (Rgd.) - Geld. (D.R.) - Vergrabnen (burried).

हिरण्यस्य - 'सोने के' 'हर्य्य कान्तौ' धातु, 'न्यत्' प्रत्यय, षष्ठी, एकवचन। सभी भाष्यकारों ने 'स्वर्ण' अर्थ ग्रहण किया है। यास्क ॥निरु० 2/3॥ ने हिरण्य का निर्वचन इस प्रकार किया है - 'ह्रियत आयम्यमानमिति वा, ह्रियते जनाज्जनमिति वा, हितं-रमणं भवतीति वा हृदयं रमणं भवतीति वा, हर्यतेर्वा स्यात् प्रेप्सा - कर्मणः। S.V. (The ety. of Yāska)- 'हिरण्य' is traced to √हृ as 'it is carried home by people after it has been fashioned

into ornaments' or 'it is carried from person to person' or to √हर्य 'to long for'. F.S. (They V. ety.) - Gold, supposed to be liked by gods, from Hiramaniyam, Hitramaniyam (Un.S. S. 4/49) from Hary 'to desire'. अन्य भाषाओं में 'हिरण्य' के समान शब्द- Avesta - 'Zaranya'. Hungarian - 'arany' (gold), Vogul - 'suren', 'seren'. Mordwin - Sirne'. Zyryan, Votyak-'zarni', Latin - 'aurum' (Gold), 'helvus' (yellow) German - 'geld' (yellow), Old Bulgarian - 'Zelenu' (green).

13. युवं च्यवानमश्विना जरन्तं — युवम् । च्यवानम् । अश्विना । जरन्तम् ।
पुनर्युवानं चक्रथुः शचीभिः । — पुनः । युवानम् । चक्रथुः । शचीभिः ।
युवो रथं दुहिता सूर्यस्य — युवोः । रथम् । दुहिता । सूर्यस्य ।
सह श्रिया नासत्यावृणीत ।। — सह । श्रिया । नासत्या । अवृणीत ।।

अन्वय - नासत्या अश्विना । युवं शचीभिः जरन्तं च्यवानं पुनः युवानं चक्रथुः । सूर्यस्य दुहिता श्रिया सह युवोः रथम् अवृणीत ।

अनुवाद - असत्य से रहित अश्विनों । तुम दोनों ने अपने कार्यों के द्वारा वृद्ध च्यवन को फिर से युवा बना दिया । सूर्य की पुत्री ने अपनी शोभा के साथ तुम दोनों के रथ को वरण किया ।

टिप्पणी -

च्यवानम् - 'च्यवान को', 'च्युङ्, प्लुङ् गतौ' धातु, 'अनुदात्तेश्च हलादेः' से 'युच्' प्रत्यय, पुल्लिंग, द्वितीया, एकवचन। यास्क (निरु० 4/5/38) ने निरुक्त में तीन प्रकार से निर्वचन किया है - (1) 'च्यवन ऋषिर्भवति' (2) 'च्यावयिता स्तोमानम्' मन्त्र समूहों का उपदेष्टा और (3) 'च्यवानमित्यप्यस्य निगमा भवन्ति' च्यवान नामक मन्त्र भी उपलब्ध होते हैं। ऋग्वेद में च्यवन या च्यवान एक ही प्राचीन ऋषि के दो नाम मिलते हैं। ऋग्वेद में इसे एक वृद्ध और जराक्रान्त व्यक्ति के रूप में दिखाया गया है, जिन्हें अश्विनों ने पुनः युवावस्था प्रदान कर पत्नी के लिए स्वीकार्य बनाया। शतपथ ब्राह्मण (4/1/5/1 और बाद) में भी च्यवन ऋषि की कथा उपलब्ध होती है। परन्तु ऋग्वेद से थोड़े भिन्न रूप में। पंचविंश ब्राह्मण (13/5/12, 10/3/6, 14/6/10, 11/8/11) में च्यवन का सामनों के एक द्रष्टा के रूप में उल्लेख है। ऐतरेय ब्राह्मण (8/21/4 पिशल: उ० पु० 1,75) में च्यवन द्वारा इन्द्र महाभिषेक के साथ शर्यात के उद्घाटन का वर्णन मिलता है।

युवानम् - 'युवा', 'यु मिश्रणामिश्रणयोः' धातु, 'क्वनिप् प्रत्यय', पुल्लिंग, द्वितीया, एकवचन। सा० - पुनर्यौवनोपेतम्। अन्यत्र - ऋ० सं० (1/71/8) - तरुणं जरारहितमित्यर्थः, (1/118/6) - यौवनोपेतम्। स्कन्द० - तरुणम्। सात्व० (ऋ० का सु०भा०) - तरुण। Griff. (The hymns of Rgd.), Wil. (Rgd.S.) - Youth. Lan. (A.S.R.) - Young. Grass. (Rgd.), Geld. (D.R.)- Jung (young). अन्य भाषाओं में - Latin - 'juven-i-s' (young). German - 'yuvunga', 'yunga'. English - young.

शचीभिः - 'कार्यों के द्वारा', शची शब्द, स्त्रीलिंग, तृतीया, बहुवचन। 'शार्ङ्गरवादिङीनन्तः' (पा०सू० 4/1/73) से आद्युदात्त। सा०-भैषज्यलक्षणैः

कर्मभिः । स्कन्द० - स्वाभिः प्रज्ञाभिः कर्मभिः वा । सात्त्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ - शक्तियों से । निघ० ॥2/1॥ - शचीति कर्मनाम । ऋ० सं० ॥1/30/15, 1/62/12, 1/116/22, 1/118/6॥ - कर्मभिः ॥1/112/8॥ - कर्मभि प्रज्ञाभिर्वा । Griff. (The hymns of Rgd.) - ye with the aid of your great powers. Wil. (Rgd.S.) - by your power. Mac. D. - skill, Lan. (A.S.R.) - might or help. M.W. - the rendering of powerful or mighty help. Grass. (Rgd.) - machtet (mighty). Geld.(D.R.) - künste (skill).

अवृणीत् - 'वरण किया', 'वृङ् सम्भक्तौ' धातु, लङ् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन । सा० - मुद्गल - समभजत आगत्यारूढवतीत्यर्थः । स्कन्द० - सम्भक्तवती, आरूढेत्यर्थः । सात्त्व० - चुना । ऋ० सं० ॥1/32/3॥ - वृतवान् । Griff. (The hymns of Rgd.) - to bear her. Wil. (Rgd.S.) - invested. Lan. (A.S.R.) - Choosed. अन्य भाषाओं में - German - 'Wohl' (Choice, selection) 'Whence' - 'wählen' (select). Chaucerian- 'wail' (select). English - 'well' (according to one's wish).

दुहिता - 'पुत्री', दुहिता शब्द की व्युत्पत्ति दो प्रकार से हो सकती है - ॥1॥ दूरे + हिता और ॥2॥ 'दुह्' तथा 'गत्यर्थक इण्' धातु से तृच् प्रत्यय करने पर दुह् + इण् + तृच् = दुहितृ , स्त्रीलिंग, प्रथमा, एकवचन में दुहिता बना । सात्त्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ - पुत्री । ऋ० सं० ॥1/34/5, 3/53/15, 4/43/2, 5/80/5,6॥ - पुत्री । निरु० ॥3/1॥ - 'दुहिता, दुर्हिता, दूरे हिता, दोग्धेर्वा' अर्थात् वह जहाँ दी जाती है वहीं अहितकारक होती है, अथवा दूर ही हितकारक होती है अथवा अपने पितृ-कुल को दुहने के कारण √दुह् से दुहिता बनेगा । Griff.

•(The hymns of Ṛgd.), Wil. (Ṛgd.S.), Mac.D., Lan. (A.S.R.), daughter. M.W. - daughter (the milker or drawing milk from her mother). S.V. (The ety. of Yāska) - दुहितृ is derived from दुहिता = दूरेहिता 'good when at a distance'. Grass. (Ṛgd.), Geld. (D.R.) - tochter (daughter). अन्य भाषाओं में - Zend - daughdar, Greek - 'θυγάτηρ', Gothic - dauhtar. Lithuanian - dukte, Slavaric - dusti.

14. युवं तुग्राय पूर्व्येभिरेवैः
पुनर्मन्यावभवतं युवाना ।
युवं भुज्युमर्णसो निः
समुद्राद् विभिरूहथुर्ऋज्रेभि-
रश्वैः ।।

युवम् । तुग्राय । पूर्व्येभिः । एवैः ।
पुनःऽमन्यौ । अभवतम् । युवाना ।
युवम् । भुज्युम् । अर्णसः । निः ।
समुद्रात् । विऽभिः । ऊहथुः । ऋज्रेभिः ।
अश्वैः ।।

अन्वय - युवाना । युवं पूर्व्येभिः एवैः तुग्राय पुनः मन्यौ अभवतम् । युवं भुज्युम् अर्णसः समुद्रात् विभिः ऋज्रेभिः अश्वैः न्यूहथुः ।

अनुवाद - हे युवा । तुम दोनों पहले से ही स्तोत्रों के द्वारा स्तुत्य थे परन्तु तुग्र के लिए पुनः स्तुत्य हो गये । तुम दोनों ने भुज्यु को गभीर समुद्र से पक्षी के समान क्षिप्रगामी नौकाओं और शीघ्रगामी अश्वों के द्वारा पूर्ण रूपेण ऊपर उठाया ।

टिप्पणी -

एवै: - 'स्तोत्रों के द्वारा', 'इण् गतौ' धातु, 'इण्शीङ्भ्यां वन्' ॥उ० सू० 1/150॥ से भाव अर्थ में 'वन्' प्रत्यय, नित् होने से आद्युदात्त, तृतीया, बहुवचन । सा०, मुद्गल - स्तुत्यं प्रति गन्तृभिः स्तोत्रैः । अन्यत्र - ॠ० सं० ॥1/62/8॥ - गमनैः । स्कन्द० - पालनैः कामैर्वा, यस्मात् पूर्वं पालितवन्तौ कामान् वा सम्पादितवन्तौ तस्मादित्यर्थः । वेंकट० - गमनैः पुनः पुनः स्तोतव्यौ । सात्त्व० ॥ॠ० का सु०भा०॥ - कर्मों से । Griff. (The hymns of Rgd.)- according to, Wil. (Rgd.S.)-praise. यद्यपि 'गत्यर्थक इण्' धातु से व्युत्पन्न होने के कारण एवैः का शाब्दिक अर्थ 'गमनैः' है, किन्तु यहाँ भावार्थ में प्रयुक्त होने से इसका अर्थ स्तुत्य के समीप पहुँचने वाला 'स्तोत्र' ही उचित है ।

पुनः ऽ मन्यौ - 'पुनः स्तुत्य', 'पुनः' शब्द पूर्वक', 'मन् ज्ञाने' धातु, पचादि होने से अच् का आगम 'छन्दसि च' से 'अर्ह' अर्थ में 'यः' प्रत्यय करने पर प्रथमा, द्विवचन में मन्यौ रूप निष्पन्न हुआ । सा०, मुद्गल - पुनरपि इदानीं स्तोतव्यौ । अत्र स्तुत्यर्थः, मन्यतेस्तौतीति इति मना स्तुतिः । स्कन्द० - पुनः पुनः स्तुत्यौ काम्यौ वा । वेंकट० - पुनः पुनः स्तोतव्यौ । निघ० ॥3/14॥ में अर्चना कर्मों में तथा ॥2/6॥ में मन्य शब्द कान्तिनामों में संकलित है । सात्त्व० ॥ॠ० का सु०भा०॥ - फिर एक बार सम्माननीय । Griff. (The hymns of Rgd.) - again remembered. Wil. (Rgd.S.) - again adored (by him). Mac. D. - thinking again for oneself. Lan. (A.S.R.)- again minded. Grass. (Rgd.) - (Erinnert) reminded.

विऽभिः - 'पक्षियों ॥के समान क्षिप्रगामी नौकाओं॥ के द्वारा,' 'गत्यर्थक वी' धातु, तृतीया, बहुवचन । सा० - गन्तृभिः नौभिः । अन्यत्र - ॠ० सं०

॥1/46/3॥ – अश्वैः, वी गत्यादौ । वियन्ति गच्छन्तीति वयः अश्वाः, औणादिको डिप्रत्ययः । ॥1/119/4॥ – अश्वैः । निरु० 2/2॥ – विरिति शकुनि नाम, वेतेर्गतिकर्मणः । स्कन्द० – वयः पक्षिणः तत्सदृशैः । वेंकट० – गन्तृभिः । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ – पक्षी जैसे उड़ने वाले यानों से । Griff. (The hymns of Ṛgd.) – flow with swift wings. Wil. (Ṛgd.S.) – with swift ships. Grass. (Ṛgd.) – swift like thought (Gedankenschschvellen). Geld. (D.R.) – like a bird (vögelu).

ऋज्रेभिः – 'शीघ्रगामी', 'ऋज् गतिस्थानार्जनोपार्जनेषु' धातु, 'रन्' प्रत्यय, रन् प्रत्ययान्त निपात, 'बहुलं छन्दसि' से 'भिस्' को 'ऐस्' हुआ, तृतीया, बहुवचन । 'अश्वैः' का विशेषण । सा०, मुद्गल – शीघ्रगतियुक्तैः । स्कन्द० – ऋजुगामिभिः स्वेभिः अश्वैः । वेंकट० – ऋजुगामिभिः । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ – शीघ्रगामी । Griff. (The hymns of Ṛgd.) –(with horses) brown of hue. Wil. (Ṛgd.S.) – rapid. Geld. (D.R.)– (white) Schimmel/ ऋग्वेद में केवल इसी मन्त्र में प्रयुक्त हुआ है ।

15. अजोहवीदश्विना तौग्र्यो वां अजोहवीत् । अश्विना । तौग्र्यः । वाम् ।

प्रोळ्हः समुद्रमव्यथिर्जगन्वान् । प्रऽऊळ्हः । समुद्रम् । अव्यथिः । जगन्वान् ।

निष्टमूहथुः सुयुजा रथेन निः । तम् । ऊहथुः । सुऽयुजा । रथेन ।

मनोजवसा वृषणा स्वस्ति ।। मनःऽजवसा । वृषणा । स्वस्ति ।।

अन्वय – वृषणा अश्विना । तौग्र्यो समुद्रं प्रोळ्हः अव्यथिः जगन्वान् । वाम् अजोहवीत् तं मनोजवसा सुयुजा रथेन स्वस्ति न्यूहथुः ।

अनुवाद – हे कामनासेचक अश्विनों । तुग्र का पुत्र समुद्र में तुम दोनों की सहायता से, बिना किसी कष्ट के चला गया । जब तुम दोनों का आह्वान किया, तब उसे मन के समान तीव्रगामी, भलीभाँति जुते हुए, रथ के द्वारा कुशलतापूर्वक {पिता के घर} पहुँचा दिया ।

टिप्पणी –

अव्यथिः – 'बिना किसी कष्ट के', न व्यथिः इति अव्यथिः, नञ् तत्पुरुष समास, 'व्यथ् भयचलनयोः' धातु, 'इन्' प्रत्यय । सा०, मुद्गल – व्यथां पीडाम् अप्राप्त एव सन् । अन्यत्र – ऋ० सं० {1/112/6} – व्यथारहिताभिः {7/69/7, 8/2/24, 9/48/3} – व्यथारहितः । स्कन्द० – अविकलचित्तः स्थिरयुष्मद्भक्तिरित्यर्थः । वेंकट० – भवदाश्रयादव्यथां गतः । सात्व० {ऋ० का सु०भा०} – किसी प्रकार की पीड़ा को न प्राप्त होकर । **Lan. (A.S.R.) – without any feeling of painful unrest. Mac.D. – without suffering. M.W. – without pain.**

समुद्रम् – 'सम्' और 'उत्' उपसर्ग पूर्वक 'द्रु' धातु, उकार का लोप । निरु० {2/3} – समुद्रः कस्मात् ? समुद्द्रवन्त्यस्मादापः, समभिद्रवन्त्येनमापः, सम्मोदन्तेऽस्मिन् भूतानि, समुदको भवति, समुनत्तीति वा । अर्थात् इस सागर से जल तरंगों के रूप में ऊपर उठते हैं, अथवा इसको जल सब ओर से इकट्ठे होकर प्राप्त होते हैं, अथवा समुद्र में सब जलचर खुश रहते हैं या बहुत जलवाला होता है या वह भिगोता रहता है । **S.V. (The ety. of Yāska) – 'a sea' is traced to √द्रु lit. 'that from which waters flow' or 'that to which**

waters flow' and to √उन्द् 'to wet'. The Contamination of √उद् and √द्रु may have facilitated र् in समुद्र । F.S. (The V. ety.) - (1) Apah waters from Sam + Dru तधत्तसमद्रवत् तस्मात्तसमुद्र उच्यते - (G.B. 2/1/7). (2) The centre of all Āpah, hence the centre of all things. य एवायं पवत एष एवतं समुद्रं एतं हि संद्रवन्तं सर्वाणि भूतान्यनु संद्रवन्ति (J.UP. 1/25/4). Ocean, going alro-und from Dru with Sam. 'तस्मादिमालनोकान्त्सर्वतः समुद्रः पर्येति' (S.B. 9/2/2/3). Grass. (Rgd.), Geld. (D.R.) - Meer (sea). अन्य सभी भाष्यकारों ने 'समुद्र' का अर्थ 'सागर' ही ग्रहण किया है ।

मनःऽजवसा - 'मन के समान शीघ्रगामी' 'मन्' शब्द पूर्वक, 'गत्यर्थक जु' धातु, 'असच्' प्रत्यय, नपुंसकलिङ्ग, तृतीया, एकवचन । 'रथ' का विशेषण। 'सुपां सुलुक्0' से विभक्ति को आकार । पादादि में होने से आमन्त्रित निघात का बाध करके षाष्ठिक आद्युदात्त हुआ है । 'मनसो जव इव जवो ययोः तौ' । सा0, मुद्‌गल - मनोवद्वेग युक्तौ । स्कन्द0 - मनस्तुल्यवेगेन । वेंकट0 - मनोवेगेन । सात्व0 ॥0 का सु0भा0॥ - मन के तुल्य वेगवान् । Griff. (The hymns of Rgd.), Wil. (Rgd.S.) - swift as thought. Mac.D., M.W. - swift like mind. Grass. (Rgd.), Geld. (D.R.) - Gedanken Schenellen (swift like mind). अन्य भाषाओं में 'मन' शब्द के रूप -Greek- 'ue'vos' (mind, spirit), Latin - 'miner-va' (the goddess gifted with understanding).

16. अजोहवीदश्विना वर्तिका वामास्नो अजोहवीत्।अश्विना।वर्तिका।वाम्।आस्नः।
यत्सीममुञ्चतं वृकस्य । यत् । सीम् । अमुञ्चतम् । वृकस्य ।

वि जुयुषा ययथुः सान्वद्रेर्जातं वि । जुयुषा । ययथुः । सानु । अद्रेः ।

विष्वाचो अहतं विषेण ।।   जातम् । विष्वाचः । अहतम् । विषेण ।।

अन्वय – अश्विना । वर्तिका याम् अजोहवीत् यत् सीं वृकस्य आस्नः अमु चतम् ।
जयुषा सानु अद्रेः वि ययथुः । विष्वाचः जातं विषेण अहतम् ।

अनुवाद – हे अश्विनों । वर्तिका ने तुम दोनों का आह्वान किया, जब उसे वृक के मुँह से छुड़ाया । जयशील रथ के द्वारा पर्वत शिखर को पार किया । विष्वाच के पुत्र को विष से मारा ।

टिप्पणी –

अजोहवीत् – 'आह्वान किया', 'यङ्लुगन्त ह्वेञ् आह्वाने' धातु से लङ् , 'यङो वा' से तिप् तथा इट् का आगम, 'अभ्यस्तस्य च' से द्विवचन से पूर्व ही ह्वेञ् का सम्प्रसारण, लङ् लकार, मध्यम पुरुष, द्विवचन । सा०, मुद्गल – आहूतवती । अन्यत्र – ऋ० सं० (1/116/13, 5/78/4, 8/42/5) – आहूतवती । स्कन्द० – आहूतवती । वेंकट० – अह्वयत् । सात्व० (ऋ० का सु० भा०) – बुलाया । Griff. (The hymns of Ṛgd.) – invocated. Wil. (Ṛgd.S.) – glorified. Lan. (A.S.R.) – invoked specially a god. Geld. (D.R.) – augerufen (to call). पादादि में होने से, क्रियापद होने पर भी निघात नहीं हुआ ।

जुयुषा – 'जयशील (रथ के द्वारा)', 'जि जये' धातु, औणादिक 'उसि' प्रत्यय, तृतीया, एकवचन । सा०, मुद्गल, वेंकट० – जयशीलने रथेन । अन्यत्र– ऋ० सं० (6/62/7) – जयशीलेन रथेन । स्कन्द० – जितवता शत्रून रथेन । सात्व०

॥ऋ० का सु०भा०॥ - विजयी रथ से । Griff. (The hymns of Rgd.) - Conquering Car. Wil. (Rgd.S.) - triumphant chariot. Lan. (A.S.R.) - Conquering. Mac.D. - Victorious. Grass. (Rgd.), Geld. (D.R.) - Siegreich (Wagen) - (Victorious Charriot). यहाँ 'जयुषा' का शाब्दिक अर्थ प्रयुक्त नहीं हुआ है । यह लक्षणार्थ से 'रथ' का वाचक है । यहाँ 'जयुषा' का तात्पर्य उस रथ से है, जो सर्वत्र विजय प्राप्त करता है । इसलिए शाब्दिक अर्थ जयशील होते हुए भी, रथ की विशेषता का वाचक बन गया है ।

विष्वा॑चः - 'विष्वाच के', विषु नाना आभिमुख्येन अञ्चति इति विष्वाच्, विषु शब्द, 'गत्यर्थक अञ्च' धातु से, '॥ऋत्विक्॥' आदि सूत्र के द्वारा 'क्विन्' प्रत्यय, 'अचः' से आकारलोप 'चौ' से दीर्घ, उदात्तनिवृत्ति स्वर के द्वारा विभक्ति को उदात्तत्व प्राप्त होने पर, 'चौ' सूत्र से अन्तोदात्त हुआ । पुल्लिंग, षष्ठी, एकवचन । सा०, मुद्गल - विविधगतियुक्तस्य एतत्संज्ञस्य असुरस्य । स्कन्द० - विषुशब्दो नानापर्यायः अञ्चतिर्गत्यर्थः, नानागामिनः, इतश्चेतश्च गन्तुमेकस्य स्वभूतेनेत्यर्थः । वेंकट० - असुरात् । सात्व० ॥ऋ० का सु० भा०॥ - सभी ओर संचार करने वाले शत्रु के । ग्रिफित, विल्सन आदि विद्वानों ने विष्वाच् को नाम विशेष के अर्थ में ग्रहण किया है । Mac.D. - turned in both or all directions, coming from or going in all directions. M.W. - name of an Asura. ऋग्वेद में केवल एक बार इसी मंत्र में प्रयुक्त हुआ है । स्कन्दस्वामिन् ने अन्य भाष्यकारों से सर्वथा भिन्न अर्थ में 'विष्वाच्' शब्द को ग्रहण किया है । उन्होंने इसका अर्थ 'मेघ' किया है क्योंकि मेघ में भी सर्वत्र गमन करने का सामर्थ्य होता है । उनके अनुसार अश्विनीकुमारों ने सर्वत्र-गामिनी मेघ का हनन कर सभी प्राणियों के लिए वृष्टि प्रदान की । सात्वलेकर

महोदय ने 'विष्वाच्' का अर्थ 'शत्रु' ग्रहण किया है क्योंकि शत्रु भी युद्धस्थल में सर्वत्र गमन करते हैं। प्रसंगानुसार 'विष्वाच्' को असुर का नाम विशेष मानना ही उचित है।

17. शतं मेषान्वृक्ये मामहानं शतम्। मेषान्। वृक्ये। ममहानम्।
तमः प्रणीतमशिवेन पित्रा। तमः। प्रऽनीतम्। अशिवेन। पित्रा।
आक्षी ऋज्राश्वे अश्विनावधत्तं आ। अक्षी इति। ऋज्रऽअश्वे। अश्विनौ। अधत्तम्।
ज्योतिरन्धाय चक्रथुर्विचक्षे॥ ज्योतिः। अन्धाय। चक्रथुः। विऽचक्षे॥

अन्वय – अश्विना! वृक्ये शतं मेषान् ममहानम् अशिवेन पित्रा तमः प्रणीतम्। तं ऋज्राश्वे अक्षी अधत्तम्। अन्धाय विचक्षे ज्योतिः चक्रथुः।

अनुवाद – हे अश्विनौं! वृकी के लिए सौ मेषों को प्रदान करने वाले (पुत्र) को अहितकारी पिता ने अन्धा बना दिया। (तुम दोनों ने) उस ऋज्राश्व में नेत्रों को धारण करवाया। अन्धे को विशेष दृष्टि प्रदान करने के लिए प्रकाश दिया।

टिप्पणी –

तमः प्रऽनीतम् – 'अन्धा बना दिया', 'तमस्' शब्द, 'प्र' उपसर्ग पूर्वक, 'नी' धातु से कर्मणि 'क्त' प्रत्यय, 'गतिरनन्तरः' से 'गति' को

'प्रकृतिस्वरत्व' प्राप्त हुआ। सा०, मुद्गल – दृष्टिरादित्येन कृतम् आन्ध्यं प्रापितम्। स्कन्द० – आन्ध्यलक्षणं शापने प्रापिताय। वेंकट० – अन्धीकृतम्। सात्व० (ऋ० का सु०भा०) – अन्धा बना दिया। Griff. (The hymns of Rgd.) – blinded. Wil. (Rgd.) – Condemned to darkness. M.W.– directed towards darkness. 'तमः' का शाब्दिक अर्थ अन्धकार है परन्तु यहाँ अन्धत्व के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है क्योंकि अन्धत्व में भी अन्धकार छा जाता है। अन्य भाषाओं में 'तमः' के समान रूप – Latin – 'tenebroe' 'temsrae' (darkness). Old high German – 'dëmar' (dusk) German – 'dëmmern' (become twilight) but not English dim.

वि॒ऽचक्षे॑ – 'विशेष दृष्टि प्रदान करने के लिए', 'वि' उपसर्ग पूर्वक, 'चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि' धातु, 'तुमर्थे सेसेन्०' से 'सेन्' प्रत्यय, 'स्कोः संयोगाद्योः' से स् का लोप, चतुर्थी, एकवचन। सा० – विविधं जगत् द्रष्टुम्। अन्यत्र – ऋ० सं० (1/113/5) – विशिष्टप्रकाशाच्च व्युच्छन्ती चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि, विपूर्वादस्मात् संपदादिलक्षणो, भावे क्विप्, (1/116/14) – विशेषेण द्रष्टुं समर्थम्। (1/116/16) – विविधं द्रष्टुं समर्थे। यास्क (निरु० 4/1/2) ने 'चक्षु' शब्द की उत्पत्ति 'दर्शनार्थक ख्या' धातु से अथवा 'चक्षिङ् धातु' से मानी है। स्कन्द० – विविधं दर्शनाय। सात्व० (ऋ० का सु०भा०) – विशेष दृष्टि। Griff. (The hymns of Rgd.) – for perfect vision. Wil. (Rgd.S.) – where with to behold all things. Lan. (A.S.R.) – for seeing. Mac.D. – to perceive. S.V. (The ety. of Yāska) – 'चक्षुस्' 'an eye is traced to √चक्ष् or √ख्या 'to see' But Indo-European – 'qᵘêks' – (to see). Middle Persian – 'Casman'

(eye) . यहाँ विचक्षे का अर्थ 'विशेष दृष्टि' और 'विविध दृष्टि' दोनों ही उचित है ।

ज्योतिः - 'प्रकाश', 'द्योतनार्थक द्युत्' धातु से औणादिक 'इस्' प्रत्यय करने पर, 'द्' के स्थान पर 'ज्' हो जाने से 'ज्योति' शब्द बना । स्त्रीलिंग, प्रथमा, एकवचन । सा० - प्रकाशकं चक्षुः । अन्यत्र - ऋ० सं० ॥1/36/19॥ - प्रकाशरूपम् । ॥1/100/8॥ - विजयलक्षणं प्रकाशम् । ॥1/48/8॥ - प्रकाशयति, 'इषा षः' इत्यनुवृत्तौ इसुसोः सामर्थ्ये इति विसर्जनीयस्य षत्वम् । ॥6/3/1॥- सूर्याख्यम्,॥7/5/6, 8/6/30, 9/4/2, 10/12/7॥ - तेजः । स्कन्द० - दर्शनसामर्थ्यलक्षणम् । वेंकट० - चक्षुः । यास्क ने अक्षर विपर्यय के संदर्भ में ज्योति शब्द का निर्वचन 'द्युत दीप्तौ, तस्यादि व्यापत्त्या ज्योतिः ॥निरु० 2/1॥ किया है । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ - आँखों का । Griffith (The hymns of Rgd.), Wil. (Rgd.S.), Lan. (A.S.R.) - light. Mac.D. - light of the eye. M.W. - light or brightness. Grass. (Rgd.), Geld. (D.R.) - lichte (light). ज्योति का शाब्दिक अर्थ 'प्रकाश' होने पर भी अधिकांश भारतीय भाष्यकारों ने नेत्रों के अर्थ में ग्रहण किया है, क्योंकि नेत्र भी प्रकाशमय होते हैं । जिन्होंने नेत्र अर्थ ग्रहण किया है उनका संकेत दृष्टि रूपी प्रकाश की ओर है, सामान्य प्रकाश की ओर नहीं । प्रसंगतः दूसरा अर्थ भी त्रुटि-पूर्ण नहीं कहा जा सकता ।

18. शुनमन्धाय भरमह्वयत् सा   शुनम् । अन्धाय । भरम् । अह्वयत् । सा ।

वृकीरश्विना वृषणा नरेति।   वृकीः । अश्विना । वृषणा । नरा । इति ।

जारः कनीन इव चक्षदान   जारः । कनीनःऽइव । चक्षदानः ।

ऋज्राश्वः शतमेकं च मेषान् ।।   ऋज्रऽअश्वः । शतम् । एकम् । च । मेषान् ।।

अन्वय – अन्धाय शुनं भरं सा वृकीः अह्वयत् । वृषणा, नरा, अश्विना । कनीनः जारः इव ऋज्राश्वः शतम् एकं च मेषान् चक्षदानः ।

अनुवाद – अन्धे को सुख से पोषित करने के लिए उस वृकी ने आह्वान किया । हे कामना सेचक, नेतृत्व करने वाले अश्विनों । जिस प्रकार युवा पारदारिक (दूसरे की पत्नी को चाहने वाला) अपना सर्वस्व (उस प्रेमिका को) दे देता है । उसी प्रकार ऋज्राश्व ने मुझे एक सौ एक भेड़ों को भोजन के निमित्त प्रदान किया ।

टिप्पणी –

जारः – 'पारदारिक' (दूसरी स्त्री से सम्बन्ध रखने वाला), जरयतीति जारः, 'जॄ' धातु से 'दारजारौ कर्त्तरि णिलुक् च0' (पा0सू0 3/3/20/4) से घञन्त निपात् , 'कर्षात्वतः' से अन्तोदात्त, पुल्लिंग, प्रथमा, एकवचन । सा0, मुद्गल – पारदारिकः सन् परस्त्रियैः सर्वधनं प्रयच्छति एवम् । अन्यत्र – ऋ0 सं0 (1/46/4) – स्वकीयतापेनोदकानां जरयिता सूर्यः । (1/66/4) – जरयिता, (1/69/1, 1/69/5) – उषसो जरयिता आदित्य इव । (1/134/3)– पारदारिकः, (6/55/4) – उपपतिरिति, (7/9/1) – सर्वेषां प्राणिनां जारयिता, (10/3/3) – जरयिता शत्रूणां सह । निरु0 (3/3) – आदित्योऽत्र जार उच्यते । रात्रेर्जरयिता । अपि स्वयं मनुष्य – जार एवाभिप्रेतः स्यात् स्त्री–

भगस्तथा स्यात् । यहाँ 'भग' का प्रयोग स्त्री-भग के लिए ही हुआ है । यहाँ पर जार के दो अर्थ ग्रहण किये गये हैं - ॥1॥ पहला सूर्य, क्योंकि यह रात को जीर्ण करने वाला होता है और ॥2॥ दूसरा अभिप्राय पारदारिक मनुष्य से है । स्कन्द० - कामयिता कस्यांचित्कमनीयायां सक्तस्तां नियमेनाह्वयति तद्वदित्यर्थः। वेंकट० - पतिः । सात्व० ॥म० का सु०भा०॥ - जार । Griff. (The hymns of Rgd.) - lover. Wil. (Rgd.S.) - gallant, Lan.(A.S. R.), Mac.D. - paramour. M.W. - a paramour of a married woman. S.V. (The ety. of Yāska) - 'the sun' is traced to √जॄ 'to wear out', lit. making the night old, Indo-European -'ĝer' (to be old), Modern Persian - zāl (old woman). Grass.(Rgd.) - Buhle (paramour). Geld. (D.R.) - Liebhaber (lover).

मैक्डॉनल महोदय ॥वै० इ० पृ० 320-321॥ के अनुसार जार का अर्थ प्रेमी है । उनके अनुसार 'प्रेमी' ॥जार॥ का आरम्भिक ग्रन्थों में कोई गर्हित आशय नहीं है और इनमें यह शब्द किसी भी प्रेमी के लिए व्यवहृत हुआ है । किन्तु यह सम्भव प्रतीत होता है कि पुरुषमेध के समय 'जार' को अवैध प्रेमी समझा गया हो । बृहदारण्यक उपनिषद् ॥6/4/11॥ में भी यही आशय मिलता है । ऋग्वेद के अनेक स्थलों में सूर्य को 'जार' कहा गया है क्योंकि यह जलों को सुखा देता है और उषा को नष्ट कर देता है । प्रस्तुत प्रसंग में 'जार' का अर्थ 'पारदारिक' ही समीचीन है ।

कनी॑नः - 'युवा', 'युव' शब्द को 'युवाल्पयोः कनन्यतरस्याम्' ॥पा० सू० 5/3/64॥ से 'कन्' आदेश तथा 'इष्ठन्' प्रत्यय, व्यत्यय से 'इष्ठन्' को 'अ' आदेश अथवा 'कन् दीप्तिकान्तिगतिषु' धातु से औणादि 'ईन्' प्रत्यय करने पर स्त्रीलिंग, षष्ठी, एकवचन में कनीनः रूप निष्पन्न हुआ । सा०, मुद्गल -

यौवन: कामुक: । अन्यत्र – ऋ0 सं0 ।1/66/4, 1/116/10। – कन्यानां ।1/152/4। – कमनीयानां दीप्तानां कन्यकास्थानीयानाम्। ।1/163/8। – स्त्रीणाम्। स्कन्द0 – कमनीयायां अत इदं कनतेः कान्तिकर्मणो ।तु0 निघ0 2/6। रूपम् । कन्तीतिः कन् कामयिता, कन एव कनीन:, स्वार्थिक एव प्रत्ययश्छान्द-सत्वात् । वेंकट0 – कुमार्याः । सात्व0 ।ऋ0 का सु0भा0। – तरुण । Griff. (The hymns of Ṛgd.), Wil. (Ṛgd.S.) – Youthful. Mac.D., M.W.– Young. Grass. (Ṛgd.) – *Junger* (Young), Geld. (D.R.) – Jungen (Young one). 'कमु कान्तौ' धातु से कन्या शब्द की उत्पत्ति होती है इसलिए कनीन: का अर्थ अनेक स्थानों में कन्या ग्रहण किया है । पर यहाँ 'युव' शब्द से व्युत्पत्ति मानकर 'युवा' अर्थ ग्रहण किया गया है ।

19. मही वामूतिरश्विना मयोभुरुत	मही । वाम् । ऊतिः । अश्विना । मयःऽभूः । उत् ।
स्रामं धिष्ण्या संरिणीथः ।	स्रामम् । धिष्ण्या । सम् । रिणीथः ।
अथा युवामिदह्वयत्पुरंधि-रागच्छतं	अथ । युवाम् । इत् । अह्वयत् । पुरम्ऽधिः ।
सीं वृषणाववोभिः ।।	आ । अगच्छतम् । सीम् । वृषणौ । अवःऽभिः ।।

अन्वय – अश्विना । वाम् ऊतिः मही मयोभूः । धिष्ण्या । स्रामम् उत् संरिणीथः । अथ युवां पुरंधिः आह्वयत् वृषणौ । अवोभिः आ अगच्छतम् ।

अनुवाद – हे अश्विनों । तुम दोनों की रक्षा महान् और सुखकारक है । हे स्तुति-

रूप वाणी से स्तुत्य (अश्विनों) । व्याधिग्रस्त को भली-भाँति स्वस्थ कर देते हो । तुम दोनों की बुद्धिमती महिला ने पुकारा कि हे कामना सेचक ! अपनी रक्षाओं के साथ आओ ।

टिप्पणी -

मयः<u>ऽभूः</u> - 'सुखकारक है', 'मीञ् हिंसायाम्' धातु से 'असुन्' प्रत्यय से 'मयस्' शब्द बना, षष्ठी, एकवचन में 'मयः' रूप निष्पन्न हुआ । हिनस्ति दुःखमिति सुखं मयः, मयो भावयन्तीति । 'मयः' पूर्वक 'भू' धातु से 'क्विप्' प्रत्यय करने पर मयोभूः शब्द बना । निघ० (3/6) में 'मयः' सुख पर्यायों में आम्नात है । सा०, मुद्गल - मयसः सुखस्य भावयित्री । अन्यत्र - ऋ० सं० (1/89/4) - मयसः सुखस्य भावयित्री, 'ह्रस्वोनपुंसके प्रातिपदिकस्य' (पा० सू० 1/2/47) इति ह्रस्वत्वम्, (1/164/49) - रसास्वादीनां सुखस्य भावयिता, (10/109/1, 1/169/1) - सुखस्य भावयिता सन् । स्कन्द० - सुखस्य भावयित्री जनयित्री । वेंकट० -सुखस्य भावयित्री । सात्व० (ऋ० का सु०भा०) - सुखकारक । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - weal giving. Wil. (Ṛgd.S.) - source of happiness. Lan. (A.S.R.)= gladdening.

<u>धिष्ण्या</u> - 'स्तुतिरूप वाक् से स्तुत्य', 'धिषणा' शब्द से 'छन्दसि च' सूत्र के द्वारा 'यः' प्रत्यय, वैदिक प्रयोग के कारण 'वर्णलोप' से 'धिषण्या' के स्थान पर 'धिष्ण्या' हुआ, 'सुपां सुलुक्०' से आकार । सा०, मुद्गल - स्तुति लक्षणा वाक् तथा स्तोतव्यौ । अन्यत्र - ऋ० सं० (1/89/4) - बुद्धिः, धिषणा-शब्दात् अर्हार्थे 'छन्दसि च' इति यः, वर्णलोपश्छान्दसः 'सुपां सुलुक्०' इति आकारः, (1/181/3) - उन्नतस्थानार्हौ (6/63/6) - स्तुत्यर्हावश्विनौ, (8/5/14) - धिषणा स्तुतिः, (8/26/12) - धिष्ण्यौ धिषणार्हौ स्तुत्यौ । निरु० (8/1)-

धिष्ण्यौ धिष्ण्याभवः, धिषणा वाग्धिषेर्दधात्यर्थे, धीसादिनीति वा, धीसानि-नीति वा ।' अर्थात् धिषणा शब्द 'धारणार्थक धिष्' धातु से निष्पन्न है क्योंकि यह वाक् को धारण कराती है । यह वाक् को देने वाली है । धी-सदना से धी-सनना और अन्ततः 'धिषणा' बन गया । स्कन्द० - अत्यन्तप्रज्ञा-विद् । वेंकट० - स्तुत्यौ । सात्व० ‡-ऋ० का सु०भा०‡ - बुद्धिमान् । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - object of all thought. Wil. (Ṛgd. S.)- worthy of laudation. Lan. (A.S.R.) - exalted ‡प्रशंसित‡ Mac. D. - devout, M.W. - benevalent.

यहाँ पर 'धिष्ण्या' का 'बुद्धिमान्' और 'स्तुत्य' दोनों अर्थ हो सकते हैं । दोनों ही अर्थों में यह अश्विनों का विशेषण और सम्बोधन पद होगा ।

सम् रिणीथः - 'भली-भाँति स्वस्थ कर देते हो', 'सम्' उपसर्ग, 'री गतिरेषणयोः' धातु 'प्वादीनां ह्रस्वः' से दीर्घ 'री' को ह्रस्व, लट् लकार, मध्यम पुरुष, द्विवचन । सा०, मुद्गल - संगतावयवं कुरुथः । निघ० ‡2/14‡ - 'रिणाति' इति गतिकर्मा । स्कन्द० - संगमयथः । सात्व० ‡ऋ० का सु०भा०‡ -भली-भाँति ठीक कर देते हो । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - made whele (the cripple). Wil. (Ṛgd.S.) - made whele (the maimed). Geld. (D.R.) - heilsam (wholesome).

मही - 'महान्', 'मंह पूजायाम्' धातु, 'उगितश्च' ‡पा० सू० 4/1/6‡ से ङीप् पित् होने से अनुदात्त प्राप्त था किन्तु 'शतुरनुमो नद्यजादी' तथा 'बृहन्महतोरुपसंख्यानम्' ‡पा० सू० 6/1/173/1‡ से उदात्त हुआ । वैदिक प्रयोग के कारण वर्णलोप होने से महती के स्थान पर 'मही' रह गया अथवा 'मंहपूजायाम्'

धातु से औणादि 'इन्' प्रत्यय और 'कृदिकारादक्तिन:' से 'ङीष्' प्रत्यय करने पर मही शब्द निष्पन्न होगा । सा0, मुद्गल, स्कन्द0, वेंकट0 - महती । सात्व0 (ऋ0 का सुभा0) - बड़ी । ऋ0 सं0 (1/8/8) - महती पूज्या, (6/45/4, 7/15/14, 8/25/3, 9/5/8) - महती । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - great. Wil. (Ṛgd.S.) - powerful. M.W. - great. 'ऊति' के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है ।

20. अधेनुं दस्रा स्तर्यं विषक्ता   अधेनुम् । दस्रा । स्तर्यम् । विऽसक्ताम् ।
मपिन्वतं शयवे अश्विनागाम् ।   अपिन्वतम् । शयवे । अश्विना । गाम् ।
युवं शचीभिर्विमदाय जायां   युवम् । शचीभिः । विऽमदाय । जायाम् ।
न्यूहथुः पुरुमित्रस्य योषाम् ।।   नि । ऊहथुः । पुरुऽमित्रस्य । योषाम् ।।

अन्वय - दस्रा । स्तर्यं विसक्ताम् अधेनुं गां शयवे अपिन्वतम् । युवं शचीभिः पुरुमित्रस्य योषां विमदाय जायां न्यूहथुः ।

अनुवाद - हे शत्रुविनाशकर्त्ता (अश्विनों) । गर्भवती न होने वाली, कृशकाय, दूध न देने वाली, गाय को शयु के लिये (दूध से) सिंचित कर दिया । तुम दोनों ने अपने कर्मों के द्वारा पुरुमित्र की कन्या को विमद के लिए पत्नी रूप में पहुँचा दिया ।

टिप्पणी -

स्तर्यम् – 'गर्भवती न होने वाली', 'स्तृञ् आच्छादने' धातु, 'अविस्तृस्तृतन्त्रिभ्य: ईः' से 'ईकार' प्रत्यय, 'वा छन्दसि:' के द्वारा अम् से पूर्व, विकल्पाभाव से 'यण्' आदेश 'उदात्तस्वरितोर्यण:' से बाद वाले अनुदात्त को स्वरित हुआ। द्वितीया, एकवचन। 'गाम्' का विशेषण। सा०, मुद्गल – निवृत्त प्रसवाम्। स्कन्द०, वेंकट० – निवृत्तप्रसवाम्। सात्व० (ऋ० का सु०भा०) – गर्भवती न होने वाली। **Griff. (The hymns of Rgd.), Wil. (Rgd.S.) – barren. Grass. (Rgd.), Geld. (D.R.) –** unfruchtbar **(barren).**

अपिन्वतम् – (दूध से) 'सिंचित किया', 'पिवि सेचने' धातु, 'इदित्वात् नुम्' लङ् लकार, मध्यम पुरुष, द्विवचन, पादादि में होने से, क्रियापद होने पर भी निघाताभाव। सा०, मुद्गल – पयसा अपूरयतम्। अन्यत्र – ऋ० सं० (1/118/8) – पयसा असिंचतम् (1/62/6) – असिंचदिति, 'पिवि सेचने' भौवादिक:'। स्कन्द० – सेचितवन्तौ च, धेनुकां कृतवन्तावित्यर्थः। सात्व० (ऋ० का सु०भा०) – पुष्ट बना दिया। **Griff. (The hymns of Rgd.)- filled with milk. Wil. (Rgd.S.) – filled. Mac.D. – overflow or abound. Geld. (D.R.) –** milch strotzend**(filled with milk).**

योषाम् – 'कन्या को', 'यु मिश्रणामिश्रणयो:' धातु, स्त्रीलिंग, द्वितीया, एकवचन। सा०, मुद्गल – कुमारी। अन्यत्र – ऋ० सं० (1/115/2) – स्त्रियम् (4/20/5) – स्त्री, (9/93/2) – युवतिमभिगच्छति तद्वत्, (10/3/2) – उषसम्। निरु० (3/3) – 'योषा यौते:' अर्थात् स्त्री, पुरुषों के साथ अपने को मिश्रित करती है इसलिए मिश्रणार्थक 'यु' धातु से 'योषा' शब्द बनता है। स्कन्द० –

स्त्रियम् । वेंकट० – दुहितरम् । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ – कन्या । Griff. (The hymns of Rgd.) – child. Wil. (Rgd.S.) – daughter. M.W. – girl. Mac.D. – woman. S.V. (The ety. of Yāska) – 'young woman' is traced to √यु 'to mix', Lit. 'mixing with a male'. But Indo-European – 'jeus' (young). Latin – 'jūno' (name of a goddess). F.S. (The V. ety.) – 'a woman' from √yu 'to unite,'to mix' योषा वा इयं वाऽयेदं ने युवति (S.B. 3/2/1/22. T.B. 3/8/13/2. S.B. 13/1/9/6). It is a likely that yoṣā an young woman in general was originally derived from √yu 'to unite and √is 'to desire' meaning thereby 'the woman of an age desiring union. Lan. (A.S.R.)- young woman or maiden. Grass. (Rgd.) – tochter (daughter).

पुरुऽमित्रस्य – 'पुरुमित्र की'; 'पुरूणि मित्राणि यस्य स पुरुमित्रः तस्य', 'पुरु' शब्द पूर्वक, 'मिद् धातु और 'क्त्र' प्रत्यय से व्युत्पन्न मित्र शब्द के षष्ठी एकवचन का रूप है । 'संज्ञायां मित्राजिनयोः' ॥पा० सू० 6/2/165॥ से बहुव्रीहि समास होने पर भी उत्तर पद के अन्त में उदात्त हुआ । पुरुमित्र का शाब्दिक अर्थ है 'जिसके अनेक मित्र हों' । किन्तु 'मित्र' सूर्य के रूप विशेष के प्रतिनिधि देवता का नाम भी है । मैक्ड० के अनुसार मित्र निःसंदेह सूर्यदेव अथवा विशेषतः सूर्य से सम्बद्ध प्रकाश देव है । अतः इसके अनुसार निर्वचन किया जाय तो पुरु मित्र शब्द का अर्थ होगा, 'अनेक प्रकाश से युक्त' । प्रस्तुत मन्त्र में 'पुरुमित्र' नाम वाचक शब्द है । प्राचीन काल में पुरुमित्र नाम का एक राजा था । पुरुमित्र का ऋग्वेद में दो बार ॥एक बार तो इसी मंत्र में और एक बार 10/29/7 में॥ एक ऐसी कन्या के पिता के रूप में उल्लेख हुआ है, जिसने प्रत्यक्षतः अपने पिता की इच्छा के विरुद्ध ही विमद से विवाह कर लिया था । इस कार्य में अश्विनीकुमारों ने विमद की सहायता की थी ।

21. यवं वृकेणाश्विना वपन्तेषं यवम् । वृकेण । अश्विना । वपन्ता । इषम् ।

दुहन्ता मनुषाय दस्त्रा । दुहन्ता । मनुषाय । दस्त्रा ।

अभि दस्युं बकुरेणा अभि । दस्युम् । बकुरेण ।

धमन्तोरु ज्योतिश्चक्रथुरार्याय॥ धमन्ता । उरु । ज्योतिः । चक्रथुः । आर्याय ।।

अन्वय –अश्विना । वृकेण यवं वपन्ता, मनुष्याया इषं दुहन्ता । दस्त्रा । बकुरेण दस्युम् अभिधमन्ता आर्याय उरु ज्योतिः चक्रथुः ।

अनुवाद – हे अश्विनों । हल के द्वारा जौ को बोते हुए मनुष्य के लिये अन्न के हेतुभूत जल का दोहन करते हुए । हे दस्यु विनाशक । भासमान आयुध के द्वारा दस्यु को विनष्ट करते हुए आर्यों के लिए विशाल ज्योति विस्तारित की ।

टिप्पणी –

वृकेण – 'हल के द्वारा', 'विकर्तन' अर्थ वाले वृक शब्द के तृतीया, एकवचन का रूप है । भूमि को उखाड़ने के कारण हल को 'वृक' कहते हैं । सा0, मुद्गल – लाङ्गलेनकर्षकैः कृष्टदेशे । स्कन्द0 – लाङ्गलम् । वेंकट0 – लाङ्गलेन भूमिं कृषन्तौ । सात्व0 (ऋ0 का सु0भा0) – हल से । निरु0 (6/5/108) – वृको लाङ्गलं भवति विकर्तनात् । **Griff. (The hymns of Rgd.) - ploughing. Wil. (Rgd.S.) - by the plough. Mac.D.- plough. S.V. (The ety. of Yāska) - 'a plough' is traced to** वि +√कृत् . **Grass. (Rgd.) -** Pfluge **(plough).**

वपन्ता - 'बोते हुए', 'डुवप् बीजसंतापे' धातु, 'शतृ' प्रत्यय, प्रथमा, द्विवचन में वपन्तौ होना था किन्तु वैदिक प्रयोग के कारण वपन्ता प्रयुक्त हुआ है। सा०, मुद्‌गल - वापयन्तौ। स्कन्द० - प्रकिरन्तौ। सात्व० [ऋ० का सु०भा०] - बोते हुए। Griff. (The hymns of Rgd.) - sowing. Wil. (Rgd.S.) - to be sown. Mac.D. - sow. Grass (Rgd.) - Säend (to sow).

मनुषाय - 'मनुष्य के लिए', 'मन् ज्ञाने' धातु, औणादिक 'उषन्' प्रत्यय, चतुर्थी एकवचन। सा०, मुद्‌गल - मनुष्यशब्दो, मनुशब्दपर्यायः, अन्दे मनोरर्थः। निरु० [3/2] में यास्काचार्य ने चार प्रकार से मनुष्य शब्द का निर्वचन किया है-

[1] 'मत्वा कर्माणि सीव्यन्ति' अर्थात् मनुष्य सोच समझकर कार्यों को करता है।

[2] 'मनस्यमानेन सृष्टाः' विचार करते हुए प्रजापति से मनुष्यों की सृष्टि हुई है।

[3] 'मनस्यतिः पुनर्मनस्वीभावे' मनस्य धातु का अर्थ है मनस्वी होना, मनुष्य प्रशस्त मन वाला मनस्वी होता है अथवा

[4] 'मनोरपत्यं, मनुषो वा' मनु की सन्तान होने से मनुष्य कहलाता है। मनु या मनुष प्रशस्त के वाचक हैं। स्कन्द० - मनुष्यशब्दोऽत्र मनोः, पर्यायः, मनुनाम्नो राज्ञोऽर्थाय। वेंकट० - अस्मै। सात्व० [ऋ० का सु०भा०] - मानव के लिए। Griff. (The hymns of Rgd.) - for men. Wil. (Rgd. S.) - for the sake of Manu.

मनुष्य शब्द की उत्पत्ति 'ज्ञानार्थक मन्' धातु से इसलिए मानी जा सकती है क्योंकि मनुष्य ज्ञानसम्पन्न होता है। प्रस्तुत मन्त्र में कुछ भाष्यकारों ने मनुष्य के अर्थ में तथा कुछ ने मनु के अर्थ में मनुषाय शब्द का अर्थ ग्रहण किया है। प्रसंगानुसार मनुष्य अर्थ ही अधिक तर्कसंगत प्रतीत हो रहा है। परन्तु मनु के अर्थ में 'मनुषाय' शब्द को ग्रहण करना भी अनुचित नहीं है। तब यह व्यक्ति विशेष का वाचक हो जायगा।

जबकि मनुष्य के पक्ष में अर्थ करने से यह शब्द प्रजाजनों का बोध कराते हुए समूहवाची शब्द बन जायेगा । Grass. (Rgd.), Geld. (D.R.) - menschen (man).

अभिऽधमन्ता - 'विनष्ट करते हुए', 'अभि' उपसर्ग पूर्वक, वध अर्थ वाली 'धम्' धातु से 'शतृ' प्रत्यय करने पर प्रथमा, द्विवचन में अभिधमन्तौ के स्थान पर अभिधमन्ता रूप निष्पन्न हुआ । सा०, मुद्गल - धमतिर्वधकर्मा अभिधमन्तौ एवं त्रिविधं कर्म कुर्वन्तौ युवाम् । स्कन्द० - अभिघ्नन्तौ । वेंकट० - घ्नन्तौ । सात्व० (ऋ० का सु०भा०) - विनष्ट करते हुए । निघ० (2/19) - धमतीति वधकर्मणः । Griff. (The hymns of Rgd.) - blasting away. Wil. (Rgd. S.) - destroying. Mac. D. - blowing away.
ऋग्वेद में केवल इसी मन्त्र में प्रयुक्त ।

22. आथर्वणायाश्विना दधीचेऽश्व्यं शिरः प्रत्यैरयतम् ।
सवां मधु प्र वोचदृतायन्त्वाष्ट्रं यद्दस्रावपिकक्ष्यं वाम् ।।

आथर्वणाय । अश्विना । दधीचे । अश्व्यम् । शिरः । प्रति । ऐरयतम् । सः । वाम् । मधु । प्र । वोचत् । ऋतऽयन् । त्वाष्ट्रम् । यत् । दस्रौ । अपिऽकक्ष्यम् । वाम् ।।

अन्वय - दस्रौ अश्विना । वाम् आथर्वणाय दधीचे अश्व्यं शिरः प्रति ऐरयतम् । सः ऋतायन्, यत् त्वाष्ट्रम् अपिकक्ष्यं मधु वां प्रवोचत् ।

अनुवाद - शत्रु विनाशकारक अश्विनों ! तुम दोनों ने अथर्वा के पुत्र दधीचि पर अश्व

के सिर को लगा दिया था। उस (ऋषि ने) सत्य की इच्छा करते हुए, त्वाष्ट्र से (सीखी गई) गूढ़ मधुविद्या को तुम दोनों से कह दिया।

टिप्पणी -

आथर्वणाय - 'आथर्वण के लिए', अथर्वा के पुत्र को आथर्वण कहा जाता है। 'थर्व गतिकर्मा' धातु से 'नञ्' करने पर 'अथर्व' शब्द बना, 'न थर्वति इति अथर्वा' पुनः 'अथर्वा' शब्द से अपत्यार्थ में 'अण्' प्रत्यय करने पर पुल्लिंग, चतुर्थी एकवचन में आथर्वणाय रूप निष्पन्न हुआ। **S.V. (The ety. of Yāska) 'a fire priest' was traced to √थर्व 'to move', Lit. 'those who are immovably firm'.**
निरु० (11/2/13) - 'अथर्वाणोऽथनवन्तः, थर्वतिश्चरतिकर्मा तत्प्रतिषेधः'। अर्थात् जो सदा अपने कर्तव्य कर्म में लगा रहता है वह अथर्वा है। यह अथर्व वंशोत्पन्न दधीचि का नाम है। पौराणिक अथर्वन् के आधार पर यह एक पैतृक नाम है। यह नाम बाद के 19वें काण्ड में (अ०वे० 19/23/1) तथा पंचविंश ब्राह्मण (12/9/10) में आता है। निदान सूत्र (2/12) में आथर्वणिकों या अथर्ववेद के अनुयायियों का उल्लेख है। दधीचि अथवा दध्यञ्च के अतिरिक्त कबन्ध, बृहद्दिव, भिषज् तथा विचारिन् विशेषजातीयकिन्तु प्रायः पुराकथात्मक आथर्वण व्यक्ति कहलाते हैं।[1] यह दधीचेशब्द का विशेषण है।

दधीचे - 'दधीचि के लिए', 'ध्यै चिन्तायाम्' और 'अञ्च्' धातु, 'ऋत्विक०' आदि सूत्र से 'क्विन्' प्रत्यय, 'अनिदिताम्' से 'न्' का लोप, चतुर्थी एकवचन में 'अचः' सूत्र से अकार का लोप, 'चौ' सूत्र से दीर्घत्व, पुल्लिंग, चतुर्थी, एकवचन।

---

1. ब्लूमफील्ड - हिम्स आफ द अथर्ववेद पृ० 25, 'अथर्ववेद' 8 एवं आगे।

उदात्तनिवृत्तिस्वर के द्वारा विभक्ति को उदात्त होना था । उसका बाध करके 'चौ' सूत्र से विभक्ति के पूर्व उदात्त होना था परन्तु उसका भी बाध 'अन्येश्छन्दस्यसर्वनामस्थानम्' से होने पर पुनः विभक्ति को उदात्त हुआ । निरु० ॥12/3/21॥ - 'दध्यङ् प्रत्यक्तोध्यानमिति वा । प्रत्यक्तमस्मिन् ध्यानमिति वा' अर्थात् ध्यान में लगा हुआ या जिसमें ध्यान लगा हुआ है वह दध्यङ् है । S.V. (The ety of Yāska) - 'name of a mythical being, called the son of Atharvan, is traced to √ध्यै + √अञ्च् lit. 'one directed towards attention' or 'whom attention directs', as he 'attentively peffforms his duties'. This etymology is obscure but possibly it embodies some beliefs about this being. According to St. Petersburg Sanskrit Wörterbuch, it was दध्यङ् who informed the Asvins where Soma could be found. Petersburg Wörterbuch derives it as दधि + √अच् or √अञ्च् । It this name embodies this tradition, it may go back to Indo-European - 'dhaiā'. (to see). Avestā - 'daēnā' (religion), Modern Persian - 'didan' (to see), Lithuanion - 'dimsta' (seems). ऋग्वेद में दधीचि अथवा दध्यङ् एक दैवी व्यक्तित्व वाले महापुरुष जान पड़ते हैं । ऋग्वेद ॥1/139/9॥ में उनका नाम अत्रि, कण्व, प्रियमेध और अंगिरसों के साथ आया है । ऋग्वेद ॥6/16/4॥ में दध्यङ् अथवा दधीचि को अथर्वन् का पुत्र बताया गया है , जिसका कि ऋग्वैदिक कर्मकाण्ड के विकास में पर्याप्त हाथ रहा है किन्तु परवर्ती संहिताओं में वे एक आचार्य के रूप में उल्लिखित है । ॥तै०सं० 5/1/4/4, 5/6/6/3, काण्व० सं० ॥19/4॥ श०ब्रा० 4/1/5/12, 6/4/2/3, 14/1/1/12-20-25, 14/1/4/13, बृह० उ० 2/5/22, 4/5/28 आदि॥ ।

प्रति ऐरयतम् - 'लगा दिया था', 'प्रति' उपसर्ग पूर्वक, 'ईर् गतौ' धातु, लङ् लकार, मध्यम पुरुष, द्विवचन । सा०, मुद्गल - प्रत्यधत्तम्। अन्यत्र - ऋ० सं० 1/7/3 - विशेषेण दर्शनार्थं प्रेरितवान्, √ईर् गतौ, अयताल्लङ् निघात:, ‖1/51/11‖ - विविधं प्रेरिवान्, ‖1/112/5‖ - उदगमयतम् ‖7/82/3‖ - अभ्यगमयतम्, ‖8/19/24‖ - ऐरयति, ‖10/39/9‖ - उत्तारितवन्तौ स्थ: । स्कन्द० - प्रतीत्येष उपेत्येतस्य स्थाने, उपगमितवन्तौ, युवामआहितवन्ता-वित्यर्थ: । वेंकट० - प्रत्यधत्तम् । सात्व० ‖ऋ० का सु०भा०‖ - लगा दिया था। **Griff. (The hymns of Rgd.) - Ye brought. Wil. (Rgd.S.)- You replaced. Maxmullar - produced. Mac.D. - set in motion.**

ऋतऽयन् - 'सत्य की इच्छा करते हुए', 'ऋ गतौ' धातु से 'क्त' प्रत्यय करने पर 'ऋत' शब्द निष्पन्न हुआ । पुन: 'ऋत' शब्द से 'सुप: आत्मन: क्यच्' ‖पा०सू० 3/1/8‖ से 'क्यच्' प्रत्यय करने पर प्रथमा एकवचन में 'ऋतयन्' रूप निष्पन्न हुआ । सा०, मुद्गल - सत्यानाम् इच्छन् । अन्यत्र । ऋ० सं० - ‖7/87/1‖ - ऋतं शीघ्रं गमनमात्मन् इच्छन् । स्कन्द० - ऋतं सत्यं तदेव ब्रह्म, तद्धवयोरिच्छन् । वेंकट० - सत्याकर्त्तुम् इच्छन् । सात्व० ‖ऋ० का सु०भा०‖ - यज्ञ मार्ग का प्रचार करते हुए । **Griff. (The hymns of Rgd.) - true be revealed to you. Wil. (Rgd. S.) - true to his promise. Mac.D. - act rightly. Grass. (Rgd.) - redliche (honest). Geld. (D.R.) - wohrheitsgetreu (truthful).**

23. सदा कवी सुमतिमा चके सदा । कवी इति । सुऽमतिम् । आ । चके ।
वां विश्वा, धियो अश्विना वाम् । विश्वा: । धिय: । अश्विना । प्र ।
प्रावतं मे । आवतम् । मे ।।

अस्मे रयिं नासत्या — अस्मे इति । रयिम् । नासत्या ।

बृहन्तमपत्यसाचं श्रुत्यं रराथाम्।। — बृहन्तम् । अपत्य साचम् । श्रुत्यम् । रराथाम्।।

अन्वय - कवी । सदा सुमतिम् आ चके । अश्विना । मे विश्वा: धिय: वां प्र अवतम् । नासत्या । बृहन्तम् अपत्यसाचं श्रुत्यं रयिम् अस्मे रराथाम् ।

अनुवाद - हे क्रान्तप्रज्ञ । सर्वदा अच्छी बुद्धि की कामना करता हूँ । हे अश्विनों । मेरी सारी क्रियाओं को तुम दोनों भलीभाँति सुरक्षित रखो । हे असत्य से रहित । विशाल,सन्तान युक्त, वर्णनीय, धन को, हमें प्रदान करो ।

टिप्पणी -

आ चके - 'कामना करता हूँ' , 'आ' उपसर्ग, 'कै गै शब्दे' धातु, लिट् , 'आदेच:' ॥पा० 6/1/45॥ से, आत्व, 'आतो लोप०' से आकार लोप तथा 'तिङ्. तिङ्.' से निघात, व्यत्यय से आत्मनेपद, उत्तम पुरुष, एकवचन । सा०, मुद्गल - आभिमुख्येन प्रार्थये । अन्यत्र - ऋ० सं० ॥1/25/19॥ शब्दयामि स्तौमित्यर्थ;, कै गै शब्दे, अस्मल्लिड्याादेच: ॥पा० 6/1/45॥ इत्यात्वं, द्विभविद्युत्वे, 'आतो लोप इटि च' इति आकारलोप, ॥3/3/3, 3/3/10॥ - स्तौमीत्यर्थ:। ॥8/64/8॥ - स्तोतुम् , ॥10/40/7॥ - कामये । स्कन्द०, वेंकट० - कामये । सात्व० ॥ऋ० का सुभा०॥ - कामना करता हूँ । Griff. (The hymns of Rgd.) - I crave. Wil. (Rgd.S.) - I ever solicit .

अपत्यऽसाचम् - 'सन्तान युक्त', 'अपत्य' शब्द, 'षच् समवाये' धातु वैदिक "ण्वि:" प्रत्यय, द्वितीया, एकवचन, अपत्यै: सह सचते, संगच्छते इति अपत्य-

साचम् । सा0, मुद्गल - पुत्रादिभिः सम्वेतम्। स्कन्द0 - अपत्यानि यत् सचते तदपत्यसाचम्, अपत्यसहितमित्यर्थः । वेंकट0 - अपत्यानां सम्भक्तृ । सात्व0 ऋ0 का सु0भा0 - सन्तानयुक्त । Griff. (The hymns of Rgd.) - accompanied with children. Wil. (Rgd.S.) - together with offspring. Mac. D. - with offspring.

24. हिरण्यहस्तमश्विना रराणा — हिरण्यऽहस्तम् । अश्विना । रराणा ।
पुत्रं नरा वध्रिमत्या अदत्तम् । — पुत्रम् । नरा । वध्रिऽमत्याः । अदत्तम् ।
त्रिधा ह श्यावमश्विना — त्रिधा । ह । श्यावम् । अश्विना ।
विकस्तमुज्जीवस ऐरयतं सुदानू।। — विऽकस्तम् । उत् । जीवसे । ऐरयतम् ।
सुदानू इति सुऽदानू ।।

अन्वय - रराणा नरा अश्विना । वध्रिमत्याः हिरण्यहस्तं पुत्रम् अदत्तम् । सुदानू अश्विना । त्रिधा विकस्तं श्यावं ह जीवसे उत् ऐरयतम् ।

अनुवाद - रमण करने वाले अथवा दानशील, नेतृत्व कारक, अश्विनों । वध्रिमती को हिरण्यहस्त नामक पुत्र दिया । शोभन दान वाले अश्विनों । तीन स्थानों से खण्डित हो चुके श्याव को जीने के लिए ऊपर उठाया (अर्थात् पुनरुज्जीवित किया) ।

टिप्पणी -

रराणा - 'रमण करने वाले अथवा दानशील', 'रम्' धातु, 'शानच्' प्रत्यय, 'बहुलं छन्दसि' से शप् को श्लु तथा व्यत्यय से मकार को आत्व अथवा 'रा दाने' धातु, व्यत्यय से 'शानच्' प्रत्यय तथा पूर्ववत् शप् का श्लु आदेश होने पर 'रराणा' रूप निष्पन्न हुआ। सा०, मुद्गल - रममाणौ दातारौ वा। अन्यत्र - ऋ० सं० ॥1/117/23॥ - प्रयच्छतं √रा दाने, लोटि व्यत्ययेनात्मनेपदं, 'बहुलं छन्दसि' इति शपः श्लुः ॥10/61/15॥ - रममाणौ। स्कन्द० - ददतौ। वेंकट० - रममाणौ। सात्व० ॥ऋ० का सुभा०॥ - बहुत उदार। Griff. (The hymns of Ṛgd.) - with liberal bounty (to the weaklings), Wil. (Ṛgd. S.) - liberal.

जीवसे - 'जीने के लिए', 'जीव प्राणधारणे' धातु से 'तुमर्थे सेसेन्०' सूत्र के द्वारा 'असे' प्रत्यय, चतुर्थी एकवचन। सा०, मुद्गल - जीवितुम्। अन्यत्र- ऋ० सं० ॥1/119/1॥ - जीवनार्थम्, ॥6/69/5॥ - जीवनाय, ॥7/62/5, 8/6/33॥ - जीवनार्थम् ॥9/66/30॥ - चिरजीवनाय, ॥10/14/14॥ - प्रकृष्टं जीवनार्थम्। स्कन्द० - जीवनाय। वेंकट० - जीवनार्थम्। सात्व० ॥ऋ० का सुभा०॥ - जीवित रहने के लिए। Griff. (The hymns of Ṛgd.) - to life again. Wil. (Ṛgd. S.) - to the life. Mac. D. - living on. Grass. (Ṛgd.) Geld. (D.R.) - leben (to live).

25. एतानि वामश्विना वीर्याणि प्र पूर्व्याण्यायवोऽवोचन्।

एतानि। वाम्। अश्विना। वीर्याणि। प्र। पूर्व्याणि। आयवः। अवोचन्।

ब्रह्म कृण्वन्तो वृषणा युवभ्यां ब्रह्म । कृण्वन्तः । वृषणा । युवभ्याम् ।
सुवीरासो विदथमा वदेम ।। सुऽवीरासः । विदथम् । आ । वदेम ।।

अन्वय - अश्विना ! वाम् एतानि पूर्व्याणि वीर्याणि आयवः प्र अवोचन् । वृषणा !
युवभ्यां ब्रह्म कृण्वन्तः सुवीरासः विदथम् आ वदेम ।

अनुवाद - हे अश्विनौ ! तुम दोनों के ये पूर्व कर्म मनुष्यों के द्वारा प्रकृष्ट रूप से
गाये जाते हैं । हे कामना सेचक ! तुम दोनों के लिए मंत्र की रचना
करते हुए ॥हम॥ शोभन, वीर पुत्रों के साथ यज्ञ सभा में सबके सम्मुख खूब उच्चारण
करें ।

टिप्पणी -

वीर्याणि - 'कर्मों को', 'वीर विक्रान्तौ' धातु, 'अचोयत्' से 'यत्' प्रत्यय,
'णेरनिटि' से 'णि' का लोप तथा 'तित्स्वरितम्' से प्रत्यय पर
स्वरित हुआ है अथवा 'वि' उपसर्ग पूर्वक 'ईर्' धातु से 'यत्' प्रत्यय करने पर
नपुंसकलिंग, प्रथमा, बहुवचन में वीर्याणि रूप निष्पन्न हुआ है । सा0, मुद्गल-
वीर कर्माणि । अन्यत्र - ॠ0 सं0 ॥1/32/1॥ - पराक्रमयुक्तानि कर्माणि, 'शूर
वीर विक्रान्तौ', ण्यन्तात् 'अचो यत्' इति यत्, 'णेरनिटि' इति णिलोपः,
'तित्स्वरितम्' इति स्वरितत्वम् 'यतोऽनावः' इत्याद्युदात्तत्वं न भवति, आद्यु-
दात्तत्वे हि सुशब्देन बहुव्रीहौ, 'आद्युदात्तं द्व्यच्छन्दसि' इत्यनेनैवोत्तरपदाद्युदात्त-
त्वम् सिद्धत्वात् । 'वीरवीर्यौ च' इति पुनस्तद्विधानमनर्थकं स्यात् । अतोऽवगम्यते
'यतोऽनावः' इत्याद्युदात्तत्वं वीरशब्दे न प्रवर्तते इति । अतः परिशेषात् 'तित्-
स्वरितम्' इति प्रत्ययस्य स्वरितत्वमेव । ॥1/108/5॥ - वृत्रवधादिरूपाणि ।

स्कन्द० – वीर कर्माणि । वेंकट० – पूर्वकालकृतानि । सात्त्व० ऋ० का सु०भा० – पराक्रम । Griff. (The hymns of Rgd.) – heroic exploits. Wil. (Rgd.S.) – exploits. Mac.D. – power. Grass. (Rgd.), Geld. (D.R.) – Helden thaten (heroicdeed).

आयवः – 'मनुष्यों के द्वारा', पुल्लिंग, प्रथमा, बहुवचन । सा०, मुद्गल – मनुष्याः मदीयाः पित्रादयः । अन्यत्र – ऋ० सं० 1/60/3, 1/130/6, 1/131/2, 1/139/3, 6/14/3, 8/3/7,8,16, 9/10/6, 10/7/5 – मनुष्याः। निघ० 2/3 में 'आयवः' मनुष्यनामों में आम्नात हैं । स्कन्द० – मनुष्याः । वेंकट० – सम्प्रतितनाः । सात्त्व० ऋ० का सु०भा० – सब मानव । Griff. (The hymns of Rgd.) – men. Wil. (Rgd.S.) – forefathers, Grass. (Rgd.) – Menchen (man).

विदथम् – 'यज्ञ सभा में', 'विद् ज्ञाने' धातु से 'रुविदिभ्यां कित्' से 'अथ' प्रत्यय, सप्तमी के अर्थ में द्वितीया, एकवचन । ऋग्वेद में 'विदथ' शब्द का प्रयोग अनेक स्थलों में हुआ है और इसकी व्याख्या भी भिन्न-भिन्न भाष्यकारों ने भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से की है । सा०, मुद्गल – यज्ञम् । अन्यत्र – निरु० 6/2/33 – 'विदथानि वेदनानि' यास्काचार्य ने विदथ शब्द का निर्वचन 'विद् ज्ञाने' धातु से करते हुए इसका अर्थ ज्ञान-विज्ञान माना है । निघ० 3/17 में 'विदथः' यज्ञ नामों में आम्नात है । स्कन्द० – यज्ञे । वेंकट० – गृहं प्राप्यम् । सात्त्व० ऋ० का सु०भा० – सभाओं में । Griff. (The hymns of Rgd.) – synod (सभा) । Wil. (Rgd.S.) – adoration. Mac.D. – assembly. Peterson (Hymns from the Rgveda) – assembly. रॉथ महोदय ने 'विद्लृ लाभे' धातु से तथा रेगनॉड ने 'विध त्यागे' धातु से

व्युत्पत्ति मानी है । ओल्डेनबर्ग महोदय ने 'वि' उपसर्ग पूर्वक 'धा' धातु से निष्पन्न 'विधा' शब्द से विदथ की उत्पत्ति मानी है । विधा का अर्थ वितरण करना, व्यवस्थित करना या निर्देश देना है । उनके मतानुसार 'विदथ' शब्द 'विधान' के समकक्ष है । विधान का अर्थ है निर्देश चलाना, व्यवस्थित करना या वस्तु आदि वितरण करना । वैदिक युग में क्रान्तदर्शी कवियों अर्थात् ऋषिगणों के द्वारा कुछ कृत्य व्यवस्थित ढंग से विहित होते थे जिसे 'यज्ञ' कहा जाता था । यज्ञ और विदथ दोनों एक दूसरे के बहुत निकट माने जायेंगे, क्योंकि यज्ञ में आहुतियाँ होती थी और वह व्यवस्थित ढंग से दी जाती थी । धीरे-धीरे विदथ का अर्थ 'किसी भी व्यापार या कार्य को व्यवस्थित ढंग से करना' हो गया । इसके अतिरिक्त विदथ और सभा ये दोनों शब्द एक दूसरे को प्रभावित करने लगे, क्योंकि किसी भी समुदाय या गोष्ठी में जो प्रभावशाली होता है उसे विदथ्य या सभेय दोनों कहा जाता है, इसलिए धीरे-धीरे अर्थ विस्तार के द्वारा विदथ का एक अर्थ 'सभा' भी हो गया ।[1] Grass. (Rgd.)- Versammlung(assembly). इस मन्त्र में 'यज्ञ' अर्थ ही उचित है ।

---

1. ओल्डेनबर्ग - वैदिक हिम्स खण्ड II पृष्ठ 26-7,

मैक्समूलर - वेद हिम्स I 349-50.

1-118-1-11

1\. आ वां रथो अश्विना श्येनपत्वा आ । वाम् । रथः। अश्विना । श्येनऽपत्वा।

सुमृळीकः स्ववाँ यात्ववाङ् । सुऽमृळीकः। स्वऽवान् । यातु । अवाङ् ।

यो मर्त्यस्य मनसो जवीयान् यः। मर्त्यस्य । मनसः। जवीयान्

त्रिवन्धुरो वृषणा वातरंहाः।। त्रिऽवन्धुरः। वृषणा । वातऽरंहाः।।

अन्वय - वृषणा अश्विना ! समृळीकः, स्ववान् , श्येनपत्वा, मर्त्यस्य मनसः जवीयान् , त्रिवन्धुरः, वातरंहाः वां यः रथः अर्वाङ् आयातु ।

अनुवाद - हे कामना सेचक अश्विनों ! सुख देने वाला, धन से युक्त, पक्षी के समान शीघ्र गमन करने वाला, मनुष्य के मन के समान शीघ्रगामी, तीन ‖सारथी‖ के आसनों से युक्त, वायु के समान वेगवान, तुम दोनों का जो रथ है, हमारे सम्मुख आ जाये ।

टिप्पणी -

श्येनऽपत्वा - 'पक्षी के समान शीघ्र गमन करने वाला', 'श्येन' शब्द, 'पत्लृ गतौ' धातु, 'अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते' से 'वनिप्' प्रत्यय अथवा 'दृशिग्रहणस्य विध्यन्तरोपसंग्रहार्थत्व' से भाव अर्थ में 'वनिप्' प्रत्यय, बहुव्रीहि समास होने से पूर्व पद पर उदात्त स्वर हुआ । सा0, मुद्गल - शंसनीयगमनैरश्वैः गच्छन् , श्येनाः, इत्यश्वनाम यद्वा श्येनः पक्षी, स इव शीघ्रं पतन् । स्कन्द0 - श्येनसदृशैः

शीघ्रैरश्वैर्यः पतति गच्छति स श्येनपत्वा । वेंकट० - अश्वैः पतन् । सात्व० - ऋ० का सु०भा० - बाज पंछी के समान वेग से उड़ने वाला । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - flying with folcons. Wil. (Ṛgd.S.) - swift as a howk. Mac. D. - flying with eagles. M.W. - flying by means of eagles. Lan. (A.S.R.) - move swiftly like an eagle. Grass. (Ṛgd.) - mit adlern fährend (drive like an eagle. Geld. (D.R.) - adlern fliegend (fly like an eagle). निघ० 1/14 में श्येन अश्वनामों में गृहीत है इसलिए कतिपय भाष्यकारों ने श्येन का अर्थ अश्व ग्रहण किया है । यह शब्द ऋग्वेद में केवल इसी मन्त्र में प्रयुक्त हुआ है । 'रथः' शब्द का विशेषण है ।

सुऽमृळीकः - 'सुख देने वाला' 'सु' उपसर्ग, 'मृड सुखने' धातु, 'मृडेः कीकन्कङ्कनौ' उ० 4/24 से भाव अर्थ में 'कीकन्' प्रत्यय, प्रथमा एकवचन । 'शोभनं मृडीकं यस्येति च' इस विग्रह से बहुव्रीहि समास होने पर 'नञ्सुभ्याम्' से उत्तर पद के अन्त में उदात्त । सा०, मुद्गल - शोभन सुखयुक्तः । अन्यत्र - ऋ० सं० 1/35/1 - सुष्ठु सुखयिता, सुष्ठु मृळीकं सुखं यस्यासौ तथोक्तं नञ्सुभ्यामित्युत्तरपदान्तोदात्तत्वम् । 1/91/11 शोभनं सुखम् 1/139/6 - सुष्ठु मृडयिता 6/47/12 9/69/10 - सुष्ठु सुखयिता । स्कन्द० - सुसुखः । वेंकट० - सुखयिता । सात्व० ऋ० का सु०भा० - बहुत सुख देने वाला । Griff. (The hymns of Ṛgd.)- bringing friendly help. Wil. (Ṛgd.S.) - elegant. Mac.D. - Compassionate or gracious. M.W. - very gracious. Lan. (A.S.R.) - be gracious. Grass. (Ṛgd.) - huldverleihend (graciously).Geld. (D.R.) - mild toting (charitable). 'रथ' का विशेषण है । Vel. (Ṛksuktaśatī) - very kind.

स्वऽवान् - 'धन से युक्त' 'स्वं' शब्द से "मादुपधायाः" सूत्र से वत्व, संहिता में नकार को 'दीर्घादटि समानपाद' से रुत्व, 'आतोऽटि नित्यं' से संहिता पाठ में सानुनासिक आकार । सा०, मुद्गल - धनवान् । अन्यत्र - ऋ० सं० ‖1/35/10, 6/47,12‖ - धनवान् । ‖10/92/9‖ - ज्ञातिमान् । स्कन्द०-धनस्थः वेंकट० - धनपूर्णः । सात्व० ‖ऋ० का सु०भा०‖ - अपनी शक्ति से युक्त । **Griff. (The hymns of Rgd.) - most gracious. Wil. (Rgd.S.) - rich, Mac.D. - wealthy, M.W. - possessing property or wealthy. Lan. (A.S.R.) - passessing property. Grass. (Rgd.)-** *hülfreich*. **Geld. (D.R.) -** *huldreich* **(benevolent).** 'स्व' शब्द का एक दूसरा अर्थ भी है, वह है 'ज्ञाति' अथवा 'सम्बन्धी' । ऋग्वेद के कई स्थलों में 'स्व' शब्द का प्रयोग इस अर्थ में भी हुआ है । परन्तु यहाँ 'स्व' का 'धन' अर्थ ही समीचीन है । ~~Griff. (The hymns of Rgd.) - three~~

त्रिऽवन्धुरः - 'तीन ‖सारथी के‖ आसनों से युक्त', 'त्रि' शब्द, 'बन्ध बन्धने' धातु औणादि 'उरन्' प्रत्यय, बध्नन्तीति बन्धुराः, त्रयो बन्धुरा यस्यासौ त्रिबन्धुरः । 'रथः' का विशेषण । सा०, मुद्गल - वन्धुरं वेष्टितं सारथेः स्थानम्, त्रिप्रकारेण वन्धुरेण युक्तम् । अन्यत्र - ऋ० सं० ‖1/47/2‖ - उन्नतानतरूपैस्त्रिभिर्बन्धनकाष्ठैर्युक्तेन ‖1/157/3‖ - निम्नोन्नतकाष्ठत्रयोपेतः सारथ्याश्रयस्थानम् वन्धुरम्, ‖1/183/1‖ - त्रिप्रकार सारथिस्थानः, वन्धुरं रथिनं स्थानमित्याहुः ‖7/69/2‖ - वन्धुरमुच्चावचं सारथ्यवस्थानं काष्ठमयम् ‖7/71/4‖ - सारथ्यधिष्ठानस्थानत्रयोपेतः ‖8/22/5‖ - वन्धुरं सारथिस्थानम् त्रिप्रकारवन्धुरोपेतः यद्वा द्वे ईषेतेन्मध्येरज्जुसज्जनार्थको दण्डः एते त्रयो वन्धुरशब्देनोच्यन्ते । स्कन्द० - त्रिसारथिस्थानः । सात्व० ‖ऋ० का सु०भा०‖ - तीन स्थानों में सुदृढ़तया बना हुआ । **Griff. (The hymns of Rgd.) - three**

seated. Wil. (Rgd.S.) - mounted by three columns. Mac.D. - three driver's seat or three seats of a chariot. M.W. - having three seats. Geld. (D.R.) - drei sitzig (three seated). Vel. (R.S.) - three seats.

वातऽरंहा - 'वायु के समान वेगवान्' 'वात' शब्द पूर्वक, 'गत्यर्थक रेह' धातु, वैदिक प्रयोग के कारण दीर्घत्व प्राप्त होने से 'रंहा' प्रयुक्त हुआ है । सा०, मुद्गल - वातस्य वायोः वेग इव वेगो यस्य स तथोक्तः, अनेन अप्रतिहतगतित्वमुच्यते । स्कन्द० - वात इव यो रंहति गच्छति स वातरंहाः क्षिप्रः । वेंकट० - वातवेगः । सात्व० - (ऋ० का सुभा०) - वायु के तुल्य वेग वाला । Griff. (The hymns of Rgd.) - fleet as the wind. Wil. (Rgd. S.) - as rapid as the wind. M.W. - swift as a wind. Grass. (Rgd.), Geld. (D.R.) - winder schnell (swift as wind). Vel. (R.S.) - has the speed of wind.

2. त्रिवन्धुरेण त्रिवृता रथेन	त्रिऽवन्धुरेण । त्रिऽवृता । रथेन ।
त्रिचक्रेण सुवृता यातमर्वाक् ।	त्रिऽचक्रेण । सुऽवृता । आ । यातम् । अर्वाक् ।
पिन्वतं गा जिन्वतमर्वतो	पिन्वतम् । गाः । जिन्वतम् । अर्वतः ।
नो वर्धयतमश्विना वीरमस्मे ।।	नः । वर्धयतम् । अश्विना । वीरम् । अस्मे इति ।

अन्वय - अश्विना । त्रिचक्रेण त्रिवन्धुरेण त्रिवृता सुवृता रथेन अर्वाक् आयातम् ।
न: गा: पिन्वतम् अर्वत: जिन्वतम् अस्मे वीरं वर्धयतम् ।

अनुवाद - हे अश्विदेवों । तीन पहियों से युक्त, तीन आसनों से युक्त, तीनों लोकों में वर्तमान, भली-भाँति गमन करने वाले, रथ के द्वारा, हमारे पास आओ । हमारी गौओं को दूध से सिंचित करो, घोड़ों को उत्तेजित करो तथा वीर संतानों को वर्धित करो ।

टिप्पणी -

त्रिऽवृता - 'तीनों लोकों में वर्तमान', 'त्रि' शब्द, 'वृतु वर्तने' धातु, 'क्विप् च' सूत्र से 'क्विप्' प्रत्यय, छान्दस दीर्घत्व के कारण त्रिवृता प्रयुक्त हुआ है । त्रिषु लोकेषु वर्तते इति त्रिवृत् । सा०, मुद्गल - त्रिधा वर्तमानेन । अन्यत्र - ऋ० सं० ॥1/47/2॥ - अप्रतिहतगतितया लोकत्रये वर्तमानेन ॥8/72/8॥ - त्रि-प्रकारप्रवर्तनवता ॥8/85/8॥ - त्रिकोणेन यद्वा त्रीणि कवचादिभिरावरणानि । स्कन्द० - त्रिभिश्चक्रैवर्तते गच्छतीति त्रिवृत तेन त्रिवृता । सात्व० ॥ऋ० का सुभा०॥ - तीन बाजू वाले । **Griff. (The hymns of Ṛgd.) - tripple form. Wil. (Ṛgd.S.) - triangular. M.W. - three fold. Lan. (A.S.R.) -three fold or tri-partite (turning thrice, with three turns). Grass. (Ṛgd.)** - drei theile . **Geld. (D.R.)** - dreitheiligen . Vel. (R.S.) - rolls forward on three sides.

जिन्वतम् - 'उत्तेजित करो', 'जीवि प्रीणनार्थ:' धातु, भौवादिक इदित्वात् 'नुम्', लोट लकार, मध्यम पुरुष, द्विवचन । सा०, मुद्गल - प्रीणयतम् ।

अन्यत्र – ऋ० सं० ॥1/112/1॥ – अत्र प्रीणहेतुभूतमापूरणं लक्ष्यते मुखेनापूरयथः 'जिवि प्रीणनार्थः' । ॥1/112/6॥ – प्रीणयथः गतमन्यत् , ॥1/112/22॥ – प्रीणयथः रक्षथः, भौवादिक, इदित्वात् नुम् । ॥1/157/2, 8/7/21, 10/9/5॥ – प्रीणयथः ॥6/49/11॥ – वृष्ट्या तर्पयन्तय ॥6/49/6॥ – प्रेरयतम् । स्कन्द० – प्रीणयतम् । वेंकट० – वर्धयतम् । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ – गतिमान करो । **Griff. The hymns of Rgd.) – give mettle. Wil. (Rgd.S.) – give spirit. M.W. – be active or lively. Lan. (A.S.R.) – quicken, Mac.D. – stimulate. Grass. (Rgd.) – eilend (quicken). Geld. (D.R.) – streit.** 'अश्व' के सन्दर्भ में प्रयुक्त होने के कारण 'उत्तेजित करना' अर्थ ही उचित होगा ।

वर्धयतम् – 'वर्धित करो', 'वृधु वर्धने' धातु, लोट् लकार, मध्यम पुरुष, द्विवचन ।
सा०, मुद्गल – प्रवृद्धं कुरुतम् । अन्यत्र – ऋ० सं० ॥1/10/4, 8/6/32॥ – प्रवृद्धं कुरु । स्कन्द०, वेंकट० – वर्धयतम् । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ वृद्धि करो । **Griff. (The hymns of Rgd.) – grow strong. Wil. (Rgd.S.) augment. M.W. – increasing or augmenting. Lan. (A.S.R.) – make to grow. Mac.D. – to increase.**
Vel. (R.S.)- to lead.

3. पृवद्यामना सुवृता रथेन | पृवत्ऽयाम्ना । सुऽवृता । रथेन ।
दस्राविमं शृणुतं श्लोकमद्रेः । | दस्रौ । इमम् । शृणुतम् । श्लोकम् । अद्रेः ।

किमङ्ग वां प्रत्यवर्तिं गमिष्ठाहुर्विप्रासो अश्विना पुराजाः ।।

किम् । अङ्गम् । वाम् । प्रति । अवर्तिम् । गमिष्ठा । आहुः । विप्रासः । अश्विना । पुराजाः ।।

अन्वय – प्रवद्यामना, सुवृता रथेन दस्त्रौ! इमम् अद्रेः श्लोकं श्रुतम् । अश्विना ! किम् अङ्ग पुराजाः विप्रासः वाम् अवर्तिं प्रति गमिष्ठा आहुः ।

अनुवाद – वेग से चलने वाले, भलीभाँति जाने वाले रथ के द्वारा (आकर) हे दस्त्रौं! इस सोमाभिषवकारी प्रस्तर की स्तुति को सुनो । हे अश्विनौं ! क्या पूर्वोत्पन्न मेधावीजन तुम दोनों को (स्तोताओं के) दारिद्र्य के समीप जाने को कहते हैं ।

टिप्पणी –

प्रवत्ऽयामना – 'वेग से जाने वाले', 'प्र' शब्द से 'उपसर्गाच्छन्दसि धात्वर्थे' (पा० सू० 5/1/112) के द्वारा 'वतिः', 'या प्रापणे' धातु 'आतो मनिन्' से भाव अर्थ में 'मनिन्' प्रत्यय, 'बहुव्रीहौ पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वं' से पूर्व पद पर उदात्त । रथेन का विशेषण । सायण, मुद्गल – प्रकृष्टगमनेन शीघ्रगामिना । स्कन्द० – यज्ञानां गन्ता, प्रवते इति गतिकर्मा, यान्ति देवता यस्मिन् स यामा यज्ञः, षष्ठीसमासे पूर्वनिपातश्छान्दसत्वात् तेन । वेंकट० – शीघ्रगमनेन । सात्व० (ऋ० का सु०भा०) – बहुत वेग से जाने वाले । निघ० (2/14) 'प्रवते' इति गतिकर्मा । **Griff. (The hymns of Rgd.) – descending swiftly. Wil. (Rgd.S.) – quick moving. Mac.D. – speeding along the slopes of heaven. M.W. – rapid in its course (** as a chariot **).**
Vel.(R.S.) – course lies over steep slopes.

श्लोकम् - 'स्तुति को', 'श्लोकृ संघाते' धातु, 'कर्मणि घञ्' प्रत्यय, 'ञित्वादाद्युदात्तत्वं' से आद्युदात्त, पुल्लिंग, द्वितीया, एकवचन । सा0, मुद्गल - स्तुतिलक्षणाम् इमां वाचम्।अन्यत्र - ऋ0 सं0 ॥1/38/14॥ - स्तोत्रम् ॥1/51/12॥ - स्तोत्रलक्षणं वचो यशो वा, √श्लोकृ संघाते, श्लोक्यते इति श्लोकः, कर्मणि घञ्, ञित्वादाद्युदात्तत्वम्। ॥7/82/10, 9/92/1॥ - स्तोत्रम्। निरु0 ॥9/1/5॥ - श्लोकः शृणोतेः' यास्काचार्य ने 'श्लोक' शब्द की व्युत्पत्ति 'श्रुञ् श्रवणे' धातु से मानी है क्योंकि श्लोक सुनने योग्य अर्थात् हृदयग्राही होता है । स्कन्द0 - शब्दम् । वेंकट0 - स्तोत्रम् । सात्व0 ॥ऋ0 का सु0भा0॥ - काव्य को । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - song, Wil. (Ṛgd.S.)-hymn. Mac.D.-song. Lan. (A.S.R.) - fame ॥लैनमन महोदय ने भी √श्रु से 'श्लोक' शब्द की व्युत्पत्ति को स्वीकारा है॥ । M.W. - hymn of praise. S.V. (The ety. of Yāska, Pg. 66) - 'a call', is traced to √श्रु 'to hear' अन्य भाषाओं में - Indo-European - 'k̂lu' (to hear). Avestā - 'Surunaoiti' (he hears). Grass. (Ṛgd.)- 'vernehmt' (to hear). Vel. (R.S.) - praise .

अद्रेः - 'सोमाभिषवकारी प्रस्तर की', 'आङ्' उपसर्ग 'दृङ्हीदृढीकरणे' धातु, औणादिक 'कि' प्रत्यय तथा आङ् को ह्रस्व, अथवा 'अद् भक्षणे' धातु ॥पा0धा0पा0 10॥ उ0पा0॥ 'अदिशदिभूशुभिभ्यः क्रिन्' से 'क्रिन्' प्रत्यय, षष्ठी, एकवचन । सा0, मुद्गल - आदरं कुर्वतः स्तोतुः । स्कन्द0 - अभिषवग्राव्णः । वेंकट0 - आद्रियमाणस्य । सात्व0 ॥ऋ0 का सु0भा0॥ - सोम कूटने के पत्थरों के । ऋ0 सं0 - ॥1/117/16॥ - पर्वतस्य ॥1/139/10॥ अभिषवसाधनस्य ग्राव्णः ॥7/6/2॥ - धर्तारमादर्तः स्तोतुर्वा ॥9/87/8॥ - पर्वतस्य । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - press-stones. Wil. (Ṛgd.S.) - who revers you. Mac.D.-

pressing stone. M.W. - a stone for pounding Soma with or grinding it on. Lan. (A.S.R.) - Soma-stone (for bruising the Soma). S.V. (The ety. of Yāska Pg. 27) - 'a stone' is traced to √अद् 'to eat', referrring to a legend in which adris are spoken of as 'eaters of Soma' or when meaning 'thunderbolt' to आ + √दृ 'to tear' referring to the legend of Indra's destroying mountains with his thunderbolt. or 'a mountain' is traced to आ + √दृ 'to honour' Lit. 'worthy of respect'. Indo-European - 'ṇd', 'ond' (stone). Mid. - Irish - 'ond' (stone). सायण, वेंकटमाधव, विल्सन आदि भाष्यकारों ने 'अद्रेः' को 'आदर करने वाले के' अर्थ में ग्रहण किया है । इसलिए सायण ने 'दृङ् आदरे' धातु से 'अद्रि' शब्द की व्युत्पत्ति मानी है । प्रस्तुत प्रसंग में 'प्रस्तर' और 'आदर करने वाले' दोनों अर्थ ही उचित है किन्तु अधिकांश भाष्यकारों ने 'सोमाभिषवकारी प्रस्तर' के अर्थ में ही ग्रहण किया है । इसलिए यही अर्थ यहाँ पर भी ग्रहण किया गया है।

अव॑र्तिम् - '(स्तोताओं के) दारिद्र्य को', 'वृतु वर्तने' धातु, 'हृपिषिरुहिवृति०' (उ० सू० 4/55/8) से 'इ' प्रत्यय, न वर्ति इति अवर्ति, नञ् तत्पुरुष समास, स्त्रीलिंग, द्वितीया, एकवचन । सा०, मुद्गल - स्तोतृणां दारिद्र्यम्। स्कन्द० - अमार्गेणापि, तृतीयार्थे द्वितीया अवर्तन्या । वेंकट० - दारिद्र्यम् । सात्व० - दरिद्रता को । Griff. (The hymns of Rgd.) - stay affliction. Wil. (Rgd.S.) - (to avert) poverty. Mac.D. - (Sanskrit English dictionary) - hunger. M.W. - (Sanskrit English dictionary) - poverty. Geld.(D.R.) - Mangel (want).
Vel. (R.S.)- (of men) in difficulty.

गमिष्ठा - 'जाने को', 'गम्' धातु से 'तृच्' प्रत्यय करने पर 'गन्तृ' शब्द बना, पुनः 'गन्तृ' शब्द से 'तुश्छन्दसि' सूत्र के द्वारा 'इष्ठन्' प्रत्यय तथा 'तुरिष्ठेमेयःसु' से तृलोप, 'सुपां सुलुक्०' से विभक्ति का आकार होने पर 'गमिष्ठा' रूप निष्पन्न हुआ। सा०, मुद्गल - गन्ततमौ। स्कन्द० - अतिशयेनोपगन्तारौ। वेंकट० - गन्तारौ। सात्व० (ऋ० का सु०भा०) - जाने वाले।
Griff. (The hymns of Rgd.) - swiftly come. Wil. (Rgd.S.) - most prompt. Geld. (D.R.) - begegnen (to meet).
Vel. (R.S.) - most frequent visitors.

4. आ वां श्येनासो अश्विना वहन्तु आ। वाम्। श्येनासः। अश्विना।
रथे युक्तास आशवः पतङ्गाः। वहन्तु। रथे। युक्तासः। आशवः। पतङ्गाः।
ये अप्तुरो दिव्यासो न गृध्रा ये। अप्ऽतुरः। दिव्यासः। न। गृध्राः।
अभि प्रयो नासत्या वहन्ति।। अभि। प्रयः। नासत्या। वहन्ति।।

अन्वय - अश्विना! वां रथे युक्तासः श्येनासः आशवः पतङ्गाः आ वहन्तु। नासत्या! ये दिव्यासः अप्तुरः गृध्राः नः प्रयः अभि वहन्ति।

अनुवाद - हे अश्विनों! तुम दोनों के रथ में जुते हुए श्येन के समान शीघ्रगामी अश्व इधर आये। हे असत्य से रहित (अश्विनों)! जो अन्तरिक्ष में विद्यमान जल के समान तथा बाज पक्षी के समान (क्षिप्रगामी) है, वे अन्न के प्रति (तुम दोनों को) पहुँचाते हैं।

टिप्पणी -

आशवः - 'शीघ्रगामी', 'अशूङ् व्याप्तौ' धातु, 'कृवापाजिमिस्वदिसाध्यशूभ्य उण्' (उ०सू० 1/1) से 'उण्' प्रत्यय, प्रथमा, बहुवचन । सा०, मुद्गल - व्याप्नुवन्तः । अन्यत्र ऋ० सं० (1/5/7) - व्याप्तिमंतः (1/4/7) - व्याप्ताय (1/135/6) - व्यापकाः सोमाः (1/140/4) व्यापनशीलाः (8/1/15) - शीघ्रम् (9/13/6) - शीघ्रगामिनः (10/78/5) - शीघ्रगमनाः । निघ० (2/15) - आशु इति क्षिप्रनाम । स्कन्द० - क्षिप्राः । वेंकट० - अश्नुवानाः । सात्व० (ऋ० का सु०भा०) - शीघ्रगामी । **Griff. (The hymns of Rgd.) - swift. Mil. (Rgd.S.) - quick moving. Lan. (A.S.R.) - swift. Mac. D. - S.E.D.) - swiftly. M.W. (S.E.D.) - going quickly.**
Vel (R.S.) - swiftly.

श्येनासः - 'श्येन के समान', 'श्येन' शब्द 'असुक्' प्रत्यय, प्रथमा, बहुवचन । सा०, मुद्गल - शंसनीयगमना अश्वाः । अन्यत्र - ऋ० सं० (4/6/10, 10/77/5, 8/20/10) - पक्षिणः श्येनाः शंसनीयगतयः पक्षिणो श्येना इव, यथा शीघ्रमागच्छन्ति तद्वदनायासेन शीघ्रमागच्छतेत्यर्थः । निरु० (4/4/5) - श्येनः शंसनीयम् गच्छति' । स्कन्द० - श्येनसदृशाः । सात्व० (ऋ० का सु०भा०)-श्येन । **Griff. (The hymns of Rgd.) - falcons, Wil. (Rgd.S.) - rapid as hawks. M.W. (S.E.D.) - eagle. Mac.D. (S.E.D.), Lan. (A.S.R.) - hawk or eagle. Grass. (Rgd.), Geld. (D.R.) - die adlern (eagle).** 'श्येन' बाज पक्षी को कहते हैं । इसके अतिरिक्त अश्व को भी श्येन कहा जाता है क्योंकि वह प्रशस्त रूप से गमन करता है । 'अश्व' अर्थ ग्रहण करने से √शंसु से 'श्येन' शब्द की व्युत्पत्ति मानी जायेगी । निघ० (1/14) में 'श्येनासः' अश्वनामों में गृहीत है । इस मंत्र में 'श्येन' को बाज पक्षी के अर्थ में ग्रहण करना उचित होगा । यहाँ 'श्येनासः' उपमार्थक है । **F.S. (The V. ety.)-The**

rapidly moving one, the most rapid, Agni a particular bird (eagle). 'श्येनो वै वयसां क्षेपिष्ठः' (S.V.B. 3/8, S.B. 3/3/4/15, T.M.B. (3/10/14) from √ Syai 'to move rapidly'. 'तच्छ्येनस्य श्यायति तस्माच्छ्येनस्तच्छ्येनस्य श्येनत्वम्' (G.B. 2/5/12. Nir. 4/4/3. Un.S.S. 2/48). Vel. (R.S) - hawks.

अप्ऽतुरः - 'जल के समान (क्षिप्रगामी)', 'अप्' उपपद पूर्वक, 'तुर् त्वरणे' धातु, 'क्विप् च' सूत्र से 'क्विप्' प्रत्यय। षष्ठी, एकवचन। 'गतिकारकोपपदात्कृत्' (पा०सू० 6/2/139) से उत्तर पद पर उदात्त। सा०, मुद्गल- आप इव त्वरोपेताः। अन्यत्र - ऋ० सं० (1/3/8) तत्तत्काले वृष्टिप्रदा इत्यर्थः 'तुर् त्वरणे' श्लुविकरणी, तुतुर्ति त्वरयन्तीत्यर्थे 'क्विप् च' (पा० सू० 3/2/76) इति क्विप्। (9/61/13) - वसतीवरीभिः प्रेरितम्। (9/63/5) - उदकस्य प्रेरकाः। स्कन्द०-आपोऽन्तरिक्षम् तत्र त्वरितारः त्वारयितारो वा मेघस्य अथवा आप उदकानि तत्र त्वरितारः। वेंकट० - उदकस्य प्रेरयितारः। सात्व (ऋ० का सु०भा०) - वेग से जाने वाले पक्षी। Griff. (The hymns of Rgd.) - ever active. Wil. (Rgd.S.) - quick as folling water. 'अप्तुरः' शब्द यहाँ उपमार्थक है। Geld. (D.R.) - gewässer (expance of water). Vel. (R.S.) - waters.

गृध्राः न - "बाज पक्षी के समान", 'गृधु अभिकांक्षायाम्' धातु, 'सुसूधागृधिभ्यः क्रन्' से 'क्रन्' प्रत्यय, 'सुपां सुपो भवन्ति' से शस् का जस् करने पर प्रथमा बहुवचन में 'गृध्राः' शब्द निष्पन्न हुआ। 'नित्यादाद्युदात्तत्वम्' से 'क्रन्' के 'नित्' होने से आदि पद पर उदात्त। सा०, मुद्गल - अन्तरिक्षे वर्तमानाः गृध्राख्याः पक्षिण इव शीघ्रं गच्छन्तः। स्कन्द०, वेंकट० - गृध्राः इव। सात्व० -

॥ऋ0 का सु0भा0॥ - गिद्धों की तरह । Griff. (The hymns of Rgd.)- like the airy eagles, Wil. (Rgd.S.) - like vultures flying through the air, Lan. (A.S.R.) - be eager or greedy for. Mac.D. (S.E.D.) - be greedy. Grass. (Rgd.), Geld. (D.R.)- geier (vulture). मैक्डॉनल और लैनमन महोदय का अर्थ प्रसंगानुसार उचित नहीं प्रतीत हो रहा है । यद्यपि गिद्ध या बाज पक्षी भोजन को प्राप्त करने के बहुत इच्छुक रहते हैं और लोभी की भाँति उस पर टूट पड़ते हैं । इस-लिए 'लोभी' (greedy) व्यक्ति के अर्थ में 'गृध्र' शब्द रूढ़ हो गया है किन्तु प्रस्तुत मन्त्र में यह केवल पक्षी के अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है 'लोभी' के अर्थ में नहीं । 'गृध्रः' यहाँ उपमार्थक शब्द है ।

5\. आ वां रथं युवतिस्तिष्ठदत्र — आ । वाम् । रथम् । युवतिः । तिष्ठत् । अत्र ।

जुष्ट्वी नरा दुहिता सूर्यस्य । — जुष्ट्वी । नरा । दुहिता । सूर्यस्य ।

परि वामश्वा वपुषः पतङ्गाः — परि । वाम् । अश्वाः । वपुषः । पतङ्गाः ।

वयो वहन्त्वरुषा अभीके ।। — वयः । वहन्तु । अरुषाः । अभीके ।।

अन्वय - नरा । सूर्यस्य युवतिः दुहिता जुष्ट्वी वां रथम् आतिष्ठत् । वपुषः अरुषाः पतङ्गाः वयः अश्वाः वाम् अभीके परि वहन्तु ।

अनुवाद - हे नेतृत्व कारक ॥अश्विदेवों॥ सूर्य की युवति पुत्री प्रसन्न होती हुई

तुम दोनों के रथ पर बैठी । सुन्दर, शरीर, चमकीले लाल वर्ण वाले, पक्षि के समान ।क्षिप्र। गति वाले, अश्व तुम दोनों को ।हमारे। समीप ले आये।

टिप्पणी -

जुष्टवी - 'प्रसन्न होती हुई', 'जुषी प्रीति सेवनयोः' धातु, औणादिक, 'क्त' प्रत्यय, 'वोतो गुणवचनात्' से 'ङीष्' प्रत्यय करने पर स्त्रीलिंग, प्रथमा, एकवचन में 'जुष्टवी' रूप निष्पन्न होगा । सा०, मुद्गल - प्रीता सती । अन्यत्र - ऋ० सं० ।8/62/6। - प्रीतोऽयम्,।9/97/16। - स्तुतिभिः प्रीतो भूत्वा, 'स्नात्व्यादयश्च इति निपातितः' । स्कन्द० - प्रीत्वा, जुषिः प्रीत्यर्थः । वेंकट० - प्रीता । सात्व ।ऋ० का सु०भा०। - आनन्दित हुई । Griff. (The hymns of Rgd.) - delighting in you. Wil. (Rgd. S.) - delighted. M.W. (S.E.D.) - pleased. Mac.D. (S.E.D.) - satisfied. Lan. (A.S.R.) - with pleasure. Grass. (Rgd.) - freude (joy). Geld. (D.R.) - gefallen (pleased). अन्य भाषाओं में - Greek-'γεύομαι' (taste). Latin - 'gustus' (taste), Anglo Saxon - 'ceōsan' English- 'choose'.

वपुषः - 'सुन्दर शरीर वाले', 'डुवप् बीजसंतापे' धातु, 'उसि' प्रत्यय, पुल्लिंग, प्रथमा, बहुवचन । 'अश्वाः' का विशेषण । सा०, मुद्गल- वपुरिति रूपस्य शरीरस्य वा नामधेयम् । स्कन्द० - रूपवन्तः । वेंकट०-उदकात् । सात्व ।ऋ० का सु०भा०। - शरीर के आकार से । निघ० ।3/7।-

वपुरिति रूपनाम । Griff. (The hymns of Rgd.) - beaut eous. Wil. (Rgd.S.) - strong bodied. M.W. (S.E.D.) - beautiful. Mac.D. (S.E.D.) - very beautiful. Lan. (A.S.R.) - beautiful or wonderful appearance. Grass. (Rgd.) - wunderschönen (very beautiful). सायण और स्कन्द ने छान्दस प्रयोग के कारण मतुप् का लोप माना है । उनके अनुसार रूपवान् अर्थ होना चाहिये । यहाँ 'वपुः' का अर्थ 'शारीरिक सौन्दर्य' ही स्वीकारना समीचीन होगा ।

अरुषा: - 'चमकीले लाल वर्ण वाले', 'आङ्' उपसर्ग, 'रुच् दीप्तौ' धातु, 'उणादि उषन्' प्रत्यय, तथा टाप्, आङ् को ह्रस्व, प्रथमा, बहुवचन । अश्वा: का विशेषण । सा०, मुद्गल - आरोचमाना, हिंसक रहिता वा । अन्यत्र - ऋ० सं० ।1/94/10। - आरोचमानौ आङ् + √ऋ गतौ + उणादि उषन् प्रत्यय, ।6/27/7, 7/16/2, 7/42/2। - आरोचमानौ । निरु० ।12/1/2। - अरुषी: आरोचना: । स्कन्द० अरुषति ।निघ० 2/24। इति गतिकर्मा गमनशीला: । वेंकट० - आरोचमाना: । सात्व० ।ऋ० का सु०भा०। - लाल रंग वाले । Griff. (The hymns of Rgd.) - ruddy. Wil. (Rgd.S.) - shinning. M.W. (S.E.D.) - reddish. Mac.D. (S.E.D.), Lan. (A.S.R.) - ruddy. Geld. (D.R.) - rötlichen. S.V. (The ety. of Yāska Pg. 73) - 'bright red' is traced to रुच्' with 'आ' ।

वयः - 'गति वाले', गत्यर्थक 'वी' धातु से व्युत्पन्न 'वय:' शब्द अनेकार्थक है - ।1। इसका एक अर्थ गमन करने वाला है । ।2। दूसरा अर्थ पक्षी

है क्योंकि पक्षी आकाश में गमन करता है । ॥3॥ तीसरा अर्थ बाण है क्योंकि बाण में पक्षियों के पंख लगे रहते हैं । इसलिए गति की तीव्रता के लिए उसी सम्बन्ध से बाण को भी 'वय' कहा जाता है । ॥4॥ चौथा अर्थ है आयु । मनुष्य की आयु कभी स्थिर नहीं रहती, बढ़ती रहती है, गतिमान है । इसलिए गत्यर्थक 'वी' धातु से निष्पन्न 'वय' शब्द का एक अर्थ आयु भी है । सा०, मुद्गल – गच्छन्तः । स्कन्द० – पक्षीसदृशाः शीघ्राः । वेंकट० – गमनशीलाः । सात्व० ॥थ० का तु०भा०॥ – पक्षी । Griff. (The hymns of Rgd.) – swift wings. Wil. (Rgd.S.) – fleet ॥वेग से भागने वाला॥ M.W. (S.E.D.) – the act of going. Lan. (A.S.R.) – bird (√वी). यहाँ 'वयः' का 'गति' अर्थ ही उचित है । क्योंकि यह 'पतङ्गा' के साथ प्रयुक्त हुआ है । 'पतङ्गाः वयः' का अर्थ होगा पक्षी के समान गति वाले । जब पतङ्गा पक्षी के अर्थ को द्योतित कर रहा है, तब 'वयः' का अर्थ यहाँ 'पक्षी' ग्रहण करना उचित नहीं होगा ।

6. उद्वन्दनमैरतं दंसनाभिरुद्रेभं	उत् । वन्दनम् । ऐरतम् दंसनाभिः । उत् । रेभम् ।
दस्रा वृष्णा शचीभिः ।	दस्रा । वृष्णा । शचीभिः ।
निष्टौग्र्यं पारयथः समुद्रात्पुन	निः । तौग्र्यम् । पारयथः । समुद्रात् ।
श्च्यवानं चक्रथुर्युवानम् ।।	पुनरिति । च्यवानम् । चक्रथुः । युवानम् ।।

अन्वय – वृष्णा दस्रा । दंसनाभिः वन्दनम् उत् ऐरतम् । शचीभिः रेभम् उत् ऐरतम् । तौग्र्यं समुद्रात् निः पारयथः । च्यवानं पुनः युवानं चक्रथुः ।

अनुवाद - कामना सेचक, शत्रुविनाशकारी ‖अश्विनों‖ । ‖तुम दोनों ने‖ कौशल-
 पूर्ण कर्मों के द्वारा वन्दन को ‖कुएँ से‖ ऊपर उठाया । शक्तियों के
द्वारा रेभ को ऊपर उठाया । तुग्र के पुत्र ‖भुज्यु‖ को समुद्र से भलीभाँति पार
लगाया । च्यवान को पुनः युवा बना दिया ।

टिप्पणी -

निः पारयथः - 'भली भाँति पार लगाया', 'निः' उपसर्ग, 'पार करने के अर्थ में'
 'पृ' धातु, लङ् लकार, मध्यम पुरुष, द्विवचन । सा०, मुद्गल - तीरदेशे
प्रापितवन्तौ । स्कन्द० - निष्कृष्य समुद्रात् पालितवन्तौ । सात्व० ‖ऋ० का
सु०भा०‖ - ठीक प्रकार से पार कराया था । Griff. (The hymns of Ṛgd.)
- saved. Wil. (Ṛgd.S.) - bore. M.W. (S.E.D.) - bringing
across. Mac.D. (S.E.D.) - taking across. Lan. (A.S.R.) -
bring across or further bank. (√ पृ 'bring across). अन्य
भाषाओं में - Indo-European - 'per-io' (to carry beyond) and
'per' (beyond). Old Icelandish -'jëran' (to go). Greek -
'peràs' (I press).

दंसनाभिः - 'कौशलपूर्ण कर्मों के द्वारा', 'दसि दंसनदर्शनयोः' धातु ‖पा०धा०
 पा० 1676, चु०, आ०‖, 'ल्युट्' प्रत्यय, तृतीया, बहुवचन ।
दंस्यतेऽनेनेति दंसना । सा०, मुद्गल - कर्मभिः । अन्यत्र - ऋ० सं० ‖1/62/6‖
- 'दंस' तदेव कर्म दंसः, 'दसि दंसनदर्शनयोः', चुरादिरात्मनेपदी, दंस्यते
कर्त्तव्यतया दृश्यते इति दंसः कर्म, औणादिकः कर्मणि असुन् , ‖6/69/4‖ - 'दंसः'
तदेव कर्म, ‖1/116/12‖ - कर्मनामैतत् पुरा कृतम्.‖1/119/7‖ - रक्षणात्मकं
कर्म । ‖1/29/2‖ - कर्मविशेषोऽनुग्रहरूपः सर्वदा वर्तते । स्कन्द० - दर्शनीयाभिः ।

सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ - कौशलपूर्ण कर्मों से । Griff. (The hymns of Rgd.) - great might. Wil. (Rgd.S.) - deeds. M.W. - (S.E.D.) - a suspring or wonderful deed. Mac. (S.E.D.) - Wond rous dedd. Roth --------------- Prof. Renou -- deeds. वेलणकर ॥ऋ० सू०वै०॥ - अद्भुत कर्म । ओल्डेनबर्ग - आश्चर्यमय शक्ति वाले । ह्विटने ॥अथर्व०॥ - महत् कार्य । Grass. (Rgd.) - wunderkraft (wonderous strength). Geld. (D.R.) - Die macht vollkommenheit ॥अनिन्दनीय कर्म॥, गेल्डनर इसे दंस् से निष्पन्न मानते हैं ।, जिससे अन्य शब्द निर्मित हुए हैं - 'दंसन', 'दंसस्', 'दंसिष्ठ', 'दंसु', 'दस्मत्', 'दस्त्र' आदि । निघ० ॥2/1॥ - में 'दंस' कर्मनामों में आम्नात' है । S.V. (The ety. of Yāska. Pg. 56) - 'action' is traced to √दंस 'to finish', lit. 'that finished by an actor' अन्य भाषाओं में - Indo-European - 'dens' (high mental energy). अवेस्ता में दहम, दहत्वा, दनूर ॥दस्॥, दम्हह ॥दंसस्॥, दंहिश्त् ॥दंसिष्ठ॥ आदि रूप मिलते हैं , जिनका अर्थ है "आश्चर्यजनक कर्म" । अतः 'दंसनाभिः' का 'कौशलपूर्ण कर्म' अर्थ उचित है ।

7. युवमत्रयेऽवनीताय तप्तमूर्जमोमानमश्विनावधत्तम् । युवं कण्वायापिरिप्ताय चक्षुः प्रत्यधत्तं सुष्टुतिं जुजुषाणा ।।

युवम् । अत्रये । अवऽनीताय । तप्तम् । ऊर्जम् । ओमानम् । अश्विनौ । अधत्तम् । युवम् । कण्वाय । अपिऽरिप्ताय । चक्षुः । प्रति । अधत्तम् । सुऽस्तुतिम् । जुजुषाणा ।।

अन्वय – अश्विनौ । युवम् अवनीताय अत्रये, तप्तम् ओमानम् ऊर्जम् अधत्तम् ।
सुष्टुतिं जुजुषाणा युवम् अपिरिप्ताय कण्वाय चक्षुः प्रत्यधत्तम् ।

अनुवाद – हे अश्विनों । तुम दोनों ने नीचे गिरे हुए अत्रि के लिए, तप्त ॥कारा-गृह॥ को ॥शान्त किया॥ तथा सुखकारक बलप्रदायक अन्न प्रदान किया । शोभन स्तुतियों से सेवित तुम दोनों ने देखने में असमर्थ कण्व के लिए पुनः चक्षु प्रदान किया ।

टिप्पणी –

ओमानम् – 'सुखकारक', 'अव रक्षणे' धातु, 'अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते' से औणादिक 'मनिन्' प्रत्यय, ज्वरत्वर0 से वकार की उपधा को ऊठ्, तथा गुण, द्वितीया, एकवचन । सा0, मुद्गल – सुखकरम् । अन्यत्र – ऋ0 सं0 ॥1/34/6॥, सुखविशेषम्,अवतेः 'अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते' इति मनिन्, 'ज्वरत्वर0 इत्यादिना अकारवकारयोः ऊठ्, सार्वधातुकार्धधातुकलक्षणो गुणः यदि 'ज्वरत्वर' इत्यत्र 'अनु-नासिके च' ॥पा0सू0 6/4/19॥ इति नानुवर्तते तर्हि पूर्वेणैव सूत्रेण वकारस्य ऊडा-देशो भविष्यति । ॥6/50/7॥ – अवति रक्षतीत्योमा रक्षकमन्नम् । ॥7/68/5॥- रक्षणं सुखम्। स्कन्द0 – अवतेरिदं रूपम्, पालनं च । वेंकट0 – रसम् । सात्व0 ॥ऋ0 का सु0भा0॥ – सुखदायक । **Griff. (The hymns of Rgd.) – favour. Mac.D. (S.E.D.) – pleasant. Wil. (Rgd.S.) – greatful. M.W. (S.E.D.) – favour. S.V. (The ety. of Yāska Pg. 11,43) – 'favour' 'kindness', which has been traced to √अव् 'to favour'. This is a notable finding. for 'ओ' having become a monophthong in Sanskrit could hardly be connected with √अव् according to the known phonetic laws of the time.**

अन्य भाषाओं में - Indo-European - 'au' (to favour), Avestā - 'aomen' (helping) Grass. (Rgd.) - 'erquickung' (comfort). 'सुखकारक' अर्थ ही समीचीन है ।

अपिऽरिप्ताय - 'देखने में असमर्थ', अपि उपसर्ग, 'रिप्' या 'लिप् उपदेहे' धातु, 'कर्मणि निष्ठा' प्रत्यय, 'गतिरनन्तरः' से गति पर उदात्त । सा0, मुद्गल - व्युष्टागुप्ताय। अन्यत्र - ऋ0 सं0 ॥8/5/23॥ - असुरैर्बाधिताय । स्कन्द0 - अपलिप्ताय छादिताक्षाय, अन्धायेत्यर्थः, रिपिर्लिपिना समानार्थः । वेंकट0 - अपिलिप्ताय । सात्व0 ॥ऋ0 का सुभा0॥ - देखने में असमर्थ । Griff. (The hymns of Rgd.), Wil. (Rgd.S.)- blinded. M.W.(S.E.D.)-grown blind, Mac.D.(S.E.D.)-blinded. 'अपिरिप्ताय' का अर्थ यहाँ 'अन्धत्व' ही उचित है ।

जुजुषाणा - 'सेवित', 'जुषी प्रीति सेवनयोः' धातु, लिट्, 'लिटः कानच् वा' से 'कानच्' प्रत्यय, 'सुपां सुलुक्0' से विभक्ति को आकार, नपुंसकलिंग, प्रथमा, द्विवचन। सा0, मुद्गल - सेवमानौ । अन्यत्र - ऋ0 सं0 ॥7/68/1, 10/150/2, 7/23/3॥ - सेवमानौ भवतामिति शेषः, ॥8/66/8॥ - प्रीयमाणः । स्कन्द0 - पुनः पुनर्वा सेवमानौ । वेंकट0 - सेवमानौ । सात्व0 - ॥ऋ0 का सुभा0॥ - आदरपूर्वक ग्रहण करते हुए । Griff. (The hymns of Rgd.) - accepting his (fair praises) with approval. Wil. (Rgd.S.) - solicitous. M.W. (S.E.D.) - to be pleased or satisfied. Mac.D. (S.E.D.) - rejoice. Lan. (A.S.R.) - take pleasure in. Geld. (D.R.) - gefallen (pleased). प्रसंगानुसार 'सेवित' अर्थ ही उचित है ।

8. युवं धेनुं शयवे नाधितायाा पिन्वतमश्विना पूर्व्याय । अमुञ्चतं वर्तिकामंहसो निः प्रति जङ्घां विश्पलाया अधत्तम् ॥

युवम् । धेनुम् । शयवे । नाधिताय । अपिन्वतम् । अश्विना । पूर्व्याय । अमुञ्चतम् । वर्तिकाम् । अंहसः । निः । प्रति । जङ्घाम् । विश्पलायाः । अधत्तम् ॥

अन्वय - अश्विना । युवं पूर्व्याय नाधिताय शयवे धेनुम् अपिन्वतम् । वर्तिकाम् अंहसः निः अमुञ्चतम् । विश्पलायाः जङ्घां प्रत्यधत्तम् ।

अनुवाद - हे अश्विनौं । तुम दोनों ने पूर्व काल से याचना करने वाले शयु के लिए गायों को दूध से सिञ्चित कर दिया । वर्तिका (नामक पक्षी) को पाप से मुक्त किया । विश्पला की जांघ को पुनः स्थापित किया ।

टिप्पणी -

नाधिताय - 'याचना करने वाले के लिए', 'नाधृ याञ्चायाम्', धातु (पा० धा०पा० 1803, भ्वा०, आ०), 'क्त' प्रत्यय, चतुर्थी, एकवचन । सा०, मुद्गल - याचमानाय । अन्यत्र - ऋ० सं० (1/109/3, 1/110/5, 10/73/11, 1/118/10) - याचमानाः, √नाधृ याञ्चायाम् । स्कन्द० - याचितवते । वैंकट० - याचमानाय । सात्व० (ऋ० का सु०भा०) - याचना करने वाले । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - sore affliction. Wil. (Ṛgd. S.) - imploring (your aid). M.W., (S.E.D.) - needy.

Mac.D. (S.E.D.) - suppliant or needy. Peterson (Hymns from the Ṛgveda) - of the suppliant. Greesbolt - of the supplicating. Grass. (Rgd.) - flehte (tp pray). अतः "याचना करने वाले के लिए" अर्थ ही उचित है ।

9. युवं श्वेतं पेदव इन्द्रजूत- युवम् । श्वेतम् । पेदवे । इन्द्रऽजूतम् ।
अहिहनमश्विनादत्तमश्वम्। अहिऽहनम् । अश्विना । अदत्तम् । अश्वम् ।
जोहूत्रमर्यो अभिभूतिमुग्रं जोहूत्रम् । अर्यः । अभिऽभूतिम् । उग्रम् ।
सहस्रसां वृषणं वीड्वंगम्।। सहस्रऽसाम् । वृषणम् । वीळुऽअङ्गम् ।।

अन्वय - अश्विना । युवं श्वेतम् इन्द्रजूतम् अहिहनं जोहूत्रम् अर्यः अभिभूतिम् उग्रं सहस्रसां वृषणं वीड्वङ्गम् अश्वं पेदवे अदत्तम् ।

अनुवाद - हे अश्विनों । तुम दोनों ने श्वते वर्ण वाले, इन्द्र के द्वारा प्रेरित, अहि का नाश करने वाले, ।युद्ध में बार-बार। बुलाये जाने योग्य, शत्रु को अभिभूत करने वाले, बलशाली दृढ़ अंग वाले अश्व को पेदु के लिए दे दिया ।

टिप्पणी -

इन्द्र॑ऽजूतम् - 'इन्द्र के द्वारा प्रेरित', 'गत्यर्थक जू' धातु से 'कर्मणि निष्ठा' प्रत्यय, 'तृतीया कर्मणि' से पूर्व पद पर उदात्त, द्वितीया, एकवचन। सा०, मुद्गल - इन्द्रेण गमितं दत्तमित्यर्थः। स्कन्द० - इन्द्रमिव गन्तारं शत्रून् प्रति। वेंकट० - इन्द्रेण प्रेरितम्। सात्व० ऋ० का सु०भा० - इन्द्र के द्वारा प्रेरित। Griff. (The hymns of Rgd.) - sent down by Indra. Wil. (Rgd.S.) - received from Indra. M.W.(S.E.D.) - Impelled or driven by Indra. Lan. (A.S.R.) - assisted or inspired by Indra. Mac.D. - (S.E.D.) - given speed by Indra.

'इन्द्रजूतम्' का 'इन्द्र के द्वारा प्रेरित' अर्थ ही उचित है। यह 'अश्वम्' का विशेषण है।

जो॑हूत्रम् - 'बुलाये जाने योग्य', 'हूञ् आह्वाने' यङ् लुगन्त धातु से उणादि 'त्रप्' प्रत्यय, द्वितीया, एकवचन। 'अश्व' का विशेषण। सा०, मुद्गल - अतिशयेन संग्रामेष्वाह्वातारम्। स्कन्द० - आह्वातव्यं (संग्रामेषु जयकरत्वात्)। वेंकट० - (संग्रामेषु) आह्वातव्यम्। सात्व० ऋ० का सु०भा० - बार-बार (संग्राम में) बुलाये जाने योग्य। Griff. (The hymns of Rgd.), Wil. (Rgd.S.) - loud neighing. M.W. (S.E.D.) -challenging or neighing. Mac.D.(S.E.D.) - roaring or neighing loud. Lan. (A.S.R.) - call upon. Grass. (Rgd.) - wiehernde (to neigh). ऋग्वेद में केवल इसी मंत्र में प्रयुक्त।

अ॒भि॑ऽभूतिम् - 'अभिभूत करने वाले' 'अभि' उपसर्ग पूर्वक, 'भू' धातु, करणे 'क्तिन्'

प्रत्यय, 'तादौ च0' से गति पर उदात्त । सा0, मुद्गल - अभिभावुकम् , न अभिभूयतेऽनेनेत्यभिभूतिः । स्कन्द0 - अभिभवितारम् । वेंकट0 - अभिभवितारम् । सात्व0 (ऋ0 का सु0भा0) - पराभवकर्ता । ऋ0 सं0 (8/16/8) - शत्रूणामभिभविता तिरस्कर्ता भवति, (10/76/2) - शत्रूणामभिभावुकम् । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - conquering (the foe). Wil. (Ṛgd.S.) - defying (enemies). M.W. (S.E.D.) - over powering. Mac.D. (S.E.D.) - over coming. Lan. (A.S.R.) - superiority. Grass. (Ṛgd.) - feindbezwinger (to overcome the enemy).

वीळ्वऽङ्गम् - 'दृढ़ अंग वाले', अत्यन्त कठोरार्थक 'वीळ' धातु से निष्पन्न 'वीळु' शब्द पूर्वक, 'गत्यर्थक अगि' या 'अन्चु' धातु से निष्पन्न अङ्ग शब्द के द्वितीया, एकवचन का रूप है । सा0, मुद्गल - दृढाङ्गम् । निरु0 (5/3/58) - वीळयतिश्च, संस्तम्भ कर्माणौ । निरु0 (4/1/3) - अङ्गम् अङ्गनादञ्चनात् वा अर्थात् गत्यर्थक 'अगि' या 'अञ्चु' धातु से बनता है । क्योंकि ये गति वाले होते हैं, अतः इन्हें अङ्ग कहते हैं । स्कन्द0, वेंकट0 - दृढाङ्गम् । सात्व0 (ऋ0 का सु0भा0) - दृढ़ अंग वाले । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - firm limbed. Wil. (Ṛgd.S.) - firm in body. M.W. (S.E.D.) - strong limbed. Mac.D. (S.E.D.) - hard body. Grass. (Ṛgd.) - gliederstarken (strong limbs). Geld. (D.R.) - festen gliedorn. S.V. (The ety. of Yāska. Pg. 52)- is derived from √वीळ् 'to be stiff'. Indo European - 'ṷ-es-d' (to pursue), old Irish - 'fe' (anger), Latin- vī-r-ēs (powers).

10. ता वां नरा स्ववसे सुजाता ता । वाम् । नरा । सु । अवसे ।
सुऽजाता ।

हवामहे अश्विना नाधमानाः ।हवामहे । अश्विना । नाधमानाः ।

आ न उप वसुमता रथेन आ । नः । उप । वसुऽमता । रथेन ।

गिरो जुषाणा सुविताय गिरः । जुषाणा । सुविताय । यातम् ।।
यातम् ।।

अन्वय - नरा, अश्विना । सुजाता ता वां नाधमानाः सु अवसे हवामहे ।
गिरः जुषाणा वसुमता रथेन सुविताय नः उप आ यातम् ।

अनुवाद - हे नेतृत्व कारक अश्विदेवों । शोभन कुल में उत्पन्न तुम दोनों का, याचना करते हुए ।हम स्तोतागण। भली भाँति रक्षा के लिए, आह्वान करते हैं । स्तुतियों से प्रसन्न होते हुए, धन से युक्त रथ के द्वारा, भलाई के लिए, हमारे समीप आओ ।

टिप्पणी -

सुऽजाता - 'शोभन कुल में उत्पन्न', 'सु' उपसर्ग पूर्वक, 'जनी प्रादुर्भावे' धातु, 'क्त' प्रत्यय, 'सुपां सुलुक्0' से विभक्ति के आकार तथा 'नञ्-सुभ्याम्' से उत्तर पद के अन्त में उदात्त । सा0, मुद्गल - शोभनजन्मानौ । अन्यत्र - ऋ0 सं0 ।1/72/3। - पूर्वं रूपं परित्यज्य शोभनममृतत्वं प्राप्ताः सन्त-

स्तन्वः स्वकीयानि शरीराण्यसूदयंत स्वर्गं प्रापितवन्तः । ॥8/25/2॥ - शोभनजन्मानौ । स्कन्द० - सुजन्मानौ । वेंकट० - शोभनजातौ । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ - अच्छे कुल में उत्पन्न । **Griff. (The hymns of Ṛgd.) - bobly born. Wil. (Ṛgd.S.) - well born. M.W. (S.E.D.), Mac.D. (S.E.D.), Lan. (A.S.R.) - well born.**

सुवि॒ताय - 'भलाई के लिए', 'सु' पूर्वक, 'इण् गतौ' धातु, 'कर्मणि क्त' प्रत्यय, 'निष्ठा तन्वादीनां छन्दसि बहुलमुपसंख्यानम्' से उवङ्, 'सूपमानात् क्तः' से उत्तर पद पर उदात्त । सा०, मुद्गल- सुष्ठु प्राप्तव्याय धनाय सुखाय वा । अन्यत्र - ॠ० सं० ॥1/90/4॥ - सुष्ठु प्राप्तव्याय स्वर्गादि फलाय ॥6/32/4॥ - शोभनाय, ॥1/104/2॥ - सुष्ठु प्राप्तव्याय यज्ञाय । ॥7/2/6॥ -कल्याणाय । ॥8/7/33॥ - सुष्ठु प्राप्तव्याय धनाय च तान् । ॥9/82/5॥- अभ्युदयाय । ॥10/35/3॥ - सुखाय । स्कन्द० - सुगताय यागकर्मणे । वेंकट०- सुष्ठु प्राप्तव्याय धनाय । सात्व० - ॥ऋ० का सु०भा०॥ - भलाई के लिए । **Griff. (The hymns of Ṛgd.) - well being. Wil. (Ṛgd.S.) - to bring us felicity. M.W. - welfare. Mac.D. (S.E.D.) - prosperity. Geld. (D.R.) -** labesworten **(comfort).**

11. आ श्येनस्य जवसा नूतनेनास्मे आ । श्येनस्य । जवसा । नूतनेन । अस्मे इति ।

यातं नासत्या सजोषाः । यातम् । नासत्या । सऽजोषाः ।

हवे हि वामश्विना रातहव्यः हवे । हि । वाम् । अश्विना । रातऽहव्यः ।

शश्वत्तमाया उषसो व्युष्टौ ।। शश्वत्ऽतमायाः । उषसः । विऽउष्टौ ।।

अन्वय - नासत्या अश्विना । सजोषा श्येनस्य नूतनेन जवसा अस्मे आ यातम् ।
रातहव्यः शश्वत्तमायाः उषसः व्युष्टौ वां हवे ।

अनुवाद - हे असत्य से रहित अश्विनों । प्रीति युक्त होकर, अश्व के नये वेग से
हमारे समीप आओ । दिये जाने वाले हवि को लेकर ॥हम॥ नित्य
शाश्वत उषा के प्रादुर्भावकाल में तुम दोनों का आह्वान करते हैं ।

टिप्पणी -

जवसा - 'वेग से', तीव्र या वेग के अर्थ में प्रयुक्त 'जू' धातु से 'असच्' प्रत्यय,
तृतीया, एकवचन । सा०, मुद्गल - वेगेन सहितौ । अन्यत्र - ऋ०सं०
॥4/17/3, 4/22/6, 5/78/4, 8/89/4, 4/27/1॥ - वेगेन । स्कन्द०,
वेंकट० - वेगेन । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ - वेग से । **Griff. (The hymns of Rgd.) - swift vigour. Wil. (Rgd.S.) - velocity. M.W. (S.E.D.), Mac.D. (S.E.D.) - swiftness. Geld. (D.R.)-** schnelligkeit **(swiftly or rapidly).**

सऽजोषा - 'प्रीति युक्त होकर', 'स' पूर्वक, 'जुषी प्रीति सेवनयोः' धातु से
'क्विप्' प्रत्यय, 'सुपां सुलुक्०' से जस् का सु होने पर, प्रथमा,
एकवचन में सजोषा रूप निष्पन्न हुआ । सा०, मुद्गल - सजोषसौ समानप्रीति-
युक्तौ । अन्यत्र - ऋ० सं० ॥1/65/1॥ - समानप्रीतयः सन्तो, जुषी प्रीति-

सेवनयोः समानं जुषतं इति सजोषसः, समानस्य चेलुंक्, ममहनेत्यादिनोद्गुत्तर-पदप्रकृतिस्वरत्वम्, सुपां सुलुगिति जसः सुः । ॥1/72/6॥ - समानप्रीतिस्त्वम्। ॥1/90/1॥ - समानप्रीतिः । ॥6/3/1, 8/42/15॥ - सह प्रीयमाणः सन् । स्कन्द० - सम्प्रीयमाणावित्यर्थः व्यत्ययेनेदमेकवचनम्, सजोषसौ । सात्व० - ॥ऋ० का सु०भा०॥ - एक साथ कार्य करने वाले ॥तुम दोनों॥ । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - combined in love. Wil. (Ṛgd.S.) - auspicious. M.W. (S.E.D.) - with satisfaction. Mac.D. (S.E.D.) - with liking. Lan. (A.S.R.) - with pleasure. Geld. (D.R.) - Einträchtig (in hormony). अतः 'प्रीतियुक्त होकर' यही अर्थ समीचीन होगा ।

रा॒तऽहव्यः - 'दिये जाने वाले हवि को लेकर', दानार्थक 'रा' धातु से 'क्त' प्रत्यय करने पर 'रात' शब्द निष्पन्न हुआ तथा 'हुञ् हवने' धातु से 'यत्' प्रत्यय करने पर 'हव्य' शब्द बना । प्रथमा एकवचन । सा०, मुद्गल - दातव्येन हविषा । अन्यत्र - ऋ० सं० ॥1/31/13, 8/103/13॥ - दत्तहविष्कः । स्कन्द० - दत्तहविष्कः सन् । वेंकट० - दत्तहविष्को । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ - हविर्भाग को देकर । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - bearing oblations. Wil. (Ṛgd.S.) - bearing an oblation. M.W. (S.E.D.) - one to whom the offering is presented. Mac.D. (S.E.D.) - offering a willing sacrifice. Geld. (D.R.) - opfer spenden (distribution of offerings).

विऽउष्टौ - 'प्रादुर्भाव काल में', 'वि' उपसर्ग पूर्वक, 'वस् निवासे' धातु से 'क्त' प्रत्यय करने पर 'व्' का 'उ' हो जाने से अथवा 'वि' उपसर्ग पूर्वक 'उषिदाहे' धातु से 'क्त' प्रत्यय करने पर 'व्युष्टौ' शब्द सप्तमी, एकवचन में निष्पन्न हुआ । सा०, मुद्गल - विवासन समये । अन्यत्र - ऋ० सं० ॥1/48/6॥ - प्रभातकाले । स्कन्द० - विवासनवेलायां तमसः, उषउदय-वेलायामित्यर्थः । वेंकट० - व्युच्छने । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ - प्रादुर्भाव हो चुकने पर । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - at the first break, Wil. (Ṛgd.$.) - at the rising, M.W. (S.E.D.) - grown bright or become daylight, Mac.D. (S.E.D.) - flush of dawn, Lan. (A.S.R.) - Morning red or down (√वस् 'light up dawn'). Vel. (R.S.) - at the break (of this most freequent dawn) Geld. (D.R.) - aufgang (morgenröte) (rising of morning sky). अतः 'प्रादुर्भाव काल में' अर्थ ही उचित है ।

1.119.1.10

1. आ वां रथं पुरुमायं मनोजुवं आ । वाम् । रथम् । पुरुऽमायम् । मनःऽजुवम्।

जीराश्वं यज्ञियं जीवसे हुवे । जीरऽअश्वम् । यज्ञियम् । जीवसे । हुवे ।

सहस्त्रकेतुं वनिनं शतद्वसुं सहस्त्रऽकेतुम् । वनिनम् । शतत्ऽवसुम् ।

श्रुष्टीवानं वरिवोधामभि श्रुष्टीऽवानम् । वरिवःऽधाम् । अभि ।

प्रयः ।। प्रयः ।।

अन्वय - पुरुमायं मनोजुवं जीराश्वं सहस्त्रकेतुं वनिनं शतद्वसुं श्रुष्टीवानं वरिवोधां यज्ञियं वां रथं जीवसे अभि प्रयः आ हुवे ।

अनुवाद - अनेक आश्चर्यजनक कलाओं में दक्ष, मन के समान शीघ्रगामी, वेगवान घोड़ों से युक्त, सहस्त्र ध्वजाओं से युक्त, (धन सम्पदा) का दान करने वाले, सैकड़ों धनों से युक्त, क्षिप्र, धन को धारण करने वाले, पूजनीय, तुम दोनों के रथ का जीवन धारण के लिए, हविष्यान्न के प्रति आह्वान करता हूँ ।

टिप्पणी -

पुरुऽमायम् - 'अनेक आश्चर्यजनक कलाओं में दक्ष', 'पुरु' शब्द, 'मापनार्थक मा' धातु, 'यत्' प्रत्यय, द्वितीया एकवचन, 'बहुव्रीहौ विचक्रादित्वादन्तोदात्त' से अन्तिम स्वर पर उदात्त हुआ । 'रथं' का विशेषण । सा०, मुद्गल - बहुविधाश्चर्यम् बहुविधकर्माणं वा । स्कन्द० - बहुप्रज्ञम् । वेंकट० -

बहुप्रकारनिर्माणम् । सात्व0 ॥0 का सु0भा0॥ - अनेक कुशल कारीगरी से पूर्ण । Griff. (The hymns of Rgd.) - wondrous. Wil. (Rgd. S.) - wonderful. Lan. (A.S.R.) - with very supernatural or wonderful power. Mac.D. (S.E.D.) - very magical. M.W. (S.E.D.) - possessing various arts or virtues. Grass. (Rgd.) - zauber reich (बहुविध आश्चर्य से युक्त). Geld-(D.R.) - dlungsreichen. अतः 'अनेक आश्चर्यजनक कलाओं' में दक्ष' अर्थ ही उचित है ।

मनःऽजुवम् - 'मन के समान शीघ्रगामी' 'मन' शब्द, 'गत्यर्थक जव' धातु, 'घञ्' प्रत्यय, द्वितीया एकवचन । 'रथं' का विशेषण । सा0 मुद्गल - मन इव शीघ्रं गच्छन्तम्। स्कन्द0 - मनोवद् गन्तारम् । वेंकट0 - मनोवेगम् । सात्व0 ॥0 का सु0भा0॥ मन के तुल्य वेगवान् । Griff. (The hymns of Rgd.) - thought swift, Wil. (Rgd.S.) - swift as thought. Lan. (A.S.R.) - speedy as thought. Mac.D. (S.E.D.) - exceedingly swift as thought, M.W. (S.E.D.) - swift as thought. Grass. (Rgd.), Geld. (D.R.) - gedanken schnell (मन के समान तीव्रगामी).

जीरःऽअश्वम् - 'वेगवान् घोड़ों से युक्त' 'गत्यर्थक जु' धातु, 'जोरी च' ॥उ0सू0 2/18॥ से 'रक्' प्रत्यय, अन्त में ईकारादेश तथा 'बहुव्रीहौ पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम्' से पूर्व पद के अन्तिम स्वर पर उदात्त हुआ । 'अशूङ् व्याप्तौ' अथवा 'अश् अशने' धातु से व्युत्पन्न अश्व शब्द के द्वितीया एकवचन का रूप है । 'रथं' का विशेषण । सा0, मुद्गल - जववदश्वोपेतम्।

अन्यत्र - ऋ० सं० ॥1/141/12॥ - शीघ्रगमनाश्वः ॥1/157/3॥ - शीघ्रगाम्यश्वोपेतः । स्कन्द०, वेंकट० - क्षिप्राश्वम् । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ - वेगवान् घोड़ों से युक्त । Griff. (The hymns of Rgd.) - rapid steeds, Wil. (Rgd.S.) - fleet horses, Lan. (A.S.R.) - quick horses, Mac. D. (S.E.D.) - active horse. M.W. (S.E.D.) - having lively or fleet horses. Grass. (Rgd.), Geld. (D.R.) - roschen rossen (फुर्तीले या तेज दौड़ने वाले घोड़े).

यज्ञियम् - 'पूजनीय' 'यज्' धातु 'यज्ञर्त्विग्भ्यां घखञौ' ॥पा०सू० 5/1/71॥ से 'घ' प्रत्यय, 'आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनां' ॥पा०सू० 7/1/2॥ से इयादेश होने पर प्रत्यय स्वर के द्वारा इकार पर उदात्त, द्वितीया एकवचन 'रथं' का विशेषण । सा०, मुद्गल - यज्ञेष्वाह्वातुमर्हम् । अन्यत्र - ऋ० सं० ॥1/6/1॥ - यज्ञमर्हति 'यज्ञर्त्विग्भ्यां घखञौ' इति अर्हार्थे घ प्रत्ययः । ॥6/16/4॥ - यज्ञार्हम् त्वाम् , ॥8/80/9॥ - यज्ञसंबन्धि, ॥10/124/3॥ - यज्ञार्हम् वेदीलक्षणं भूभागम्। स्कन्द०, वेंकट० - यज्ञार्हम् । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ - पूजनीय Griff. (The hymns of Rgd.), Wil. (Rgd.S.) - delight, Lan. (A.S.R.), Mac. D. (S.E.D.)- worthy of worship. M.W. (S.E.D.) - worshipping more or most, F.S. (The V. ety.) - object of worship or adoration through sacrifice, from √Yaj - स यज्ञियो यजति यज्ञिया ऋतून् ——— (A.V. 18/1/18) Grass. (Rgd.) - willfährig (नम्रशील या आज्ञाकारी).

सहस्त्रऽकेतुम् - 'सहस्त्र ध्वजाओं से युक्त'। सा0, मुद्गल - अनेकध्वजम्।
स्कन्द0 - सहस्त्रपताकम्। वेंकट0 - अनेक केतुमालाकृतऽनेक-
क्षुद्रकेतुम्। सात्व0 (श्र0 का सु0भा0) - अनेक झंडो वाला। Griff. (The hymns of Rgd.) - with thousand banners. Wil. (Rgd.S.) - many bannered, Lan. (A.S.R.) - thousand beams or brightness, Mac.D., M.W. - (S.E.D.) - thousand bannered. Grass. (Rgd.) - tausand strahlen (सहस्त्र किरणों वाला), Geld. (D.R.)- tausend banhern (सहस्त्र केतु)। लैनमन महोदय ने 'केतु' शब्द की उत्पत्ति को 'कित् संज्ञाने' धातु से स्वीकार किया है। उन्होंने ... भाष्य-कारों से सर्वथा भिन्न अर्थ ग्रहण किया है। 'केतु' का अर्थ 'प्रकाश किरणें' या 'चमक' ग्रहण करना सर्वथा नवीन प्रयास है। ग्रासमन महोदय ने भी लैनमन महोदय को अर्थ का अनुसरण करते हुए 'केतु' का 'किरण' अर्थ ग्रहण किया है। ऋग्वेद में केवल इसी मन्त्र में प्रयुक्त हुआ है।

शततऽवसुम् - 'सैकड़ों धनों से युक्त' 'वस् कान्तौ' धातु, 'उ' प्रत्यय, द्वितीया
एकवचन। 'शत वसुम्' शब्द होना चाहिए परन्तु छान्दस प्रयोग के कारण तकार का आगमन हुआ है। सा0, मुद्गल - शतसंख्याकैर्धनैर्युक्तम्। निघ0 (2/10) में वसु धनपर्यायों में आम्नात है। स्कन्द0 - शतधनम्। वेंकट0 - बहुधनम्। सात्व0 (श्र0 का सु0भा0) - सौ ढंग से धन रखने वाले। Griff. (The hymns of Rgd.) - hundred treasures. Wil. (Rgd. S.) - containing wealth, Lan. (A.S.R.), Mac.D., M.W.(S.E. D.) - hundred wealth, Grass. (Rgd.), Geld. (D.R.) - hundert gütern (सैकड़ों धन वाला)। ऋग्वेद में केवल इसी मंत्र में प्रयुक्त।

श्रुष्टीऽवानम् - 'क्षिप्र', 'अशूङ् व्याप्तौ' धातु से निष्पन्न 'आशु' शब्द के
'शु' से 'क्तिन्' प्रत्यय करने पर 'श्रुष्टी' शब्द बना। 'रथं'

का विशेषण । सा०, मुद्गल - क्षिप्रं सम्भजमानम् । अन्यत्र - ऋ० सं० ॥1/67/1॥ - आशु अश्नुते कर्माणि व्याप्नोतीति श्रुष्टियमाणः क्षिप्रेण कर्मणामनुष्ठातेत्यर्थः। ॥7/18/6॥ - आशुप्राप्तिम् ॥7/18/10॥ - शीघ्रप्राप्तिम् निरु० ॥6/3/50॥- श्रुष्टीति क्षिप्रनाम - आशु अष्टीति । स्कन्द० - श्रुष्टिरिति क्षिप्रनाम । वेंकट० - क्षिप्रवन्ताम् । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ - शीघ्र गति से युक्त । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - promptly obedient, Wil. (Ṛgd.S.) - abundantly yielding, Mac.D. (S.E.D.) -swift, M.W. (S.E.D.) - quick, S.V. (The ety. of Yāska Pg. 122)- 'quick', is traced to आशु + √अश् lit. 'that which reaches soon', Böhtlink, O. and Roth, R. (St. Petersburg Sanskrit wörterbuch) - 'श्रुष्टि' is an extension of the meaning of hearing, viz. 'complaisant, quick from √श्रुष् 'to bear', which is a secondary from of √श्रु. अतः 'श्रुष्टीवान्' का 'क्षिप्र' अर्थ ही समीचीन है ।

2. ऊर्ध्वा धीतिः प्रत्यस्य प्रयामन्यधायि	ऊर्ध्वा । धीतिः । प्रति । अस्य । प्रऽयामनि । अधायि ।
शस्मन्त्समयन्त आ दिशः ।	शस्मन् । सम् । अयन्ते । आ । दिशः ।
स्वदामि घर्मं प्रति यन्त्यूतय	स्वदामि । घर्मम् । प्रति । यन्ति । ऊतयः ।
आ वामूर्जानी रथमश्विनारुहत् ॥	आ । वाम् । ऊर्जानि । रथम् । अश्विना । अरुहत् ॥

अन्वय – अस्य प्रयामनि धीतिः ऊर्ध्वा शस्मन् अधायि, दिशः सम् आयन्ते ।
घर्मं स्वदामि, ऊतयः प्रति यन्ति । अश्विना ! ऊर्जानी वां रथम् आ अरुहत् ।

अनुवाद – इस [रथ] के चलने पर हमारी बुद्धि स्तुति कार्य के उच्चतम पद पर अधिष्ठित हो चुकी है । स्तोतागण (चारों) दिशाओं से आ चुके हैं । हविष्यरूप घृतादि को स्वादु बना दिया है, रक्षक [ऋत्विक् जन हविष्य के] समीप जा रहे हैं । हे अश्विनों ! सूर्य की पुत्री तुम दोनों के रथ पर आरूढ़ है । ~~Griff. (The hymns of Rgd.) - hymn. Wil. (Rgd.~~

टिप्पणी –

धीतिः – 'बुद्धि', 'ध्यै चिन्तायाम्' धातु, 'क्विप् च' से 'क्विप्' प्रत्यय, 'यशब्देन दृशिग्रहणानुकर्षणात्' से संप्रसारण होने पर 'धी' शब्द बना, पुनः 'धी' शब्द से 'क्तिन्' प्रत्यय करने पर प्रथमा एकवचन में 'धीतिः' शब्द निष्पन्न हुआ । सा०, मुद्गल – अस्मदीया बुद्धिः । अन्यत्र – ऋ० सं० [1/67/3] – धीयते सोमः पीयतेऽस्मिन्निति धीतिर्यागः । [1/110/1] – स्तुतिश्च । [8/12/10] – स्तुतिः । स्कन्द० – स्तुत्येषु धीयमानत्वात् स्तुतिरुच्यते । वेंकट० – मदीया वाक् । सात्व० [ऋ० का सु०भा०] – हमारी बुद्धि । Griff. (The hymns of Rgd.) – hymn. Wil. (Rgd.S.) – minds. Lan. (A.S.R.) – thought. Mac.D. (S.E.D.), M.W. (S.E.D.) – thought. Grass. (Rgd.) – andacht [गम्भीर चिन्तन] । यहाँ 'धीतिः' का 'बुद्धि' अर्थ ही उचित है किन्तु जिन भाष्यकारों ने 'चिन्तन' अर्थ ग्रहण किया है वे भी संगत हैं ।

प्रऽयामनि – 'प्रकृष्ट रूप से चलने पर', 'प्र' उपसर्ग पूर्वक, 'या प्रापणे' धातु, 'आतो मनिन्' तथा 'कृत्यल्युटो बहुलम्' से भाव अर्थ में 'मनिन्' प्रत्यय, 'दासीभारादि०' से पूर्व पद पर उदात्त, सप्तमी एकवचन । सा०, मुद्गल – प्रयाणे, प्रगमने सति । स्कन्द० – आगमने सति, प्र इत्येष आ इत्येतस्य स्थाने आगतेऽस्मिन् रथे इत्यर्थः । वेंकट० – गमने । सात्व० (ऋ० का सु०भा०) – आगे बढ़ने पर । Griff. (The hymns of Ṛgd.) – it moveth, Wil. (Ṛgd.S.) – its moving, Lan. (A.S.R.), Mac.D. (S.E.D.) – going. Grass. (Ṛgd.) – ankunfit (आगमन) ।

शस्मन् – 'स्तुति (कार्य के)', 'शंसु स्तुतौ' धातु, 'अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते' से 'मनिन्' प्रत्यय, 'दृशिग्रहणस्य विध्यन्तरोपसंग्रहार्थत्वात्' से उपधा के नकार का लोप, 'सुपां सुलुक्०' से सप्तमी विभक्ति का लोप हो जाने से प्रथमा, एकवचन में 'शस्मन्' रूप निष्पन्न हुआ । सा०, मुद्गल – शंसने । स्कन्द० – शासनम्, चतुर्थ्याश्चात्र लुक् । वेंकट० – क्रियमाणे । सात्व० (ऋ० का सु०भा०) – स्तुति । Griff. (The hymns of Ṛgd.) – praise, Wil. (Ṛgd.S.) – in praise. ऋग्वेद में केवल इसी मन्त्र में प्रयुक्त ।

ऊर्जानी – 'सूर्य की पुत्री' 'ऊर्ज् बलप्राणनयोः' धातु से 'क' प्रत्यय करने पर 'ऊर्ज' शब्द निष्पन्न हुआ, उसी के स्त्रीलिंग का रूप है 'ऊर्जानी' ऊर्ज शब्द अनेकार्थक है । ऋग्वेद में कहीं उदक, तथा कहीं बलप्रदायक अन्न के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है किन्तु ऊर्ज् अथवा ऊर्जा का शाब्दिक अर्थ 'शक्ति' है । यहाँ सूर्य की पुत्री को ऊर्जानी कहकर सम्बोधित किया गया है । कतिपय

भाष्यकारों ने 'ऊर्जानी' शब्द को शक्ति का मानवीकरण मानकर, सूर्य की पुत्री सूर्या को शक्ति के मानवीकृत रूप में स्वीकार किया है । सा०, मुद्गल- सूर्यस्य दुहिता । स्कन्द० - अन्नवती, ऐश्वर्ययुक्तेत्यर्थः । वेंकट० - सूर्यस्य दुहिता । सात्व० (ऋ० का सु०भा०) - सूर्य की तेजस्वी कन्या । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - Suryā the daughter of Sun (strength personified), Wil. (Ṛgd.S.) - the daughter of the sun. Lan. (A.S.R.) - strength (√वृज् 'swell with, be full of), Mac.D. (S.E.D.) - vigorous, M.W. (S.E.D.) - strength personified. Grass. (Ṛgd.) - stärkung (बलवर्द्धक) S.V. (The ety. of Yāska Pg. 43) - 'food', is traced to √ऊर्ज् 'to invigorate'. अन्य भाषाओं में 'ऊर्ज्' के समकक्ष शब्द - Indo-European - ūrĝ (to swell with energy), Avestā - vərəzəna (effectiveness), Latin -'virga' (swelling twig). यहाँ 'ऊर्जानी' का अर्थ 'शक्ति' अथवा 'अन्नवती' नहीं है अपितु यह सूर्य की पुत्री सूर्या को सम्बोधित करने वाला संज्ञावाची शब्द है ।

3. सं यन्मिथः पस्पृधानासो अग्मत	सम् । यत् । मिथः । पस्पृधानासः । अग्मत ।
शुभे मखा अमिता जायवो रणे ।	शुभे । मखा । अमिता । जायवः । रणे ।
युवोरह प्रवणे चेकिते रथो	युवोः । अह । प्रवणे । चेकिते । रथः ।
यदश्विना वहथः सूरिमा वरम् ।।	यत् । अश्विना । वहथः । सूरिम् । आ । वरम् ।।

अन्वय - अश्विना ! यत् शुभे रणे अमिता जायव: मरवा मिथ: पस्पृधानास:
सम् अग्मत । युवो: रथ: प्रवणे चेकिते । यत् वरं सूरिम् आ वहथ: ।

अनुवाद - हे अश्विनों ! जब कल्याणार्थ युद्ध में असंख्य जयशील तथा यज्ञशील परस्पर स्पर्धा करते हुए एकत्रित होते हैं । तब तुम दोनों का रथ ढलानयुक्त मार्ग में नीचे की ओर उतरता दिखलाई पड़ता है (अर्थात् स्वर्ग से पृथ्वी की ओर आता दिखलाई पड़ता है) । जिसमें (तुम दोनों) धन को सोमाभिषवकारी स्तोता के लिए ले आते हो ।

टिप्पणी -

पस्पृधानास: - 'स्पर्धा करते हुए', 'स्पर्ध संघर्षे' धातु, लिट् 'लिट: कानच् वा' से 'कानच्' प्रत्यय, असुक्, छान्दस प्रयोग में रेफ के सम्प्रारण होने से अकार का लोप, प्रथमा, बहुवचन । सा०, मुद्गल - स्पर्धमाना: । स्कन्द०, वेंकट० - स्पर्धमाना । सात्व० (ऋ० का सु०भा०) - स्पर्धा करते हुए । Griff. (The hymns of Rgd.) - striving, Wil. (Rgd.S.) - contending, Lan. (A.S.R.) - rivalary, M.W. (S.E.D.) - to emulate, Grass. (Rgd.) - schlacht (प्रतियोगिता), Geld. (D.R.) - wettstreit (प्रतिस्पर्धा) ।

सम् अग्मत - 'चारों ओर से एकत्रित होते हैं', सम् उपसर्ग 'अज् गतिक्षेपणयो:' धातु, लुङ् लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन, 'समो गम्यृच्छि' (पा० सू० 1/3/29) से आत्मनेपद, 'बहुलं छन्दसि' से शप् का लोप, झ को अत् आदेश,

'मन्त्रे घस्' से च्लि का लोप, 'गमहन०' ॥पा०सू० 6/4/98॥ से उपधा लोप। सा०, मुद्गल – संगच्छन्ते। अन्यत्र – ऋ० सं० ॥1/20/5, 1/80/16, 7/73/4, 1/14/7, 10/91/2॥ – संगच्छन्ते। स्कन्द० – संगच्छन्ते। सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ – इकट्ठे हो जाते हैं। Griff. (The hymns of Rgd.) – have met, Wil. (Rgd.S.) – come together. Geld. (D.R.) – zussammengekummen एक दूसरे से मिलते हैं।

मखा – 'यज्ञशील', 'मह् या मंह पूजायाम्' धातु, 'अच्' प्रत्यय, प्रथमा, बहुवचन। सा०, मुद्गल – मखवन्तो यज्ञोपेता। अन्यत्र – ऋ० सं० ॥1/64/11॥ – मख इति यज्ञनाम। निघ० ॥3/17॥ – मख इति यज्ञनाम। स्कन्द० – यज्ञस्य युष्मदानयनेन वृष्टिद्वारेण वा कर्त्तारः। वेंकट० – यज्ञशीला सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ – महनीय ॥वीर लोग॥। Griff. (The hymns of Rgd.) – in flight, Wil. (Rgd.S.) – devout, Mac.D.(S.E.D.), M.W. (S.E.D.) one who performs sacrifice, Lan. (A.S.R.) – jocund (√मह्), Grass. (Rgd.) – helden (शूरवीर), Geld. (D.R.) – herren ॥सज्जन पुरुष॥। 'मखा' का अर्थ 'यज्ञशील' ही उचित है। ग्रासमन और गेल्डनर महोदय के अर्थ प्रसंगानुसार उचित नहीं प्रतीत हो रहे हैं। सात्वलेकर महोदय ने 'मंह पूजायाम्' धातु से निष्पन्न 'मख' शब्द का अर्थ महनीय किया है जो कि इस प्रसंग में प्रयुक्त हो सकता है।

अमिताः – 'असंख्य', 'मा मापने' धातु 'क्त' प्रत्यय, स्त्रीलिंग, प्रथमा, बहुवचन। न मिताः इति अमिताः, नञ् तत्पुरुष समास। सा०,

मुद्गल, स्कन्द० - अपरिमिताः । वेंकट० - बहवः । सात्व० ऋ० का सु० भा०ऋ - असंख्य । Griff. (The hymns of Rgd.) - brisk measureless, Wil. (Rgd.S.) - unnumbered, M.W. (S.E.D.) - without a certain measure or boundless, Mac.D. (S.E.D.) - inumerable, Geld. (D.R.) - unerme Blicher (अमापनीय) अन्य भाषाओं में 'मिताः' के समकक्ष शब्द - Latin - 'min - or' (less), Assyrian- 'min' (small), Old high German - 'minhiro, Minv - iro', Middle high German - 'minre', German - 'minder' (less), Greek - 'μεcεν', 'μn-ιων' (less), English - 'minnow' (very small fish).

जायवः - 'जयशील', 'जि जये' धातु, 'कृवापाजि०' सूत्र से 'उण्' प्रत्यय, प्रथमा, बहुवचन । सा०, मुद्गल - स्कन्द०, वेंकट० - जयशीलाः मनुष्याः । ऋ० सं० ॥1/135/8॥ - जेतारो यजमानाः । सात्व० ऋ० का सु०भा०॥ - जयिष्णु । Griff. (The hymns of Rgd.) - eager for victory, Wil. (Rgd.S.) - victarious, Mac.D. (S.E.D.) - be victorious. Grass. (Rgd.), Geld. (D.R.) - siegreich (विजयमान या विजयी)

प्रवणे - 'ढलान ॥युक्त मार्ग॥ में', 'प्र' उपसर्ग, 'वनषणसम्भक्तौ धातु, 'अच्' प्रत्यय, सप्तमी, एकवचन । सा०, मुद्गल - प्रकर्षेण संभजनीये भूतले । स्कन्द० - निम्नेदेशे । सात्व० ऋ० का सु०भा०॥ - निम्न भाग से उतरता

हुआ । Griff. (The hymns of Rgd.) - upon the slope, Wil. (Rgd.S.) - on its downward course. Grass. (Rgd.) - jäken bohn (ढलानयुक्त रास्ता) ।

चेकिते - 'दिखलाई पड़ता है', 'कित् ज्ञाने' धातु, यङन्त से छान्दस प्रयोग में वर्तमान काल में लिट्, 'अतोलोपयलोपौ' से 'यत्' प्रत्यय, 'सुपां सुलुक्0' से तृतीया का लोप । सा0, मुद्गल, स्कन्द0 - ज्ञायते । अन्यत्र - ऋ0 सं0 (1/53/3) - √कित् ज्ञाने, अस्मात् यङन्ताद्वर्तमाने लिटि, आमन्त्रे इति निषेधात् आम्प्रत्ययाभावे सति लिट आर्धधातुकत्वात् अतोलोपयलोपौ । ज्ञायते । (1/155/3) - प्रकर्षेण अस्माभिर्ज्ञातो बभूव । (6/61/13) - प्रकर्षेण ज्ञायते । वेंकट0 - दृश्यते । सात्व0 (ऋ0 का सु0भा0) - दीखता है । Griff. (The hymns of Rgd.) - is seen, Wil. (Rgd.S.) - is perceived. 'ज्ञानार्थक कित्' धातु से निष्पन्न होने पर इसका शाब्दिक अर्थ 'ज्ञायते' ही होगा किन्तु यहाँ देखने के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है ।

सूरिम् - 'सोमाभिषवकारी स्तोता' 'षूञ् अभिषवे' धातु से उणादि 'क्रिन्' प्रत्यय, पुल्लिंग, द्वितीया, एकवचन । सा0, मुद्गल - स्तोतारम्। स्कन्द0 - स्तोतारम्। वेंकट0 - वरिष्ठं सुवीर्यं च । सात्व0 (ऋ0 का सु0 भा0) - ज्ञानी के । Griff. (The hymns of Rgd.) - to the prince, Wil. (Rgd.S.) - to the worshipper, M.W. (S.E.D.) - soma sacrificer. Mac.D. (S.E.D.) - great scholar or sage. Geld. D.R.) - fürsten (शासक या अधिपति) । 'सूरिम्' का अर्थ केवल स्तोता

अथवा ज्ञानी ग्रहण न करके सोम को अभिषुत करने वाला स्तोता ।सोमाभि-षवकारी स्तोता। ग्रहण करना अधिक संगत होगा क्योंकि उसकी उत्पत्ति 'षुञ् अभिषवे' धातु से हुई है । इसलिए उत्पत्ति को ध्यान में रखते हुए 'सूरि' शब्द का सम्बन्ध सोम के अभिषवन से स्वभावतः ही जुड़ जाता है ।

4. युवं भुज्युं भुरमाणं विभिर्गतं	युवम् । भुज्युम् । भुरमाणम् । विऽभिः । गतम् ।
स्वयुक्तिभिर्निवहन्ता पितृभ्य आ ।	स्वयुक्तिऽभिः । निऽवहन्ता । पितृभ्यः । आ ।
यासिष्टं वर्तिर्वृषणा विजेन्यं१	यासिष्टम् । वर्तिः । वृषणा । विऽजेन्यम् ।
दिवोदासाय महि चेति वामवः ।।	दिवःऽदासाय । महि । चेति । वाम् । अवः ।।

अन्वय - युवं भुरमाणं गतं भुज्युं स्वयुक्तिभिः विभिः निवहन्ता विजेन्यं पितृभ्यः वर्तिः आ यासिष्टम् । वृषणा ! दिवोदासाय वाम् अवः महि चेति ।

अनुवाद - तुम दोनों ने संघर्ष करते हुए जल में निमग्न भुज्यु को, स्वयं जोड़े हुए, पक्षी के समान शीघ्रगामी ।रथ। के द्वारा, विशिष्ट प्रकार से वहन करते हुए, निर्जन प्रदेश में स्थित ।भुज्यु के। माता पिता के घर तक ले आये । हे कामना सेचक ! दिवोदास के लिए ।की गई। तुम दोनों की सहायता भी

महती थी ।

टिप्पणी -

भुरमाणम् - 'संघर्ष करते हुए', 'डुभृञ् धारणपोषणयोः' धातु, कर्मणि लट्, 'शानच्' प्रत्यय, व्यत्यय से शः, 'बहुलं छन्दसि' से उत्व, द्वितीया एकवचन । 'भुज्युम्' का विशेषण । सा०, मुद्गल - भ्रियमाणम् स्कन्द० - ग्रस्यमानं, मत्स्यै मकरैश्च, भुरतिर्ग्रसनार्थः । वेंकट० - ह्रियमाणम् । सात्व० ऋ० का सु०भा० - भ्रान्ति की अवस्था को पहुँचे हुए । Griff. (The hymns of Rgd.), Lan. (A.S.R.) - struggled, Wil. (Rgd. S.) - perished, Mac.D. (S.E.D.) - quiver. Grass. (Rgd.) - zappelte (व्याकुल) 'भुरमाणम्' शब्द का विभिन्न भाष्यकारों ने पृथक-पृथक अर्थ ग्रहण किया है । प्रसंग को देखते हुए 'संघर्ष करते हुए' अर्थ ही उचित प्रतीत होता है । किन्तु सायण और मुद्गल महोदय द्वारा गृहीत 'भ्रियमाणम्' और ग्रासमान महोदय का 'व्याकुल' अर्थ भी अनुचित नहीं है ।

स्वयुक्तिऽभिः - 'स्वयं जोड़े हुए ॥रथ॥ के द्वारा', स्वपूर्वक, 'युजिर योगे' धातु, 'क्तिन्' प्रत्यय, तृतीया, बहुवचन । सा०, मुद्गल- स्वयमेव युज्यमानैः । स्कन्द० - स्वयमेव ये रथे युज्यन्ते ते स्वयुक्तयः तैः । वेंकट० - स्वयमेव युज्यमानैः । सात्व० ऋ० का सु०भा० - अपनी निजी युक्तियों से । Griff. (The hymns of Rgd.) - self yoked, Wil. (Rgd.S.) - self harnessed, M.W. (S.E.D.) - self conected,

Mac. D. (S. E. D.) - self combined. Lan. (A. S. R.) - self yoked. Grass. (Ṛgd.). Geld. (D. R.) - selbstages - chirrten (स्वयं जोड़े हुए) । अतः 'स्वयं जोड़े हुए ।रथ। के द्वारा' अर्थ ही उचित है । सभी भाष्यकारों ने यही अर्थ ग्रहण किया है ।

विजेन्यम् - 'निर्जन प्रदेश में स्थित', 'वि' उपसर्ग पूर्वक, 'जनी प्रादुर्भावे' धातु, से 'भवे छन्दसि' से यत् प्रत्यय, 'तित्स्वरितः' से स्वरितत्व प्राप्त हुआ । सा०, मुद्गल - दूरस्थं ब्रुवते, दूरे वर्तमानस्य स्कन्द० - विजेतृ शत्रूणाम् । वेंकट० - विजेतव्यस्य सात्व० ।ऋ० का सु०भा०। -सुदूरवर्ती स्थान में वर्तमान । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - for distant. Wil. (Ṛgd. S.) - distant. Mac. D. (S. E. D.) - lonely or deserted. M. W. (S. E. D.) - free from people or lonely. Grass. (Ṛgd.) - ferngelegnes (दूरस्थ). स्कन्दस्वामिन् और वेंकटमाधव ने प्रसंग से सर्वथा अलग अर्थ ग्रहण किया है । 'विजेन्यम्' का अर्थ यहाँ 'निर्जन प्रदेश' ही उचित है । ऋग्वेद में केवल एक बार, इसी मंत्र में प्रयुक्त हुआ है ।

आ यासिष्टम् - 'ले आये', 'आ' उपसर्ग पूर्वक, 'या प्रापणे' धातु, 'यमरमनमातांसक्च' ।पा०सू० 7/2/73। से सगागम, सिच् से इट् का आगम, लुङ् लकार, मध्यम पुरुष, द्विवचन, पादादि में होने से क्रियापद होने पर भी निघाताभाव । सा०, मुद्गल - आगच्छतम् । अन्यत्र - ऋ०सं०

[7/40/5] - अयातिष्टमागच्छतम् , [7/67/10, 7/69/8, 8/22/7] - आगच्छतम् । स्कन्द० - प्रत्यागतवन्तौ स्थ: । वेंकट० - आभिवहन्तौ । सात्व० [ऋ० का सु०भा०] - चले गये थे । Griff. (The hymns of Rgd.) - went to, Wil. (Rgd.S.) - went, M.W. (S.E.D.) - come to, Lan. (A.S.R.) - come hither, Geld. (D.R.) - bringend (ले आना).

5. युवोरश्विना वपुषे युवायुजं — युव: । अश्विना । वपुषे । युवाऽयुजम् ।
रथं वाणी येमतुरस्य शर्ध्यम् । — रथम् । वाणी इति । येमतु । अस्य शर्ध्यम्।
आ वां पतित्वं सख्याय जग्मुषी — आ । वाम् । पतिऽत्वम् । सख्याय । जग्मुषी ।
योषावृणीत जेन्या युवां पती ।। — योषा । अवृणीत । जेन्या । युवाम् पति इति ।।

अन्वय - अश्विना ! युव: वपुषे युवायुजं रथम् वाणी अस्य शर्ध्यं येमतु: । सख्याय जग्मुषी, वां पतित्त्वम् , जेन्या योषा युवां पति आ अवृणीत ।

अनुवाद - हे अश्विनों ! तुम दोनों के द्वारा शोभार्थ जोता हुआ रथ, वाणी के द्वारा अपने बल को प्राप्त कर चुका है । मित्रता के लिए आई

हुई, तुम दोनों से पतित्व की कामना करने वाली, विजय से प्राप्त करने योग्य स्त्री, तुम दोनों को पति के रूप में स्वीकार कर चुकी है ।

टिप्पणी -

शर्ध्यम् - 'बल को', 'शृधु प्रसहने' धातु, 'अचोयत्' से यत् प्रत्यय, 'यतोऽनाव:' से आद्युदात्त । सा०, मुद्गल - प्राप्यम् आदित्याख्यम् अवधिभूतं लक्ष्यम्। निघ० ।2/9। - 'शर्धः इति बलनाम' । स्कन्द० - बलवन्तम्। सात्व० ।ऋ० का सु०भा०। - बल को । Griff. (The hymns of Rgd.) - urged, Wil. (Rgd.S.) - for the sake of honour, M.W. (S.E.D.) - defiant, bold or daring, Grass. (Rgd.) - starken (सबल). ऋग्वेद में केवल इसी मन्त्र में प्रयुक्त । 'शर्ध्य' का 'लक्ष्य' अर्थ उचित नहीं प्रतीत होता । यहाँ इसका अर्थ 'बल' ही तर्कसंगत है ।

जग्मुषी - 'आई हुई', 'गम्' धातु, लेट्, 'क्वसु' प्रत्यय, 'उगितश्च' से ङीप्, 'वसो: सम्प्रसारणम्' से सम्प्रसारण, 'गमहन०' से उपधा लोप होने पर जग्मुषी रूप निष्पन्न हुआ । सा०, मुद्गल - आगतवती । अन्यत्र - ऋ० सं० ।7/39/3, 1/122/14। - स्तोतुर्मुखान्निर्गच्छन्ती: । स्कन्द० - प्रत्यागत सतीत्यर्थ: । सात्व० ।ऋ० का सु०भा०। - इच्छा करने वाली । Griff. (The hymns of Rgd.), Wil. (Rgd.S.) - came. सात्वलेकर महोदय द्वारा गृहीत अर्थ 'इच्छा करने वाली', वस्तुत: 'जग्मुषी' का शाब्दिक अर्थ नहीं है । इसका शाब्दिक अर्थ तो 'आई हुई' ही उचित है । उन्होंने इसे भाव अर्थ में ग्रहण किया है ।

जेन्या - 'विजय से प्राप्त करने योग्य', 'जि जये' धातु से औणादिक 'एन्य' प्रत्यय 'टि' का लोप तथा स्त्रीप्रत्यय 'टाप्', स्त्रीलिंग प्रथमा, एकवचन । सा०, मुद्गल - जीयमाना । स्कन्द० - जिता । वेंकट० - जेतारौ । सात्व० [ऋ० का सु०भा०] - विजय से प्राप्त करने योग्य ।

Griff. (The hymns of Ṛgd.) - noble birth, Wil. (Ṛgd.S.)- prize, M.W. (S.E.D.) - of noble origin (√जनी प्रादुर्भावे), Mac.D. (S.E.D.) - of noble race, Lan. (A.S.R.) - win by conquest. ग्रिफिथ, मोनियर विलियम्स तथा मैक्डॉनल महोदय ने 'जेन्या' की उत्पत्ति 'जनी प्रादुर्भावे' धातु से मानी है । उनके अर्थ भी अनुचित नहीं हैं किन्तु देवशास्त्रीय पुराकथा के अनुसार यह विदित होता है कि सूर्य की पुत्री सूर्या के स्वयंवर में एक प्रतियोगिता का आयोजन किया गया था । अश्विनी कुमारों ने उस प्रतियोगिता को जीतकर सूर्या को पत्नी रूप में प्राप्त किया । अतः इस पुराकथा को देखते हुए 'जेन्या' का अर्थ 'विजय से प्राप्त करने योग्य' ही उचित होगा । यह 'योषा' का विशेषण भी है ।

6. युवं रेभं परिषूतेरुरुष्यथो हिमेन घर्मं परितप्तमत्रये ।
युवं शयोरवसं पिप्यथुर्गवि प्र दीर्घेण वन्दनस्तार्यायुषा ।।

युवम् । रेभम् । परिऽसूतेः । उरुष्यथः । हिमेन । घर्मम् । परिऽतप्तम् । अत्रये । युवम् । शयोः । अवसम् । पिप्यथुः । गवि । प्र । दीर्घेण । वन्दनः । तारि । आयुषा ।।

अन्वय – युवं रेभं परिसूतेः उरुष्यथः, अत्रये परितप्तं घर्मम् हिमेन । शयोः
गवि युवमवसम् पिप्यथुः, वन्दनः दीर्घेण आयुषा प्र तारि ।

अनुवाद – तुम दोनों ने रेभ को संकट से बचाया । अत्रि के लिए अत्यन्त गर्म स्थान को बर्फ से ठंडा बनाया । शयु की गौ में तुम दोनों ने रक्षणोपयोगी दूध पर्याप्त मात्रा में वर्धित किया और वन्दन को दीर्घ आयु देकर प्रकृष्ट रूप से वर्धित किया । ~~Griff. (The hymns of Rgd.) - from tyronmy. Wil. (Rgd.S.) - from the violence. Lan.~~
टिप्पणी –

परिऽसूतेः – 'संकट से', 'परि' उपसर्ग पूर्वक, 'षू प्रेरणे' धातु, 'क्त' प्रत्यय, पंचमी, एकवचन । सा०, मुद्गल – प्रेरकादुपद्रवात् कूपपतनाद्वा सर्वतः प्रेरणात् । स्कन्द० – सर्वतः प्रेरणात्, √षू प्रेरणे । वेंकट० – परिष्कृतम् । सात्व० – संकट से । Griff. (The hymns of Ṛgd.) – from tyronmy. Wil. (Ṛgd.S.) – from the violence. Lan. (A.S.R.) – extracted from allsides. M.W. (S.E.D.) – generating. Grass. (Ṛgd.) – bedrängniss (विपत्ति से). यहाँ 'परिसूतेः' का शाब्दिक अर्थ प्रयुक्त नहीं हुआ है । इसका शाब्दिक अर्थ है 'चारों ओर से प्रेरित' । इस मन्त्र में यह चतुर्दिक से घिरे हुए संकट को द्योतित कर रहा है ।

उरुष्यथः – 'बचाया', 'रक्षार्थक उरुष्य' धातु, लट् लकार, मध्यम पुरुष, द्विवचन । सा०, मुद्गल – रक्षथः । अन्यत्र – ऋ० सं० 10/40/8 – रक्षथः । निरु० (5/4/69) – उरुष्यतीति रक्षाकर्मा । स्कन्द०, वेंकट–

रक्षितवन्तौ । सात्व० (ऋ० का सु०भा०) - बचाया । Griff.(The hymns of Rgd.) - saved, Wil. (Rgd.S.) - preserved, Mac. D. (S.E.D.) - pratected or recued, M.W. (S.E.D.) - with desire to protect, Grass. (Rgd.) - lindertet (कम करना या उपशमित करना), Geld. (D.R.) - befreitet (मुक्त करना), S.V. (The ety. of Yāska) - 'to protect is formed from उरुष् ।

प्रऽतारि - 'प्रकृष्ट रूप से वर्धित किया', 'प्र' उपसर्ग पूर्वक, 'तॄ प्लवनतरणयोः' धातु, 'णिच्' प्रत्यय । सा०, मुद्गल - युवाभ्यां प्रवर्धितः, प्रपूर्वं स्तिरतिर्वर्धनार्थः । अन्यत्र - ऋ० सं० (4/12/6, 9/93/5) - वर्धितमस्तु । (10/59/1) - प्रवर्धताम्। स्कन्द० - प्रवर्धितः । वेंकट० - उत्तारितः सात्व० (ऋ० का सु०भा०) तारण किया । Griff. (The hymns of Rgd.)- holpen, Wil. (Rgd.S.) - endowed, Geld. (D.R.) - verlängert (वर्धित किया). 'प्र तारि' यहाँ 'वर्धित करने' के अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है ।

7. युवं वन्दनं निर्ऋतं जरण्यया — युवम् । वन्दनम् । निःऽऋतम् । जरण्यया ।

रथं न दस्रा करणा समिन्वथः । रथम् । न । दस्रा । करणा । सम् । इन्वथः ।

क्षेत्रादा विप्रं जनथो विपन्यया क्षेत्रात् । आ । विप्रम् । जनथः । विपन्यया ।

प्र वामत्र विधते दंसना भुवत् — प्र । वाम् । अत्र । विधते । दंसना । भुवत् ।।

अन्वय - दस्त्रा, करुणा । युवं जस्ययया निः श्रतं वन्दनं रथं न सम् इन्वथः ।
विपन्यया विप्रं क्षेत्रात् आ जनथः । वां दंसना विधते प्र भूतत् ।

अनुवाद - हे शत्रुविनाशक कार्यकुशल अश्विदेवों ! तुम दोनों ने वृद्धावस्था से पूर्णतया व्याप्त वन्दन को रथ की आदि (जैसे कुशल कारीगर टूटे हुए रथ का मरम्मत कर उसे पुनः नया बना देता है उसी प्रकार) पुनः युवा बना दिया । स्तुति करते हुए विप्र को क्षेत्र से उत्पन्न किया । तुम दोनों अलौकिक कर्मों के द्वारा, परिचरण करते हुए (यजमान) की प्रकृष्ट रूपेण रक्षा में समर्थ होते हो ।

टिप्पणी -

जस्ययया - 'वृद्धावस्था से', 'जृ वयोहानौ' धातु, 'छन्दसि च' से 'यः' प्रत्यय, नपुंसकलिंग, तृतीया, एकवचन । सा०, मुद्गल - जरया । स्कन्द०, वेंकट० - जरया । सात्व० (ऋ० का सु०भा०) - बुढ़ापे से । Griff. (The hymns of Rgd.) - length of days, Wil. (Rgd.S.) - by old age, Lan. (A.S.R.) - decay, Mac.D. (S.E.D.) - decrepit, old, M.W. (S.E.D.) - old or decayed, Grass. (Rgd.) - altersmarschen, Geld. (D.R.) - alteresschwäche (वृद्धावस्था के कारण अशक्त).

सम् इन्वथः - 'पुनः युवा बना दिया', 'सम्' उपसर्ग पूर्वक, 'इवि व्याप्तौ' धातु, नुमागम , लट् लकार, मध्यम पुरुष, द्विवचन । सा०, मुद्गल - समधत्तं पुनर्युवानम् कुरुतम् । स्कन्द० - सम्यग्व्याप्तवन्तौ । वेंकट०-

सम्पूरितवन्तौ । सात्व० ऋ० का सु०भा०॥ - तरुण बना दिया । Griff. (The hymns of Rgd.) , will (Rgd.S.) - restored, Lan. (A. S.R.) - drive away, Mac.D. (S.E.D.) - overcome, M.W. - (S.E.D.) - invigorate (पुष्ट करना) लैनमन महोदय के द्वारा गृहीत 'drive away' अर्थ का तात्पर्य यहाँ वृद्धावस्था को दूर भगाने से है । उसी प्रकार मैक्डॉनल महोदय का अर्थ 'overcome' का तात्पर्य भी वृद्धावस्था को जीतकर पुनः युवा बनाने से है । ये दोनों ही अर्थ शब्द से सीधे जुड़े नहीं हैं, पर परोक्षरूप से वृद्धावस्था को दूर कर पुनः युवा बनाने के अर्थ को ही द्योतित कर रहे हैं ।

विपन्यया - 'स्तुति करते हुए', 'वि' उपसर्ग, 'पन् स्तुतौ' धातु, 'अध्याद-यश्च' से भावे 'यत्' प्रत्यय, व्यत्यय से अन्तोदात्त । सा०, मुद्गल - स्तुत्या । अन्यत्र - ऋ० सं० १०/१०/३४॥ - स्तुत्या स्तूयमानः, ॥10/72/1॥ - विस्पष्टया वाचा । स्कन्द० - स्तुत्या हेतुना, स्तुतौ सन्ता-वित्यर्थः । वेंकट० - स्तुत्या प्रीतौ । सात्व० - स्तुति से प्रसन्न होकर । Griff. (The hymns of Rgd.) - in wondrous mode, Wil. (Rgd. S.) - by his praises. M.W. (S.E.D.) - joyfully or wonderfully, Geld. (D.R.) - beifall (समर्थन करते हुए). प्रसंगानुसार गेल्डनर महोदय का अर्थ उचित नहीं प्रतीत होता । 'विपन्यया' का अर्थ 'स्तुति करते हुए' ही समीचीन होगा ।

8. अगच्छतं कृपमाणं परावति अगच्छतम् । कृपमाणम् । पराऽवति । पितुः ।

पितुः

स्वस्य त्यजसा निबाधितम् । स्वस्य । त्यजसा । निऽबाधितम् ।

स्वर्वतीरित ऊतीर्युवोरह चित्रा स्वःऽवतीः । इतः । ऊतीः । युवोः । अह । चित्राः ।

अभीके अभवन्नभिष्टयः ।। अभीके । अभवन् । अभिष्टयः ।।

अन्वय – स्वस्य पितुः त्यजसा निबाधितं कृपमाणं परावति अगच्छतम् । युवोः अह स्वः वतीः चित्राः इतः ऊतीः अभीके अभिष्टयः अभवन् ।

अनुवाद – अपने ही पिता के द्वारा त्याज्य, पीड़ित तथा स्तुति करते हुए (भुज्यु) के समीप दूर देश से आये तुम दोनों का यह तेज से युक्त, अद्भुत जो संरक्षण है । वह सभी (प्राणियों) के समीप अभिलषणीय हो गई ।

टिप्पणी –

परावति – 'दूर देश से', 'परा' उपसर्ग पूर्वक, 'ईर् गतौ' धातु, सम्प्रसारण से 'ई' का 'य्', सा0, मुद्गल – दूरदेशे समुद्रमध्ये । अन्यत्र – निघ0 (3/26) – 'परावत् इति पंच दूरनामानि' । स्कन्द0 – दूरे । वेंकट0- दूरदेशे । सात्व0 (ऋ0 का सुभा0) – दूरवर्ती देश में । Griff. (The hymns of Rgd.) – distant place, Wil. (Rgd.S.) – from afar, Lan. (A.S.R.), Mac.D. (S.E.D.), M.W. (S.E.D.) – from distance. Grass. (Rgd.), Geld. (D.R.) – ferne (दूरस्थ देश) S.V. (The ety. of Yāska, Pg. 242) – 'distance' is traced to

'परा', परा + √ईर् 'to push off' or परा + √गम् 'to depart' i.e. that which is pushed off or persued.

स्वः॑ऽवतीः - 'तेज से युक्त', 'सु' पूर्वक, 'अर्तिः' भाव अर्थ में 'विच्' प्रत्यय तदनन्तर 'मतुप्' अथवा 'स्व' शब्द से 'मतुप्' प्रत्यय, 'छन्दसीरः' से 'मतुप्' को 'वत्व', स्त्रीलिंग, द्वितीया, बहुवचन । सा0, मुद्गल - स्वर्वत्यः शोभनगमनयुक्ताः । स्कन्द0 - सर्वैः परिचारकैस्तद्वत्यः, सहेत्यर्थः । वेंकट0 - अभ्युदयवत्यः । सात्त्व0 ॥ऋ0 का सु0भा0॥ - तेज से युक्त । Griff. (The hymns of Rgd.) - rich with the light of heaven, Wil. (Rgd.S.) - prompt, Grass. (Rgd.) - licht glänzend (प्रकाश से चमचमाता हुआ), Geld. (D.R.) - licht bringenden (प्रकाशयुक्त) 'ऊतीः' का विशेषण है । स्वः वतीः का 'तेज से युक्त' अर्थ ही उचित है ।

अ॒भिष्टयः - 'अभिलषणीय' 'अभि' उपसर्ग पूर्वक, 'इषु इच्छायाम्' धातु, 'क्तिन्' प्रत्यय, स्त्रीलिंग, प्रथमा, बहुवचन, 'उपसर्गाश्चाभिवर्जम्' से 'अभि' पर अन्तोदात्त । सा0, मुद्गल - सर्वैः प्राणिभिः अभ्येषणीयाः । अन्यत्र - ऋ0 सं0 ॥1/52/4॥ - आभिमुख्येन गमनवत्यः, इष्टयेषणानि, उपसर्गाश्चाभिवर्जम्' इति वचनात् अभिः अन्तोदात्तः, बहुव्रीहौ पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वेन स एव शिष्यते । ॥8/8/17॥ - अभिप्राप्तये । ॥9/84/2॥ - अभितो गमनाय । स्कन्द0 - अभियागाश्च । वेंकट0 - अभ्येषणानि । सात्त्व0 ॥ऋ0 का सु0भा0॥ - अभिलषणीय । Griff. (The hymns of Rgd.) - succor, Wil. (Rgd.S.) have been wished to be (by all), Mac.D.(S.E.D. - superiority or help, M.W. (S.E.D.) - protector, Grass. (Rgd.) - wurde (सम्माननीय), Geld. (D.R.) - hilfeleistungen

[सहायक] । विभिन्न भाष्यकारों ने भिन्न-भिन्न अर्थ ग्रहण किये हैं । किन्तु यहाँ 'अभिलषणीय' अर्थ ही समीचीन है ।

9. उत स्या वां मधुमन्	उत । स्या । वाम् । मधुऽमत् ।
मक्षिकारपन्मदे सोमस्यौ-	मक्षिका । अरपत् । मदे । सोमस्य ।
शिजो हुवन्यति ।	औशिजः । हुवन्यति ।
युवं दधीचो मन आ	युवम् । दधीचः । मनः । आ ।
विवासथोऽथा	विवासथः । अथ ।
शिरः प्रति वामश्व्यं	शिरः । प्रति । वाम् । अश्व्यम् ।
वदत् ।।	वदत् ।।

अन्वय – उत् स्या मधुमत् मक्षिका वाम् अरपत् । सोमस्य मदे औशिजः हुवन्यति। दधीचः मनः युवम् आ विवासथः । अथ अश्व्यं शिरः वां प्रति वदत् ।

अनुवाद – जैसे मधुकामा मक्खी तुम दोनों की स्तुति करती है [वैसे ही] सोम के मद से मत्त औशिज [उशिक् पुत्र कक्षीवान] तुम दोनों का आह्वान करता है । जब दधीचि का मन तुम दोनों ने सेवा के द्वारा प्रसन्न कर लिया, तब अश्व के सिर ने तुम दोनों को [मधुविद्या का] उपदेश दिया ।

टिप्पणी –

अरपत् - 'स्तुति करतीं हैं', 'रप् लप् व्यक्तायां वाचि' धातु, लङ् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन । सा०, मुद्गल - अस्तौत । स्कन्द० - व्यक्तमुक्तवती । वेंकट० - याचितवती । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ -कूजन करतीं है । Griff. (The hymns of Rgd.) - in praise of (sweetness) song, Wil. (Rgd.S.) - murmured your praise, Grass. (Rgd.) - verkündete (सोत्साह बताना), Geld.(D.R.)- verriet. अरपत् का अर्थ 'स्तुति करना' ही उचित है ।

हुवन्यति - 'आह्वान करता है', ह्वेञ् स्पर्धायां शब्दे च' धातु, 'ल्युट् च' सूत्र से भाव अर्थ में 'ल्युट्' प्रत्यय, 'बहुलं छन्दसि' से सम्प्रसारण, 'सुप् आत्मनः क्यच्' से 'क्यच्' प्रत्यय, वर्णव्यापत्ति से उत्व हो जाने से 'हुवन्य' बना, लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन में हुवन्यति रूप निष्पन्न हुआ । क्रियापद होने से निघात । सायण, मुद्गल - आह्वयति । स्कन्द० आहूतवान् । वेंकट० - आह्वयति । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ बुलाता है। Griff. (The hymns of Rgd.) - calleth you, Wil. (Rgd.S.)- invokes you, Lan. (A.S.R.) - to call upon or invoke specially a god, M.W. (S.E.D.) - to call.

10. युवं पेदवे पुरुवारमश्विना स्पृधां श्वेतं तरुतारं दुवस्यथः ।

युवम् । पेदवे । पुरुवारम् । अश्विना । स्पृधाम् । श्वेतम् । तरुतारम् । दुवस्यथः ।

शर्यैरभिद्युं पृतनासु दुष्टरं शर्यैः । अभिऽद्युम् । पृतनासु । दुस्तरम् ।

चर्कृत्यमिन्द्रमिव चर्षणीसहम् चर्कृत्यम् । इन्द्रम्ऽइव । चर्षणिऽसहम् ।।

अन्वय - अश्विना ! युवं पुरुवारं श्वेतम् अभिद्युं स्पृधां तरुतारं पृतनासु शर्यैः दुस्तरं चर्कृत्यम् इन्द्रम् इव चर्षणिसहम् ॥अश्वं॥ पेदवे ददथुः ।

अनुवाद - हे अश्विनों ! तुम दोनों बहुतों के द्वारा वरणीय, श्वेत वर्ण वाले, दीप्तिमान, शत्रुओं को मारने वाले, युद्ध में धनुर्धारियों के द्वारा अजेय, अत्यन्त कार्यशील, इन्द्र के समान शत्रुओं के पराभवकर्त्ता ॥अश्व॥ को पेदु के लिए दान करते हो ।

टिप्पणी -

स्पृधाम् - 'शत्रुओं को', 'स्पर्ध संघर्षे' धातु, 'क्विप् च' से 'क्विप्' प्रत्यय, 'दृशिग्रहणानुकर्षणात् तस्य च विध्यन्तरोपसंग्रहार्थत्वात्' से अकार लोप, रेफ का सम्प्रसारण, 'सावेकाचः0' से विभक्ति पर उदात्त षष्ठी, बहुवचन । सा0, मुद्गल - संग्रामे स्पर्धमानानां शत्रूणाम्। अन्यत्र - ऋ0 सं0 ॥1/8/3॥ - स्पर्धमानाम् , ॥6/5/6, 8/14/13॥ - स्पर्धमाना: । स्कन्द0 संग्रामाणाम्। वेंकट0 - शत्रूणाम्। सात्व0 ॥ऋ0 का सुभा0॥ - स्पर्धा करने वालों को । Griff. (The hymns of Rgd.), Wil. (Rgd.S.) - combatants, Mac.D. (S.E.D.) - rivals, M.W. (S.E.D.)- enemy, Lan. (A.S.R.) - contest (√स्पृध), Grass. (Rgd.) - feindesschar, Geld. (D.R.) - feinde (शत्रु).

तरुतारम् - 'तारने वाले', 'तृ प्लवनतरणयो:' धातु से 'तृच्' प्रत्यय, 'ग्रसि-
तस्कभितस्तभित0' से निपातनात् रूपसिद्धि, द्वितीया एकवचन ।
सा0, मुद्गल - तारकम् । अन्यत्र - ऋ0 सं0 ॥8/1/2॥ - तरीतारं जेतारम्॥
स्कन्द0 - निस्तरितारम् । वेंकट0 - तारकम् । सात्व0 ॥ऋ0 का सु0भा0॥
- पार ले चलने वाले । Griff. (The hymns of Rgd.) - conqueror,
Wil. (Rgd.S.) - breaker, Lan. (A.S.R.) - get across, Mac.
D. (S.E.D.) - cross over, Grass. (Rgd.) - besiegt (विजय
प्राप्त करना). अतः 'तरुतारम्' का उचित अर्थ 'तारने वाला' ही
होगा । ग्रासमन महोदय ने 'विजय प्राप्त करना' अर्थ ग्रहण किया है जो
प्रसंगानुसार तो असंगत नहीं है, पर तरुतारम् का शाब्दिक अर्थ 'विजय प्राप्त
करना' नहीं है ।

चर्कृत्यम् - 'अत्यन्त कार्यशील', यङ्लुगन्त 'डुकृञ् करणे' धातु, 'विभाषा
कृवृषोः' से 'क्यप्' प्रत्यय, तुगागम् । सा0, मुद्गल - सर्वेषु कार्येषु
पुनः पुनः प्रयोज्यम् । अन्यत्र - ऋ0 सं0 ॥1/64/14॥ - सर्वकर्मकुशलमित्यर्थम्,
कार्येषु पुनः पुनः पुरस्कर्त्तव्यम्, ॥10/39/10॥ - संग्रामाणामित्यर्थं कर्तारं
शत्रूणां जेतारं वा, ॥10/47/2॥ - पुनः पुनः कर्त्तव्यं, प्रकृति ग्रहणे यङ्लुगन्त-
स्यापि ग्रहणं इति । न्यायेन करोतेर्यङ्लुगन्तात् 'विभाषा कृवृषोः' इति क्यप्,
तुगागमः, प्रत्ययस्यपित्त्वादनुदात्ते धातुस्वरः शिष्यते । स्कन्द0 - इदमपि
कृन्ततेर्वधकर्मणः ॥तु0 निघ0 2/19॥ रूपम् अत्यर्थं हन्तारम् । वेंकट0 - पुनः पुनः
प्रयोज्यम् । सात्व0 ॥ऋ0 का सु0भा0॥ - अत्यन्त कार्यशील । Griff. (The
hymns of Rgd.) - worthy of fame, Wil. (Rgd.S.) - fit for
every work, Mac.D. (S.E.D.) - praise worthy, M.W. (S.E.D.)
renowned, Grass. (Rgd.) , Geld. (D.R.) - rühmenswerth

॥प्रशंसनीय॥. स्कन्दस्वामिन् ने वधार्थक 'कृन्तीछेदने' धातु से 'चर्कृत्यम्' शब्द की उत्पत्ति मानकर उसका अर्थ 'हन्तारम्' किया है । ग्रिफिल, मैक्डॉनल ग्रासमन तथा गेल्डनर महोदय ने 'प्रशंसनीय' अथवा 'प्रशंसा के पात्र' अर्थ ग्रहण किये हैं, जो अश्व की विशेषता को सूचित करने के कारण, प्रसंगानुकूल है । किन्तु यहाँ 'चर्कृत्यम्' का 'अत्यन्त कार्यशील' अर्थ ही अधिक समीचीन लगता है ।

दुवस्युथुः - 'दान करते हो', 'दुवस्य' धातु, लोट् लकार, मध्यम पुरुष, द्विवचन । सा०, मुद्गल - दत्तवन्तौ । अन्यत्र - निघ० ॥3/5॥ - दुवस्यतीति परिचरणकर्मा । स्कन्द० - सम्प्रदान श्रुतेः दुवस्यतिरत्र दानार्थः दत्तवन्तौ । वेंकट० - अदत्तम् । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ - समर्पित करते हो । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - provided, Wil. (Ṛgd.S.)- gave, Mac.D. (S.E.D.), M.W. (S.E.D.) - rewarded, Grass. (Ṛgd.) - schenktet (भेंट किया). वस्तुतः √दुवस्य सेवा करने के अर्थ को द्योतित करता है, किन्तु यहाँ दान के अर्थ में इसका प्रयोग हुआ है ।

चर्षणिऽसहम् - 'शत्रुओं के पराभवकर्ता', 'वहिङ्. व्यक्तायां वाचि' ॥पा० धा०पा० ।017 अ०आ०॥, 'युच्' प्रत्यय से चर्षणि शब्द बना, चर्षणि पूर्वक 'सह अभिभवे' धातु, द्वितीया,एकवचन । सा०, मुद्गल - शत्रुजनानामभिभवितारमित्यर्थः । अन्यत्र - ऋ० सं० ॥6/46/6॥ - शत्रुभूतानां प्रजानामभिभवितारम् ॥7/94/7॥ - मनुष्याणां शत्रुभूतानामभिभवतारौ, ॥8/1/2॥ मनुष्याणां शत्रुभूतानामभिभवितारम् ॥8/21/10॥ - शत्रुभूतानां मनुष्याणामभिभवितारः, ॥8/19/35॥ - शत्रुभूतानामभिभवितार आदित्याः । स्कन्द० - मनुष्याणां शत्रुभूतानामभिभवितारम् । वेंकट० - शत्रूणाम् अभिभवितारम् । Wil.

(Ṛgd.S.) - the conquerer of men, Griff. (The hymns of Ṛgd.) - vanquisher of men, M.W. (S.E.D.) - overpowering men. Grass. (Ṛgd.) - bezwigt (पराजित करना), Geld. (D. R.) - völkerbezwinger (राष्ट्र विजेता). S.V. (The ety. of Yāska Pg. 32) - 'a seer' an epithet of आदित्य is traced to √चाय् 'to see'. If it is a derivation, and not a paraphrase. अतः 'चर्षणिसहम्' का 'शत्रुओं के पराभवकर्ता' अर्थ ही उचित है।

--------::0::--------

6.62.1-11

1. स्तुषे नरा दिवो अस्य	स्तुषे । नरा । दिवः । अस्य ।
प्रसन्ताश्विना हुवे जरमाणो	प्रऽसन्ता । अश्विना । हुवे जरमाणः ।
अर्कैः ।	अर्कैः ।
या सद्य उस्रा व्युषि ज्मो	सा। सद्यः।उस्रा। विऽउषि। ज्मः।
अन्तान्युयूषतः पर्युरु वरांसि।।	अन्तान्। युयूषतः। परि। उरु। वरांसि ।।

अन्वय - दिवः नरा ! अस्य प्रसन्ता अश्विना हुवे, अर्कैः जरमाणः स्तुषे । सा सद्यः उस्रा, व्युषि ज्मः अन्तान् उरु वरांसि परि युयूषतः ।

अनुवाद - हे दिव्य नेताओं ! इस [जगत्] के प्रशासक अश्विनों का आह्वान करता हूँ । स्तोत्रों से प्रशंसा करता हुआ मैं स्तुति करता हूँ । जो उषा की पहली किरण में तत्क्षण पृथ्वी के अन्त तक फैले अन्धकार को हटा देते हैं ।

टिप्पणी -

उस्रा - 'पहली किरण', 'वस् कान्तौ' धातु से उणादि 'रक्' और 'टाप्' प्रत्यय, 'वस्' का सम्प्रसारण से 'उस्'। सा०, मु० - शत्रूणां निवारकौ । अन्यत्र - ऋ० सं० [7/74/1] - वासकौ, [9/58/2] - उत्सरणशीला प्रदात्री, [6/62/1] - शत्रूणां निवारकौ । स्कन्द० - उस्राशब्दो गोनाम [तु० निघ० 2/11], इह च पुल्लिंगतासमर्थ्यात् लुप्तोपमः, गोसदृशौ, बलीवर्दाविव अत्यन्तं मनुष्याणाम् उपकारकावित्यर्थः । सात्व० [ऋ० का सु०भा०] - शत्रु को उखाड़ देने वाले । Wil. (Rgd.S.) - discomfiters (of foes) Mac.D. (S.E.D.) - light of morn, M.W. (S.E.D.) - morning light, Lan. (A.S.R.) - pertaining to the dawn, Griff.(The

hymns of Rgd.)-fain, अत: ‡उषा की‡ 'पहली किरण' अर्थ ही उचित है । प्रसंगानुसार 'शत्रु' अर्थ की संगति यहाँ उचित नहीं प्रतीत हो रही है ।

विऽउषि - 'उषा में', 'वि' उपसर्ग पूर्वक, 'वस् कान्तौ' धातु से 'क्तिन्' प्रत्यय, वस् का सम्प्रसारण से 'उस्', सप्तमी, एकवचन । सा०, मु० - व्युष्टौ निशाया: समाप्तौ । स्कन्द० - विभातायाम् उषसि । वेंकट० - उषसि व्युष्टायाम् । सात्व० ‡ऋ० का सु०भा०‡ - उष:काल में । Griff. (The hymns of Rgd.) - when the morns are breaking, Wil. (Rgd.S.) - at dawn scatter, M.W. (S.W.D.) - day break, Geld. (D.R.) - aufgang (सूर्योदय) । व्युषि का 'उषा' अर्थ ही उचित है ।

ज्म: - 'पृथिवी के', षष्ठी, एकवचन का रूप । सा०, मु० - पृथिव्या: । अन्यत्र - ऋ० सं० ‡1/157/1‡ - पृथिव्या ‡4/50/1, 6/62/1‡ - पृथिव्या ‡8/1/18‡ - जमन्ति गच्छन्त्यस्यामिति ज्मा, पृथिवी, ‡10/89/1-11‡ - पृथिव्याश्च । स्कन्द० - पृथिव्याम् । वेंकट० - दिव: पर्यन्तान् । सात्व० ‡ऋ० का सु०भा०‡ - पृथिवी के । Griff. (The hymns of Rgd.) - to part the earth's ends, Wil. (Rgd.S.) - to the ends of the earth, M.W. (S.E.D.) - earth, Grass.(Rgd.) - Erde (पृथ्वी).

अर्कै: - 'स्तोत्रों से', 'अर्च पूजायाम् धातु' से 'घञ्' प्रत्यय, तृतीया, बहुवचन, 'च' का 'क' में परिवर्तन । सा०, मु० - अप्रगीतमन्त्रसाध्यै: शस्त्रै: । अन्यत्र - स्कन्द० - मन्त्रै: । वेंकट० - स्तुतिभि: । निघ० ‡2/7‡ - अर्क इति-अन्ननामानि । निरु० ‡5/1/24‡ - अर्को देवो भवति यदेनमर्चन्ति । अर्को मन्त्रो भवति यदनेनार्चन्ति अर्कमन्त्रं भवति अर्चन्ति भूतानि । अर्को वृक्षो भवति संवृत्त: कटुकिम्ना । अर्थात् देवता अर्क कहलाते हैं, क्योंकि देवताओं को लोग पूजते हैं । मंत्र को भी अर्क कहा जाता है, क्योंकि मन्त्र से लोग अपने इष्टदेव

की अर्चना करते हैं, अर्क अन्न को भी कहते हैं क्योंकि अन्न सब प्राणियों को जीवित रखता है । 'अर्च' धातु जीवनार्थक भी है । अर्क एक पेड़ का नाम भी है, वह कटुता से युक्त होता है । सात्व0 ।श्री0 का सु0भा0। - स्तोत्रों से ।

Griff. (The hymns of Rgd.) - song of praise, Wil. (Rgd.S.) - sacred hymns, M.W. (S.E.D.) - religions ceremony, Mac. D. (S.E.D.) - hymn, Lan. (A.S.R.) - praise, Grass. (Rgd.), Geld. (D.R.) - preis'ish (स्तुति करना) S.V. (The ety. of Yāska, pg. 17 and 40) - 'a mantra, God and Food', is traced, to √अर्च 'to worship, honour, satisfy.' F.S. (The vedic Ety.) - The word 'Arka' has been used in various senses, such as the sun, Agni, Water, Hymn, Tree, Food, etc. It is derived from √अर्च . The root √अर्च is taken only to mean in the sense of worshipping and post vedic tradition derives the word in all its senses from √अर्च 'to worship'. ।अर्को देवोभवति यदेनमर्चन्ति। Therefore 'अर्कः' meant 'to worship' and all the materials like food, water and song became 'अर्कः' (T.M.B. 15/3/23, 5/1/9, 14/11/9, 15/3/34, G.B. 2/4/2. S.B. 10/6/2/6, 10/5/2). Besides feeding etc. worship specially of deities involved singing lavish praise, so 'अर्क' would mean 'to sing the praises.' This sense would have been easily brought out, as the root √अर्च might have originally initated the sound of the iron struck against flint and as this sound might sometimes flint and as this sound be found even in burning fire, whose flames are sometimes described as singing. Now the evolution of 'अर्कः' to mean 'the Prāna, the Purusa, the supreme spirit' (S.B. 10/4/1/3, 10/3/4/5, 10/6/2/7

T.B. 3/9/21/3) is quite natural, for spirit is the light per excellence as shown else where (see Agni) and Agni becomes the name of the Supreme Spirit. (सरवोऽग्निरर्को यत्पुरुषः वेत्थार्कमिति पुरुषं दैवतदुवाच', शoब्राo 10/3/4/5, बृहoउपo - 1/2/5, शoब्राo 10/6/5/1) ई। अन्य भाषाओं में - Indo - European - 'erk' (to sound clearly), Armenian-'erg'/ (song). 'अर्क' शब्द अनेकार्थक है। निघण्टु में यह अन्न नामों में परिगणित है। अन्न के अतिरिक्त वृक्ष, स्तोत्र तथा देवता के अर्थ में भी अर्क शब्द गृहीत है। किन्तु यहाँ इसका स्तोत्र अर्थ ही अन्य अर्थों की अपेक्षा अधिक समीचीन है।

युयूषतः - 'हटा देते हैं', 'हिंसार्थक युष धातु' से छान्दस प्रयोग के कारण स्वार्थिक 'सन्' प्रत्यय। साo, मुo - पृथक्कुरुतः अथवा विस्तारयतः। वेंकटo - पृथक्कुरुतः। स्कन्दo - यौतिः पृथग्भावार्थः, पृथक्कुरुतः। सात्वo ऋo का सुoभाo - हटा देते हैं। Wil. (Rgd.S.) - scatter. Lan. (A.S.R.) - to seperate. Grass. (Rgd.) - enden (समाप्त करना).

2. ता यज्ञमा शुचिभिश्चक्रमाणा
रथस्य भानुं रुरुचू रजोभिः।
पुरु वरांस्यमिता मिमानापो
धन्वान्यति याथो अज्रान् ॥

ता। यज्ञम्। आ। शुचिऽभिः। चक्रमाणा।
रथस्य। भानुम्। रुरुचुः। रजःऽभि।
पुरु। वरांसि। अमिता। मिमाना।
अपः। धन्वानि। अति। याथः। अज्रान् ॥

अन्वय - ता यज्ञं शुचिभिः आचक्रमाणा, रजोभिः रथस्य भानुं रुरुचुः। अमिता पुरु वरांसि मिमाना, धन्वानि, अज्रान् अपः अति याथः।

अनुवाद - ये दोनों यज्ञ के समीप पवित्र तेजों के साथ आते हुए, अपने तेजों से रथ की दीप्ति को प्रदीप्त करते हैं। असंख्य और अपरिमित प्रकाश को उत्पन्न करते हुए, मरु प्रदेश को, अश्वों को जल से (तृप्त कराते हुए) पार करते हैं।

टिप्पणी -

यज्ञम् - 'यज्ञ के', 'यज्' धातु से 'नङ्' प्रत्यय, द्वितीया, एकवचन। सा0, मु0 स्कन्द, वेंकट0 - यज्ञम्। निरु0 (3/4) - यज्ञः कस्मात्? प्रख्यातं यजति कर्मेति नैरुक्ताः। याच्यो भवतीति वा। यजुरुन्नो भवतीति वा। बहुकृष्णाजिनइत्यौपमन्यवः। यजूंष्येनं नयन्तीति वा। अर्थात् यजन शब्द का अर्थ प्रख्यात ही है ऐसा निरुक्तकार मानते हैं। अतः सभी के मत में यज्ञ शब्द यजनार्थक ही प्रसिद्ध है अथवा यज्ञ किसी फल विशेष की याचना के लिए किया जाता है - अतः याचनीय होने के कारण यज्ञ कहलाता है। अथवा यजुर्मन्त्रों से क्लिन्न होता है, अतः यज्ञ कहते हैं। औपमन्यव का मत है कि यज्ञ में बहुत से कृष्णाजिन बिछाये जाते हैं अतः इसे यज्ञ कहते हैं। इस यज्ञ को यजुर्मन्त्र सफलता की प्राप्त कराते हैं अतः इसे यज्ञ कहा जाता है। सात्व0 (ऋ0 का सु0भा0) - याग। **Griff. (The hymns of Ṛgd.), Wil. (Ṛgd.S.), Mac.D. (S.E.D.), M.W. (S.E.D.), Lan. (A.S.R.) - sacrifice. S.V. (The ety. of Yāska, Pg. 50) - 'a sacrifice', is traced to √यज् 'to worship'. Grass. (Ṛgd.) - opfer (sacrifice).** अन्य भाषाओं में - **Indo European - 'iag'(to honour), Avestā - Yazaiti (he worships).**

वरांसि - 'प्रकाश को', 'वृञ् वरणे' धातु से 'असुन्' प्रत्यय, नपुंसकलिंग, द्वितीया बहुवचन। सा0, मु0 - तमोनिवारकाणि तेजांसि। अन्यत्र - स्कन्द0 - उदकमत्र वर उच्यते, वृष्टयुदकानि। वेंकट0 - तेजांसि। सात्व0

ऋ0 का सु0भा0। - धनों को । Griff. (The hymns of Rgd.)-spaces. Wil. (Rgd.S.)-radiance. यद्यपि 'वरांसि' शब्द 'वृञ् वरणे' धातु से निष्पन्न हुआ है किन्तु यहाँ इसका शाब्दिक अर्थ प्रयुक्त नहीं हुआ । यहाँ इसका 'प्रकाश' अर्थ ही अधिक तर्कसंगत प्रतीत हो रहा है । स्कन्दस्वामिन् ने 'वरांसि' का अर्थ 'वृष्ट्युदकानि' ग्रहण किया है, जो प्रसंगानुसार संगत नहीं प्रतीत हो रहा है ।

मिमाना - 'उत्पन्न करते हुए', 'माङ् मापने' धातु, 'शानच्' प्रत्यय, 'अभ्यस्तानामादि' से आद्युदात्त । सा0, मु0 - निर्मिमाणौ । अन्यत्र - ऋ0 सं0 ।1/50/7। - माङ् माने, जौहोत्यादिकः शानचि श्लौ द्विभावे भृञामिदित्यभ्यासस्येत्वम्। श्नाभ्यस्तयोरात इत्याकारलोपः अभ्यस्तानामादिरित्यभ्यस्तस्याद्युदात्तत्वम्। स्कन्द0 - उत्पादयन्तौ । सात्व0 ।ऋ0 का सु0भा0। - उत्पन्न करके । Griff. (The hymns of Rgd.)-traversing. Wil. (Rgd.S.)emitting. अतः 'उत्पन्न करते हुए' अर्थ ही उचित है ।

अज्रान् - 'अश्वों को', 'अज् गतिक्षेपणयोः' धातु से 'रक्' प्रत्यय, नपुंसकलिंग, द्वितीया बहुवचन । सा0, मु0 - स्वकीयानश्वान् । अन्यत्र - ऋ0 सं0 ।6/66/7। - प्रेरयति । स्कन्द0 - गमनस्वभाविकाः, अज गतिक्षेपणयोः, अपां चेदं विशेषणम् व्यत्ययेन पुल्लिंगता । वेंकट0 - आत्मीयानश्वान् । सात्व0 ।ऋ0 का सु0भा0। - घोड़ों को । Griff. (The hymns of Rgd.) - over the fields. Wil. (Rgd.S.) - horses. Mac.D. (S.E.D.)- field. Geld. (D.R.) - Ebenen (समतल). कतिपय विद्वानों ने 'अज्रान्' का अर्थ 'समतल प्रदेश' ग्रहण किया है । प्रसंगानुसार यह अर्थ भी अनुचित नहीं है । 'अज्रान्' का अर्थ समतल प्रदेश ग्रहण करने से अन्तिम पंक्ति का अर्थ होगा कि 'असंख्य और अपरिमित प्रकाश को उत्पन्न करते हुए, मरु प्रदेश, समतल प्रदेश तथा जलों को पार करते हैं ।

3. ता ह व्यद्वर्तिर्यदरध्रमुग्रेत्था ता। ह। व्यत्। वर्तिः। यत्। अरध्रम्। उग्रा। इत्था।

धियस्ह्थुः शश्वदश्वैः। धियः। ऊह्थुः। शश्वत्। अश्वैः।

मनोजवेभिरिषिरैः शयध्यै मनःऽजवेभिः। इषिरैः। शयध्यै।

परि व्यथिर्दाशुषो मर्त्यस्य ।। परि। व्यथिः। दाशुषः। मर्त्यस्य ।।

अन्वय - उग्रा ता ह, मनोजवेभिः, इषिरैः अश्वैः, यत् अरध्रं धियः व्यत् वर्तिः ऊह्थुः । दाशुषः मर्त्यस्य व्यथिः परि शयध्यै ।

अनुवाद - उग्र वे दोनों ॥अश्विनों॥, मन के समान शीघ्रगामी काम्य अश्वों के द्वारा, उस दरिद्रता से युक्त स्तोता को, उस घर से ॥स्वर्ग में॥ वहन करते हैं । दानशील मनुष्य ॥यजमान॥ के कष्टों को दीर्घ निद्रा में लीन कर देते हैं अर्थात् नष्ट कर देते हैं ।

टिप्पणी -

इषिरैः - 'काम्य के द्वारा', 'इषु इच्छायाम्' धातु से 'किरच्' प्रत्यय, तृतीया, बहुवचन, 'अश्व' का विशेषण । सा0, मु0 - एषणीयैः काम्यैः । अन्यत्र - ऋ0 सं0 ॥1/129/1॥ - गमनशील, ॥7/35/4॥ - गमनशीलोऽपि । स्कन्द0 - प्रार्थनीयैः, अत्यन्तोत्कृष्टैः । वेंकट0 - गमनशीलैरश्वैः । सात्व0 ॥ऋ0 का सुभा0॥ - इशारे से चलने वाले । Griff. (The hymns of Rgd.) - full of vigour. Wil. (Rgd.S.) - desirable. Mac.D. (S.E.D.) - active. M.W. (S.E.D.) - active or vigorous. कतिपय विद्वानों ने 'इष् गतौ' धातु से इस शब्द की व्युत्पत्ति को मानकर गमनशील' अर्थ ग्रहण किया है । ऋग्वेद में भी कई मन्त्रों में 'इषिरैः' इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । यहाँ इसका 'काम्य' अर्थ ही उचित है इसलिए इस मंत्र में 'इषु इच्छायाम्' धातु से ही उत्पत्ति को मानना तर्कसंगत होगा ।

4\. ता नव्यसो जरमाणस्य मन्मोप ता। नव्यसः। जरमाणस्य। मन्म। उप।

भूषतो युयुजानसप्ती । भूषतः। युयुजानसप्तीइति युयुजानऽसप्ती।

शुभं पृक्षमिषमूर्जं वहन्ता शुभम् । पृक्षम् । इषम् । ऊर्जम् ।वहन्ता ।

होता यक्षत्प्रत्नो अध्रुग्युवाना ।। होता।यक्षत्।प्रत्नः।अध्रुक्।युवाना ।।

अन्वय - शुभंपृक्षम् इषम् ऊर्जं वहन्ता युयुजानसप्ती ता नव्यसः जरमाणस्य मन्म उप भूषतः । अध्रुक् प्रत्नः होता, युवाना यक्षत् ।

अनुवाद - उत्तम अन्न, पुष्टि तथा बल का वहन करने वाले [अश्वों] को जोतकर वे दोनों नवीन स्तोता के मननीय स्तोत्र के समीप जाकर शोभा बढ़ाते हैं । द्रोहरहित अर्थात् प्रिय, पुराना होता, युवक अश्विनों की पूजा करता है।

टिप्पणी -

पृक्षम् - 'अन्न', 'पृची संपर्के' धातु, असुन् प्रत्यय, सुडागम , द्वितीया,एकवचन । सा०, मु० - अन्नम्। अन्यत्र - ऋ० सं० [1/34/4] - अन्नं, पृचीसंपर्के, असुनि, सुडागमः । [6/35/4] - अन्नानि, [10/106/1] - अन्नामैतत् । भोक्तृभिः संपृच्यन्त इति पृक्षोऽन्नानि । निघं० [2/7] - पृक्षरित्यष्टाविंशतिरन्ननामानि । स्कन्द० - सस्पसम्पत्करमित्यर्थः ✓पृची सम्पर्के, सम्पर्काहम् । वेंकट० - सम्पर्चनीयम् । सात्व० [ऋ० का सु०भा०] - अन्नम्। Griff. (The hymns of Ṛgd.), Wil. (Ṛgd.S.) - food. Mac.D. (S.E.D.) - furnished with nourishment. Grass. (Ṛgd.) - speise (food). Geld. (D.R.) - stärkung (refreshment). 'अन्न' अर्थ ही सटीक है ।

यक्षत् - 'पूजन करता है', 'यक्ष् पूजायाम्' धातु, लङ् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन । छान्दस् प्रयोग के कारण अडागम का लोप । क्रियापद होने से निघात । सा०, मु० - यजतु । अन्यत्र - ऋ० सं० [7/61/5] - पूजा दृश्यते । स्कन्द० - यजते । सात्व० [ऋ० का सु०भा०] - हवि अर्पण करता है ।

Griff. (The hymns of Rgd.) - shall bring you, Wil. (Rgd.S.) - sacrifice. Grass. (Rgd.) - holde (fond of), Geld. (D.R.) Verehren (to adore). 'पूजा करना' या 'यजन करना' अर्थ ही उचित है ।

5. ता वल्गू दस्त्रा पुरुशाकतमा — ता।वल्गू इति।दस्त्रा।पुरुशाकऽतमा।
प्रत्ना नव्यसा वचसा विवासे । — प्रत्ना।नव्यसा।वचसा।आ।विवासे ।
या शंसते स्तुवते शंभविष्ठा — या। शंसते। स्तुवते। शम्ऽभविष्ठा ।
बभूवतुर्गृणते चित्रराती ।। — बभूवतुः। गृणते। चित्ररातीइति चित्रऽराती।।

अन्वय - या शंसते स्तुवते शंभविष्ठा, गृणते चित्रराती बभूवतुः । ता वल्गू, पुरुशाकतमा, प्रत्ना, दस्त्रा, नव्यसा वचसा आ विवासे ।

अनुवाद - शस्त्रों और स्तोत्रों के द्वारा स्तुति करने वाले को, जो ।अश्विनों। अत्यन्त सुख देते हैं । ।स्तोत्रशस्त्र के अतिरिक्त लौकिक स्तुतियों से। स्तुति करने वाले के लिए अद्भुत दान देने वाले हैं । उन दो, अत्यन्त सुन्दर, अनेक कार्य करने की क्षमता वाले अथवा अत्यधिक सहायता करने वाले, प्राचीन, शत्रुनाशक ।अश्विनों। का, नवीन स्तोत्र के द्वारा परिचरण करता हूँ ।

टिप्पणी -

शम्ऽभविष्ठा - 'सुख देते हैं', शम् पूर्वक, भू धातु, 'इष्ठन्' प्रत्यय से परे स्त्रीलिंग प्रत्यय 'टाप्' आने पर शंभविष्ठा रूप निष्पन्न होगा ।
सा०, मु० - अतिशयेन सुखस्य भावयितारौ, अतिशयेन सुखस्वरूपौ वा । अन्यत्र - ऋ० सं० ।1/17/3। - सुखस्य भावयितृतमः सन्नस्मान्मृळयतु, ।10/77/8। - सुखस्य भावयितारः । निघ० ।3/6। - शमिति विंशतिः सुखनामानि । स्कन्द०, वेंकट० - अतिशयेन सुखस्य भावयितारौ । सात्व० ।ऋ० का सु०भा०।-

अत्यन्त सुख देते हैं । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - bringers of bliss to him, Wil. (Ṛgd.S.) - givers of great felicity to him. Grass. (Ṛgd.) - hulf. reich (giving help), Geld.(D. R.) - gewogen (kindly disposed to). 'शंभविष्ठा' का 'सुख देना' अर्थ ही उचित है ।

चित्रऽराती - 'अद्भुत दान देने वाले', 'चि चयने' अथवा 'चित् संज्ञाने' धातु से 'त्रल्' प्रत्यय करने पर चित्र शब्द बना । पुनः चित्र पूर्वक 'रा दाने' धातु से 'क्ति' प्रत्यय करने पर, स्त्रीलिंग, प्रथमा, द्विवचन में चित्रराती रूप निष्पन्न हुआ । सा०, मु० - विचित्रदानौ । अन्यत्र - ऋ० सं० ।6/62/5। ।6/62/11। - विचित्रदानौ । स्कन्द०, वेंकट० - विचित्रदानौ । सात्व० ।ऋ० का सु०भा०। - अद्भुत दान देने वाले हो । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - bestowing varied bounties, Wil. (Ṛgd.S.) - bestowers of wondrous gifts, Lan. (A.S.R.) - excellent blessings, M.W. (S.E.D.) - granting excellent gifts, Grass. (Ṛgd.) - schöven Gaben (beautiful gift), Geld. (D.R.) - blinkende gaben (twinkling gift).

6. ता भुज्युं विभिरद्भ्यः
समुद्रात्तुग्रस्य सूनुमूहथू रजोभिः ।
अरेणुभिर्योजनेभिर्भुजन्ता
पतत्रिभिरर्णसो निरुपस्थात् ।।

ता । भुज्युम् । विऽभिः । अत्ऽभ्यः ।
समुद्रात् । तुग्रस्य । सूनुम् । ऊहथुः । रजःऽभिः ।
अरेणुऽभिः । योजनेभिः । भुजन्ता ।
पतत्रिऽभिः । अर्णसः । निः । उपऽस्थात् ।।

अन्वय – तुग्रस्य सूनुं भुज्युं ता भुजन्ता, समुद्रात् अर्णसः अरेणुभिः रजोभिः, योजनेभिः, पतत्रिभिः अद्भ्यः उपस्थात् व्यूहथुः ।

अनुवाद – तुग्र के पुत्र भुज्यु को, सुरक्षित रखने वाले, वे दोनों ॥अश्वि देवों॥ समुद्र के जल से, धूलिरहित मार्ग के द्वारा ॥रथ में॥ जुते हुए, पक्षी के समान उड़ने वाले ॥अश्वों॥ के द्वारा, जल की गोद से, उत्तम रीति से उठा लाये ।

टिप्पणी –

अरेणुभिः – 'धूलि रहित', नञ् पूर्वक 'हिंसार्थक रि' धातु से उणादि 'नु' प्रत्यय, 'न' का 'ण' में परिवर्तन, तृतीया, बहुवचन । सा०, मु० – रेणुरहितैः आन्तरिक्षैः । अन्यत्र – स्कन्द० – धूल वर्जितैः, अमलिनैरित्यर्थः । वेंकट० – रेणुवर्जितैः । सात्व० ॥मु० का तु०भा०॥ – धूलिरहित । Griff. (The hymns of Rgd.) – dustless, Wil. (Rgd.S.) – unsailed by dust, M.W. (S.E.D.) – dustless, Lan. (A.S.R.) – Mac. D. (S.E.D.) – dustless, Geld. (D.R.) – Staublosen (dustless). अतः 'धूलि – रहित' अर्थ ही उचित है ।

7. वि जयुषा रथ्या यातमद्रिं श्रुतं हवं वृषणा वध्रिमत्याः । दशस्यन्ता शयवे पिप्यथुर्गामिति च्यवाना सुमतिं भुरण्यू ॥

वि । जयुषा । रथ्या । यातम् । अद्रिम् । श्रुतम् । हवम् । वृषणा । वध्रिऽमत्याः । दशस्यन्ता । शयवे । पिप्यथुः । गाम् । इति । च्यवाना । सुऽमतिम् । भुरण्यू इति ॥

अन्वय – वृषणा रथ्या । जयुषा अद्रिं वि यातम् वध्रिमत्याः हवं श्रुतम् । दशस्यन्ता शयवे गां पिप्यथुः । सुमतिं च्यवाना भुरण्यू ।

अनुवाद – हे कामनासेचक, रथ पर आरूढ़ होने वाले ॥अश्विनों॥ । जयशील रथ पर

पर्वत को भी लांघ जाते हो। वध्रिमती की पुकार को तुमने सुना। दान देने वाले तुम दोनों। शयु के लिए गौ को पुष्ट किया। उत्तम बुद्धि को रखने वाले तुम दोनों सर्वगामी हो, ।अर्थात् सर्वत्र यज्ञादि में गमन करते हो। ।

टिप्पणी -

सुऽमुतिम् - 'उत्तम बुद्धि को', सु उपसर्ग, 'मन् ज्ञाने' धातु से 'क्ति' प्रत्यय स्त्रीलिंग, द्वितीया, एकवचन। सा0, मु0 - सुष्टुतिम्। अन्यत्र- ऋ0 सं0 ।1/73/6। शोभनामनुग्रहात्मिकां बुद्धिम्। ।6/2/1।। - शोभन स्तुतिम्। स्कन्द0 - शोभना अनुग्रहरूपा बुद्धिर्यस्याः। सत्य0 ।ऋ0 का सुभा0। - उत्तम बुद्धि रखने वाले। Griff. (The hymns of Rgd.) - zealous one, Wil. (Rgd.S.) - benevolence, Lan. (A.S.R.) - intelligence, M.W. (S.E.D.) - good devotion, Mac.D. (S.E.D.) - intelligence. 'मन् ज्ञाने' धातु के समकक्ष धातुओं से निष्पन्न शब्द अन्य भाषाओं में - Latin - 'mens', stem-men-ti (mind), Anglo Saxon - 'ge-myn-d' (mind), English - 'mind', Geld. (D.R.) - wohl-wellen (well will) सुमति का अर्थ कतिपय भाष्यकारों ने 'शोभन स्तुति' भी ग्रहण किया है। यहाँ इसका अर्थ 'उत्तम बुद्धि' ही अधिक समीचीन प्रतीत हो रहा है।

8. यद्रोदसी प्रदिवो अस्ति भूमा | यत्।रोदसी इति। प्रऽदिवः।अस्ति।भूम।
हेळो देवानामुत मर्त्यत्रा। | हेळः। देवानाम्। उत। मर्त्यत्रा।
तदादित्या वसवो रुद्रियासो | तत्।आदित्याः।वसवः।रुद्रियासः।
रक्षोयुजे तपुरघं दधात।। | रक्षःऽयुजे। तपुः।अघम्।दधात।।

अन्वय - रोदसी, आदित्या, वसवः, रुद्रियासः। देवानां उत मर्त्यत्रा प्रदिवः भूम हेळः अस्ति, तत् तपुः अघम् उत रक्षोयुजे दधात।

अनुवाद - हे द्यावापृथिवी ।अश्विनों। आदित्यों, वसुओं, रुद्र के पुत्रों ।

देवताओं और मनुष्यों का जो अत्यधिक क्रोध है, वह उनके लिए तापदायक और घातक है, जो राक्षसों के साथ मिले हुए हैं ।

टिप्पणी -

मर्त्यत्रा - 'मनुष्यों का', 'मर्त्त' शब्द से 'यत्' प्रत्यय, करने पर 'मर्त्य' शब्द बना । पुन: 'देवमनुष्यपुरुषपुरुमर्त्येभ्यो द्वितीयासप्तम्योर्बहुलम्' ।पा० सू० 5/4/56। से बाहुलकात् षष्ठी से 'त्रा' प्रत्यय करने पर मर्त्य + त्रा = मर्त्यत्रा, रूप निष्पन्न हुआ । ऋ० सं० ।1/123/3। - मनुष्याणाम्, ।1/169/2। - मर्त्येषु मर्त्यार्थम्, ।6/44/10। - मर्त्येषु मनुष्येषु मध्ये, ।7/52/1। - मनुष्येष्वस्मासु भवतु । स्कन्द० - मनुष्याणाम् । वेंकट० - मर्त्येषु । सात्व० ।ऋ० का सु०भा०। - मानवों में । Griff. (The hymns of Ṛgd.) , Wil. (Ṛgd.S.) - mortals, M.W. (S.E.D.) - among mortal men, Mac.D. (S.E.D.) - mortal.

रुद्रियास: - 'रुद्र के पुत्रों', 'रुद् रुदने' धातु से 'रक्' प्रत्यय करने पर 'रुद्र' शब्द निष्पन्न हुआ, पुन: रुद्र शब्द से 'इट्' का आगम तथा 'क्यच्' प्रत्यय करने पर 'रुद्रिय' बना, रुद्रिय से असुक् प्रत्यय करने पर प्रथमा बहुवचन में रुद्रियास: शब्द निष्पन्न हुआ । स्कन्द० - रुद्रा: । वेंकट० - रुद्र पुत्राश्च मरुत: । सात्व० ।ऋ० का सु०भा०। - रुद्रों । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - sons of Rudra, Wil. (Ṛgd.S.) - maruts, Mac.D. (S.E.D.) - belonging to Rudra or the group of the maruts. Geld. (D.R.) - Rudrasohne (sons of Rudra).

तपु: - 'तापदायक', 'ताप्यर्थक तप्' धातु से 'उणादि उसि' प्रत्यय करने पर तपुस् शब्द बना, उसी के प्रथमा, बहुवचन का रूप है । सा०, मु० -

तापकम्। अन्यत्र - ऋ0 सं0 ।6/62/8। - तापकम्, ।7/104/2। - युवयोस्तेजसा तप्यमानो राक्षसः । स्कन्द0 - तापयितृ च । वेंकट0 - तपनशीलम् । Griff. (The hymns of Rgd.) - evil brand, Wil. (Rgd.S.) - destructive, Lan. (A.S.R.) - be warm, M.W. (S.E.D.) - burning, Mac.D. (S.E.D.) - glowing, Geld. (D.R.) - glowful. अतः 'तपु' का 'तापदायक' अर्थ ही उचित है ।

9. य ईं राजानावृतुथा विदधद्रजसो	यः।ईम्।राजानौ।ऋतुऽथा।विऽदधत्।रजसः।
मित्रो वरुणश्चिकेतत् ।	मित्र । वरुणः । चिकेतत् ।
गम्भीराय रक्षसे हेतिमस्य	गम्भीराय । रक्षसे । हेतिम् । अस्य ।
द्रोघाय चिद्वचस आनवाय ।।	द्रोघाय । चित्। वचसे। आनवाय ।।

अन्वय - यः ईं रजसो राजानौ ऋतुथा विदधत् मित्रः वरुणः चिकेतत् । अस्य हेतिं द्रोघाय आनवाय वचसे चित् गम्भीराय रक्षसे ।

अनुवाद - जो इन लोकों के अधिपति ।अश्विनों। की समयानुसार सेवा करते हैं, उसे मित्र और वरुण जानते हैं । वे इस आयुध को, द्रोहात्मक अथवा क्षतिकारक मनुष्य के वचनों और प्रबल राक्षसों के लिए चलाते हैं ।

टिप्पणी -

हेतिम् - 'आयुध को', 'हन् हिंसागत्योः' धातु, इडागम, तथा 'क्तिन्' प्रत्यय, द्वितीया, एकवचन । सा0, मु0 - घातमायुधम् । अन्यत्र - ऋ0 सं0 ।1/103/3। - हेतिमायुधम्, ।1/121/10। - हननसाधनमायुधम् ।3/30/17, 6/52/3। - आयुधम् । स्कन्द0 - वज्रम् । सात्व0 ।ऋ0 का सु0भा0। - आयुध को । Griff. (The hymns of Rgd.), Wil. (Rgd.S.) - weapon, Mac.D. (S.E.D.) - missile or weapon. कतिपय भाष्यकारों ने

'गत्यर्थक हि' धातु से इस शब्द की व्युत्पत्ति को स्वीकारा है। क्योंकि आयुध को दूसरे पर निक्षेप किया जाता है इसलिये वह गतिशील होता है ।

द्रोघाय - 'द्रोह करने वाले अथवा क्षतिकारक के लिए' 'द्रु' शब्द पूर्वक, 'हन्' धातु से 'अप्' प्रत्यय, 'हन्' के 'ह' के स्थान पर 'घ' तथा 'न्' के स्थान पर 'ण' हो जाता है, 'द्रु' का विकल्प से दीर्घ होता है। अतः द्रुघण या द्रूघण दोनों रूप मिलते हैं । चतुर्थी, एकवचन । आनवाय का विशेषण । सा०, मु० - अभिद्रोहात्मकाय । स्कन्द० - द्रोग्ध्रे । वेंकट० - द्रोग्धे । सात्व० (ऋ० का सु०भा०) - द्रोह करने वाले । Griff. (The hymns of Rgd.) - strangers, Wil. (Rgd.S.) - malignant, Mac.D.(S.E.D.) - injurer or ill wisher, Lan. (A.S.R.) - one who has striven to harm; अन्य भाषाओं में- Old high German - 'triuken', German - 'be-trügen' (deceive so as to harm). अतः 'द्रोह करने वाला' अर्थ ही उचित है ।

10. अन्तरैश्चक्रैस्तनयाय वर्तिर्द्युमता	अन्तरैः । चक्रैः । तनयाय । वर्तिः । द्युऽमता ।
यातं नृवता रथेन ।	आ । यातम् । नृऽवता । रथेन ।
सनुत्येन त्यजसा मर्त्यस्य	सनुत्येन । त्यजसा । मर्त्यस्य ।
वनुष्यतामपि शीर्षा ववृक्तम् ।।	वनुष्यताम् । अपि । शीर्षा । ववृक्तम् ।।

अन्वय - अन्तरैः चक्रैः, द्युमता नृवता रथेन, तनयाय वर्तिः आयातम् । सनुत्येन त्यजसा, मर्त्यस्य वनुष्यतां शीर्षा अपि ववृक्तम् ।

अनुवाद - उत्कृष्ट चक्रों से युक्त, दीप्तिवान्, वीरों से युक्त रथ से, पुत्र के लिए घर आ जाओ । छिपे हुए अर्थात् तिरोहित क्रोध से, मानवों को कष्ट देने वालों का सिर अलग कर दो ।

टिप्पणी -

सनुत्येन - 'छिपे हुए अथवा अन्तर्हित', 'सनुत्' शब्द से 'यत्' प्रत्यय, तृतीया, एकवचन । सा०, मु० - तिरोहितेन । अन्यत्र - ऋ० सं० ।6/5/4। - सनुतरित्यन्तर्हितनाम, अन्तर्हिते देशे वर्तमानः सन् , ।6/62/10। - तिरोहितेन। स्कन्द० - क्रोधेन, 'सनुतः' ।निघ० 2/13। इति क्रोधनाम । वेंकट० - अन्तर्हितेन । सात्व० ।ऋ० का सु०भा०। - तिरस्करणीय । **Griff. (The hymns of Rgd.) - treacherous, Wil. (Rgd.S.) - secret, M.W.(S.E.D.) - furtive, Geld. (D.R.) - heimlichen (secret).** अतः 'छिपा हुआ' अर्थ ही उचित है ।

वनुष्यताम् - 'कष्ट देने वालों का', 'वनुत्' शब्द से 'यत्' प्रत्यय करने पर 'वनुष्य' शब्द बना, उसी के षष्ठी बहुवचन का रूप है । सा०, मु० - बाधमानानाम् , 'वनुष्यतिर्हन्तिकर्मा' इति यास्केनोक्तत्वात् । अन्यत्र - ऋ० सं० ।10/128/3। - देवान् संभजन्तान् । स्कन्द० - घ्नन्ताम् , वनुष्यताम् 'वनुष्यतिर्हन्तिकर्मा' ।यास्क० 5/2। । वेंकट० - हिंसताम् । सात्व० ।ऋ० का सु०भा०। - कष्ट देने वाले को । यास्क - वनुष्यतिर्हन्तिकर्माऽनवगत - संस्कारो भवति ।निरु० 5/1/8। । निघ० ।2/12। - वनुष्यतीति दश क्रुध्यतिकर्माणः । **Griff. (The hymns of Rgd.) - assailants, Wil. (Rgd.S.) - obstructing, M.W. (S.E.D.) - assail, Mac.D. (S.E.D.) - assailant, Grass. (Rgd.) - feind (enemy), Geld. (D.R.) - neider (envier).** निघण्टु तथा निरुक्त में 'वनुष्य' हन्ति कर्मों में आम्नात है । इसके आधार पर कतिपय भाष्यकारों ने 'हिंसित करने वालों का' अर्थ ग्रहण किया है । यह अर्थ भी अनुचित नहीं है ।

11. आ परमभिरुत मध्यमाभि- नियुद्भिर्यातमवमाभिरर्वाक् ।

आ। परमाभिः। उत। मध्यमाभिः। नियुत्ऽभिः। यातम्। अवमाभिः। अर्वाक् ।

दृळ्हस्य चित्गोमतो वि व्रजस्य   दृळ्हस्य। चित्। गोऽमतः। वि। व्रजस्य।

दुरो वर्तं गृणते चित्रराती ।।   दुरः। वर्तम्। गृणते। चित्रराती इति चित्र राती।।

अन्वय – परमाभिः, मध्यमाभिः उत अवमाभिः नियुद्भिः यातम् अर्वाक् । गृणते चित्रराती, दृळ्हस्य, चित् गोमतः, व्रजस्य दुरः वि वर्तम् ।

अनुवाद – श्रेष्ठ, मध्यम और निकृष्ट अश्वों के साथ हमारे समीप आओ ।
स्तोता को विलक्षण दान देने वाले ॥अश्विनों॥ दृढ़, गौओं से युक्त, बाड़े के द्वार को खोल दो ।

टिप्पणी –

नियुत्ऽभिः – 'अश्वों के साथ', 'नि' उपसर्ग पूर्वक, 'युज्' धातु, 'क्त' प्रत्यय, तृतीया, बहुवचन । सा०, मु० – वाहैः । अन्यत्र – ऋ० सं० ॥7/92/5॥ – वडवाभिः, ॥6/22/11॥ – अश्वैः, ॥10/3/6॥ – 'नियुतो – वायोः' इति वायोरश्वा नियुतः तद्युक्तैः वायुभिः संयुक्ता रश्मयः । स्कन्द० – युवयोर्वडवाः शोभना अशोभनाश्च ताभिः । वेंकट० – अश्वैः । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ – वाहनों से । Griff. (The hymns of Rgd.) – with teams of horses, Wil. (Rgd.S.) – steeds, Mac.D. (S.E.D.) – steed, Grass. (Rgd.) – wagenzügen, Geld. (D.R.) – Gespaunen.

दृळ्हस्य – 'दृढ़', 'दृहं दृढ़ीकरणे' धातु से निष्पन्न 'दृढ़' शब्द के षष्ठी एकवचन का रूप है । सा०, मु० – दृढ़ापि । अन्यत्र – ऋ० सं० ॥7/86/4॥ – दुर्दमान्यैर्वाधितुमशक्य । स्कन्द० – दृढ़स्यापि, दुस्फाटस्य । वेंकट० – दृढ़स्यापि । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ – सुदृढ़ । Griff. (The hymns of Rgd.) – firm closed, Wil. (Rgd.S.)-fast shut, Mac.D. (S.E.D.)-firm or immovable, Lan. (S.E.D.)-be firm or steady, यह शब्द 'व्रजस्य दुरः' का विशेषण है ।

7.69.1-8

1. आ वां रथो रोदसी बद्धधानो हिरण्ययो वृषभिर्यात्वश्वैः। घृतवर्तनिः पविभी रुचान इषां वोळ्हा नृपतिर्वाजिनीवान्।।

आ। वाम्। रथः। रोदसी। इति। बद्धधानः। हिरण्ययः। वृषऽभिः। यातु। अश्वैः। घृतवर्तनिः। पविऽभिः। रुचानः। इषाम्। वोळ्हा। नृऽपतिः। वाजिनीऽवान् ।।

अन्वय - वां रोदसी बद्धधानः, घृतवर्तनिः, पविभिः रुचानः, इषां वोळ्हा, नृपतिः, वाजिनीवान्, हिरण्ययः वृषभिः अश्वैः रथः आ यातु ।

अनुवाद - तुम दोनों का, द्युलोक और पृथिवीलोक को स्तम्भित करने वाला, घृत युक्त मार्ग वाला, आरों से जगमगाता हुआ, (यजमान के द्वारा दिये हुए) हविष्य को वहन करने वाला, लोगों का रक्षक, अन्नवान्, हिरण्मय, शक्तिशाली अश्वों के द्वारा चलाये जाने वाला रथ इधर आ जाय ।

टिप्पणी -

पविऽभिः - 'चक्रों से', 'पुनातीति पू', पवित्र अर्थ वाली 'पू धातु' से उणादि 'इ' प्रत्यय, तृतीया बहुवचन । सा० - रथनेमिभिर्धुमात्रैर्वा । अन्यत्र - ऋ० सं० (1/64/11) - रथानां चक्रैः, (10/87/6-12) - आकाशमार्गैः। वेंकट० - पविभिः। सात्व० (ऋ० का सु०भा०) - आरों से । Griff.(The hymns of Rgd.) - fellies. Wil. (Rgd.S.) - wheels. Vel. (Rgveda Mandal VII) - rims of its (wheels). Mac.D. (S.E.D.)- tire of a wheel. ~~Grass.~~ ~~(Rgd.)~~ - Grass. (Rgd.) - schieren. Geld. (D.R.) - radreifen. 'पवि' का अर्थ 'चक्र' अथवा 'चक्र का ऊपरी वृत्त' दोनों हो सकता है । कतिपय विद्वानों ने दूसरा अर्थ ग्रहण किया है, जो अनुचित नहीं है ।

वोळ्हा - 'वहन करने वाला', 'वह्' धातु से 'तृच्' प्रत्यय, 'ह्' का 'ढ्' तथा स्वर 'अ' के स्थान पर 'ओ' का स्थानान्तरण, पुल्लिंग, प्रथमा, एकवचन । सा० - यजमानैर्दत्तानां हविषां वाहको दातव्यानां वान्नानां वोळ्हा । अन्यत्र - ऋ० सं० (8/35/4-6) - प्रापयतम् । वेंकट०- वोळ्हा । सात्व० (ऋ० का सुबभा०) - पहुंचाने वाला । Griff. (The hymns of Rgd.) - laden, Wil. (Rgd.S.) - laden with (viands), Vel. (Rgd.M. VII) - carrier, Mac.D. (S.E.D.)- drawing, Geld. (D.R.) - bringer.

2. स पप्रथानो अभि पञ्च भूमा   सः।पप्रथानः। अभि। पञ्च। भूम

त्रिवन्धुरो मनसा यातु युक्तः।   त्रिऽवन्धुरः। मनसा।आ।यातु।युक्तः।

विशो येन गच्छथो देवयन्तीः   विशः।येन।गच्छथः। देवऽयन्तीः।

कुत्रा चिद्याममश्विना दधाना ।।   कुत्र।चित्।यामम्।अश्विना।दधाना ।।

अन्वय - पञ्च भूम (जन) पप्रथानः सः त्रिवन्धुरः मनसा युक्तः, येन देवयन्तीः विशः गच्छथः, कुत्र चित् यामम् दधाना, अश्विना ! अभि आ यातु ।

अनुवाद - पञ्चजनों में प्रख्यात, तीन सारथि स्थानों वाला, मन से युक्त अर्थात् मन के द्वारा संचालित, जिसके द्वारा देवताओं की अर्चना करने वाले अथवा देवकामी लोगों के समीप जाते हो, (ऐसा) कहीं भी गमन करने वाला (रथ), हे अश्विनों ! यहां आ जावे ।

टिप्पणी -

देवऽयन्तीः - 'देवताओं की अर्चना अथवा कामना करने वाले', 'दिव्' धातु

से 'अच्' प्रत्यय करने पर 'दैव' शब्द निष्पन्न हुआ, तदनन्तर 'देव' शब्द पूर्वक 'यज्' धातु से 'शतृ' और 'ङीप्' प्रत्यय करने पर अथवा 'देव' पूर्वक 'या प्रापणे' धातु से 'शतृ' और 'ङीप्' प्रत्यय करने पर द्वितीया बहुवचन में देवयन्तीः रूप निष्पन्न होगा । सा० - देवकामं यजमानं यज्ञं वा । अन्यत्र - ऋ० सं० ॥1/77/3॥ - देवानात्मन इच्छंत्यो । ॥7/10/3॥ - देवानिच्छन्त्यः । ॥3/6/3, 10/30/15॥ - देवान् कामयमानाः ।. वेंकट० - देवकामान् । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ - देवों की प्राप्ति की इच्छा करने वाली । Griff. (The hymns of Rgd.) - God adoring races, Wil. (Rgd.S.) - devout mortals, Vel. (Rgd.M. VII) - Pious people, Grass. (Rgd.) - frommen (pious), Geld. (D.R.) - gotter gebenen (god willing). अतः "देवताओं की अर्चना करने वाले अथवा देवताओं की कामना करने वाले" दोनों ही अर्थ प्रसंगानुसार उचित है । किन्तु व्युत्पत्ति की दृष्टि में 'यज् धातु' से 'देवयन्ती' शब्द की उत्पत्ति को मानना अधिक तर्कसंगत प्रतीत होता है ।

3. स्वश्वा यशसा यातमर्वाग्दस्त्रा	सुऽअश्वा । यशसा । आ । यातम् । अर्वाक् । दस्त्रा ।
निधिं मधुमन्तं पिबाथः ।	निऽधिम् । मधुऽमन्तम् । पिबाथः ।
वि वां रथो वध्वा ३	वि । वाम् । रथः । वध्वा ।
यादमानोऽन्तान्दिवो बाधते	यादमानः । अन्तान् । दिवः ।
वर्तनिभ्याम् ॥	बाधते । वर्तनिऽभ्याम् ॥

अन्वय - दस्त्रा ! स्वश्वा यशसा अर्वाक् आ यातं, मधुमन्तं निधिं पिबाथः ।
वां रथः वध्वा यादमानः वर्तनिभ्यां दिवः अन्तान् वि बाधते ।

अनुवाद - हे शत्रुनाशक, उत्तम अश्वों और यश के साथ हमारे समीप आओ, मीठा सोमरस (निधि) पीओ । तुम दोनों का रथ वधू के साथ आगे बढ़ते हुए अपने चक्रों के द्वारा आकाश के अन्तिम छोरों को विशेष रूप से बाधित करता है ।

टिप्पणी -

यादमानः - 'आगे बढ़ते हुए', 'याद्' धातु, 'शानच्' प्रत्यय, प्रथमा, एकवचन। वेंकट० - अभिगच्छन् । सा० - गन्तव्यान् प्रति गच्छन् । ऋ०सं० (6/19/5) - अभिगच्छन्त्यस्तद्वत्, (7/76/5) - गच्छन्तः । सात्व० (ऋ० का सु०भा०) - आगे बढ़ता है । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - travel, Wil. (Ṛgd.S.) - conveying, Vel. (Ṛgd.M. VII) - pressing forward, Mac.D. (S.E.D.) - closely united with, Grass. (Ṛgd.) - beruhrt (to pass through). 'गमन करना' अथवा 'आगे बढ़ना' अर्थ ही उचित है ।

वर्तनिऽभ्याम् - 'चक्रों के द्वारा', 'वृत्तु वर्तने' धातु 'उणादि अनि' प्रत्यय, तृतीया द्विवचन । सा० - स्वचक्राभ्याम्। वेंकट० - चक्रपविभ्याम् । अन्यत्र - ऋ० सं० (1/25/9) वर्ततेऽनेनेति वर्तनिः स्तोत्र स्तोत्रवाचकस्य वर्तनिशब्दस्यांतोदा त्तत्वसिद्धयर्थमुंद्दादिषु, (7/18/16) 8/63/8) मार्गम्, (10/65/6) - आवासस्थानं यज्ञम् । सात्व० (ऋ० का सु०भा०) - पहियों से। Griff. (The hymns of Ṛgd.) - with its track, Wil. (Ṛgd.S.) - with its two wheels, Vel. (Ṛgd.M. VII) - by its tracks, Mac.D. (S.E.D.) - felly of a wheel, Grass. (Ṛgd.) - rädern (to break on the wheel), Geld. (D.R.) - radspuren (track of the wheel). अन्य भाषाओं में 'वृत्तु वर्तने' धातु के समकक्ष शब्द - Latin - 'vert-ere' (turn), Anglo Saxon - 'weorðan' (became),

English - 'worth' (became, to be) 'turn', German - 'werden' (become), 'Wirt-el' (spindle - ring), Church Slavonic - 'Vreteno' (spindle). 'वर्तनि' का एक अर्थ 'मार्ग' भी है इसलिए कतिपय भाष्यकारों ने 'मार्ग' अर्थ में ही इस शब्द को ग्रहण किया है । परन्तु यहाँ इसका अर्थ 'चक्र' होगा, जिसकी पुष्टि व्युत्पत्ति तथा वचन दोनों से हो रही है । 'वृतु वर्तने' धातु का अर्थ ही है घूमना या लुढ़कना, जो चक्र का स्वभाव है। साथ ही यह द्विवचन में प्रयुक्त हुआ है क्योंकि रथ में चक्र भी दो होते हैं । इसलिए चक्र अर्थ ही तर्कसंगत है ।

4. युवोः श्रियं परि योषावृणीत	युवोः। श्रियम्। परि। योषा। अवृणीत् ।
सूरो दुहिता परितक्म्यायाम् ।	सूरः। दुहिता । परिऽतक्म्यायाम् ।
यद्देवयन्तमवथः शचीभिः परि	यत् । देवऽयन्तम् । अवथः। शचीभिः। परि।
घ्रंसमोमना वां वयो गात् ।।	घ्रंसम् । ओमना । वाम् । वयः। गात् ।।

अन्वय - सूरः योषा दुहिता परितक्म्यायां युवोः श्रियम् अवृणीत् । यत् घ्रंसं वयः ओमना परि गात्, वां शचीभिः देवयन्तम् अवथः ।

अनुवाद - सूर्य की युवती पुत्री ने रात्रि में, तुम दोनों की शोभा का वरण किया। जब दीप्तिमान् अन्न रक्षा के लिए जाते हैं, [तब] तुम दोनों, अपनी शक्तियों से, देवताओं की प्राप्ति की कामना करने वाले यजमानों की रक्षा करते हो ।

टिप्पणी -

परिऽतक्म्यायाम् - 'रात्रि में', 'परि' उपसर्ग, 'तक्म' धातु, 'यत्' और 'टाप्' प्रत्यय, स्त्रीलिंग, सप्तमी, एकवचन । सा० - रात्रौ

परितस्तक्नवति संग्रामे यज्ञे वा गन्तव्ये । अन्यत्र - निरु० ॥11/3/17॥ - 'परितक्म्या रात्रिः, परित एनां तक्म । तक्मेत्युष्णनाम तकत इति सतः' अर्थात् परितक्म्या रात्रि का नाम है, क्योंकि इसके चारों ओर गर्मी होती है, वह स्वयं ठंडी होती है । तक्म उष्ण को कहते हैं । वेंकट० - परितक्म्येति रात्रिनाम । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ - रात्रि के समय । Griff. (The hymns of Rgd.), Wil. (Rgd.S.) - atnight, Vel. (Rgd.M. VII) - at the critical hour, Mac.D. (A.S.R.) - agitating or unsafe, Grass. (Rgd.) - dunkel (dark), S. V. (The ety. of Yāska Pg. 28,116) - 'night' is rendered as परितः + तक्मन्, 'that the both sides of which there is heat', another etymology is √तक् with परि the sense of which is 'to move round', so that the word means 'moving round'. मैक्डानल महोदय का अर्थ प्रसंगानुसार सर्वथा अनुचित प्रतीत हो रहा है । यहाँ 'परितक्म्या' का रात्रि अर्थ ही सटीक है ।

5. यो ह स्य वां रथिरा वस्त	यः । ह । स्यः । वाम् । रथिरा । वस्ते ।
उस्रा रथो युजानः परियाति वर्तिः	उस्राः । रथः । युजानः । परिऽयाति । वर्तिः ।
तेन नः शं योरुषसो व्युष्टौ	तेन । नः । शम् । योः । उषसः । विऽउष्टौ ।
न्यश्विना वहतं यज्ञे अस्मिन् ।।	नि । अश्विना । वहतम् । यज्ञे । अस्मिन् ।।

अन्वय - रथिरा ! यः वां स्यः रथः, उस्रा वस्ते, युजानः वर्तिं परियाति । अश्विना ! उषसः व्युष्टौ, अस्मिन् यज्ञे, तेन नः शं, योः, नि वहतम् ।

अनुवाद – हे रथारोहियों ! जो तुम्हारा वह रथ, किरणों से व्याप्त होकर तथा अश्वों से युक्त होने पर अपने मार्ग पर चारों ओर परिक्रमा करता है अथवा ।यजमान के। घर पहुँचता है । हे अश्विनों उषा के अभ्युदय काल में, इस यज्ञ में, उस रथ के साथ, पापों का शमन करने और सुख की प्राप्ति कराने के लिए, आओ ।

टिप्पणी –

रथिरा – 'रथारोहियों', 'रथ' शब्द पूर्वक, मत्वर्थीय 'रः' और स्त्रीलिंग 'टाप्' प्रत्यय, इडागम अथवा, 'रथ' शब्द पूर्वक, 'इरच्' और 'टाप्' प्रत्यय करने पर, सम्बोधन के द्विवचन में रथिरा रूप निष्पन्न हुआ । सम्बोधन पद होने से निघात हुआ । सा० – रथिनौ । अन्यत्र – ऋ० सं० ।9/76/2। – रथवान्, ।7/7/4। – रथिनः ।3/1/17। – रथिनौ । वेंकट० – रथवन्तौ । सात्व० ।ऋ० का सु०भा०। – रथ में बैठने वाले वीरों । Griff. (The hymns of Ṛgd.) – O Chariot borne, Wil. (Ṛgd. S.) – Riders in the Chariot, Vel. (Ṛgd.M. VII) – O lords of the Chariot, Mac. D. (S.E.D.) – owing or driving in a Chariot. ~~कतिपय~~ कतिपय विद्वानों ने 'रथिरा' का अर्थ 'रथवान्' ग्रहण किया है, जो अनुचित नहीं है । 'रथिरा' का अर्थ 'रथारोही' अथवा 'रथवान्' दोनों ही उचित है ।

युजानः – '।अश्वों से। युक्त होने पर', 'युजिर योगे' धातु, 'शानच्' प्रत्यय। सा० – अश्वैर्युक्तः सन् । अन्यत्र – ऋ० सं० ।6/34/2। – अस्मत्स्तुतिभिर्युज्यमानः सन् , ।8/13/27। – रथेन संयोजयन् , ।10/22/4। – स्वरथे संयोजयन् । वेंकट० – युज्यमानः । सात्व० ।ऋ० का सु०भा० । घोड़ों के साथ जोतने पर । Griff. (The hymns of Ṛgd.) – harnessed, Wil. (Ṛgd.S.) – harnessed, Vel. (Ṛgd.M. VII) – being yoked. Mac.D. (S.E.D.) – in company with, Grass.(Ṛgd.)–

~~wgjx~~
Wohlgeschirrt (well harnessed), Geld. (D.R.) - angeschirrt (harnessed).

परि॒ऽया॒ति - 'पहुँचता है' अथवा 'चारों ओर परिक्रमा करता है', 'परि' उपसर्ग पूर्वक, 'या प्रापणे' धातु, लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन । सा० - परिगच्छति । अन्यत्र - ऋ० सं० ॥10/80/5॥ - परितः गच्छति, ॥9/111/1॥ - गच्छति व्याप्नोति । वेंकट० - परिगच्छति । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ - पहुँचता है । Griff. (The hymns of Rgd.) - comes, Wil. (Rgd.S.) - traverses, Vel. (Rgd.M.VII) - goes round. Grass. (Rgd.), Geld. (D.R.) - umfährt (a round about way) 'परि' उपसर्ग का अर्थ 'चारों ओर' होता है । अतः प्रथम अर्थ की अपेक्षा द्वितीय अर्थ व्युत्पत्ति की दृष्टि से अधिक समीचीन प्रतीत

6. नरा॑ गौ॒रेव॑ वि॒द्युतं॑	नरा॑ । गौ॒राऽइ॑व । वि॒ऽद्युत॑म् ।
तृ॒षा॒णास्माक॑म॒द्य सव॒नोप॑ यातम् ।	तृ॒षा॒णा।अ॒स्माक॑म्।अ॒द्य।सव॑ना।उप॑।या॒त॒म्।
पु॒रु॒त्रा हि वां॑ म॒तिभि॒र्हव॑न्ते	पु॒रु॒ऽत्रा।हि।वा॒म्।म॒तिऽभिः।हव॑न्ते।
मा वा॑म॒न्ये नि य॑मन्दे॒वय॑न्तः ।।	मा । वा॒म्। अ॒न्ये।नि। य॒म॒न्। दे॒व॒ऽय॑न्तः ।।

अन्वय - नरा ! तृषाणा गौरा इव विद्युतम् , अद्य अस्माकं सवना उप यातम् । वां पुरुत्रा हि मतिभिः हवन्ते । वाम् अन्ये देवयन्तः मा नियमन् ।

अनुवाद - हे नेतृत्व कारक ॥अश्विनों॥! तृषित मृग की भाँति प्रकाशमान ॥सोम॥ का पान करने के लिए, आज हमारे यज्ञ के पास आओ । तुम दोनों को अनेक स्थानों पर ॥स्तोतागण॥ स्तुतियों के द्वारा आह्वान करते

हैं । तुम दोनों को अन्य देवकामी मनुष्य रोक न ले ।

टिप्पणी -

वि द्युतम् - 'प्रकाशमान', 'वि' उपसर्ग, द्योतते इति सतः 'द्यु' धातु, 'क्त' प्रत्यय, द्वितीया, एकवचन । सा० - विशेषेण दीप्यमानं सोमं प्रति । अन्यत्र - वेंकट० - विद्युतम् । सात्व० (ऋ० का सु०भा०) - चमकने वाले (सोमरस) को । Griff. (The hymns of Rgd.) - lightning Wil. (Rgd.S.) - radiant (soma). Vel. (Rgd.M. VII) - dazzling light. Mac.D. (S.E.D.) - shining. Lan. (A.S.R.)- lightning. Grass. (Rgd.) - Spiegel (shining) Geld. (D.R.) - Blitz (lightning).

यहाँ 'सोम' का वाचक है । एक प्रकार से यह सोम के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है ।

पुरुऽत्रा - 'अनेक स्थानों पर', 'पुरु' शब्द पूर्वक, 'देवमनुष्यपुरुषपुरुमर्त्येभ्यो द्वितीयासप्तम्योर्बहुलम्' (पा० 4/6/56) सूत्र से सप्तमी के अर्थ में 'त्रा' प्रत्यय । सा० - बहुषु यज्ञेषु । अन्यत्र - ऋ० सं० (6/47/29) - बहुधा, (7/1/9) - बहुषु देशेषु, (8/8/22) - बहूनां त्रातारौ, (10/22/9) - बहून् स्तोतॄन् । वेंकट० - बहुषु हि देशेषु । सात्व० (ऋ० का सु०भा०) - अनेक स्थानों पर । Griff. (The hymns of Rgd.) - in many places. Wil.(Rgd.S.) - in many ceremonies. Vel.(Rgd.M.VII)- in many places. Mac.D.(S.E.D.) - in many ways or places.

7. युवं भुज्युमवविद्धं समुद्र उदूहथुरर्णसो अस्त्रिधानैः । — युवम् । भुज्युम् । अवऽविद्धम् । समुद्रे । उत् । ऊहथुः । अर्णसः । अस्त्रिधानैः ।

पतत्रिभिरश्रमैरव्यथिभि	पतत्रि भिः । अश्रमैः । अव्यथि भि ।
दंसनाभिरश्विना पारयन्ता ।।	दंसनाभिः ।अश्विना । पारयन्ता ।।

अन्वय - अश्विना ! समुद्रे अवविद्धं भुज्युम्, अस्त्रिधानैः, आश्रमैः, अव्यथिभिः, पतत्रिभिः, दंसनाभिः, प्रर्णः पारयन्ता युवम् उत् ऊहथुः ।

अनुवाद - हे अश्विनों ! समुद्र में डूबे हुए भुज्यु को, क्षय रहित, श्रम रहित, व्यथा रहित पक्षी के समान उड़ने वाले अश्वों और कर्मों के द्वारा जल से पार करने वाले, तुम दोनों ने उसे ऊपर उठा लिया ।

टिप्पणी -

अस्त्रिधानैः - 'क्षय रहित' न स्त्रिधः इति अस्त्रिधः 'नञ्' पूर्वक, 'स्त्रिध्' धातु 'शानच्' प्रत्यय, पुल्लिंग, तृतीया, बहुवचन । सा० - अक्षीयमाणैः । अन्यत्र - वेंकट० - अक्षीणैः । सात्व० ऋ० का सु०भा० - क्षीण न होने वाले । Griff. (The hymns of Rgd.) - uninjured, Wil. (Rgd.S.) - undecaying, Vel. (Rgd.M. VII) - unfailing, Mac.D. (S.E.D.) - unfailing, Grass. (Rgd.) - nicht wanken, Geld. (D.R.) - fehlgehanden (defectless). मैक्डॉनल और वेलणकर महोदय ने'unfailing' अर्थ ग्रहण किया है । प्रसंगानुसार यह अर्थ भी अनुचित नहीं है । यह अश्व का विशेषण है । अश्व शब्द यहाँ लुप्त है ।

8. नू मे हवमा श्रृणुतं	नू । मे । हवम् । आ । श्रृणुतम् ।
युवाना यासिष्टं वर्तिरश्विना-	युवाना । यासिष्टम् । वर्तिः ।
विरावत् ।।	अश्विनौ । इराऽवत् ।।

धत्तं रत्नानि जरतं च   धत्तम् । रत्नानि । जरतम् । च ।

सूरीन्यूयं पातस्वस्तिभिः सदा नः सूरीन्।यूयम्।पात।स्वस्तिऽभिः।सदा।नः।।

अन्वय - युवाना अश्विनौ ! मे हवम् आ शृणुतम् । इरावत् वर्तिः यातिष्टम् ।
रत्नानि धत्तं, सूरीन् च जरतं, यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पात ।

अनुवाद - हे युवा अश्विनौं ! मेरा आह्वान सुनो । अन्नयुक्त गृह में जाओ ।
रत्नों को धारण करो, स्तोताओं की सराहना करो । तुम दोनों
कल्याणमय साधनों से, सदा हमारी रक्षा करो ।

टिप्पणी -

सूरीन् - 'स्तोताओं की' 'षूङ् अभिषवे' धातु, 'उणादि क्रिन्' प्रत्यय,
पुल्लिंग, द्वितीया, बहुवचन । सा० - स्तोतॄन् । अन्यत्र - 12/35/
6। - स्तोतॄनस्मान् , 17/3/81 - हविषाम्. 110/61/221 - स्तुतिप्रेरकान् ।
सात्व० ऋ० का सु०भा०। - विद्वानों की । वेंकट० - स्तोतॄन् । Griff.
(The hymns of Rgd.) - nobles, Wil. (Rgd.S.) - worshippers.
Vel. (Rgd.M.VII) - patrons to a venerable old age, Mac.D.
(S.E.D.) - institutors of a sacrifice (√sū) or great
scholars, Lan. (A.S.P.) - he who engages priests to per-
form a sacrifice for his own benefit and pays them for it,
a sacrifice master. Geld. (D.R.) - Herren (gentle men).

अतः 'सूरीन्' का 'स्तोता' अर्थ ही समीचीन है ।

———:0:———

7.71.1-6

1. अप स्वसुरुषसो नग्जिहीते	अप । स्वसुः । उषसः । नक् । जिहीते ।
रिणक्ति कृष्णीररुषाय पन्थाम् ।	रिणक्ति । कृष्णीः । अरुषाय । पन्थाम् ।
अश्वामघा गोमघा वां हुवेम	अश्वऽमघा । गोऽमघा । वाम् । हुवेम ।
दिवा नक्तं शरुमस्मद्युयोतम् ।।	दिवा । नक्तम् । शरुम् । अस्मत् । युयोतम् ।।

अन्वय - नक् स्वसुः उषसः अप जिहीते, कृष्णीः अरुषाय पन्थां रिणक्ति । अश्वमघा, गोमघा वां हुवेम । दिवा नक्तं शरुम् अस्मत् युयोतम् ।

अनुवाद - रात्रि अपनी बहन उषा से अलग होती है । अन्धकारमय रात्रि, लाल वर्ण के सूर्य के लिए मार्ग खाली कर देती है । अश्वधन और गोधन से सम्पन्न, तुम दोनों का हम आह्वान करते हैं । दिन और रात्रि में (सर्वदा) बाणों को हमसे दूर कर दो ।

टिप्पणी -

गोऽमघा - 'गोधन से सम्पन्न', 'गो' शब्द पूर्वक, 'मह पूजायाम्' धातु से 'अच्' और 'टाप्' प्रत्यय, 'ह्' का 'घ्' में परिवर्तन, स्त्रीलिंग, प्रथमा एकवचन । सा० - गोधनौ । अन्यत्र - ऋ० सं० - 16/35/3 - गोमघानि गवां दातॄणि, 16/35/4 - गवां दात्री । वेंकट० - गोधनौ । सात्व० ऋ० का सु० भा० - गौओं के रूप में वैभव को देने वाले । Griff. (The hymns of Ṛgd.) rich in cattle, Wil. (Ṛgd.S.) - affluent in cattle, Vel. (Ṛgd. M. VII) - who give gifts of cows, Mac.D. (Vedic Reader) - rich incows, Grass. (Ṛgd.) - Rinder reich (rich in cows), Geld. (D.R.) - Rinder - schenker. कतिपय विद्वानों ने 'गौओं का दान करने वाले' अर्थ ग्रहण किया है । यह अर्थ भी अनुचित नहीं है ।

शरूम् - 'बाणों को', 'शृ हिंसायाम्' धातु, उणादि 'उन्' प्रत्यय, द्वितीया, एकवचन । सा० - हिंसकम् । अन्यत्र - ऋ० सं० ॥1/172/2॥ - हिंसका ऋष्टिः, ॥8/67/15॥ - हिंसिका प्रतितिः जालिकप्रेरिता, ॥8/18/11॥ हिंसकम्, ॥10/87/15॥ - शराः, ॥10/99/7॥ - हिंसकमायुधम् । वेंकट० - हिंसकम् । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ - घातक शत्रु को । Griff. (The hymns of Rgd.) - arrow, Wil. (Rgd.S.) - malevolent, Vel. (Rgd.M. VII) - lestructive weapon, Mac.D. (V.R.) - arrow, Lan. (A.S.R.) - arrow, Grass. (Rgd.) - arrows. अतः 'शरू' का 'बाण' अर्थ ही उचित है ।

2. उपायातं दाशुषे मर्त्याय	उपऽआयातम् । दाशुषे । मर्त्याय ।
रथेन वाममश्विना वहन्ता ।	रथेन । वामम् । अश्विना । वहन्ता ।
युयुतमस्मदनिराममीवां दिवा	युयुतम् । अस्मत् । अनिराम् । अमीवाम् । दिवा ।
नक्तं माध्वी त्रासीथां नः ॥	नक्तम् । माध्वीइति । त्रासीथाम् । नः ।

अन्वय - अश्विना रथेन वामं वहन्ता दाशुषे उपायातम् । अनिराम् अमीवाम् अस्मत् युयुतम् । माध्वी ! दिवानक्तं नः त्रासीथाम् ।

अनुवाद - हे अश्विनों ! रथ से समृद्धि का वहन करते हुए, दानशील मनुष्य ॥यजमान॥ के समीप आओ । अन्न के अभाव को और रोगों को हमसे दूर करो । हे मधुप्रेमी ! दिन और रात हमारी रक्षा करो ।

टिप्पणी -

अनिराम् - 'अन्न के अभाव को' न इराम् इति अनिराम्, 'नञ्' पूर्वक 'इरा' शब्द के द्वितीया एकवचन का रूप है। सा० - इरान्नम्, तदभावं दारिद्र्यमित्यर्थः। अन्यत्र - ऋ० सं० ।8/60/20। - इरान्नम्, अन्नाभावं दारिद्र्यम् ।10/37/4। - अन्नाभावम्। निघ० ।2/7। - इरा इति अन्ननाम। वेंकट० - अनतिः प्राणनकर्मा, श्वासकारिण्यशक्तिरनिरा। सात्व० ।ऋ० का सु० भा०। - अन्न के अभाव को। Griff. (The hymns of Rgd.) - penury, Wil. (Rgd.S.) - famine, Vel. (Rgd.M. VII) - famine, Mac.D. (V.R.) - languar, Grass. (Rgd.) - mattigkeit, Geld. (D.R.)- Verdorrung.

अमीवाम् - 'रोगों को', 'अमीव' शब्द से 'टाप्' प्रत्यय, स्त्रीलिंग, द्वितीया, एकवचन। सा० - रोगं च। अन्यत्र - ।1/35/9। - रोगादि-बाधाम्, ।7/1/7, 8/18/10, 9/97/43, 10/37/4, 10/162/2। - रोगम्। वेंकट० - रोगविशेषः, औदरः। सात्व० ।ऋ० का सु०भा०। - रोगों को। Griff. (The hymns of Rgd.) - sickness, Wil. (Rgd..S.) - sickness, Vel. (Rgd.M. VII), Mac.D. (V.R.) - diseases, Lan. (A.S.R.) - distress, Grass. (Rgd.), Geld. (D.R.) - krankheit (diseases).

3. आ वां रथमवमस्यां व्युष्टौ	आ।वाम्।रथम्।अवमस्याम्। विऽउष्टौ।
सुम्नायवो वृषणो वर्तयन्तु।	सुम्नऽयवः। वृषणः। वर्तयन्तु।
स्यूमगभस्तिमृतयुग्भिरश्वै-	स्यूमऽगभस्तिम्। ऋतयुक्ऽभिः। अश्वैः।
राश्विना वसुमन्तं वहेथाम्॥	आ। अश्विना। वसुऽमन्तम्। वहेथाम्।

अन्वय - वां सुमन्यव: वृष्ण:, अवमत्यां व्युष्टौ रथम् आ वर्तयन्तु । अश्विना ! स्यूमगभस्ति वसुमन्तम् ऋतयुग्भि: अश्वै:, आ वहेथाम् ।

अनुवाद - हे अश्विनों ! तुम दोनों के शक्तिशाली और सुख से जुते हुए ॥अश्व॥, उषा के आगमन के समय, रथ को, इधर घुमा दे । हे अश्विनों ! सुखकर किरणों तथा धन से युक्त ॥रथ को॥ सत्य युक्त अश्वों के द्वारा इधर ले आओ ।

टिप्पणी

सुम्नऽयव: - 'सुख से जुते हुए', 'सुम्न' शब्द पूर्वक, 'युजिर योगे' धातु, 'अच्' प्रत्यय अथवा 'सुम्न' पूर्वक, 'यु मिश्रणामिश्रणयो:' धातु, 'अच्' प्रत्यय । सा० - सुखेन योजयन्तो श्वा: । अन्यत्र - ऋ० सं० ॥1/138/1॥ - सुखमिच्छन्नर्यामि, स्तौमि, ॥6/49/1॥ - सुम्नं सुखं स्तोतृणामिच्छन्तौ, ॥1/43/4॥ - सुखमोमहे याचामहे । वेंकट० - सुखम् इच्छन्त: । सात्व० ॥ऋ० का सु० भा०॥ - सुख से चलने वाले । Griff. (The hymns of Rgd.) - seaking bliss, Wil. (Rgd.S.) - docile, Vel. (Rgd.M. VII) - favourably disposed, Mac.D. (V.R.) - kindly stallious. Geld. (D.R.) - w[illegible]lwollenden (well willing). अर्थ को देखते हुए 'युज्' धातु से ही व्युत्पत्ति को मानना अधिक तर्कसंगत होगा क्योंकि यह विशेषण अश्वों के लिए प्रयुक्त हुआ है और अश्वों को रथ में जोता जाता है । इसलिए 'यव:' शब्द का अर्थ 'जुते हुए' ग्रहण करना ही समीचीन होगा ।

ऋतयुक्ऽभि: - 'सत्य युक्त', 'ऋ गतौ' धातु से 'क्त' प्रत्यय करने पर ऋत शब्द निष्पन्न हुआ पुन: 'ऋत' पूर्वक 'युक्' धातु के 'क्' का संहिता पाठ में, 'ग्' में परिवर्तन होने पर तृतीया बहुवचन में ऋतयुग्भि: रूप निष्पन्न हुआ । ऋत शब्द अनेकार्थक है । निरुक्त में यह जल - ॥ऋतमित्युदक नाम ।

ऋतुस्तैर्गति कर्मणः निरु० 2/7।, यज्ञ ।निरु० 3/1।, सत्य ।ऋतं नः सत्यं वा - निरु० 4/5/45। तथा मेघ ।निरु० 10/4/26। के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । निघ० ।1/12। में यह उदकनामों में तथा ।3/10। में सत्य नामों में परिगणित है । सा० - उदकयुक्तैः । अन्यत्र - ऋ० सं० ।4/51/5। - यज्ञगामिभिः ।6/39/4। - ऋतेन स्तोत्रेण युज्यमानैः । वेंकट० - यज्ञयोग्भिः । सात्व० ।ऋ० का सु०भा०। - सरलतापूर्वक जोते जाने वाले । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - yoked by law, Wil. (Ṛgd.S.) - rain bestowing, Vel. (Ṛgd. M. VII) - yoked by Ṛta, Mac.D. (V.R.) - yoked in due time. Lan. (A.S.R.) - right or true, Grass. (Ṛgd.), Geld. (D.R.) - geschirrten (well harnessed). ऋत के विभिन्न अर्थों में यहाँ 'सत्य' अर्थ ही अधिक संगत प्रतीत हो रहा है । यह शब्द अश्व के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है ।

स्यूमऽगभस्तिम् - 'सुखकर किरणों से युक्त', 'षिवु तन्तुसन्ताने' धातु 'अविषिवि-शुषिभ्यः कित्' से 'मन्' प्रत्यय, 'छ्वोः शूडनुनासिके च' से ऊठ् यणादेश, 'सुपां सुलुक्०' से सोर्लुक्, प्रत्यय के नित् होने से आद्युदात्त । इस प्रकार 'स्यूम' शब्द निष्पन्न हुआ । तदनन्तर 'गो' शब्द पूर्वक प्रकाश के अर्थ में 'भस्' धातु और 'क्तिच्' प्रत्यय करने पर द्वितीया एकवचन में गभस्तिम् रूप निष्पन्न हुआ । स्यूम का अर्थ है 'सुख' तथा 'गभस्ति' 'प्रकाश' या 'किरणों' का वाचक है । दोनों शब्दों को मिलाने पर इस पूरे शब्द का अर्थ 'सुखकर किरण' अथवा 'सुखकारक प्रकाश' होगा । सा० - स्यूतरश्मिं, सुखरश्मिमश्व. अन्यत्र - ऋ० सं० ।1/122/15। - स्यूतमिति सुखनाम, सुखकर दीप्तिः सन् । वेंकट० - अनुस्यूतरश्मिमश्व सात्व० ।ऋ० का सु०भा०। - तेजस्वी । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - reins are light, Wil. (Ṛgd.S.) - radiating, Vel. (Ṛgd.M. VII) - endowed with the controlling hands in the form of the reins, Mac.D. (V.R.) - drawn with thongs. Geld. (D.R.) - strahlen (to shine).

4. यो वां रथो नृपती अस्ति　　य: । वाम् । रथ: । नृपतीइति नृऽपती । अस्ति ।

वोळ्हा त्रिवन्धुरो वसुमाँ उस्त्रयामा　वोळ्हा । त्रिऽवन्धुर: । वसुऽमान । उस्त्रऽयामा ।

आ न एना नासत्योप यातमभि　　आ । न: । एना । नासत्या । उप । यातम् ।

यद्वां विश्वप्स्न्यो जिगाति ।।　　अभि । यत् । वाम् । विश्वऽप्स्न्य: । जिगाति ।।

अन्वय - नृपती य: वां त्रिवन्धुर:, वसुमान् , उस्त्रयामा, वोळ्हा रथ: अस्ति । विश्वप्स्न्य: यत् वाम् अभि जिगाति । नासत्या ! एना न: उप आ यातम् ।

अनुवाद - हे मनुष्यों के स्वामी ! जो तुम दोनों का, तीन सारथिस्थानों वाला, धन से युक्त, प्रकाश ।दिन। की ओर जाने वाला, तुम दोनों को वहन करने वाला रथ है । अनेक रूपों वाला रथ जब तुम दोनों के पास जाता है ।तब। हे नासत्या ! उस रथ से हमारे समीप आओ ।

टिप्पणी -

उस्त्रऽयामा - 'प्रकाश ।दिन। की ओर जाने वाला', 'वस् कान्तौ' धातु, उणादि 'रक्' प्रत्यय 'वस्' का सम्प्रसारण से 'उस्' होने पर, 'उस्र' शब्द निष्पन्न हुआ, पुन: 'उस्र' शब्द पूर्वक 'या प्रापणे' धातु से 'मनिन्' प्रत्यय करने पर 'उस्रयामन्' शब्द निष्पन्न हुआ, इसी के प्रथमा एकवचन का रूप है उस्रयामा । सा० - दिवसं प्रति गन्ता । अन्यत्र - ऋ० सं० ।7/8।/2। - रश्मीन् । वेंकट० - उत्तरणशीलगमन: । सात्व० ।ऋ० का सु०भा०। - प्रात: काल में जाने वाला । Grif. (The hymns of Rgd.) - moving at daylight. Wil. (Rgd.S.) - precursor of day. Vel. (Rgd.M. VII) - moving at day break. Mac.D. (V.R.) - faring at day break. Geld. (D.R.) - morgen ausfahrende (take a drive at

morning). अतः 'उस्त्रयामा' का अर्थ 'प्रकाश की ओर जाने वाला' ही उचित है। यहाँ प्रकाश का तात्पर्य दिन से है।

विश्वऽप्स्न्यः - 'अनेक रूपों से व्याप्त', 'विश्व' शब्द पूर्वक रूपवाचक 'प्स' धातु से 'यत्' प्रत्यय, छान्दस प्रयोग के कारण 'नकार' का आगम। प्रथमा, एकवचन। सा० - व्याप्तरूपः। अन्यत्र - ऋ० सं० (8/97/15) प्स इति रूपनाम, रूपे साधु प्स्यम्, नकारोपजनश्छान्दसः, बहुरूपं तत्। निघ० (3/7) - प्सरिति षोडश रूपनामानि। वेंकट० - वैश्वरूप्यम् यद्वा व्यापकः विश्वस्य इति। सात्व० (ऋ० का सु०भा०) - सर्वत्र जाने वाला। Griff. (The hymns of Ṛgd.) - laden with all foods. Wil. (Ṛgd.S.) - all pervading form. Vel. (Ṛgd.M. VII) - laden with all kinds of foods. Mac.D. (V.R.) - laden with all food. Grass. (Ṛgd.) - alles nähret (laden with feed or nourishment). लगभग सभी पाश्चात्य विद्वानों ने 'प्स' का अर्थ 'अन्न' ग्रहण किया है जबकि 'अन्न' अर्थ में इसका प्रयोग कहीं नहीं उपलब्ध होता। निघण्टु में भी यह रूपनामों में आम्नात है। अतः 'विश्वप्स्न्य' का अर्थ 'अनेक रूपों से व्याप्त' ही उचित है।

5. युवं च्यवानं जरसोऽमुमुक्तं	युवम्। च्यवानम्। जरसः। अमुमुक्तम्।
नि पेदव ऊहथुराशुमश्वम्।	नि। पेदवे। ऊहथुः। आशुम्। अश्वम्।
निरंहसस्तमसः स्पर्तमत्रिं	निः। अंहसः। तमसः। स्पर्तम्। अत्रिम्।
नि जाहुषं शिथिरे धातमन्तः॥	नि। जाहुषम्। शिथिरे। धातम्। अन्तरिति॥

अन्वय – युवं च्यवानं जरसः अमुमुक्तम् । आशुम् अश्वं पेदवे न्यूहथुः । अत्रिम् अंहसः तमसः निःस्पर्तम् । जाहुषम् अन्तरिति शिथिरे निधातम् ।

अनुवाद – तुमने च्यवन को जरा से मुक्त किया । शीघ्रगामी अश्व पेदु के पास पहुँचा दिया । अत्रि को कष्ट और अन्धकार से दूर किया । जाहुष को बन्धन से मुक्त किया ।

टिप्पणी –

निःस्पर्तम् – 'दूर किया' 'नि' उपसर्ग पूर्वक, 'स्पृ प्रीतिबलयोः' धातु, लेट् लकार, मध्यम पुरुष, द्विवचन, लेट् के कारण अडागम, क्रिया पद होने से निघात । सा० – न्यपारयतम् । अन्यत्र – ऋ० सं० ॥1/161/5॥ – प्रीणयति । वेंकट० – उत्थापितवन्तौ । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ – दूर किया । Griff. (The hymns of Rgd.) – rescued, Wil. (Rgd.S.)- extricated, Vel. (Rgd.M. VII) – released, Mac.D. (V.R.)- rescued, Grass. (Rgd.) – entrisst (rescued).

6. इयं मनीषा इयमश्विना गीरिमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम् । इमा ब्रह्माणि युवयून्यग्मन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥

इयम् । मनीषा । इयम् । अश्विना । गीः । इमाम् । सुऽवृक्तिम् । वृषणा । जुषेथाम् । इमा । ब्रह्माणि । युवऽयूनि । अग्मन् । यूयम् । पात । स्वस्तिभिः । सदा । नः ॥

अन्वय – इयं मनीषा इयं गीः अश्विना वृषणा । इमां सुवृक्तिं जुषेथाम् । इमा ब्रह्माणि युवयूनि अग्मन्, यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पात ।

अनुवाद - ये मेरा चिन्तन है, यह मेरी वाणी है । हे कामना सेवक अश्विनों !
इस सुन्दर स्तुति को स्वीकार करो, यह स्तोत्र तुम्हारी कामना करने के लिए ही प्रचलित हुए हैं । तुम दोनों कल्याणकारी साधनों से सदा हमारी रक्षा करो ।

टिप्पणी -

सुऽवृक्तिम् - 'सुन्दर स्तुति को' 'सु' उपसर्ग पूर्वक, 'वृक्' धातु, 'क्तिन्' प्रत्यय, द्वितीया एकवचन । सा0 - शोभनां स्तुतिम् । अन्यत्र - ऋ0 सं0 ।1/61/2। - सुष्ठु वर्जकम् , ।5/41/10। - स्तोत्रकर्मैतत् , शोभनपापदिवर्जनवता स्तोत्रेण, ।8/8/22। - सुप्रवृत्ताः सुष्ठु दोषवर्जिता वा । वेंकट0 - स्तुतिभ्यः सात्व0 ।ऋ0 का सु0भा0। - सुन्दर स्तुति । Griff. (The hymns of Rgd.) hymn , Wil. (Rgd.S.) - laudation, Vel. (Rgd. M. VII) - well composed hymn, Mac. D. (V.R.) - song of praise, Geld. (D.R.) - Lobpreis (praise). अतः 'सुन्दर स्तुति' अर्थ उचित है ।

युवऽयूनि - 'तुम्हारी कामना करने के लिए', 'युष्मद' शब्द के प्रथमा द्विवचन का रूप है । 'युव', युवां के स्थान पर युव का प्रयोग किया गया है । 'यु मिश्रणामिश्रणयोः' धातु से 'क्तिन्' प्रत्यय, नकार का आगम तथा ह्रस्व उकार का दीर्घ हो जाने से 'यूनि' शब्द निष्पन्न हुआ । सा0 - युवां कामयमानानि सन्ति । अन्यत्र - ऋ0 सं0 ।7/70/7। - युवां कामयमानानि सन्ति । वेंकट0 - युवां कामयमानानि । सात्व0 ।ऋ0 का सु0भा0। - तुम्हारी कामना पूर्ण करने वाले । Griff. (The hymns of Rgd.) - addressed to you, Will. (Rgd.S.) - addressed to you, Vel. (Rgd.M.VII) - longing for you, Mac.D.(V.R.) - addressed to you, Geld.(D.R.)- verlangend (to long for). अतः 'कामना करने वाला' अर्थ ही उचित है ।

--- ::0:: ---

10.39.1-14

1. यो वां परिज्मा सुवृदश्विना रथो दोषामुषासो हव्यो हविष्मता ।
शश्वत्तमासस्तमु वामिदं वयं पितुर्न नाम सुहवं हवामहे ।।

यः । वाम् । परिऽज्मा । सुऽवृत् । अश्विना । रथः । दोषाम् । उषसः । हव्यः । हविष्मता । शश्वत्ऽतमासः । तम् । ऊँ इति । वाम् । इदम् । वयम् । पितुः । न । नाम । सुऽहवम् । हवामहे ।।

अन्वय - अश्विना! यः वां परिज्मा सुवृत् रथः दोषाम् उषसः हविष्मता हव्यः । तं सुहवं पितुः नाम न वाम् इदं, वयं शश्वत्तमासः हवामहे ।

अनुवाद - हे अश्विनों ! जो तुम दोनों का, चारों ओर गमन करने वाला, भली भाँति घूमने वाला रथ, यजमानों के द्वारा रात [में और] दिन [में] बुलाने योग्य है । सुगमता से बुलाने योग्य पिता के नाम की भाँति, तुम दोनों के इस [रथ को] हम बारम्बार बुलाते हैं ।

टिप्पणी -

परिऽज्मा - 'चारों ओर गमन करने वाला', 'परि' उपसर्ग पूर्वक, 'अज गति-क्षेपणयोः' धातु, 'अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते' [पा० सू० 3/2/75] से 'मनिन्' प्रत्यय करने पर 'परिज्मन्' शब्द निष्पन्न हुआ, उसी के प्रथमा, एकवचन का रूप है । सा० - परितो गन्ता । अन्यत्र - ऋ० सं० [1/6/9] - परितो व्यापिन्, √अज् गतिक्षेपणयोः, 'अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते [पा० सू० 3/2/75] इति मनिन्, आकारलोपः छान्दसः, आमन्त्रित निघातः । [1/63/8] - परितो व्याप्तायां भूमौ, जमतिर्गतिकर्मा, √अज् गति क्षेपणयोः, 'आभ्यां परि-पूर्वाभ्यां 'श्वन्नुक्षन्०' इत्यादौ कनिन्प्रत्ययान्तो निपातितः, 'सुपां सुलुक्०' इति सप्तम्या लुक् । [1/79/3] - परितो गन्ता मरुद्गणस्य । [1/117/6] - परिगमने अभिष्टस्य प्रापणे निमित्तभूते सति । [2/28/4] - परिज्मनि भूम्याम् ।

(10/93/4) - सर्वतोगामी, सर्वत्राप्रतिहतगतिः । वेंकट० - परितो गन्ता । सात्व० (ऋ० का सु०भा०) - चारों ओर जाने वाला । उद्गीथ - सर्वतोगामी। Griff. (The hymns of Ṛgd.) - circumambient, Wil. (Ṛgd.S.)- which travels all round, Geld. (D.R.) - umberfohrenden (take a drive all around), अतः 'चारों ओर गमन करने वाला' अर्थ ही उचित होगा ।

2. चोदयतं सूनृताः पिन्वतं चोदयतम् । सूनृताः । पिन्वतम् ।

धिय उत्पुरंधीरीरयतं तदुश्मसि। धियः।उत्।पुरम्ऽधीः।ईरयतम्।तत्।उश्मसि।

यशसं भागं कृणुतं नो अश्विना यशसम्।भागम्।कृणुतम्।नः। अश्विना ।

सोमं न चारुं मघवत्सु नस्कृतम्।। सोमम्। न। चारुम्। मघवत्सु। नः।कृतम्।।

अन्वय - सूनृताः चोदयतं धियः पिन्वतं पुरंधीः उत् ईरयतम् , तत् उश्मसि । अश्विना ! नः भागं यशसं कृणुतम् । चारुं सोमं न मघवत्सु नः कृतम् ।

अनुवाद - सत्यवाणियों को प्रेरित करो, स्तुतियों के पुष्ट करो, प्रजाओं को विकसित करो, यही हमारी कामना है । हे अश्विनों ! हमारे भाग को यशस्वी करो । सुन्दर सोम के समान, धनिकों के मध्य, हमें (धनवान्) कर दो ।

टिप्पणी -

सूनृताः - 'सत्यवाणियों को', 'सु' उपसर्ग पूर्वक, 'ऊन परिहाणे' धातु, सुतराम् अनयति प्रियमिति सून् , तत्पश्चात् 'ऋत्' शब्द और 'टाप्' प्रत्यय जोड़ने पर स्त्री लिंग, प्रथमा, बहुवचन में सूनृताः रूप निष्पन्न होगा ।

'परादिश्छन्दसि बहुलम्' ‖पा0 सू0 6/2/99‖ से अकार पर उदात्त स्वर । सा0-वाच, उषसो वा । अन्यत्र - ऋ0 सं0 ‖1/8/8‖ - प्रिय सत्यरूपा वाक्, सुतराम् उनयति प्रियमिति सून्, सा चासौ ऋता सत्या चेति सूनृता, प्रियसत्या वाक् । ‖1/48/2‖ - प्रियहितवाच: । ‖1/113/12‖ - वाङ्मैतत्, ‖3/31/2‖ - प्रियतमा गा: । वेंकट0 - वाच: । उद्गीथ - उषस: । सात्व0 ‖ऋ0 का सुभा0‖ - सत्यवाणियों को । **Griff. (The hymns of Rgd.) - pleasant strains (** गीत **), Wil. (Rgd.S.) - words of truth, Mac.D. (S.E.D.) - kind speech, Grass. (Rgd.) - lieder(song). Geld. (D.R.) - Schenkungen (donation).** 'सत्यवाणी' अर्थ ही सर्वथा उचित है । गेल्डनर महोदय द्वारा गृहीत अर्थ प्रसंग के अनुसार संगत नहीं प्रतीत हो रहा है ।

<u>ईरयतम्</u> - 'प्रेरित करो', 'ईर् गतौ कम्पने च' धातु अदादि होने से शप् का लुक् 'हेतुमति च' से णिच्, लोट् लकार, मध्यम पुरुष, द्विवचन । सा0 - उद्गमयतम् ऐरयतम् । अन्यत्र - ऋ0 सं0 ‖1/48/2‖ - ब्रूहि, 'ईर् गतौ कम्पने च', (अदादित्वात् शपो लुक्, अस्य अदादेश:, टे: एत्वम् अनुदात्तेत्वात् लसार्वधातुकानुदात्तत्वे धातुस्वर: शिष्यते यद्वृत्तयोगाद् निघात: । तत्र हि पञ्चमीनिर्देशेऽपि कार्यमिष्यते ‖का0 2/1/66‖ इत्युक्तम् । ‖1/140/5‖ - सर्वतो गच्छन्ति । ‖1/113/12‖ - प्रेरयन्त्युत्पादयन्ती । ‖3/61/2‖ - उच्चारयन्ती, ‖10/65/2‖ - सर्वत्रोदीरयन्तुद्गमयन् । ‖10/99/4‖ - प्रेरयन्ति तत्राजुहोति । वेंकट0 - ईरयतम् । उद्गीथ - उद्गमयतम्, उत्पादयतम्, दत्तमित्यर्थ: । सात्व0 ‖ऋ0 का सुभा0‖ - विकसित करो । **Griff. (The hymns of Rgd.) - raise up, Wil. (Rgd.S.) - inspire, Mac. D. (S.E.D.) - raise. Grass. (Rgd.) - erstehen (to rise), Geld.(D.R.) - treibet (to drive).** अत: 'प्रेरित करना' अथवा 'उन्नत करना' दोनों ही अर्थ इस संदर्भ के लिए उचित हैं ।

हेतुमति णिच्, ([illegible]) - [illegible] 'ईर् गतौ कम्पने च',

3. अमाजुरश्चिदभवथो युवं भगोऽनाशो अमाऽजुरः। चित्। भवथः। युवम्। भगः। अनाशोः।

श्चिदवितारापमस्य चित्। चित्। अविताराः। अपमस्य। चित्।

अन्धस्य चिन्नासत्या कृशस्य अन्धस्य। चित्। नासत्या। कृशस्य।

चिद्युवामिदाहुर्भिषजा रुतस्य चित्।। चित्। युवाम्। इत्। आहुः। भिषजा। रुतस्य। चित्।।

अन्वय – नासत्या। युवम् अमाजुरः चित् भगः भवथः, अनाशो चित्, अपमस्य चित्, अन्धस्य चित्, कृशस्य चित् अवितारा (भवथः) युवम् इत् रुतस्य चित् भिषजा आहुः।

अनुवाद – हे असत्य से रहित अश्विनों। तुम दोनों घर में ही पड़ी हुई वृद्धा हो रही (कन्या) के लिए ऐश्वर्यशाली हो जाते हो, अनशन करने वाले, अत्यन्त निम्न श्रेणी के, अन्धे के तथा दुर्बल के भी रक्षाकर्ता हो। तुम दोनों को रोगी का वैद्य भी कहा जाता है।

टिप्पणी –

अमाऽजुरः – 'घर में ही वृद्धा हो रही', 'अमा' शब्द पूर्वक, 'जृ वयोहानौ' धातु से 'घञ्' प्रत्यय, प्रथमा, एकवचन। सा० – पितृगृहे जूर्यन्त्या। अन्यत्र – ऋ० सं० (2/17/7, 8/21/15) – यावज्जीवं गृह एव जीर्यन्ति। निघ० (3/4) – अमा इति गृहनाम। वेंकट० – पितृगृहे सह जीर्यन्त्या। उद्गीथ् गृहे जरां गता सती। सात्व० (ऋ० का सु०भा०) – घर में जीर्ण होने वाली।

Griff. (The hymns of Rgd.) – who groweth old at home, Wil. (Rgd.S.) growing old in (her father's) mansion, Mac.D.(S.E.D.) – aging at home, Grass. (Rgd.) – alten Jungfrau (a virgin who becomes old), Geld. (D.R.) – Zuhause alterden (growing old at home). अतः उपर्युक्त अर्थ ही उचित है।

4. युवं च्यवानं सनयं यथा   युवम् । च्यवानम् । सनयम् । यथा ।

रथं पुनर्युवानं चरथाय तक्षथुः ।   रथम्। पुनः। युवानम्। चरथाय। तक्षथुः।

निष्टौग्र्यमूहथुरद्भ्यस्परि   निः। तौग्र्यम्। ऊहथुः। अत्ऽभ्यः।

विश्वेत्ता वां सवनेषु प्रवाच्या ।।   परि। विश्वा। इत्। ता। वाम्। सवनेषु। प्रऽवाच्या ॥

अन्वय - युवं सनयं च्यवानं रथं यथा पुनर्युवानं चरथाय तक्षथुः । तौग्र्यम् अद्भ्यः परि न्यूहथुः । वां ता विश्वा इत् सवनेषु प्रवाच्या ।

अनुवाद - तुम दोनों ने वृद्ध च्यवन को, रथ के समान पुनः तरुण, चलने के लिए, बनाया । तुग्र पुत्र भुज्यु को जल के ऊपर से भलीभाँति बचाकर ले आये । तुम दोनों के वे सभी कार्य यज्ञों में, अवश्य ही प्रकर्षरूपेण कहने योग्य है ।

टिप्पणी -

तक्षथुः - 'बनाया', तक्षतीति करोतिकर्मा, 'तक्ष्' धातु, लङ् लकार, 'बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेऽपि' से 'अट्' का अभाव, मध्यम पुरुष, द्विवचन । छान्दस प्रयोग के कारण अतक्षतम् के स्थान पर 'तक्षथुः' का प्रयोग हुआ है । क्रिया पद होने के कारण निघात हुआ है । सा० - अकुरुतमित्यर्थः । अन्यत्र - ऋ०सं० ।1/51/10। - तनूकृतवान् , सम्यक् तीक्ष्णमकार्षीदित्यर्थः, 'तक्षू त्वक्षू तनूकरणे' , लङि, 'बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेऽपि इति अड्भावः, शपः पित्वादनुदात्तत्वे धातुस्वरशिष्यते । ।1/20/3। - धातूनामनेकार्थत्वात् तक्षतिरत्रसंपादनवाची । ।1/61/6। - अकरोत् । निरु० ।4/5/38। - तक्षतिः करोति कर्मा । वेंकट० - करोतिकर्मा।उद्गीथ - कृतवन्तौ स्थः। सात्व० ।ऋ० का सु०भा०। - बना दिया। **Griff. (The hymns of Ṛgd.) - ye made. (Wil.) (Ṛgd.S.) - yemade. Grass. (Ṛgd.) - gemacht. Geld.(D.R.)-gezimmert.**

अन्य भाषाओं में - Avestā - tas, Hittait - taks (join).
'तक्ष' धातु अनेकार्थक है । इसका प्रमुख अर्थ है 'काटना', 'तीक्ष्ण करना' आदि। इसके अतिरिक्त ऋग्वेद में यह संपादन के अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है किन्तु यहाँ 'तक्ष' धातु करोत्यर्थक है ।

5. पुराणा वां वीर्या३ प्र ब्रवा | पुराणा। वाम्। वीर्या। प्र। ब्रव।
जनेऽथो हासथुर्भिषजा मयोभुवा । | जने।अथो इति।ह।आसथुः।भिषजा।मयःऽभुवा।
ता वां नु नव्यावक्से करामहेऽयं | ता।वाम्।नु।नव्यौ।अवसे।करामहे।अयम्।
नासत्या अरिर्यथा दधत् ।। | नासत्या। अत् । अरिः। यथा। दधत् ।।

अन्वय - वां पुराणा वीर्या जने प्र ब्रव, अथ मयोभुवा भिषजा ह आसथुः ।
नासत्या । नव्यौ नु ता वाम् अवसे करामहे, यथा अयम् अर्यः श्रत् दधत् ।

अनुवाद - तुम दोनों के पुराने वीरतापूर्ण कार्यों ।को। लोगों में खूब कहता हूँ ।
तुम दोनों सुखदायक वैद्य भी हो । हे असत्य से रहित ।अश्विनों। ।
स्तुति के योग्य तुम दोनों को रक्षा के लिए निर्धारित करते हैं, जिससे यह जाने वाला ।पुरुष। अथवा यजमानों का स्वामी ।तुम पर। विश्वास कर ले ।

6. इयं वामह्वे शृणुतं मे अश्विना | इयम्।वाम्।अह्वे।शृणुतम्।मे।अश्विना।
पुत्रायेव पितरा मह्यं शिक्षतम् । | पुत्रायऽइव। पितरा। मह्यम्। शिक्षतम्।
अनापिरज्ञा असजात्यामतिः पुरा | अनापिः।अज्ञाः।असजात्या।अमतिः।पुरा।
तस्या अभिशस्तेरव स्पृतम् ।। | तस्याः। अभिऽशस्तेः। अव । स्पृतम् ।।

अन्वय - अश्विना । वाम् इयम् अह्वे, मे श्रुतम् । पितरा पुत्राय इव मह्यं शिक्षतम् । अनापि, अज्ञा:, असजात्या, अमतिः, तस्याः अभिशस्तेः पुरा अव स्पृतम् ।

अनुवाद - हे अश्विनों । तुम दोनों को यह मैं ॥घोषा॥ बुला रही हूँ । मेरी पुकार सुन लो । जैसे पिता पुत्र को ॥सिखाता है॥ वैसे ही मुझको शिक्षा दो । मैं बन्धु रहित, अकुशल, सजातियों से रहित और बुद्धिहीन हूँ, इसलिए उस अभिशाप के आक्रमण से पहले ही मुझे ॥संकटों से॥ पार लगा दो ।

टिप्पणी -

अभिऽशस्तेः - 'अभिशाप से', 'अभि' उपसर्ग पूर्वक, 'हिंसार्थक शस्' धातु से 'क्त' प्रत्यय, तृतीया, एकवचन । 'अभिशस्तेन' के स्थान पर 'अभिशस्तेः' का प्रयोग किया गया है । ऐसे प्रयोग वेदों में सर्वदा उपलब्ध होते रहते हैं । सा० - अभिशस्तिः मामागच्छति । अन्यत्र - वेंकट० - आगच्छति । उद्गीथ- अभिहिंसायाः । सात्व० ॥श० का सु०भा०॥ - अभिशाप के । **Griff. (The hymns of Rgd.) - from this my curse, Wil. (Rgd.S.) - from that curse, Mac.D. (S.E.D.) - punishment. Geld. (D.R.) - Makel (fault).** सायणाचार्य और वेंकटमाधव ने 'आगमन' के अर्थ में इस शब्द का प्रयोग किया है । किन्तु अधिकांश भाष्यकारों ने 'अभिशाप' के अर्थ में इस शब्द का प्रयोग किया है । व्युत्पत्ति तथा प्रसंग के अनुसार यही अर्थ उचित प्रतीत हो रहा है ।

7. युवं रथेन विमदाय शुन्ध्युवं	युवम्। रथेन। विऽमदाय। शुन्ध्युवम्।
न्यूहथुः पुरुमित्रस्य योषणाम् ।	नि।ऊहथुः।पुरुऽमित्रस्य।योषणाम् ।
युवं हवं वध्रिमत्या अगच्छतं	युवम्।हवम्। वध्रिऽमत्याः। अगच्छतम्।
युवं सुषुतिं चक्रथुः पुरंध्ये ।।	युवम्।सुऽसुतिम्।चक्रथुः। पुरम्ऽध्ये ।।

अन्वय - युवं पुरुमित्रस्य योषणां शुन्ध्युवं रथेन विमदाय न्यूहथुः । युवं वध्रिमत्याः
हवम् अगच्छतम् , युवं पुरंध्ये सुषुतिं चक्रथुः ।

अनुवाद - तुम दोनों ने पुरुमित्र की कन्या शुन्ध्युव को रथ से विमद के लिए
[वधू रूप में] पहुँचाया । तुम दोनों वध्रिमती का आह्वान सुनकर
उसके पास जा पहुँचे तथा तुम दोनों ने उस प्रभूत बुद्धि सम्पन्न के लिए शोभन पुत्र
अथवा शोभन ऐश्वर्य प्रदान किया ।

टिप्पणी -

सुऽसुतिम् - 'शोभन पुत्र अथवा शोभन ऐश्वर्य', 'सु' उपसर्ग पूर्वक, 'षूञ् अभिषवे'
धातु, 'क्तिन्' प्रत्यय, द्वितीया, एकवचन । सा० - सुप्रसवं शोभन-
मैश्वर्यं वा । अन्यत्र - वेंकट० - सुप्रसवम् । उद्‌गीथ - सुप्रसवं शोभनमैश्वर्यम् ।
सात्व० [श० का सु०भा०] भलीभाँति धनोत्पादन की व्यवस्था । **Griff.**
(The hymns of Rgd.) - noble offspring, Wil. (Rgd.S.) -
excellent affspring, Mac.D. (S.E.D.) - having a son, Grass
(Rgd.) - glückliche geburt (happy birth), Geld. (D.R.) -
leichte geburt (easy birth).

8. युवं विप्रस्य जरणामुपेयुषः	युवम्। विप्रस्य। जरणाम्। उपऽईयुषः।
पुनः कलेरकृणुतं युवद्वयः।	पुनरिति। कलेः। अकृणुतम्। युवत्। वयः।
युवं वन्दनमृश्यदादुदूपथुर्युवं	युवम्। वन्दनम्। ऋश्यऽदात्। उत्। ऊपथुः। युवम्।
सद्यो विश्पलामेतवे कृथः ।।	सद्यः । विश्पलाम् । एतवे । कृथः ।।

अन्वय - युवं विप्रस्य कलेः जरणां उपेयुषः वयः पुनरिति युवत् अकृणुतम् । युवं
वन्दनम् ऋश्यदात् उदूपथुः युवं विश्पलां सद्यः एतवे कृथः ।

अनुवाद - तुम दोनों ने विप्र कलि की, वृद्धावस्था को प्राप्त आयु को, पुनः युवा बना दिया । तुम दोनों ने वन्दन को कूप से ऊपर उठाया । तुम दोनों ने विश्पला को तुरन्त चलने के लिए ॥योग्य॥ बना दिया ।

टिप्पणी -

उपऽईयुषः - 'को प्राप्त', 'उप' उपसर्ग पूर्वक, 'इण् गतौ' धातु, लिट्, 'क्वसु' प्रत्यय, द्विर्भाव, क्वसु के 'वस्' का सम्प्रसारण से 'उस्', 'इयोयण्' से यणादेश, 'दीर्घ इणः किति' से अभ्यास का दीर्घत्व, 'शासिवसिघसीनां च' से 'उस्' के 'स्' को षत्व । सा० - उपगतवतः । अन्यत्र - वेंकट० - उपगतवतः । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ - पहुँच चुका था । ऋ० सं० - ॥1/113/15॥ - गमनवतीनां पूर्वनिष्पन्नानाम्, ॥1/124/2॥ - गच्छन्तीनाम् अतीतानां यद्वा गमनशीलानाम् । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - was coming nigh, Wil. (Ṛgd.S.) - when approaching, Mac.D. (S.E.D.) - to be approaching, Grass. (Ṛgd.) - verschafftet (to procure).

ऋश्यऽदात् - 'कूप से', 'ऋष्' धातु से 'क्यप्' प्रत्यय करने पर 'ऋश्य' शब्द बना, 'ऋश्य' शब्द पूर्वक 'दा' धातु, का प्रयोग करने पर पञ्चमी एकवचन में 'ऋश्यदात्' रूप निष्पन्न हुआ । सा० - कूपात् । अन्यत्र- वेंकट० - कूपात् । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ - गहरे कुएँ से । Griff.(The hymns of Ṛgd.) - from the pit, Wil. (Ṛgd.S.) - from the well, Mac.D. (S.E.D.) - pit from catching antelopes, Grass. (Ṛgd.) - tiefen Gruft (deep pit), Geld. (D.R.) - grubt (pit). अतः 'कूप' अर्थ सटीक है ।

9. युवं ह रेभं वृषणा गुहा हितमुदैरयतं ममृवांसमश्विना । — युवम् । ह । रेभम् । वृषणा । गुहा । हितम् । उत् । ऐरयतम् । ममृऽवांसम् । अश्विना ।

युवमृबीसमुत तप्तमत्रय | युवम्। ऋबीसम्। उत। तप्तम्। अत्रये ।
ओमन्वन्तं चक्रथुः सप्तवध्रये ।। | ओमन्ऽवन्तम्। चक्रथुः। सप्तऽवध्रये ।।

अन्वय - वृषणा अश्विना । युवं ह गुहा हितं ममृवांसं रेभम् उदैरयतम् । युवं अत्रये तप्तम् ऋबीसम् ओमन्वन्तं चक्रथुः उत सप्तवध्रये ।

अनुवाद - हे कामना सेचक अश्विनों । तुम दोनों ने, गुहा में निहित, मरणासन्न रेभ को ऊपर उठाया । तुम दोनों ने अत्रि के लिए जलते हुए कारागृह को सुखदायक बनाया और सप्तवध्रि के लिए भी ।ऐसी ही सहायता की। ।

10. युवं श्वेतं पेदवेऽश्विनाश्वं | युवम्। श्वेतम्। पेदवे। अश्विना। अश्वम्।
नवभिर्वाजैर्नवती च वाजिनम् । | नवऽभिः।वाजैः।नवती।च।वाजिनम् ।
चर्कृत्यं ददथुर्द्रावयत्सखं | चर्कृत्यम्। ददथुः। द्रवयत् सखम् ।
भगं न नृभ्यो हव्यं मयोभुवम् ।। | भगम्।न।नृऽभ्यः।हव्यम्। मयःऽभुवम् ।।

अन्वय - अश्विना । युवं पेदवे नवभिः नवती च वाजैः वाजिनं, श्वेतं, चर्कृत्यं, द्रवयत्सखं, मयोभुवं, हवयम् अश्वं, नृभ्यः भगं न ददथुः।

अनुवाद - हे अश्विनों । तुम दोनों ने पेदु के लिए, निन्यानबे बलों से बलिष्ठ, श्वेत, अत्यन्त कार्यशील, शत्रुओं के मित्रों को भगाने वाले, सुखदायक, आह्वनीय, अश्व को, मनुष्य के लिए ऐश्वर्य के समान, प्रदान किया ।

टिप्पणी -

द्रवयत्ऽसखम् - 'शत्रुओं के मित्रों को भगाने वाले', 'द्रु गतौ' धातु से भाव अर्थ में 'अप्' प्रत्यय करने पर 'द्रव' शब्द निष्पन्न हुआ । तदनन्तर

द्रव शब्द से 'यत्' प्रत्यय करने पर 'द्रवयत्' रूप निष्पन्न हुआ, 'सखि' शब्द के षष्ठी बहुवचन में 'सखीनाम्' के स्थान पर, छान्दस प्रयोग के कारण, 'सखम्' रूप प्रयुक्त हुआ है । सा० - शत्रुसखीनां द्रावयितारम् । अन्यत्र - वेंकट० - प्रतियोद्धारः सखायः । उद्गीथ - शत्रुसेनानां स्फोटयितारमित्यर्थः । सात्व० ॥श० का सु०भा०॥ - शत्रुओं के मित्रों को भगाने वाले । Griff. (The hymns of Rgd.) - who bore his friend at speed, Wil. (Rgd.S.) - putting to flight the friends (of the foe). Grass. (Rgd.) - rasch Reiter Varwärts trägt (quick rider putting forward the friends), Geld. (D.R.) - Gefährten schnell fortträgt (quickly putting forward to the companions). पेदु से सम्बन्धित पुराकथा को ध्यान में रखते हुए 'द्रवयत्सखं' का अर्थ शत्रुओं के मित्रों अर्थात् सहायकों को भगाना' ही होगा । ग्रिफिथ आदि कतिपय पाश्चात्य विद्वानों ने 'सखम्' का अर्थ केवल 'मित्र' ग्रहण किया है जबकि 'सखम्' शब्द यहां शत्रुओं के सहायक के अर्थ में प्रयुक्त है । अश्विनों के द्वारा प्रदत्त इस अलौकिक अश्व की सहायता से पेदु ने अपने शत्रुओं को परास्त किया था ।

11. न तं राजानावदिते कुतश्चन — न।तम्।राजानौ।अदिते।कुतः।चन ।

नांहो अश्नोति दुरितं नकिर्भयम्। न।अंहः।अश्नोति।दुःऽइतम्।न।किः।भयम्।

यमश्विना सुहवा रुद्रवर्तनी — यम्।अश्विना।सुऽहवा।रुद्रवर्तनीइति रुद्र - वर्तनी ।

पुरोरथं कृणुथः पत्न्या सह ।। — पुरःऽरथम्। कृणुथः। पत्न्या। सह ।।

अन्वय - राजानौ, अदिते, सुहवा, रुद्रवर्तनी । न तं कुतश्चन अंहः, दुरितं न किः भयम् अश्नोति, यम् अश्विना पत्न्या सह पुरोरथं कृणुथः।

अनुवाद - हे ईश्वरद्वय, अदीन, भलीभाँति आह्वनीय, प्रदीप्त मार्ग से गमन करने वाले। उसे कहीं से भी न पाप, न दुर्गति अथवा न डर ही व्याप्त होता है जिसे हे अश्विनों! पत्नी के साथ तुम रथ के अग्रभाग में कर देते हो अथवा जिसके रथ को तुम आगे कर देते हो।

टिप्पणी -

दुःइतम् - 'दुर्गति को', 'दुः' उपसर्ग पूर्वक, 'इण् गतौ' धातु, 'क्त' प्रत्यय, द्वितीया एकवचन। सा० - दुर्गतिरपि। अन्यत्र - ऋ० सं० ॥1/23/22॥ - अज्ञान। ॥1/125/7॥ - दुष्टं यथा भवति तथा प्राप्तं दुःखम्। ॥2/23/5॥ - पापम्। ॥10/126/1॥ - दुर्गमनम्। वेंकट० - दुरितम्। उद्‌गीथ - दुरितम्। सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ - बुराई। Griff. (The hymns of Rgd.) - distress, Wil. (Rgd.S.) - difficulty, Mac.D. (D.R.) - distress. Grass. (Rgd.), Geld. (D.R.) - Gefahr (danger or risk). व्युत्पत्ति के अनुसार 'दुरितम्' का 'दुर्गति' अर्थ ही उचित है।

12. आ तेन यातं मनसो जवीयसा	आ। तेन। यातम्। मनसः। जवीयसा।
रथं यं वामृभवश्चक्रुरश्विना।	रथम्। यम्। वाम्। ऋभवः। चक्रुः। अश्विना।
यस्य योगे दुहिता जायते दिव	यस्य। योगे। दुहिता। जायते। दिवः।
उभे अहनी सुदिने विवस्वतः॥	उभे इति। अहनीइति। सुदिनेइति सुऽदिने। विवस्वतः॥

अन्वय - अश्विना! यं रथम् ऋभवः वां चक्रुः, यस्य योगे दिवः दुहिता जायते, विवस्वतः उभे अहनी सुदिने, तेन मनसः जवीयसा आ यातम्।

अनुवाद - हे अश्विनों । जो रथ ऋभुओं ने तुम दोनों के लिए बनाया था, जिसके जुड़ने से उषा प्रकट होती है, विवस्वान् (सूर्य) से, दोनों दिन और रात्रि शुभ होते हैं, उस मन से भी तीव्रगामी रथ के द्वारा, इधर आओ ।

टिप्पणी -

ऋभवः - 'ऋभुओं ने', 'ऋत्' पूर्वक, 'भू' धातु, पुल्लिंग, प्रथमा, बहुवचन । ऋभु अङ्गिरा के पुत्र थे । ऋभु वेदों में सदा बहुवचनान्त ही प्रयुक्त होते हैं । यास्काचार्य ने ऋभु की व्युत्पत्ति दो प्रकार से की है - 'ऋभव उरु भान्तीति वा ऋतेन भान्तीतिवा, ऋतेन भवन्तीति वा' (निरु० 11/1/10) अर्थात् ये बहुत चमकते हैं इसलिए 'उरु' पूर्वक, 'भा' धातु से ऋभु बना अथवा ये यज्ञ से दीप्त होते हैं या यज्ञ से युक्त होते हैं इसलिए ऋत् पूर्वक 'भू' धातु से ऋभु शब्द बनेगा । S.V. (The ety. of Yāska, Pg. 96, 106) - 'skillful' in plural the name stands for three celestial artisans, is traced to ऋत +√भू, lit. 'that who comes into being through ṛta', But Böhtlink, Roth.R. (St. Pertersburg Sanskrit Wörterbuch) and Grassmann (Wörterbuch zum Rigveda) etc. have traced it to √रभ्. ऋभु is also traced to उरु +√भा, lit. 'that which shines a great deal'. यास्क तथा सिद्धेश्वर वर्मा दोनों ने ऋभु की उत्पत्ति 'उरु' पूर्वक 'भा' धातु से बताई है परन्तु उरु का ऋ में कैसे परिवर्तन हुआ, इस ओर कोई संकेत नहीं किया है । न ही ऐसे परिवर्तन का कोई प्रमाण हमें प्राचीन आर्य भाषा में मिलता है । इसलिए ऋत् पूर्वक भू धातु से ही ऋभु की उत्पत्ति को मानना अधिक तर्कसंगत प्रतीत होता है । सभी भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों ने 'ऋभवः' को देवता विशेष के अर्थ में ग्रहण किया है ।

विवस्वतः - 'विवस्वान् (सूर्य) से', 'वि' उपसर्ग पूर्वक 'वस् कान्तौ' अथवा 'वस् निवासे' धातु से भाव अर्थ में 'क्विप्' प्रत्यय, 'तदस्यास्ति०'

से 'मतुप्' प्रत्यय, 'मादुपधायाः' से वत्व । पुल्लिंग, पञ्चमी, एकवचन । सा० - भास्करात् । अन्यत्र - ऋ० सं० ।1/44/1। - विशिष्टनिवासोपेतं, निवासनं विवः तद्युक्तं, √वस् निवासे, विपूर्वात् अन्तर्भावितण्यर्थात् संपदादि-लक्षणो भावे क्विप्, 'तदस्यास्ति०' इति मतुप् 'मादुपधायाः' इति वत्वम्, 'तसौ मत्वर्थे' इति भत्वेन पदत्वाभावात् रुत्वाद्यभावः, वृषादित्वादाद्युदात्त-त्वम् । यास्क - 'विवस्वान् विवासनवान् ।निरु० 7/7। । वेंकट०, उद्गीथ-विवस्वतः । सात्व० ।ऋ० का सु०भा०। - विवस्वान् । Griff. (The hymns of Rgd.), Wil. (Rgd.S.), Mac.D. (S.E.D.), Grass. (Rgd.), Geld. (D.R.) - vivasvat. S.V. (The ety. of Yāska Pg. 58, 172) - 'The Sun', is traced to वासम् (with वि). As विवस्वत् 'shining forth' being derived from वि + √वस् 'to shine' present विवस्ते 'shines'. So Yāska takes it as a separable compound, having the quality of विवसन - विवस्वत् आदित्यात्, विवस्वान् विवासनवान् M.W. (S.E.D.) - an epithet of Āditya, V.S. Rajavade (Yāskas Nirukta : Text and exegetical notes, Pg. 582) - dispeller of darkness. अधिकांश भाष्य-कारों ने विवस्वान् को सूर्य ही माना है । यह सूर्य की एक उपाधि है । इस दृष्टि से 'वस् कान्तौ' धातु से विवस्वान् की उत्पत्ति को स्वीकारना अधिक तर्कसंगत होगा ।

13. ता वर्तिर्यातं जयुषा वि पर्वत-	ता । वर्तिः । यातम् । जयुषा । वि । पर्वतम् ।
मपिन्वतं शयवे धेनुमश्विना ।	अपिन्वतम् । शयवे । धेनुम् । अश्विना ।
वृकस्य चिद्वर्तिकामन्तरास्याद्युवं	वृकस्य । चित् । वर्तिकाम् । अन्तः । आस्यात् । युवम् ।
शचीभिर्ग्रसिताममुञ्चतम् ।।	शचीभिः । ग्रसिताम् । अमुञ्चतम् ।।

अन्वय – अश्विना । पर्वतं वर्तिः ता जयुषा वि यातम् । शयवे धेनुम् अपिन्वतम्।
युवं शचीभिः ग्रसितां वर्तिकां वृकस्य आस्यात् अन्तः चित् अमुञ्चतम् ।

अनुवाद – हे अश्विनों । पर्वत के मार्ग को तुम दोनों (उस) जयशील (रथ) के
द्वारा पार कर जाते हो, शयु के लिए गाय को दुग्ध से परिपूर्ण
किया । तुम दोनों ने अपने कर्मों के द्वारा निगली हुई वर्तिका (पक्षी विशेष)
को वृक के मुख से छुड़ाया था ।

14. एतं वां स्तोममश्विनावकर्मातक्षाम एतम्।वाम्।स्तोमम्।अश्विनौ।अकर्म।अतक्षाम।
भृगवो न रथम् । भृगवः । न । रथम् ।
न्यमृक्षाम योषणां न मर्ये नि। अमृक्षाम। योषणाम्। न। मर्ये ।
नित्यं न सूनुं तनयं दधानाः।। नित्यम्।न।सूनुम्।तनयम्।दधानाः ।।

अन्वय – अश्विनों । भृगवः रथं न वाम् एतं स्तोत्रम् अकर्म अतक्षाम । तनयं सूनुं
न नित्यं दधानाः, मर्ये योषणां न नि अमृक्षाम ।

अनुवाद – हे अश्विनों । भृगुओं के द्वारा निर्मित तुम्हारे रथ के समान, तुम
दोनों के लिए यह स्तोत्र बनाया है, उसे संपादित किया है ।
यज्ञादि कर्मों का विस्तार करने वाले, औरस पुत्र की भाँति धारण किया तथा
मनुष्यों में पत्नी की भाँति उसे पूर्णतया सुसज्जित अथवा सुसंस्कृत कर दिया है ।

टिप्पणी –

अमृक्षाम – 'सुसज्जित अथवा सुसंस्कृत कर दिया है', 'मृक्ष' धातु, लङ् लकार,
उत्तम पुरुष, बहुवचन । क्रियापद होने से निघात । सा० – संस्कृत-
वन्तः । अन्यत्र – वेंकट० – मृष्टवन्तः । उद्गीथ – संस्कृतवन्तः । सात्व०

ऋ0 का सु0भा0 - निर्दोष कर चुके हैं । Griff. (The hymns of Ṛgd.), Wil. (Ṛgd.S.) - we have decked (decorated), Grass. (Ṛgd.)- ausgeschmückt (ornamented). भारतीय भाष्यकारों ने 'सुसंस्कृत करना' अर्थ ग्रहण किया है तथा पाश्चात्य विद्वानों ने 'सुसज्जित' करना'। अतः दोनों ही अर्थ प्रसंगानुसार उचित प्रतीत होते हैं ।

——————::0::——————

10. 143. 1-6

१. त्यं चिदत्रिमृतजुर	त्यम् । चित् । अत्रिम् । ऋतऽजुरम् ।
मर्थमश्वं न यातवे ।	अर्थम् । अश्वम् । न । यातवे ।
कक्षीवन्तं यदी पुना	कक्षीवन्तम् । यदि । पुनरिति ।
रथं न कृणुथो नवम् ।।	रथम् । न । कृणुथः । नवम् ।।

अन्वय - त्यं चित् ऋतजुरम् अत्रिम् अर्थम् अश्वं न यातवे । यदि कक्षीवन्तं पुनरिति नवं रथं न कृणुथः ।

अनुवाद - सदा यज्ञों अथवा स्तोत्रों से परिचरण करने वाले अथवा असुरों के उपद्रव से क्षीण हुए अत्रि को, लक्ष्य तक, घोड़े के समान वेग से जाने के लिए समर्थ बनाया । वैसे ही, कक्षीवान् ऋषि को पुनः रथ [को नया बनाने] के समान युवा बना दिया ।

टिप्पणी -

ऋतऽजुरम् - 'यज्ञों से स्तुति करने वाले अथवा असुरों के उपद्रव से क्षीण', 'ऋ गतौ' धातु से 'क्त' प्रत्यय करने पर ऋत शब्द निष्पन्न हुआ । 'ऋत' शब्द पूर्वक 'जु स्तुतौ' धातु से 'क्विप्' प्रत्यय तथा 'बहुलं छन्दसि' से उत्व होने पर द्वितीया एकवचन में 'जुरम्' रूप निष्पन्न हुआ । अथवा 'ऋत' शब्द पूर्वक, 'ज्वर रोगे' धातु से 'ज्वरत्वर०' आदि सूत्र से वकार की उपधा के स्थान पर ऊठ् होने पर अथवा 'जूरी हिंसागत्योः' धातु से 'क्विप्' प्रत्यय तथा 'जूरी' के दीर्घ ऊकार को छान्दस ह्रस्व होने पर द्वितीया एकवचन में 'ऋतजुरम्' रूप निष्पन्न हुआ । सा० - ऋतं स्तोत्रं यज्ञो वा । तेन जीर्यन्तम् । सर्वदा युवयोः परिचरणशील-मित्यर्थः यद्वा प्राप्तेनासुरकृतोपद्रवेण । अन्यत्र - वेंकट० - सत्येन जीर्णं कृतम् अभि-लषितम् । सात्व० [ऋ० का सु०भा०] - असुरों के उपद्रव से क्षीण । Cf.ff.

(The hymns of Ṛgd.) - worn with eld, Wil. (Ṛgd.S.) - diligent in worship, दो अर्थों में से पहला अर्थ प्रसंगानुसार अधिक तर्कसंगत प्रतीत हो रहा है । अधिकांश भाष्यकारों ने भी प्रथम अर्थ को ही ग्रहण किया है ।

यातवे - 'जाने के लिए', 'या प्रापणे' धातु से 'तुमर्थे सेसेन्' (पा० सू० 3/4/9) के द्वारा 'तवेङ्' प्रत्यय, चतुर्थी एकवचन । सा० - गन्तुम् । अन्यत्र - वेंकट० - यातुम् । सात्व० (ऋ० का सु०भा०) - जाने के लिए । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - to win, Wil. (Ṛgd.S.) - to run. Mac.D. (S.E.D.) - to travel. Lan. (A.S.R.) - to proceed, Grass. (Ṛgd.) - gehn (to walk).

कृणुथः - 'बना दिया', 'कृवि हिंसाकरणयोश्च' धातु, इदित्वात् नुम्, लङ् के अर्थ में व्यत्यय से लट्, 'धिन्विकृण्वत्योरच्च' से 'उ' प्रत्यय ।, उसके संनियोग से आकारान्तादेश, स्थानिवद्भाव से लघूपधगुणाभाव, 'सति (पतञ्जलि) शिष्टोऽपि विकरणस्वरो लसार्वधातुकस्वरं न बाधते,' (महाभाष्य, 6/1/158/11) से तिङ् को स्वर के समान निर्देश, 'निपातैर्यद्यदिहन्त:' से निघात का निषेध। सा० - अकृणुतम्, अकुरुतम् । अन्यत्र - वेंकट० - कुरुतम् । सात्व० (ऋ० का सु० भा०) - बनाया । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - restored, Wil. (Ṛgd.S.) - renewed. प्रसंगानुसार लङ् लकार का प्रयोग होना चाहिये था परन्तु व्यत्यय से लट् का प्रयोग हुआ है । यह लट् लकार के मध्यम पुरुष द्विवचन का रूप है ।

2. त्यं चिदश्वं न वाजिन-	त्यम् । चित् । अश्वम् । न । वाजिनम् ।
मरेणवो यमत्नत ।	अरेणवः । यम् । अत्नत ।
दृळ्हं ग्रन्थिं न वि	दृळ्हम् । ग्रन्थिम् । न । वि । स्यतम् ।
ष्यतमत्रिं यविष्ठमा रजः ॥	अत्रिम् । यविष्ठम् । आ । रजः ॥

अन्वय - अरेणवः, यं वाजिनम् अश्वं न अत्नत् , त्यं चित् अत्रिं दृळ्हं ग्रन्थिं न आ विष्यतं रजः यविष्ठम् ।

अनुवाद - अहिंसक प्रबल असुरों ने, जिसे वेगवान अश्व के समान बाँध रखा था, उस अत्रि को दृढ़ ग्रन्थि के समान मुक्त कर पृथ्वी पर युवा बनाकर ले आये ।

टिप्पणी -

अत्नत् - 'बाँध रखा था', 'तन्' धातु, लुङ् लकार 'तनिपत्योश्छान्दसि' से उपधालोप, प्रथम पुरुष, एकवचन । सा० - अतन्वत, बद्धमकुर्वत । अन्यत्र - वेंकट० - ततवन्तः, बबन्धुः । सात्व० ऋ० का सु०भा० - बाँध रखा था । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - firm - tied. Wil. (Ṛgd.S.) - bound.

विष्यतम् - 'मुक्त कर दिया', 'वि' उपसर्ग पूर्वक, 'स्यत' धातु, 'षोऽन्तकर्मणि' से लङ् 'ओतः श्यनि' से उकार लोप, छान्दस प्रयोग के कारण अट् का अभाव, मध्यम पुरुष, द्विवचन । सा० - मोचितवन्तावित्यर्थः, यद्वा विमुञ्चतम् । अन्यत्र - 10/22/4 - स्यन्तौ गच्छन्तौ । वेंकट० - वि मुञ्चतम् । सात्व० ऋ० का सु०भा० - बन्धनमुक्त किया । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - loosed. Wil. (Ṛgd.S.) - unloosed. अतः 'मुक्त करना' अर्थ ही उचित है ।

यविष्ठम् - 'युवा', 'यु मिश्रणामिश्रणयोः' धातु से 'अच्' प्रत्यय करने पर 'यव' शब्द बना पुनः 'यव' से 'अतिशायने तमबिष्ठनौ' पा० सू० 5/3/55 से 'इष्ठन्' प्रत्यय, 'स्थूलदूर०' पा० सू० 6/4/156 से यणादि पर का लोप और पूर्व का गुण । सा० - युवतम् । अन्यत्र - ऋ० सं० 1/22/10 - युवतम् , अतिशयेन युवा, 2/6/6, 5/1/10, 4/2/10, 6/15/14, 7/1/3, 10/1/7 - युवतम् , 3/15/3 - युवतम् , युवशब्दादतिशयने इष्ठन्प्रत्ययः,

'स्थूलदूरयुव०' इत्यादिना यणादेः परस्य लोपः पूर्वस्य च गुणः, आमन्त्रित्वान्निघातः । 18/23/28 । - पुनः पुनर्जायमानत्वेन युवतम् । वेंकट० - युवतमम् । सात्व० ।श० का सा०भा०। - तरुण । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - newly born, Wil. (Ṛgd.S.) - youngest born. Mac. D. (S.E.D.) - youngest. Lan. (A.S.R.) - youngest. Grass. (Ṛgd.) - jugendfrisch (young and lively), Geld. (D.R.) - jüngsten (youth).

3. नरा दंसिष्ठावत्रये शुभ्रा नरा । दंसिष्ठौ । अत्रये । शुभ्रा ।

सिषासतं धियः । सिसासतम् । धियः ।

अथा हि वां दिवो नरा अथ । हि । वाम् । दिवः । नरा ।

पुनःस्तोमो न विशसे ॥ पुनरिति । स्तोमः । न । विऽशसे ॥

अन्वय - दंसिष्ठौ शुभ्रा नरा ! अत्रये धियः सिसासतम् । नरा ! अथ हि दिवः स्तोमः न वां पुनरिति विशसे ।

अनुवाद - हे दर्शनीय, शोभन दीप्ति युक्त, नेतृत्व करने वालों! अत्रि के लिए उत्तम बुद्धि को देने की इच्छा की । हे नेतृत्व करने वालों! पश्चात् दिव्य स्तोत्र के समान, वह तुम दोनों की विशेष प्रशंसा करने लगा ।

टिप्पणी -

सिसासतम् - 'देने की इच्छा की', 'षणु दाने' अथवा 'वन षण संभक्तौ' धातु, सन् प्रत्यय, 'सनीवन्तर्ध०' से विकल्प से इटभाव होने पर, 'जनसनखनाम्०' से आत्व, 'आमन्त्रितं पूर्वमविद्यमानवत्' से अविद्यमानवत्व, और पदादिपरत्व के द्वारा पादादित्व से 'तिङ् ङतिङः' सूत्र के द्वारा

निघाताभाव, सन् के नित् होने से आद्युदात्त । सा० - दातुमिच्छतं, संभक्तुमिच्छतम् । अन्यत्र - वेंकट० - सम्भक्तुम् इच्छतम् । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥- दिया । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - showed , Wil. (Ṛgd.S.) - deign to accept. Mac.D. (S.E.D.) - ready to give, Geld. (D.R.) - wünschet (wished or desired).

विऽशसे - 'विशेष प्रशंसा करने लगा', 'वि' उपसर्ग पूर्वक, 'शंस् स्तुतौ' धातु से भाव अर्थ में 'घञ्' प्रत्यय, ञित्स्वर । सा० - विशेषेण शंसितुं प्रभवतीति शेषः । अन्यत्र - ऋ० सं० ॥3/16/4॥ - शंसनं शंसः शस्त्रम् । भावे घञ् । ञित्स्वरः । ॥10/73/2॥ - स्तोत्रेण ॥10/7/1॥ - शंसनीयैः । वेंकट० - विशसनाय भवति । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ - विशेष प्रशंसा करने लगा । Griff. (The hymns of Ṛgd.) - cease, Wil. (Ṛgd.S.)- to be sung. Mac.D. (S.E.D.) - sung, Lan. (A.S.R.) - solemn utterance, Grass. (Ṛgd.), Geld. (D.R.) - Lob (to be praised).

4. चिते तद्वां सुराधसा — चित । तत् । वाम् । सुऽराधसा ।

रातिः सुमतिरश्विना । — रातिः । सुऽमतिः । अश्विना ।

आ यन्नः सदने — आ । यत् । नः । सदने ।

पृथौ समने पर्षथो नरा ॥ — पृथौ । समने । पर्षथः । नरा ॥

अन्वय - सुराधसा अश्विना । रातिः सुमतिः तत् वां चिते नरा । यत् पृथौ समने सदने नः आ पर्षथः ।

अनुवाद - हे शोभनदानयुक्त अश्विनों ! शोभन स्तुति और दान तुम दोनों के ध्यानाकर्षण के लिए हैं । हे नेतृत्व कारक अश्विनों ! ॥तुम दोनों॥ विस्तृत यज्ञगृह में हमारी सुरक्षा करते हो ।

टिप्पणी -

सुऽराधसा - 'शोभन दान युक्त', 'सु' उपसर्ग पूर्वक 'राध साध संसिद्धौ' धातु, 'करणे असुन्' प्रत्यय, राध्नोति अनेन इति राधः धनम् , शोभनं राधः येषां ते, 'बहुव्रीहौपूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वं' से पूर्व पद पर उदात्त प्राप्त होने पर 'नञ्सुभ्याम्' से बाध होकर उत्तर पदान्तोदात्त्व प्राप्त हुआ, उसका बाध 'सोर्मनसी अलोमोषसी' ॥पा०सू० 6/2/177॥ से होने पर निघात हो गया । सम्बोधन, द्विवचन । सा० - शोभनदानौ । अन्यत्र - ऋ० सं० ॥1/23/6॥ - प्रभूतधनयुक्तान् , ॥3/53/13॥ - शोभनधनोपेतान् , आद्युदात्तं द्व्यच्छन्दसि, इत्युत्तरपदाद्युदात्तत्वम् , ॥8/46/24॥ - शोभनधनस्य, यतस्तस्य धनं दानाय कल्पितमतः स सुराधाः, ॥1/100/17॥ - संराधकं त्वत्प्रीतिहेतु, √राध साध संसिद्धौ, राध्नोति समृद्धो भवत्यनेनेति राधः, करणेऽसुन् , ॥10/143/4॥ - शोभनदानौ । वेंकट० - सुधनौ । सात्व० - ॥ऋ० का सु०भा०॥ - उत्तम दान देने वाले । Griff. (The hymns of Rgd.) - Bounteous Wil. (Rgd.S.) - Munificent. Mac.D. (S.E.D.) - bountiful. Grass. (Rgd.) - schöngebende (beautiful giver). Geld.(D.R.) - wohltätigen (charitable). अतः 'शोभन दानयुक्त' अर्थ ही उचित है ।

पर्षथः - 'सुरक्षा करते हो', 'पॄ पालनपूरणयोः' धातु लट् लकार 'तिङ्बहुलम्' से तिप् , उससे शप् , मध्यम पुरुष, द्विवचन । सा० - आपूरयथः अभितो रक्षथो वा । अन्यत्र - वेंकट० - पर्षथः । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥- सुरक्षा करते हो । Griff. (The hymns of Rgd.) - may bring us

safe, Wil. (Rgd.S.) - protect us. Grass. (Rgd.) - unterstützt (to assist us), Geld. (D.R.) - helfen (help us.)

अतः 'सुरक्षा करना' अर्थ ही सटीक है ।

चिते - 'ध्यानाकर्षण के लिए', 'चिती संज्ञाने' धातु, भाव अर्थ में 'क्विप्' प्रत्यय, चतुर्थीएकवचन । 'सावेकाच०' से विभक्ति पर उदात्त । सा०-ज्ञानाय भवति । अन्यत्र - वेंकट० - प्रज्ञानाय आसीत । सात्व० ऋ० का सु० भा०। - उत्तम ज्ञान का सूचक । Griff. (The hymns of Rgd.) - claims your notice, Wil. (Rgd.S.) - for your recognition. Mac.D. (S.E.D.) - your notice, Lan. (A.S.R.) - notice, Grass. (Rgd.) - zeigt (to point out or to show), Geld. (D.R.) - marken (to know).

5. युवं भुज्युं समुद्र आ	युवम् । भुज्युम् । समुद्रे । आ ।
रजसः पार इंङ्खितम्	रजसः । पारे । इंङ्खितम् ।
यातमच्छा पतत्रिभिर्नासत्या	यातम् । अच्छ । पतत्रिऽभिः ।
सातये कृतम् ॥	नासत्या । सातये । कृतम् ॥

अन्वय - नासत्या युवं समुद्रे रजसः पारे इंङ्खितं भुज्युम् अच्छ पतत्रिभिः आ यातं, सातये कृतम् ।

अनुवाद - हे सत्यपालक अश्विनों ! तुम दोनों ने समुद्र में लहरों के किनारे, डोलायमान भुज्यु के समीप पंखों से युक्त नावों के द्वारा जाकर, स्तुति के लिए, रक्षा की ।

टिप्पणी -

ईङ्खितम् - 'डोलायमान', 'ईङ्ख गतौ' धातु, से 'शतृ' प्रत्यय, द्वितीया एकवचन। भुज्युम् का विशेषण। सा० - डोलायितम्। अन्यत्र - ऋ० सं० ॥1/19/7॥ - चालयन्ति, ॥9/35/2॥ - ईङ्खयतिर्गतिकर्मा, उदकप्रेरक तथा, ॥9/52/3॥ - प्रापय, ॥10/153/1॥ - गच्छन्त्यः। निघ० ॥2/14॥ - ईङ्खतेरिति द्वाविंशशतं गतिकर्माणः। वेंकट० - भयेन कम्पमानम्। सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ - डूबने वाले ॥भुज्यु॥ को। Griff. (The hymns of Rgd.) - tossed, Wil. (Rgd.S.) - perturbed, Grass. (Rgd.) - geschaukelt (swing), Geld. (D.K.) - schaukelte (swing), Mac.D. (S.E.D.) - swing oneself. अतः 'डोलायमान' अर्थ ही उचित है।

6. आ वां सुम्नैः शंयूइव — आ। वाम्। सुम्नैः। शंयूऽवेति शंयूऽइव।
मंहिष्ठा विश्ववेदसा। — मंहिष्ठा। विश्वऽवेदसा।
समस्मे भूषतं नरोत्सं — सम्।अस्मे इति।भूषतम्।नरा।उत्सम्।
न पिप्युषीरिषः॥ — न। पिप्युषीः। इषः॥

अन्वय - विश्ववेदसा! शंयू इव मंहिष्ठा वां सुम्नैः आ। नरा! अस्मे पिप्युषी इषः उत्सं न, सं भूषतम्।

अनुवाद - हे सर्वज्ञों! सुखयुक्त राजा के समान पूजनीय तुम दोनों समस्त सुखसाधनों के साथ आओ। हे नेतृत्व कारक अश्विनों! कूप के समान अथवा गौओं के दुग्धाशय के समान हमें पुष्ट करने वाले अन्न से अलंकृत कर दो।

टिप्पणी -

मंहिष्ठा - 'पूजनीय', 'मंह पूजायाम्' अथवा 'महि वृद्धौ' धातु, 'तुश्छन्दसि ॥पा० सू० 5/3/59॥ से 'इष्ठन्' प्रत्यय, 'इष्ठन्' के नित् होने से

आद्युदात्, प्रथमा, एकवचन । सा० - दातृतमावतिशयेन पूज्यौ वा सन्तौ । अन्यत्र - ऋ० सं० ॥1/30/1॥ - अतिशयेन प्रवृद्धम्, ॥1/130/1॥ - मंहनीयंत्यम्, ॥5/39/4॥ - अतिशयेन पूज्यम्, ॥6/44/4॥ - दातृतमम्, ॥9/1/3॥ - दातृतमश्च भव, सर्वदातृत्वमत्रोच्यत इत्यपुनरुक्तिः । ॥10/172/2॥ - धनानां दातृतमः । वेंकट० - दातृतमौ । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ - सम्मान योग्य । Griff. (The hymns of Rgd.) - liberal. Wil. (Rgd.S.) - most adorable. Mac.D. (S.E.D.) - bestowing most abundantly. Grass. (Rgd.) - heilbringend (salutary). इस शब्द की उत्पत्ति, दो धातुओं से स्वीकार की गई है । इसके आधार पर कतिपय भाष्यकारों ने 'पूजनीय' तथा कतिपय भाष्यकारों ने 'धन प्रदाता' अर्थ ग्रहण किया है । ये दोनों ही अर्थ प्रसंगानुसार संगत है ।

उत्सम् न - 'कूप के समान अथवा गौओं के दुग्धाशय के समान', 'उन्दी क्लेदने' धातु अथवा 'उत्' उपसर्ग पूर्वक, 'सृ गतौ' धातु से 'अप्' प्रत्यय करने पर 'उत्सर' से 'उत्स' शब्द निष्पन्न हुआ । नपुंसकलिंग, प्रथमा, एकवचन । सा०- गोस्थ इवा यथा बहुभिः पयोभिः ऊधः अलंकृतं सत् । अन्यत्र - निघ० ॥2/23॥ - उत्सरिति चतुर्दश कूपनामानि । निरु० ॥10/1/4॥ - 'उत्स उत्सरणाद्वोत्सदनाद्वोत्स्यन्दनाद्वोनत्तेर्वा' अर्थात् मेघ को उत्स कहते हैं क्योंकि वह ऊपर अन्तरिक्ष में गति करता है, उत् पूर्वक 'सृ' धातु और 'अप्' प्रत्यय करने से उत्सर ही उत्स हो गया यह मेघ ऊपर ही ॥उत्सनात्॥ तितर-बितर हो जाता है या ॥उत्स्यन्दनात्॥ ऊपर से ही टपकता है अथवा यह आर्द्र करता है इसलिए 'उन्दी' क्लेदने से निष्पन्न हुआ । वेंकट० - कूपम् इव । सात्व० ॥ऋ० का सु०भा०॥ - हौज को । Griff. (The hymns of Rgd.) - like freshfull waters to a well. Wil. (Rgd.S.) - as a (cow's) udder. Mac.D. (S.E.D.) well. Geld. (D.R.) - Brunnen (well). S.V. (The ety. of Yaska Pg.No. 13, 42, 111, 163) - 'a well' or 'fountain'. Monior William takes 'उत्स' to beanon compound word, deriving it from √उद् 'to wet'

'and citing Uṇādi (III.68) for this derivation. V.K. Rajavade (Translation of Nirukta into Marathi, Pg. 760) – उन्नयनात्, उत्सः = उन्नः = उन्नीयमानः, (carried upword in the sky' or उद् = उदक, न = नयति, 'a cloud' is called 'उन्न' because 'it brings water'. S.V. (The ety. of Yāska, Pg. 163) – Yaska has effered several other alternative derivations such as < √उद् + √सु, उद् + √स्यन्द्, Sāyaṇa advances in various passages widely different derivations, e.g. उद् + √तु in Ṛgd. 9/69/6, उद् + √सु in Ṛgd. 1/64/6, उद् + √स्नु in Ṛgd. 1/121/8, उद् + √सिच् in Ṛgd. 11/24/4, उद् + √स्यन्द्. निरुक्तकार यास्क ने 'उत्स' का अर्थ मेघ ग्रहण किया है। यह अर्थ प्रसंगानुसार संगत नहीं है। विभिन्न व्युत्पत्तियों में से 'उन्दी क्लेदने' धातु से ही 'उत्स' शब्द की उत्पत्ति को स्वीकारना अधिक तर्कसंगत प्रतीत होता है क्योंकि कूप सदा जल से परिपूर्ण रहने से आर्द्र रहता है।

पिप्युषीः – 'पुष्ट करने वाले', 'प्यायी वृद्धौ' धातु, लिट् तथा 'क्वसु' प्रत्यय, 'लिड्यङोश्च' से पीभाव, ङत्, 'वा छन्दसि' से पूर्वसवर्णदीर्घत्व। सा० – प्रवृद्धानि। अन्यत्र – वेंकट० – पूरयन्त्यः। सात्व० ऋ० का सु०भा० – पुष्ट करने वाले। Griff. (The hymns of Ṛgd.) – bringing weal, Wil. (Ṛgd.S.) – abundant. पिप्युषीः का अर्थ 'पुष्ट करने वाला' या 'वर्धित करने वाला' ही उचित है। यह 'इषः' के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है।

---:o:---

उपसंहार

देवशास्त्रीय अश्विन् सूक्तों का आलोचनात्मक अध्ययन करने पर यह स्पष्ट हो गया कि दिव्य भिषक् के रूप में ख्यात इन देवयुग्मों का वैदिक देवशास्त्र में कितना महत्वपूर्ण स्थान है । आह्वानों की आवृत्ति के आधार पर ऋग्वेद में इन्द्र और अग्नि के पश्चात् इन्हीं देवयुगल का स्थान है । यास्क के त्रिस्तरीय वर्गीकरण में अश्विनद्वय की गणना द्युस्थानीय देवताओं में की गई है । ब्लूमफील्ड के पंचधा वर्गीकरण में इन्हें अपारदर्शी अथवा अस्पष्ट देवताओं की कोटि में तथा उर्जेनर के त्रिधा वर्गीकरण में इन्हें विशेष देवताओं की कोटि में रखा जा सकता है ।

अश्विनों से सम्बन्धित देवशास्त्रीय पुराकथाओं (Mythological Legends) की संख्या अन्य सभी देवताओं से सम्बन्धित कथाओं से कहीं अधिक है । अपनी रोगोपशामक शक्तियों के द्वारा व्याधिग्रस्त मानवों को जीवनदान देने वाले दिव्य वैद्य के रूप में इनकी प्रसिद्धि सम्पूर्ण वैदिक देवशास्त्र में देखी जाती है । अश्विनों के स्वरूप के इस पक्ष का विकास अधिक देखा जाता है । साथ ही उन देवशास्त्रीय पुराकथाओं का परवर्तीकालीन साहित्य में अधिक प्रस्फुटन हुआ, जिनमें अश्विनों के विभिन्न उपचारजन्य कृत्य वर्णित हैं। किन्तु उनके देवशास्त्रीय स्वरूप के अध्ययन से एक कौतूहलपूर्ण तथ्य उभरकर सामने आया है, वह यह कि संहिता काल में अश्विनों की देव समाज में, दिव्य वैद्य के रूप में जो प्रतिष्ठा थी, उस प्रतिष्ठा में ब्राह्मणकालीन समाज में निरन्तर ह्रास होने लगा था, जिसे अश्विनी ने अपने प्रयासों के द्वारा पुनः प्राप्त किया था । पीड़ित जनों का उद्धार करने वाले सहायक देवता के साथ ही अपने स्तोताओं को दान देने के कारण उदार दाता के रूप में भी अश्विनों का स्वरूप, विभिन्न पुराकथाओं के माध्यम से वैदिक देवशास्त्र में प्रस्फुटित हुआ है । परन्तु केवल ऋग्वेद के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं इन कथाओं का उल्लेख नहीं मिलता है । सम्भवतः उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा में ह्रास हो जाने के कारण उन्हें इतना महत्व ही नहीं दिया गया, जिससे उनके चामत्कारिक कृत्यों का

उल्लेख करना आवश्यक हो जाता । यह भी हो सकता है कि ये चामत्कारिक घटनायें सत्य पर आधारित थीं । अतः उनका परवर्ती साहित्य में मनमाना विकास न हो सका ।

अश्विनों का प्राकृतिक स्वरूप अत्यन्त अस्पष्ट है । ऋग्वेद तथा परवर्ती वैदिक साहित्य में उपलब्ध तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अश्विनद्वय, किसी न किसी रूप में प्रकाश से सम्बद्ध देवता है । कतिपय पाश्चात्य विद्वानों ने इनके प्राकृतिक स्वरूप की व्याख्या भोर के तारों के रूप में की है । ऐसा प्रतीत होता है कि कालान्तर में अश्विनों ने अपने प्राकृतिक स्वरूप को खोकर एक अलौकिक स्वरूप प्राप्त कर लिया था । अपने अलौकिक स्वरूप में ये देवयुगल प्राण और अपान के रूप में मानव मात्र में जीवनी शक्ति का संचार करने वाले, प्रगति के देवता माने गये हैं ।

चतुर्थ अध्याय के अन्तर्गत देवशास्त्र सम्बन्धी सूक्तों में संकलित मन्त्रों का पदपाठ अन्वय और विधिवत् अनुवाद किया गया है । तदनन्तर मन्त्रों में प्रयुक्त शब्द विशेष के लिए, विभिन्न भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों के द्वारा गृहीत अर्थ को उद्धृत कर, उनकी आलोचना की गई है । आलोचना के माध्यम से यह पाया गया कि कतिपय अनेकार्थक अथवा संदिग्ध व्युत्पत्ति वाले शब्दों को ।जिनकी व्युत्पत्ति का निर्धारण निश्चित रूप से नहीं हो सकता है। छोड़कर, शेष सभी शब्दों के लिए, एक से ही अर्थ, सभी ।भारतीय और पाश्चात्य। विद्वानों के द्वारा ग्रहण किये गये हैं । उनके परस्पर कोई मतभेद नहीं है । शब्दों की आलोचना करते हुए स्थान-स्थान पर संस्कृत शब्दों के समान भारोपीय (Indo-European) तथा भारत ईरानी (Indo-Iranian) शब्दों को भी संगृहीत किया गया है । इसमें यह देखा गया कि अधिकांश शब्दों में ध्वनिगत और अर्थगत दोनों प्रकार के साम्य हैं । परन्तु कहीं-कहीं अर्थ में भिन्नता, भी आ गई है । ऐसी स्थिति में सबसे महत्वपूर्ण तथ्य जो

प्रकाश में आया वह यह है कि अर्थ के भिन्न हो जाने पर भी, ध्वनि में विशेष परिवर्तन नहीं आया है । अतः यह कहा जा सकता है कि ये सभी भाषायें अर्थ की अपेक्षा ध्वनि की दृष्टि से अधिक घनिष्ट रूप से परस्पर जुड़ी हुई हैं ।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि प्रातःकालीन और संध्याकालीन धुंधले प्रकाश का प्रतिनिधित्व करने वाले द्युस्थानीय देवयुगल का देवशास्त्रीय स्वरूप, सामाजिक प्रतिष्ठा में ह्रास तथा प्रतिष्ठा की पुनःप्राप्ति की दृष्टि से पर्याप्त रोचक तथा मौलिक भी है । केवल दिव्य वैद्य के रूप में उनके स्वरूप का स्पष्ट वर्णन मिलता है तथा ऋग्वेद से लेकर महाकाव्यों तक इसी स्वरूप की प्रख्याति अक्षुण्ण रूप से विद्यमान है । अन्यथा अत्यन्त प्राचीन काल के देवता होने के कारण स्वतः वैदिक ऋषियों को उनके उद्भव और स्वरूप के विषय में स्पष्ट परिज्ञान नहीं था ।

---------::0::---------

पंचम अध्याय

शब्दानुक्रमणी

मन्त्रानुक्रमणी

संदर्भ ग्रन्थ सूची

व्याख्यात शब्दों की अनुक्रमणी

1	2	3	1	2	3
अमीवाम्	7/71/2	471	अरेणुभिः	6/62/6	451
अमुञ्चतम्	1/112/8	162	अर्कैः	6/62/1	442
अमृक्षाम्	10/39/14	492	अर्भगाय	1/116/1	224
अमृतस्य	1/112/3	135	अर्यः	1/116/6	244
अवतम्	1/116/9	253	अर्वन्तम्	1/112/21	201
अवथः	1/112/2	132	अशिवस्य	1/117/3	317
अवऽबद्धम्	1/116/24	299	अश्नुवन्	1/116/25	303
अवऽनीतम्	1/116/8	250	अश्व्यम्	1/112/10	167
अवर्तिम्	1/118/3	390	अश्विना	1/112/1	126
अवसे	1/112/24	210	अस्तने	1/112/21	200
अवस्यते	1/116/23	298	असश्चतः	1/112/2	129
अवीरयेथाम्	1/116/5	238	असिञ्चतम्	1/117/6	327
अवृणीत	1/117/13	351	अस्तम्	1/116/5	239
अव्यथिः	1/117/15	355	अस्त्रिधानैः	7/69/7	467
अव्यथिभिः	1/112/6	149	अस्यम्	1/112/3	137
अरदतम्	1/116/7	246	अहाः	1/116/3	231
अरपत्	1/119/9	436	अहा	1/116/4	234
अरिणीतम्	1/117/11	345	अहिऽहनम्	1/117/9	335
अरिष्टेभिः	1/112/25	212		॥आ॥	
अरुणीः	1/112/19	196	आ अदीदेत्	1/112/17	190
अरुषाः	1/118/5	396	आऽअरणे	1/112/6	149

1	2	3	1	2	3
आह्नूषम्	1/117/10	341	इषिरैः	6/62/3	447
आ चक्रे	1/117/23	376	इष्टये	1/112/1	123
आत्मन्ऽवतीभिः	1/116/3	231	इष्टये	1/112/2	132
आ तस्थुः	1/112/2	131	इळे	1/112/1	118
आतस्थिऽवांसम्	1/116/5	240		।ई।	
आथर्वणाय	1/117/22	373	ईङ्खितम्	10/143/5	501
आयवः	1/117/25	380	ईरयतम्	10/39/2	480
आयसीम्	1/116/15	280	ईष्युः	1/112/16	188
आ यासिष्टम्	1/119/4	425		।उ।	
आ विवासते	1/117/1	307	उग्रम्	1/116/12	266
आविःऽकृणोमि	1/116/12	267	उच्चाऽबुध्नम्	1/116/9	253
आर्जुनेयम्	1/112/23	205	उत्ऽऊयथुः	1/116/11	264
आशवः	1/118/4	392	उत् ऐरयतम्	1/112/5	145
आशुम्	1/117/9	333	उत्ऽनिन्यथुः	1/116/8	251
आशुहेमऽभिः	1/116/2	226	उत्तमम् न	10/143/6	502
आस्नः	1/116/14	274	उदन्नः	1/112/12	174
	।इ।		उद्ऽमेघे	1/116/3	230
इन्द्रऽजूतम्	1/118/9	404	उपऽईयुषः	10/39/8	486
इयर्मि	1/116/1	223	उपऽस्तुतम्	1/112/15	184
इषा	1/117/1	309	उपऽस्त्ये	1/117/5	322

1	2	3	1	2	3
त्रिऽमन्तुः	1/112/4	142	दुवस्यथः	1/112/15	185
त्रिऽवन्धुरः	1/118/1	384	दुवस्यथः	1/119/10	439
त्रिऽवृता	1/118/2	386	दुरोणम्	1/117/2	310
	।द।		दुहिता	1/117/13	351
दंसः	1/116/12	266	दुःऽशतम्	10/39/11	489
दंसनाभिः	1/118/6	398	दुःऽस्वै	1/117/4	319
ददाशुषे	1/112/20	198	दूरौ	1/112/5	146
दधाना	1/117/9	333	दूळहस्य	6/62/11	457
दधीचे	1/117/22	373	देवयन्तीः	7/69/2	459
दधीतिम्	1/112/23	206	द्यावापृथिवी	1/112/1	119
दध्यङ्	1/116/12	268	द्युऽभिः	1/112/25	212
दशतात्	1/116/11	263	द्यौः	1/112/25	217
दस्योः	1/117/3	316	द्रवयत्ऽसखम्	10/39/10	487
दत्रा	1/112/24	208	द्रापिम्ऽइव	1/116/10	258
दानाय	1/112/2	129	द्रोघाय	6/62/9	455
दिवः दातम्	1/112/14	180	द्विऽमाता	1/112/4	140
दिवः नपाता	1/117/12	346		।ध।	
दिव्यस्य	1/112/3	134	धनऽसाम्	1/112/7	152
दीर्घऽश्रवसः	1/112/11	170	धन्वन्	1/116/4	236
दुच्छुनाः	1/116/21	294	धियः	1/112/2	131

1	2	3	1	2	3
पितुऽसदे दुरोणे	1/117/7	328	प्र आवतम्	1/112/5	147
पिन्वथः	1/112/3	137	प्र कुथः	1/112/8	162
पिपिन्वथुः	1/112/12	174	प्र तारि	1/119/6	430
पिप्यथुः	1/116/22	297	प्रति ऐरयतम्	1/117/22	375
पिप्यूषीः	10/143/6	503	प्रत्नः	1/117/1	306
पुनःऽमन्यौ	1/117/14	353	प्रऽधने	1/116/2	228
पुरम्ऽधिम्	1/116/7	246	प्रऽयामनि	1/119/2	417
पुरम्ऽधी	1/116/13	271	प्रवत्ऽयामना	1/118/3	388
पुरुऽत्रा	7/69/6	466	प्रवणे	1/119/3	421
पुरुऽभुजा	1/116/13	271	प्रऽवाच्यम्	1/117/8	331
पुरुऽमायम्	1/119/1	411	प्रवृञ्जे	1/116/1	222
पुरुऽमित्रस्य	1/117/20	369	प्रऽशासने	1/112/3	134
पुरु वर्पांसि	1/117/9	332	प्रेणिम्	1/112/10	168
पुरुऽअन्तिम्	1/112/23	207		॥ब॥	
पूःऽभिद्ये	1/112/14	182	बर्हिष्मती	1/117/1	307
पूर्वऽचित्तये	1/112/1	120	बर्हिःऽइव	1/116/1	221
पृक्षम्	6/62/4	448	ब्रह्म	1/117/10	340
पृथिवी	1/112/25	218		॥भ॥	
पृथुऽश्रवसः	1/116/21	295	भरतऽवाजम्	1/112/13	178
पृश्निऽगुम्	1/112/7	156	भरे	1/112/1	124

1	2	3	1	2	3
	॥र॥		वपन्ता	1/117/21	371
रथम्	1/112/2	130	वपुषः	1/118/5	395
रथिरा	7/69/5	464	वयः	1/118/5	396
रयिम्	1/116/3	230	ववृधाना	1/117/11	345
रराणा	1/117/24	378	वध्रिम्	1/116/10	257
रसाम्	1/112/12	172	वरूथम्	1/116/11	261
रातऽहव्यः	1/118/11	409	वल्भाः	1/112/25	214
रातिः	1/117/1	308	वर्धयतम्	1/118/2	387
राध्यम्	1/116/11	260	वर्तिः	1/117/2	311
राये	1/116/9	255	वरांसि	6/62/2	445
रुक्मम् न	1/117/5	324	वाजऽसातौ	1/112/24	211
रुद्रियासः	6/62/8	453	वाजिनः	1/117/6	326
रुशतीम्	1/117/8	329	वाजी	1/116/6	243
रेभम्	1/112/5	143	वातऽरंहा	1/118/1	385
रेवत्	1/116/18	286	विऽउषि	6/62/1	442
रोदस्योः	1/117/10	342	विऽउष्टौ	1/118/11	410
	॥व॥		विऽचक्षणः	1/112/4	142
वचसम्	1/112/2	131	विऽचक्षे	1/117/17	360
वर्तनिऽभ्याम्	7/69/3	461	विऽवेन्यम्	1/119/4	425
वनुष्यताम्	6/62/10	456	वित्तऽजानिम्	1/112/15	185
वन्दनम्	1/112/5	145	विदथ्यम्	1/117/25	380

1	2	3
शाशदाना	1/116/2	227
शारुः इव	1/116/13	273
शीर्ष्णा	1/116/12	269
शुचन्तिम्	1/112/7	152
शुभे	1/117/5	323
शूरम्	1/112/18	194
श्नथितम्	1/116/24	300
श्येनऽपत्वा	1/118/1	382
श्येनासः	1/118/4	392
श्रवस्यम्	1/117/9	338
श्रवः	1/117/8	331
श्रुतर्यम्	1/112/9	165
श्रुष्टीऽवानम्	1/119/1	414
श्रोणम्	1/112/8	160
श्लोकम्	1/118/3	389
सचनः	1/116/18	287
सजोषा	1/118/11	408
शतत्ऽवसुम्	1/119/1	414
सनये	1/116/12	265
सनये	1/116/21	293
सनुत्येन	6/62/10	456
सम् अग्मत्	1/119/3	419
सम् इन्वथः	1/119/7	431
समुद्रम्	1/117/15	355
सम्ऽरिणीथः	1/117/4	319
सम्ऽरिणीथः	1/117/19	366
सम् सचेथे इति	1/116/17	285
सरद्भ्यः	1/112/21	201
सर्तवे	1/116/15	281
सर्वऽगणम्	1/116/8	251
सहस्रऽकेतुम्	1/119/1	414
सहस्रऽमीळ्हे	1/112/10	166
सहस्रऽसाम्	1/117/9	334
साता	1/112/22	203
सितम्	1/112/5	144
सिन्धुम्	1/112/9	163
सिसासतम्	10/143/3	497
सिषासन्तम्	1/112/5	147
सुऽअपत्यम्	1/116/19	289
सु आ गतम्	1/112/1	128
सुऽगेभिः	1/116/20	291
सुऽजाता	1/118/10	406

1	2	3	1	2	3
सुदानू	1/112/11	169	स्तर्यम्	1/117/20	368
सुऽदानू	1/117/10	340	स्तुवते	1/116/7	245
सुऽदेव्यम्	1/112/19	196	स्तुवते	1/117/7	328
सुऽभरा	1/112/2	129	स्तोतारम्	1/112/11	171
सुमतिम्	6/62/7	452	स्तोमान्	1/116/1	223
सुऽमृळीकः	1/118/1	383	स्पृधाम्	1/119/10	437
सुम्नऽयवः	7/71/3	472	स्यूमऽगभस्तिम्	7/71/3	473
सुऽविताय	1/118/10	407	स्यूमऽरश्मये	1/112/16	189
सुऽवृक्तिम्	7/71/6	477	स्वयुक्तिभिः	1/119/4	424
सुऽराधसा	10/143/4	499	स्वऽवान्	1/118/1	384
सुर्यायाः	1/116/7	247	स्वस्ति	1/116/6	242
सुऽरुचम्	1/112/1	122	स्वः	1/112/5	146
सुषुप्वांसम्	1/117/5	321	स्वःऽवतीः	1/119/8	434
				ह	
सुऽष्वंसदम्	1/112/7	152	हयन्ता	1/116/18	286
सुऽस्तुतिम्	10/39/7	485	हव्यः	1/116/6	244
सूनृताः	10/39/2	499	हिते	1/116/15	281
सूरिम्	1/119/3	422	हिरण्यस्य	1/117/12	348
सूरीन्	7/69/8	468	हिरण्यऽहस्तम्	1/116/13	272
सूर्यम्	1/112/13	176	हुवन्यति	1/119/9	436
सेनाऽजुवा	1/116/1	225	हुतऽभिः	1/116/17	285
सोमम्	1/116/24	301	हेतिम्	6/62/9	454
सोभगेभिः	1/112/25	213	होता	1/117/1	306

------::0::------

मन्त्रानुक्रमणी

1	2	3	4
18.	आ वां रथं दुहिता सूर्यस्य	1/116/17	284
19.	आ वां रथं पुरुमायं मनोजुवम्	1/119/1	411
20.	आ वां रथं युवतिस्तिष्ठदत्र	1/118/5	394
21.	आ वां रथो रोदसी बद्बधानो	7/69/1	458
22.	आ वां सुम्नैः शंयू इव	10/143/6	501
23.	आ वां श्येनासो अश्विना वहन्तु	1/118/4	391
24.	आस्नो वृकस्य वर्तिकामभीके	1/116/14	274
25.	आ श्येनस्य जवसा नूतनेन	1/118/11	407
	इ		
26.	इयं मनीषा इयमश्विना गीरिमाम्	7/71/6	476
27.	इयं वामह्वे शृणुत मे अश्विना	10/39/6	483
28.	इळे द्यावापृथिवी पूर्वचित्तये	1/112/1	118
	उ		
29.	उत स्या वां मधुमन्मक्षिका	1/119/9	435
30.	उद्वन्दनमैरतं दंसनाभिः	1/118/6	397
31.	उपायातं दाशुषे मर्त्याय रथेन	7/71/2	470
	ऊ		
32.	ऊर्ध्वा धीतिः प्रत्यस्य प्रयामनि	1/119/2	415
	ऋ		

1	2	3	4
	॥ए॥		
34.	एकस्या वस्तोरावतं रणाय	1/116/21	293
35.	एतं वां स्तोममश्विनावकर्म	10/39/14	492
36.	एतानि वामश्विना वीर्याणि	1/117/25	378
37.	एतानि वां श्रवस्या सुदानू	1/117/10	339
	॥क॥		
38.	कुह यान्ता सुष्टुतिं काव्यस्य	1/117/12	345
	॥च॥		
39.	चरित्रं हि वेरिवाच्छेदि	1/116/15	278
40	चित्ते तद्वां सुराधसा	10/143/4	498
41.	चोदयतं सूनृताः पिन्वतं धियः	10/39/2	479
	॥ज॥		
42.	जुजुरुषो नासत्योत वव्रिम्	1/116/10	256
	॥त॥		
43.	तद्वां नरा शंस्यं पज्रियेण	1/117/6	324
44.	तद्वां नरा शंस्यं राध्यम्	1/116/11	259
45.	तद्वां नरा सनये दंस	1/116/12	264
46.	ता नव्यसो जरमाणस्य मन्म	6/62/4	448
47.	ता भुज्युं विभिरद्भ्यः समुद्रात्	6/62/6	450

1	2	3	4
48.	ता यज्ञमा शुचिभिश्चक्रमाणा	6/62/2	444
49.	ता वर्तिर्यातं जयुषा वि पर्वतम्	10/39/13	491
50.	ता वल्गू दस्रा पुरुशाकतमा	6/62/5	449
51.	ता वां नरा स्ववसे सुजाता	1/118/10	406
52.	ता ह त्यद्वर्तिर्यदरध्रमुग्रेथा	6/62/3	447
53.	तिस्रः क्षपस्त्रिरहातिव्रजद्भिः	1/116/4	233
54.	तुग्रो ह भुज्युमश्विनोदमेघे	1/116/3	229
55.	त्यं चिदत्रिमृतजुरम्	10/143/1	494
56.	त्यं चिदश्वं न वाजिनम्	10/143/2	495
57.	त्रिवन्धुरेण त्रिवृता रथेन	1/118/2	385
	द		
58.	दश रात्रीरशिवेना	1/116/24	299
59.	द्युभिरक्तुभिः परि पातमस्मान्	1/112/25	211
	न		
60.	न तं राजानावदिते कुतश्च न	10/39/11	488
61.	नरा गौरेव विद्युतं तृषाणा	7/69/6	465
62.	नरा दंसिष्ठावत्रये	10/143/3	497
63.	नासत्याभ्यां बर्हिरिव प्र वृञ्जे	1/116/1	220
64.	नू मे हवमा शृणुतं युवाना	7/69/8	467

1	2	3	4
	॥प॥		
65.	परावृतं नासत्यानुदेथाम्	1/116/9	252
66.	परिविष्टं जाहुषं विश्वतः सीम्	1/116/20	290
67.	पुराणा वां वीर्यां प्र ब्रवा जने	10/39/5	483
68.	पुरु वर्पांस्यश्विना दधाना	1/117/9	332
69.	प्रवद्यामना सुवृता रथेन	1/118/3	387
70.	प्र वां दसांस्यश्विनाववोचमस्य	1/116/25	302
	॥म॥		
71.	मध्वः सोमस्याश्विना मदाय	1/117/1	305
72.	मही वामूतिरश्विना मयोभुरुत	1/117/19	364
	॥य॥		
73.	य ईं राजानावृतुथा विदधत्	6/62/9	454
74.	यदयातं दिवोदासाय वर्तिः	1/116/18	285
75.	यद्रोदसी प्रदिवो अस्ति भूमा	6/62/8	452
76.	यमश्विना ददथुः श्वेतमश्वम्	1/116/6	241
77.	याभिरङ्गिरो मनसा निरण्यथः	1/112/18	192
78.	याभिरन्तकं जसमानमारणे	1/112/6	148
79.	याभिर्नरं गोषुयुधं नृषाह्ये	1/112/22	202
80.	याभिर्नरा शयवे याभिरत्रये	1/112/16	186
81.	याभिर्महामतिथिग्वं कशोजुवम्	1/112/14	178

1	2	3	4
82.	याभिर्वम्रं विपिपानमुपस्तुतम्	1/112/15	183
83.	याभिर्विश्पलां धनसामथर्व्यम्	1/112/10	165
84.	याभिः कुत्समार्जुनेयं शतक्रतू	1/112/23	204
85.	याभिः कृशानुमसने दुवस्यथः	1/112/21	199
86.	याभिः पठर्वा जठरस्य मज्मना	1/112/17	189
87.	याभिः पत्नीर्विमदाय न्यूहथुः	1/112/19	195
88.	याभिः परिज्मा तनयस्य मज्मना	1/112/4	138
89.	याभिः शचीभिर्वृषणा परावृजम्	1/112/8	157
90.	याभिः शन्ताती भवथो ददाशुषे	1/112/20	197
91.	याभिः शुचन्तिं धनसां सुषंसदम्	1/112/7	151
92.	याभिः सिन्धुं मधुमन्तमसश्चतम्	1/112/9	162
93.	याभिः सुदानू औशिजाय वणिजे	1/112/11	168
94.	याभिः सूर्यं परियाथः परावति	1/112/13	175
95.	याभी रसां क्षोदसोद्नः पिपिन्वथुः	1/112/12	172
96.	याभी रेभं निवृतं सितमद्भ्यः	1/112/5	143
97.	युवमत्रयेऽवनीताय तप्तम्	1/118/7	399
98.	युवं च्यवानमश्विना जरन्तम्	1/117/13	349
99.	युवं च्यवानं जरसोऽमुमुक्तम्	7/71/5	475
100.	युवं च्यवानं सनयं यथा रथम्	10/39/4	482
101.	युवं तासां दिव्यस्य प्रशासने	1/112/3	133
102.	युवं तुग्राय पूर्व्येभिरेवैः	1/117/14	352

1	2	3	4
103.	युवं नरा स्तुवते कृष्णियाय	1/117/7	327
104.	युवं धेनुं शयवे नाधिताय	1/118/8	402
105.	युवं नरा स्तुवते पज्रियाय	1/116/7	245
106.	युवं पेदवे पुरुवारमश्विना	1/119/10	436
107.	युवं भुज्युमवविद्धं समुद्र	7/69/7	466
108.	युवं भुज्युं भुरमाणं विभिर्गतम्	1/119/4	423
109.	युवं भुज्युं समुद्र आ	10/143/5	500
110.	युवं वन्दनं निर्ऋतं जरण्ययाः	1/119/7	430
111.	युवं विप्रस्य जरणामुपेयुषः	10/39/8	485
112.	युवं वृकेणाश्विना वपन्तेषम्	1/117/21	370
113.	युवं रथेन विमदाय शुन्ध्युवम्	10/39/7	484
114.	युवं श्यावाय रुशतीमदत्तम्	1/117/8	328
115.	युवं रेभं परिषूतेरुरुष्यथः	1/119/6	428
116.	युवं श्वेतं पेदवेऽश्विनाऽश्वम्	10/39/10	487
117.	युवं श्वेतं पेदव इन्द्रजूतम्	1/118/9	403
118.	युवं ह रेभं वृषणा गुहा हितम्	10/39/9	486
119.	युवोर्दानाय सुभराः असश्चतः	1/112/2	128
120.	युवोरश्विना वपुषे युवायुजम्	1/119/5	426
121.	युवोः श्रियं परि योषावृणीत	7/69/4	462
122.	यो वामश्विना मनसो जवीयान्	1/117/2	309
123.	यो वां परिज्मा सुवृदश्विना रथो	10/39/1	478

1	2	3	4
124.	यो वां रथो नृपती अस्ति वोळ्हा	7/71/4	474
125.	यो ह्रस्य वां रथिरा वस्त उस्रा	7/69/5	463
	॥र॥		
126.	रयिं सुक्षत्रं स्वपत्यमायुः	1/116/19	288
	॥व॥		
127.	वि जयुषा रथ्या यातमद्रिम्	6/62/7	451
128.	वीळुपत्मभिराशुहेमभिर्वा	1/116/2	226
	॥श॥		
129.	शतं मेषान्वृक्ये चक्षदानमृज्राश्वम्	1/116/16	282
130.	शतं मेषान्वृक्ये मामहानम्	1/117/17	359
131.	शरस्य चिदार्चत्कस्यावतादा	1/116/22	295
132.	शुनमन्धाय भरमह्वयत् सा	1/117/18	361
	॥स॥		
133.	सदा कवी सुमतिमा चके	1/117/23	375
134.	स पप्रथानो अभि पंच भूमा	7/69/2	459
135.	सुनोमानेनाश्विना गृणाना वाजम्	1/117/11	343
136.	सुषुप्वांसं न निर्ऋतेरुपस्थे	1/117/5	321
137.	स्तुषे नरा दिवो अस्य प्रसन्ता	6/62/1	441

1	2	3	4
138.	स्वश्वा यशसा यातमर्वाग्	7/69/3	460
139.	सं यन्मिथः पस्पृधानासो अग्मत	1/119/3	418
	॥ह॥		
140.	हिमेनाग्निं घ्रंसमवारयेथाम्	1/116/8	247
141.	हिरण्यहस्तमश्विना रराणा	1/117/24	377

-------::0::-------

संदर्भ ग्रन्थ सूची

संहितायें

ऋग्वेद संहिता

1. ऋग्वेद संहिता ‖भाग 1,2,3 और 5‖ ‖प्रथम से दशम मण्डल पर्यन्त‖ : सायण भाष्य संहिता, प्रकाशक - एन०एस० सोनटक्के और टी०एन० धर्माधिकारी, वैदिक संशोधन मण्डल, पूना 1, द्वितीय संस्करण - 1972.

2. ऋग्वेद का सुबोध भाष्य ‖हिन्दी अनुवाद‖ : अनुवादक - पं० श्रीपाद दामोदर सात्वलेकर । प्रकाशक - वसंत श्रीपाद सात्वलेकर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी ‖जिला बलसाड‖ प्रथम संस्करण - 1967.

3. ऋग्वेद भाषा भाष्य सम्पूर्ण ‖हिन्दी अनुवाद‖ : अनु०[1]-स्वामी दयानन्द सरस्वती, प्रका०[2]-दयानन्द संस्थान, 1597, हरध्यानसिंह रोड, नई दिल्ली ।

4. ऋग्वेद संहिता ‖प्रथम से दशम मण्डल पर्यन्त‖ : स्कन्दस्वामिन् , वेङ्कटमाधव, मुद्गल तथा उद्गीथाचार्य का संस्कृत भाष्य, संपा०[3]-विश्वबन्धु, प्रका०-विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर।

English and German Texts on Rgveda Samhitā

5. **Rig-veda (Volumn I and II)** : Hermann Grassmann. LEIPZIG Published by - F.A. Brockhans. First Volumn - 1876 and Second Volumn- 1877.

---

1. अनु० = अनुवादक
2. प्रका० = प्रकाशक
3. संपा० = संपादक

6. Der Rig-veda (Vol.[2] 33,34 and 35) : Karl Friedrich Geldner, Pub.[1] by - Harvard Oriental Ser-ies, Cambridge University Press, London, Geoffrey Cumberlege Oxford University Press Leipzig, OTTOHARRASSOWITZ.

7. Hymns of Ṛgveda (Vol. I,II and III) : Ralph, T.H. Griffith, Pub. by - Chowkhambha Sanskrit Series Office, Varanasi-1, 1971.

8. Hymns of Ṛgveda (with full Vol.) : Ralph. T.H., Griffith. Pub. by Motilal Banarasidass, New Revised Edition, Delhi, 1973.

9. Rigveda Saṃhitā : H.H. Wilson, Cosmo Publications, New Delhi (India), 1977.

10. Hymns from the Ṛgveda : Peter Peterson, Pub. by Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona-411004, 1974.

11. Ṛksukta Śatī : H.D. Velankar, Bhartiya Vidya Bhawan, Kulpati K.M. Munshi Marg, Bombay 7, 1972.

12. Ṛgveda Mandala VII : H.D. Velanker , Bhartiya Vidya Bhawan, Chowpatty, Bombay 7, First Edition-1963.

13. Rigveda Saṃhitā : F. Maxmüllar, Published under the Patronage of his highness the Mahāraja of Vijayanagara, 1890.

14. A Vedic Reader : A.A. MacDonall, Oxford University Press, Delhi, Bombay, Calcutta, Tenth impression-1978.

---

1. Pub. = Published
2. Vol. = Volumn

• अथर्ववेद संहिता

1. अथर्ववेद संहिता : सायण भाष्य, संपादक - विश्वबन्धु, प्रका0 - विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर ।

2. अथर्ववेद (हिन्दी अनुवाद) : अनु0 - श्रीपाद दामोदर सात्वलेकर, वसंत श्रीपाद सात्वलेकर स्वाध्याय मण्डल, पारडी (जिला बलसाड)

3. अथर्ववेद संहिता : प्रका0 - आर्य साहित्य मण्डल लिमिटेड, अजमेर, 1960.

4. अथर्ववेद एवं गोपथ ब्राह्मण : एन0 ब्लूमफील्ड, अनु0 - सूर्यकान्त, चौखम्बा संस्कृत सीरीज़ आँफिस, वाराणसी-1, 1964.

यजुर्वेद संहिता

1. यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद भाषा भाष्य सम्पूर्ण : अनु0-स्वामी दयानन्द सरस्वती, दयानन्द संस्थान, 1597, हरध्यानसिंह रोड, नई दिल्ली ।

2. वाजसनेयिमाध्यन्दिनशाखीया शुक्लयजुर्वेदसंहिता (1 से 10 अध्याययुक्त प्रथम खण्ड) : श्रीमदुव्वटाचार्यविरचित-मन्त्र-भाष्येण सहिता संपादक-पं0 रामसकल मिश्रा, ~~एच0डी0~~ एच0डी0 गुप्ता एण्ड सन्स, चौखम्भा संस्कृत बुक डिपो, बनारस, 1912.

3. वाजसनेयी माध्यन्दिन् शुक्ल यजुर्वेद संहिता : संपा0 - पं0 जगदीशलाल शास्त्री, उव्वट महीधर भाष्य समेत, प्रका0 - मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, वाराणसी, पटना, प्रथम संस्करण 1971.

4. यजुर्वेदीय मैत्रायणी संहिता : संपा0-श्रीपाद दामोदर सात्वलेकर, स्वाध्याय मण्डल पारडी नगरम्, बलसाड प्रदेशे, गुजरात प्रान्ते, चतुर्थ संस्करणम्-1983.

5. यजुर्वेदीय काठक संहिता : संपा० - पं० श्रीपाद दामोदर सात्वलेकर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी नगरम् बलसाड प्रदेशे, गुजरात प्रान्ते, चतुर्थं संस्करणम् - 1983.

6. काण्व संहिता : संपा० - पं० श्रीपाद दामोदर सात्वलेकर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी नगरम् बलसाड प्रदेशे, गुजरात प्रान्ते, चतुर्थं संस्करणम् - 1983.

7. तैत्तिरीय संहिता (काण्ड पाँच, छः और सात) : भट्टभास्कर भाष्य संहिता, गवर्नमेण्ट ओरियण्टल लाइब्रेरी सीरीज़ ।

8. तैत्तिरीय संहिता (काण्ड तीन) : भट्टभास्कर भाष्य संहिता, संपा०-महादेव शास्त्री, गवर्नमेण्ट ओरियण्टल लाइब्रेरी सीरीज़, 1896.

<u>ब्राह्मण ग्रन्थ</u>

1. ऐतरेय ब्राह्मण : अनु० - डा० सुधाकर मालवीय, तारा प्रिंटिंग वर्क्स, कमच्छा, प्रथम संस्करण ।

2. शतपथ ब्राह्मण (भाग 1, 2 और 3) : अनु० - पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय, द रिसर्च इन्स्टीट्यूट आफ एनशियण्ट साइ-ण्टिफिक स्टडीज़, नई दिल्ली, भाग 1- 1968, भाग 2 - 1969 और भाग 3- 1970.

3. तैत्तिरीय ब्राह्मण (द्वितीय अष्टक) : भट्टभास्कर भाष्य संहिता, संपा० - आर० शर्मा शास्त्री ओरियण्टल लाइब्रेरी पब्लिकेशन्स, 1921.

4. तैत्तिरीय ब्राह्मण (तृतीय अष्टक) : भट्टभास्कर भाष्य संहिता, संपा० - महादेव शास्त्री और एल० श्रीनिवासाचार्य गवर्नमेण्ट ओरियण्टल लाइब्रेरी सीरीज़, 1911.

English Texts on Brāhmaṇas

5. Sacred Book of the East : Edited by F. Maxmüllar, Motilal Banarasidass, 1964.

6. Śatapatha Brāhmaṇa : With Sāyaṇa Commentry, Edited by Satyavrata Samaśrami, Bibliotheca Indica, Asiatic Society of Bengal, Calcutta, 1910.

7. Ṛgveda Brāhmaṇas : Arthur Berriedalekeith Harvard University Press, 1920.

अनुवर्ती वैदिक ग्रन्थ

गृह्यसूत्र

1. आश्वलायन गृह्यसूत्र : डा० नरेन्द्र नाथ शर्मा, ईस्टर्न बुक लिन्कर्स दिल्ली, प्रथम संस्करण 1976.

2. गोभिलीय गृह्यकर्म प्रकाशिका : सुब्रह्मण्य, प्रका० - सहादुरराम जी, हितैषी, प्रिंटिंग वर्क्स, नीचीबाग, बनारस सिटी, प्रथम संस्करण - 1932.

3. निरुक्तम् : महामहोपाध्याय श्री छज्जूरामशास्त्रिणा, विद्यासागरेण, विद्यावागीशेन पं० देवशर्म शास्त्रिणा च संशोधितया , दुर्गाचार्य संस्कृत टीकया च विभूषितम् । प्रका०-मेहरचन्द ल छमनदास पब्लिकेशन्स, अन्सारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली - 110002, द्वितीय संस्करण - 1985.

4. निरुक्तम् : डा० कपिलदेव शास्त्री, साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ-250002, संशोधित संस्करण - 1980-81.

5: निरुक्त और निघण्टु : स्कन्दस्वामिन् माहेश्वर टीका संहिता, संपा0 - डा0 लक्ष्मणस्वरूप, पंजाब विश्वविद्यालय, 1928.

6. बृहद्देवता ।भाग । और 2। : अनु0 - मैक्डॉनल । हारवर्ड ओरिएण्टल सीरीज़, लैनमन वाल्यूम - 6, प्रका0 - मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, वाराणसी, पटना, प्रथम संस्करण - 1904, द्वितीय संस्करण - 1965.

7. नीतिमञ्जरी : श्री द्याद्विवेद विरचिता, संपा0 - सीताराम जयराम जोशी, प्रका0 - सालिगराम शर्मा, हरिहर मण्डल, कालभैरव, बनारस सिटी, 1933.

पुराण

1. विष्णु पुराण : अनु0-पं0 श्रीराम शर्मा आचार्य, संस्कृति संस्थान, ख्वाजाकुतुब, बरेली ।उ0प्र0।, प्रथम संस्करण, 1967.

2. श्रीमद्भागवत् महापुराण : प्रका0 - घनश्यामदास जालान, गीता प्रेस, गोरखपुर ।

3. मत्स्य पुराण : गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास, प्रका0 - पं0 शिव-दुलारे बाजपेयी, 1980.

4. वायु पुराण ।खण्ड । और 2। : संपा0 और अनु0 - पं0 श्रीराम शर्मा आचार्य, प्रका0 - संस्कृति संस्थान, बरेली ।उ0प्र0।, 1967.

महाकाव्य

1. श्रीमद् वाल्मीकीय रामायण : महर्षि वाल्मीकि प्रणीत, प्रका0 - मोतीलाल जालान, गीता प्रेस, गोरखपुर, संवत् - 2033.

2. वाल्मीकीय रामायण : द्वारका प्रसाद चतुर्वेदी, प्रका० - रामनारायण लाल, 1927.

3. महाभारत (आदिपर्व तथा द्रोणपर्व) : श्रीपाद दामोदर सात्वलेकर, प्रका० - श्रीपाद दामोदर सात्वलेकर । स्वाध्याय मण्डल, भारत मुद्रणालय, औंध (जिला सतारा), सन् 1927.

4. महाभारत : पं० रामचन्द्र शास्त्री, प्रका० - किंजवडेकर ओरियण्टल बुक्स रीप्रिंट कॉरपोरेशन ।

<u>धर्म तथा देवशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थ</u>

1. वैदिक देवता उद्भव और विकास (प्रथम तथा द्वितीय खण्ड) : गयाचरण त्रिपाठी, प्रका० - भारती विद्या प्रकाशन, दिल्ली-वाराणसी । प्रथम खण्ड (प्रथम संस्करण), 1981, द्वितीय खण्ड (प्रथम संस्करण), 1982.

2. वैदिक माइथोलोजी : आर्थर ए० मैक्डॉनल, अनु०-रामकुमार राय, संपा० - चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी-1, प्रथम संस्करण, 1961.

3. वैदिक देवशास्त्र : डा० सूर्यकान्त, प्रका० - श्री भारत भारती प्राइवेट लिमिटेड, अन्सारी रोड, नया दरियागंज, दिल्ली-6, प्रथम संस्करण, 1961.

4. ऋगर्थदीपिका : श्री लक्ष्मण स्वरूप, प्रका० - मोतीलाल बनारसीदास, 1919.

5. वेद प्रकाश : सत्य ज्ञानार्णवतीर्थ, पट्टाभिराज शास्त्री, चौखम्भा संस्कृत सीरीज़ आफिस, विद्याविलास प्रेस, वाराणसी, 1934.

6. वेद रश्मि : डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, प्रका०-वसन्त श्रीपाद दामोदर सात्वलेकर, स्वाध्याय मण्डल ।

7. वेद रहस्य : श्री अरविन्द, अनु0 एवं संपा0 – आचार्य अभयदेव विद्यालंकार, प्रका0 – श्री अरविन्द आश्रम प्रेस, पाण्डिचेरी ।

8. ॠग्वेद पर एक ऐतिहासिक दृष्टि : महामहोपाध्याय पं0 विश्वेश्वरनाथ रेउ । प्रका0 – मोतीलाल बनारसीदास, प्रथम संस्करण – 1967.

9. वैदिक व्याख्या विवेचन : डा0 रामगोपाल नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 23दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1976.

<u>English Texts on Religion and Mythology</u>

1. Vedic Studies (Vol. I) : A.Venkatasubbiah, Surabhi and Company, Lansdowne Building, Mysore, 1932.

2. India and Indology : W. Narma Brown, Edited by Rasane Rocher, Published by Motilal Banarasidass, Indological publishers and booksellers, First edition, 1978.

3. The Ṛeligion of the Ṛgveda : H.D. Griswold, Humphrey Milferd, Oxford University Press, London, 1923.

4. The Religion of India (Handbook on the History of Religions, Vol. I) : E.W. Hopkins, Ginn and Company Boston, 1895.

5. The Ṛgveda - The Oldest Literature of India : Adolf Koegi, Ginn and Company, Boston, 1898.

6. The Vedas : Max Müllar, Sushil Gupta (India) Ltd., Calcutta, 1956.

7. The Dual Deities in the Religions of the Veda : J. Gonda, North Holland Publishing Company, Amsterdam, London, 1974.

8. The Religion of the Vedas : Maurice Bloomfield, New Yark, 1908.

9. The Religion and Philosophy of the Veda and Upanishads (Two Volumns) : A. B. Keith, Cambridge Massachusetts Harward University Press, London, 1925.

10. Vedisch Mythology (Book I & II) : Von Alfred Hillebrandt. Breslan Verlag Von M & H, Marcus, 1927-29.

11. Die Religion des Veda : H. Oldenberg, Verlag Von Wilhelm Hertz, Berlin, 1894.

12. Lectures on Comparative Religion : A. A. Mac Donall, University of Calcutta, 1925.

13. An Introduction to Mythology, : Levisuspense, George G. Husp and Company, London, First Edition-1921.

14. The Myths of Greece and Rome : H. A. Goderber, Harrum and Company, London, 1927.

15. Contribution to the Science of Mythology (Volumn II) : F. Max Müllar, London, 1897.

<u>भाषाविज्ञान तथा व्याकरण सम्बन्धी ग्रन्थ</u>

1. वैदिक व्याकरण : मूल लेखक - आर्थर अन्थोनी मैकडॉनल, अनु० - सत्यव्रत शास्त्री, प्रका० - मोतीलाल बनारसीदास, प्रथम संस्करण, 1971.

2. वैदिक व्याकरण : मूल लेखक - डब्ल्यू० डी० ह्विटने, अनु० - डा० मुनीश्वर झा, प्रका० - उ०प्र० हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, लखनऊ, द्वितीय संस्करण, 1971.

3. वैदिक व्याकरण : डा० रामगोपाल, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1965.

4. लघु सिद्धान्त कौमुदी : धरानन्द शास्त्री, प्रका०' - मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली-वाराणसी-पटना, अष्टम संस्करण, दिल्ली, 1977.

5. सिद्धान्त कौमुदी : श्री भट्टोजिदीक्षित प्रणीता, पं० श्री गोपाल शास्त्री हरिदास संस्कृत ग्रन्थमाला, चौखम्भा संस्कृत सीरीज़, वाराणसी, 1977.

6. संस्कृत व्याकरण का उद्भव और विकास : सत्यकाम वर्मा, मोतीलाल बनारसीदास, प्रथम संस्करण, 1971.

7. भाषा विज्ञान : भोलानाथ तिवारी, किताब महल, 15 थार्नहिल रोड, इलाहाबाद, 1986.

<u>English Texts on Linguistic and Grammer</u>

1. The Etymologies of Yāska : Siddheshwar Verma, Vishveshvaranand Vedic Research Institute, Sadhu Ashram (P.O.) Hosiarpur (India) First edition, 1953.

2. The Vedic Etymology : Prof. & Fatah Singh, National Publishing House, Delhi-6, 2/35 Ansari Road, Daryaganj, Delhi-6, Pub. by The Sanskrit Sadan, Kota (Rajasthan).

3. The roots, verbs, forms and primary derivaties. ... Willian Dwight Whitney. Pub. by Motilal Banarasidass, Delhi, Varanasi, Patna, Reprinted 1963, 1976

4. Comparative Grammers of the Indo Germanic languages. (Vol. IV) ... Karl Brugmann, New York, B. Westermann & Co. 812 Broadway, 1895.

5. Yāska's Nirukta- Text and exegetical notes. ... V.K. Rajavade, Poona, 1935

6. Translation of Nirukta into Marāthi. ... V.K. Rajavade, Poona, 1935

7. A Higher Sanskrit Grammer ... Moreshwar Ramchandra Kale. Motilal Banarasidass, Delhi, 1984

8. A Vedic grammer for students ... A.A. Mac Donall, Oxford University Press, 1962.

9. Lectures on the science of Language II ... F. Max Müllar, New York, 1981.

संस्कृत साहित्य के इतिहास से सम्बन्धित ग्रन्थ

1· वैदिक साहित्य का इतिहास ... वाचस्पति गैरोला प्रका· चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी। प्रथम संस्करण -विक्रम संवत् 2017·

2· वैदिक साहित्य और संस्कृति ... आचार्य बलदेव उपाध्याय, शारदा संस्थान, 37 बी· रवीन्द्रपुरी, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी। पंचम संस्करण - 1980।

English Texts on the history of Sanskrit Literature

3. History of Indian Literature... Dr. Winternitz, Second Part, Second Edition, Calcutta.

4. The History of Indian Literature. ... A. Weber, Tribuners Oriental Series, London, 1904

5. History of Ancient Sanskrit literature ... Max Müllar, Reprinted by S. Mansoor Ahmed, 71, Hewett Road Allahabad.

कोश और अनुक्रमणिकायें :-

1. यजुर्वेद वैयाकरण पदसूची (प्रथम तथा द्वितीय भाग) ... संपा0 विश्वबन्धु, प्रका0- विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर।

2. वैदिक इण्डेक्स (भाग एक तथा दो) ... मूल लेखक- ए.ए. मैक्डानल तथा ए.बी. कीथ, अनु0- राम कुमार राय, प्रका0- चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी-1 1962.

3. दैवत संहिता ... संपा0- पं0 श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, प्रका0- स्वाध्याय मण्डल, पारडी द्वितीय संस्करण 1958।

4. वैदिक शब्दार्थ पारिजात ... संपा0- विश्वबन्धु शास्त्री।

5. हलायुध कोश ... अभिधान रत्नमाला, संपा0- जयशंकर जोशी प्रका0- हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उ0प्र0-लखनऊ, द्वितीय संस्करण -1967।

6. संस्कृत हिन्दी कोश ... वामन शिवराम आप्टे, प्रका0- मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी।

7. शब्दकल्पद्रुम सार: ... राजा राधाकान्तदेव बहादुरेण विरचित। प्रका0- चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी-1961.

8.• वैदिक कोश : डा० सूर्यकान्त, वैदिक रिसर्च समिति, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी, 1963.

Dictionaries

9. Sanskrit English Dictionary : Sir Moniar Williams, Pub. at the University Press Oxford, from the first sheets of the first edition, 1956, (First edition - 1899).

10. Sanskrit English Dictionary : A. A. Mac Donall, Award publishing house, New Delhi-211002, First edition 1979.

11. A Sanskrit Reader : Charles Rockwell Lanman, Cambridge Massachusetts, Harword University Press, 1956, (First edition-1884).

12. Sanskrit English Dictionary Harage Hayman Wilson, Pub. by Nag-Saran Singh for Nag Publishers, 9a/VA-3 Jawahar Nagar, Delhi-7, First edition - 1819, Revised and enlarged edition-1979.

13. Vedic Bibliography (I, II & III Vol.) : R. N. Dandekar, Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona, 1973.

14. Wörterbuch zum Rigveda : M. Grassmann, Wiesbaden, Leipzig, 1873.

15. St. Petersburg Sanskrit Wörterbuch : Von Bohtlink, O. and Roth, R. 1961.

• पत्रिकायें

1. प्रज्ञा - बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी जर्नल, 14 नवम्बर, 1964.

2. विश्वेश्वरानन्द इण्डोलॉजिकल जर्नल - ।वाल्यूम 4। - विश्वेश्वरानन्द इन्स्टीट्यूट, होशियारपुर, पंजाब, 1966.

3. कल्याण - गीता प्रेस, गोरखपुर ।

Journals

4. Journal of the Asiatic Society of Bengal (Hetters) Calcutta, Vol. 4, 1938.

5. Journal of the Asiatic Society of Bombay, 1963.

6. Ganga Nath Jha Commemoration Vol., Poona Oriental Series, No. 39, 1937.

7. Journals of the Ganga Natha Jha Research Institute, Allahabad.

8. Journals of the Benaras Hindu University.

9. Allahabad University Studies, Vol. I, 1926.

10. Annals of the Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona, Vol. xviii, 1935-1936.